प्रथम परिचय के दिन से ही

मेरे

परम श्रद्धाभाजन

वर्तमान

सरकार द्वारा नजरबन्द

राहुल सांकृत्यायन

को

से वेदों का तथा 'भाषायाम्' से तत्कालीन प्रचलित संस्कृत का उल्लेख किया है, उसी प्रकार आचार्य्य बुद्धघोष ने 'पालिय' से तिपिटक वा मूलवचन को तथा 'अट्ठकथाय' से उनके समय में सिंहल द्वीप में विद्यमान सिंहल अट्ठकथाओं को याद किया है।

अट्ठकथा वा अर्थकथा का मतलब है अर्थ सहित कथा। तिपिटक को समझने के लिए भाष्य की आवश्यकता पड़ती थी। कहा जाता है कि महेन्द्र स्थविर जब बुद्ध शासन की स्थापना करने के लिए सिंहल गए, तब वे तिपिटक के साथ उसकी अर्थकथाएँ भी ले गए थे।[1] हो सकता है कि अट्ठकथाओं की रचना तो सिंहल में ही हुई हो, लेकिन उनको अधिक प्राचीन बनाने के लिए महेन्द्र से उनका सम्बन्ध जोड़ दिया गया हो। आरम्भ में तिपिटक के सूत्रों को समझाने के लिए उनके अर्थों को अधिक स्पष्ट करने के लिए उनके साथ कथाएँ कहने की भी परिपाटी रही होगी; जिन्हें पीछे लेख-बद्ध कर लिया गया।

सिंहल अर्थकथाओं का पीछे आचार्य्य बुद्धघोष द्वारा पालि रूपान्तर हुआ। सिंहल में वे केवल सिंहल वासियों के काम की थी, पालि में होने से वह अन्य देशवासियों के लिए भी उपयोगी हुईं। वे रूपान्तर इतने सुन्दर बने कि उनका आदर तिपिटक के समान होने लगा।[2]

'पालि' असल में किसी भाषा का नाम नहीं रहा है। भाषा का नाम तो रहा है मागधी। पालि तो केवल मूल-वचन का पर्य्यायवाची शब्द रहा है।

जो अर्थकथाएँ इस समय उपलब्ध हैं, वे इस प्रकार हैं—

१. समन्त पासादिका	विनय अट्ठकथा।
२. सुमङ्गलविलासिनी	दीघनिकाय अट्ठकथा

---

[1] बुद्ध घोष कृत चारों निकायों की अट्ठकथाओं में आरम्भ में ही इस प्रकार आता है—

सीहलदीपं पन आभता वमिना महामहिन्देन,
ठपिता सीहलभासाय दीपवासीनमत्थाय।

[2] पालि त्रिपिटक सम्भवाय (महावंस)।

३. पपंच सूदनी — मज्झिम निकाय अट्ठकथा
४. सारत्थ पकासिनी — संयुत्त निकाय अट्ठकथा
५. मनोरथ पूरणी — अंगुत्तर निकाय अट्ठकथा
६. खुद्दकनिकाय के ग्रन्थों पर भिन्न भिन्न नामों से अट्ठकथाएँ
७. कङ्खा वितरणी — पातिमोक्ख पर अट्ठकथा
८. समन्त पासादिका — विनय अट्ठकथा
९. अभिधम्मपिटक अट्ठकथा जिसमें निम्नलिखित पाँच अट्ठकथाएँ हैं—

(१) धातुकथापकरण अट्ठकथा
(२) पुग्गल पञ्ञत्तिपकरण अट्ठकथा
(३) कथावत्थु अट्ठकथा
(४) यमकपकरण अट्ठकथा
(५) पट्ठानपकरण अट्ठकथा।

ऊपर जो तिपिटक का वर्गीकरण दिया है, अट्ठकथाचार्यों का मत है कि वह राजगृह में हुई प्रथम संगीति के अनुसार है। उनका कहना है कि भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद सुभद्र भिक्षु ने भिक्षुओं को सान्त्वना देते हुए कहा कि "आवुसो! मत शोक करो। मत रोओ! हम मुक्त हो गए। उस महाश्रमण से पीड़ित रहा करते थे कि यह करो और यह न करो। अब हम जो चाहेंगे करेंगे, जो नहीं चाहेंगे उसे नहीं करेंगे।"[1] तब महाकस्सप स्थविर को भय हुआ कि कहीं सद्धर्म का अन्तर्धान न हो जाय। उसके रक्षार्थ उन्होंने पाँच सौ अर्हत भिक्षुओं की एक संगीति बुलाई। उस संगीति में पहले उपालि महास्थविर से पूछकर विनय का संगायन हुआ और बाद में आनन्द महास्थविर से सुत्त और अभिधम्म पिटक पूछा गया। एक मत है कि जातक, महानिद्देस, चुल्ल निद्देस, पटिसम्भिदामग्ग, सुत्तनिपात, धम्मपद, उदान, इतिवुत्तक, विमानवत्थु, पेतवत्थु, थेरगाथा तथा थेरीगाथा अभिधम्मपिटक के अन्तर्गत संगृहीत हुए। दूसरा मत है ये ग्रन्थ तथा चरिया-पिटक, अपदान और बुद्धवंश मिलकर खुद्दक-

---

[1] देखो चुल्लवग्ग पंचशतिक स्कन्धक (राहुल सांकृत्यायन द्वार हिन्दी में अनूदित)।

निकाय के नाम से सुत्तन्त पिटक के अन्तर्गत गिने गए।[1]

लेकिन प्रथम संगीति का जो वर्णन चुल्लवग्ग में आया है, उस वर्णन में कहीं त्रिपिटक का जिक्र नहीं। और तो क्या पिटक शब्द ही नहीं। उस समय 'धम्म और विनय' का संगायन हुआ था। 'धम्म और विनय' के अन्तर्गत ठीक कितना वाङ्मय रहा, कहना कठिन है। तो भी जब चुल्लवग्ग में द्वितीय संगीति का विस्तृत वर्णन मिलता है तो इतना तो कह ही सकते हैं कि प्रथम संगीति में सारे चुल्लवग्ग का संगायन (=पाठ) नहीं हुआ।

ऐसा प्रतीत होता है कि अशोक काल पर्य्यन्त बुद्धवचन के दो ही विभाग रहे—धम्म और विनय तथा उस समय तक त्रिपिटक के ग्रन्थों की रचना होती रही। अभिधम्मपिटक के एक ग्रन्थ—कथावत्थु—के रचयिता स्पष्ट ही अशोकगुरु मोग्गलि-पुत्त तिस्स स्थविर थे।[2]

बुद्धवचन का एक प्राचीन वर्गीकरण स्वयं त्रिपिटक में है। उसके अनुसार बुद्धवचन इन नौ भागों में विभक्त है—

(१) सुत्त, यह शब्द सूत्र तथा सूक्त दोनों संस्कृत शब्दों का रूपान्तर समझा जाता है। कुछ लोगों ने पालि सुत्त को सूत्र कहा है। दूसरों ने आपत्ति की है—क्योंकि यह पाणिनि के व्याकरण सूत्रों की तरह छोटे आकार के नहीं है, इसलिए इन्हें सूत्र न कह कर सूक्त कहना चाहिए, जैसे वेद के सूक्त।

संस्कृत बौद्ध साहित्य में सुत्तों को सूत्र ही कहा गया है। इधर ब्राह्मण साहित्य में भी आपस्तम्ब सूत्र आदि गृह्य सूत्रों से अपेक्षाकृत समान होने के कारण सुत्तों को सूत्र कहना ही ठीक होगा। अंगुत्तर निकाय के एकक निपात आदि में जो छोटे छोटे बुद्ध-वचन हैं, वे ही वास्तव में प्राचीन सुत्त हैं। और जिन सुत्तों को सूक्त कहने की प्रवृत्ति होती है, वह इन सुत्तों पर लिखे गए व्याख्यान (=अट्ठकथाएँ) हैं।

यहाँ तो इतना ही अभिप्रेत है कि अशोक के समय से बुद्ध वचन के एक अंश के लिए सुत्त शब्द व्यवहृत होता था।

---

[1] सुमङ्गलविलासिनी तथा समन्तपासादिका की निदान कथा।
[2] अट्ठसालिनी, कथावत्थु अट्ठकथा।

(२) गेय्य—अलगद्दूपम सुत्त (मज्झिम निकाय २२वाँ सूत्र) की अट्ठकथा में लिखा है कि सुत्तों में जो गाथाओं का हिस्सा है वह गेय्य है, उदाहरण के लिए संयुत्त निकाय का प्रारम्भिक हिस्सा। सभी प्रकार की गाथाओं को यदि गेय्य माना गया होता तो, उन गाथाओं का कोई पृथक वर्गीकरण रहा होता। प्रतीत होता है कि किसी खास तरह की गाथाओं की ही संज्ञा गेय्य रही होगी।

(३) वेय्याकरण—अर्थ है व्याख्या। किसी सूत्र का विस्तारपूर्वक अर्थ करने को वेय्याकरण कहते हैं। भविष्यद्वाणी के अर्थ में जातक में व्याकरण शब्द आया है। किन्तु इस शब्द का न तो उस व्याकरण से कुछ सम्बन्ध है और न संस्कृत या पालि के व्याकरण साहित्य से।

(४) गाथा—बुद्धघोषाचार्य्य ने धम्मपद, थेरगाथा और थेरीगाथा की गिनती गाथा में की है। इनमें से थेरगाथा में अशोक के भाई वीतसोक की गाथाएँ उपलब्ध हैं।[1] इस से तथा इसकी रचना शैली से सिद्ध है कि इस ग्रन्थ का वर्तमान रूप भगवान के परिनिर्वाण के तीन चार सौ वर्ष बाद का है।

(५) उदान—मूल अर्थ है उल्लास-वाक्य। खुद्दकनिकाय में जो उदान नामक ग्रन्थ है उसके अतिरिक्त सुत्तपिटक में जहाँ तहाँ और भी अनेक उदान आए हैं। यह कहना कठिन है कि इनमें से कितने उदान अशोक से पूर्व के हैं।

(६) इतिवुत्तक—खुद्दक निकाय का इतिवुत्तक १२४ इतिवुत्तकों का संग्रह है। इनमें से कुछ अशोक के समय के और पहले के भी हो सकते हैं।

(७) जातक—यह कथा-साहित्य सर्व प्रसिद्ध है। अनेक दृश्य साँची[2], भरहुत[3] आदि के स्तूपों की वेष्ठनी (रेलिंग) पर खुदे मिलते हैं जो कि १५० ई० पू० के आसपास के हैं। इस पर विस्तृत विचार आगे किया ही गया है।

---

[1] इमस्मिं बुद्धुप्पादे अट्ठारस वस्साधिकानं द्विन्नं वस्स सतानं मत्थके धम्मासोक रञ्ञो कणिट्ठभाता हुत्वा निब्बत्ति। तस्स वीतसोकोति नाम अहोसि (वीतसोक थेरस्स गाथा वण्णना।)

[2] साँची—भेलसा (प्राचीन विदिशा) के पड़ोस में।

[3] भरहुत—इलाहाबाद से १२० मील दक्षिण-पश्चिम एक गाँव।

भन्ते ! यदि इस शरीर से निकल कर दूसरे शरीर में जाने वाला नहीं है, तब तो वह अपने पाप कर्मों से मुक्त हो गया।

हाँ, महाराज ! यदि उसका फिर जन्म नहीं हो तो अलबत्ता वह अपने पापकर्मों से मुक्त हो गया और यदि वह फिर जन्म ग्रहण करे तो मुक्त नहीं हुआ।

कृपया उपमा देकर समझायें।

महाराज ! यदि कोई आदमी किसी दूसरे का आम चुरा ले तो दण्ड का भागी होगा या नहीं ?

हाँ भन्ते ! होगा।

महाराज ! उस आम को तो उसने रोपा नहीं था जिसे इसने लिया, फिर दण्ड का भागी कैसे होगा ?

भन्ते ! उसके रोपे हुए आम से ही यह भी पैदा हुआ, इसलिए वह दण्ड का भागी होगा।

महाराज ! इसी तरह, एक पुरुष इस नामरूप से अच्छे बुरे कर्म करता है। उन कर्मों के प्रभाव से दूसरा नामरूप जन्म लेता है। इसलिए वह अपने पाप कर्मों से मुक्त नहीं हुआ।

भन्ते ! आपने ठीक समझाया।[1]

जब तक मनुष्य की अविद्या-तृष्णा का नाश नहीं होता, तब तक उसका अच्छा बुरा कर्म ही उसका सब कुछ है। भगवान् का उपदेश है—"भिक्षुओ, सभी को इस बात पर सदा मनन करना चाहिए कि मेरा जो कुछ भी है कर्म ही है, कर्म ही दायाद है, कर्म ही से उत्पत्ति है, कर्म ही बन्धु है, कर्म ही शरण-स्थान है, जो मैं अच्छा बुरा कर्म करूँगा उसका मैं उत्तराधिकारी होऊँगा।"[2]

---

[1] भिक्षु जगदीश काश्यप कृत मिलिन्द-प्रश्न का हिन्दी अनुवाद (३-२-१३, ३-२-१६)।

[2] कम्मस्सकोम्हि, कम्मदायादो, कम्मयोनि, कम्मबन्धु, कम्मपटिसरणो यं कम्मं करिस्सामि कल्याणं वा पापकं वा तस्स दायादो भविस्सामीति अभिण्हं पच्चवेक्खितब्बं गहट्ठेन वा पब्बजितेन वा (अंगुत्तर निकाय, पंचक निपात, द्वितीय पण्णासक, प्रथम वर्ग, सातवाँ सूत्र)।

तृष्णा के क्षय हो जाने पर कर्म का भी क्षय हो जाता है और पुनर्जन्म का भी; लेकिन जब तक तृष्णा का क्षय नहीं होता तब तक तो प्राणी को जन्म जन्मान्तर तक जन्मों के चक्कर में रहना ही पड़ता है। बुद्ध ने जब बुद्धगया में बोधि-वृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त किया, उस समय उन्होंने सर्वप्रथम यही कहा—

"दुःखदायी जन्म बार बार लेना पड़ा। मैं संसार में (शरीर रूपी गृह को बनाने वाले) गृहकारक को पाने की खोज में निष्फल भटकता रहा। लेकिन गृहकारक! अब मैंने तुझे देख लिया। (अब) तू फिर गृह निर्माण न कर सकेगा। तेरी सब कड़ियाँ टूट गईं। गृह-शिखर बिखर गया। चित्त निर्वाण प्राप्त हो गया; तृष्णा का क्षय हो गया।"[1]

बुद्ध की शिक्षा के अनुसार रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान इन पाँच स्कन्धों का ही यह व्यक्ति या संसार बना है; इन पाँच स्कन्धों की धारा अच्छे बुरे कर्मानुसार बहती रहती है, बहती रही है और तब तक बहती रहेगी जब तक कोई व्यक्ति तृष्णा का सम्पूर्ण क्षय नहीं कर लेता।

पुनर्जन्म प्रायः सभी भारतीय दर्शन सम्मत हैं। बुद्ध की शिक्षा की विशेषता यही है कि अनात्मवाद के साथ पुनर्जन्म को स्वीकार किया गया है। जन्म मरण के बन्धन से मुक्त होना तो प्रायः सभी भारतीय दार्शनिकों का सामान्य आदर्श है।

तिपिटक में जिस जातक (ग्रन्थ) का समावेश है वह केवल गाथाओं का संग्रह है। जिस प्रकार धम्मपद एक चीज़ है और धम्मपद अट्ठकथा दूसरी, उसी प्रकार जातक एक चीज़ है और जातक अट्ठकथा दूसरी। अन्तर यह है

---

[1] धम्मपद (जरावग्ग १५३, १५४) की यह दो गाथायें प्रथम संबुद्ध गाथायें कही जाती हैं—

> अनेक जाति संसारं सन्धाविस्सं अनिब्बिसं
> गहकारकं गवेसन्तो दुक्खा जाति पुनप्पुनं
> गहकारक ! दिट्ठोसि पुन गेहं न काहसि
> सब्बा ते फासुका भग्गा गहकूटं विसङ्खितं
> विसङ्खारगतं चित्तं तण्हानं खयमज्झगा

है। तुषित-लोक से च्युत होकर महामाया देवी के गर्भ से उत्पन्न हो ....
बोधगया में बुद्धत्व प्राप्त करने तक की कथा अविदूरे-निदान कही जाती है।
जहाँ जहाँ भगवान् बुद्ध ने विहार करते समय कोई जातक कही, उन स्थानों
का जो उल्लेख है, वह सन्तिके-निदान है।

जितनी जातक कथाएँ हैं, वे दूरे-निदान के ही अन्तर्गत आती हैं। हर
जातक कथा चार विभागों में विभक्त है—(१) पच्चुप्पन्नवत्थु, (२) अतीत
वत्थु, (३) अत्थवण्णना, (४) समोधान। पच्चुप्पन्नवत्थु से मतलब है वर्त-
मान-कथा अर्थात् भगवान् बुद्ध के समय की कोई घटना; उदाहरण के लिए
पहली अपण्णक जातक में ही अनाथपिण्डिक के साथ पाँच सौ तैर्थिकों (बुद्ध-
मत से भिन्न मतों के अनुयाइयों) के बुद्ध की शरण में आने जाने की कथा।
अतीत-वत्थु का मतलब है किसी भी ऐसे अवसर पर भगवान् द्वारा कही गई
पूर्व जन्म की कथा; जैसे पहली जातक में ही कान्तार में जाने वाले बनजारों
की कथा। प्रत्येक कथा में एक या अनेक गाथाएँ हैं। अत्थवण्णना का
मतलब है इन गाथाओं की व्याख्या; जिसमें गाथाओं का शब्दार्थ और विस्तृ-
तार्थ रहता है। समोधान सदैव अन्त में आता है जिसमें बुद्ध बताते हैं कि उन्होंने
जो अतीत-वत्थु सुनाई उस अतीत-वत्थु के प्रधान पात्रों में कौन कौन था?
वे स्वयं उस समय किस योनि में उत्पन्न हुए थे।

इस अनुवाद में हम ने पच्चुप्पन्नवत्थु को वर्तमान कथा कहा है; अतीत-
वत्थु को अतीत कथा। ऐसे पाठकों के लिए जिनका अधिक ध्यान कथाभाग
की ओर ही प्रत्येक गाथा के नीचे अपना स्वतन्त्र अनुवाद दे दिया है। उसके
आगे की अत्थवण्णना (व्याख्या) के आरम्भ और अन्त में दो लकीरें खींच दी
हैं।

आखिर में जो समोधान आए हैं उन्हें हमने गलती से कथाओं का सारांश
कर दिया है। यह ठीक नहीं। समोधान का अर्थ केवल पूर्वकथाओं का मेल
बैठाना मात्र है।

कुल जातक कितने हैं? अर्थात् बोधिसत्व ने बुद्ध होने से पूर्व ठीक ठीक
कितनी बार जन्म ग्रहण किया है? कहना कठिन ही नहीं असम्भव है।
सुत्त-निपात के [illegible]-पिटक में ३२ जन्मों का वर्णन है, पर ३५ चरियाएँ
[illegible]

चरियापिटक	जातक
१. अकित्ति चरियं	१. अकित्ति जातक (४८०)
२. सङ्ख चरियं	२. सङ्खपाल जातक (५२४)
३. कुरुधम्म चरियं	३ कुरुधम्म जातक
४. महासुदस्सन चरियं	४. महासुदस्सन जातक
५. महागोविन्द चरियं	५. (देखें महागोविन्द सूत्र दीर्घ निकाय)
६. निमि राज चरियं	६. निमि जातक (५४१)
७ चन्दकुमार चरियं	७ खण्डहाल जातक (५४२)
८. सिविराज चरियं	८ सिवि जातक (४९९)
९. वेस्सन्तर चरियं	९. वेस्सन्तर जातक (५४७)
१०. ससपण्डित चरियं	१० सस जातक (३१६)
११. सीलवनाग चरियं	११. सीलवनाग जातक (७२)
१२. भूरिदत्त चरियं	१२. भूरिदत्त जातक (५४३)
१३. चम्पेय्यनाग चरियं	१३. चम्पेय्य जातक (५०६)
१४. चुलबोधि चरियं	१४. चुल्लबोधि जातक (४४३)
१५. महिंसराज चरियं	१५ महिस जातक (२७८)
१६. रुरुराज चरियं	१६ रुरु जातक (४८२)
१७. मातङ्ग चरियं	१७ मातङ्ग जातक (४९७)
१८. धम्माधम्मदेवपुत्त चरियं	१८ धम्म जातक (४५७)
१९. जयदिस्स चरियं	१९ जयदिस जातक (५१३)
२०. सङ्खपाल चरियं	२०. सङ्खपाल जातक (५२४)
२१. युधञ्जय चरियं	२१ युधञ्जय जातक (४६०)
२२. सोमनस्स चरियं	२२ सोमनस्स जातक (५०५)
२३. अयोघर चरियं	२३ अयोघर जातक (५१०)
२४. भीस चरियं	२४ भिस जातक (४८८)
२५. सोणपण्डित चरियं	२५ सोण नन्द जातक (५३२)
२६. तेमिय चरियं	२६ तेमिय जातक (५३८)
२७ कपिराज चरियं	२७ कपि जातक ([illegible])

२८. सम्पसञ्ञ पण्डित चरियं	२८. सञ्जीविर जातक (७२)
२६. वट्टपोतक चरियं	२६. वट्ट जातक (३५)
३०. मच्छराज चरियं	३०. मच्छ जातक (३४)
३१. कण्हदीपायन चरियं	३१. कण्हदीपायन जातक (४४४)
३२. सुतसोम चरियं	३२. .. . ..
३३. सुवण्णसाम चरियं	३३. साम जातक (५४०)
३४. एकराज चरियं	३४. एकराज जातक (३०३)
३५. महालोमहंस चरियं	३५. लोमहंस जातक (६४)

संस्कृत बौद्ध साहित्य में जातक माला नाम का एक ग्रन्थ है; जिसके रचयिता आर्यशूर हैं। तारानाथ ने आर्यशूर और प्रसिद्ध महाकवि अश्वघोष को एक ही कहा है। लेकिन यह ठीक नहीं। आर्यशूर की जातकमाला में कुल ३४ जातक हैं।

इसी प्रकार प्रो० ईशानचन्द्र के अनुसार महावस्तु नामक ग्रन्थ में लगभग ८० कथाएँ हैं।

लंकावासियों या सिंहल, स्याम, बर्मा, हिन्दचीन आदि देशों के बौद्धों की परम्परा है कि जातकों की संख्या ५५० है। यह ५५० संख्या याद रखने की सुविधा के लिए प्रचलित हो गई प्रतीत होती है; नहीं तो जातकट्ठकथा में जातकों की ठीक संख्या ५४७ है।' ये कथाएँ २२ निपातों या परिच्छेदों में बँटी हैं। पहले परिच्छेद में १५० ऐसी कथाएँ हैं जिनमें एक ही एक गाथा या श्लोक पाया जाता है; दूसरे में भी १५० ही कथाएँ हैं; लेकिन उनमें प्रत्येक में दो दो गाथाएँ हैं। तीसरे और चौथे में पचास पचास कथा। गाथाओं की संख्या क्रमशः तीन तीन और चार चार। पाँचवें निपात से तेरहवें निपात तक क्रम कोई कम से जारी रहता है। इन तेरह निपातों में जातक-कथाओं की कुल संख्या केवल [illegible] है। प्रत्येक निपात में कभी कभी, [illegible] [illegible]

[illegible]

ही क्रम है। चौदहवें निपात का नाम पकिण्णक निपात है; शायद इसलिए कि इसके जातको में गाथाओ की सख्या बहुत ही अस्थिर है। निपात क्रम से प्रत्येक कथा में १४ गाथाएँ होनी चाहिए। लेकिन इस निपात के जातकों में गाथाओ की सख्या साधारणत १० के आसपास है और एक में तो ४७ हैं। इसके आगे के सात निपातो के नाम (१) वीसति निपात, (२) तिंस, निपात, (३) चत्तालिस निपात, (४) पण्णास निपात, (५) छट्ठी निपात, (६) सत्तति निपात, (७) असीति निपात हैं। इन सभी निपातो के जातकों की गाथाओ में की सख्या अधिकाश की ओर ही झुकी हुई हैं। अन्त के दो निपातो में तो ९० और १०० से भी ऊपर है। बाइसवें निपात का नाम महा-निपात उसके आकार को देखते ठीक ही है। उसमें केवल दस जातक कथाएँ हैं; लेकिन प्रत्येक जातक में सैकड़ो गाथाएँ हैं और अन्तिम जातक—वेस्सन्तर जातक—में तो गाथाओ की सख्या सात सौ से भी ऊपर है।

इस प्रकार स्थूल दृष्टि से देखा जाए तो जातकों की सख्या ५४७ है और कम से कम थेरवादियो के लिए निश्चित है। लेकिन जातकट्ठ वण्णना की ही निदान-कथा में ही एक महागोविन्द जातक का उल्लेख है; जो इन ५४७ जातकों में कहीं नही है। सुत्र-पिटक में भी महागोविन्द की जन्म-कथा है; जो इस संग्रह से बाहर ही है, इससे अनुमान होता है कि जातकों की सख्या ५४७ से अधिक रही है।

मगर इन ५४७ जातको में कई ऐसे हैं जिनकी स्वतन्त्र रूप से पृथक गिनती भी हुई है; लेकिन वे केवल किसी दूसरे बड़े जातक के अन्तर्गत है। उदाहरण के लिए पञ्चपण्डित जातक (५०८) और दकरक्खस जातक (५१७) दोनों महाउम्मग जातक (५४६) में है। एक ही जातक एक से अधिक जगह दो भिन्न भिन्न नामो से भी गिने गये हैं जैसे प्रथम खण्ड का मुनिक जातक (३०) और दूसरे खण्ड का सालूक जातक (२८६) एक ही जातक दो जगह एक ही नाम से भी आए हैं, प्रथम खण्ड में भी मत्स्य-जातक है और द्वितीय खण्ड में भी मत्स्य-जातक है, किन्तु कथा भिन्न भिन्न है। एक ही खण्ड में जातकों की पुनरावृत्ति है; कहीं कहीं सारे जातक एक हैं केवल बहुत ही थोड़ा नाम मात्र का भेद है। इससे मानना होगा कि जातको की ठीक सख्या ५४७ न होकर, काफी कम है। हम "जातको" की बात कह रहे हैं, साधारण कथाओं

भी नहीं। यदि 'जातकों' की गिनती न करके उन कथाओं तथा उपकथाओं का हिसाब लगाया जाए तो जातकट्ठकथा में अनगिनत कथाएँ होंगी।[1]

जातक-कथा संसार के कथा-साहित्य में प्राचीनतम ही नहीं, सर्वाधिक बड़ा भी है।

५० जातकों के अन्त में 'पठमपण्णासको' और फिर १०० के अन्त में जो 'मज्झिम पण्णासको' लिखा है, उससे श्री ईशानचन्द्र घोष ने अनुमान लगाया है कि जातक संग्रहकार के मन में ५०, ५० के परिच्छेदों का ध्यान रहा होगा। लेकिन त्रिपिटक के अन्य निकायों में भी तो पचास, पचास के अन्त में ही गिनती है। इस पचास पचास के अन्त मात्र से जातकों की अन्तिम संख्या के सम्बन्ध में किसी अनुमान की गुञ्जाइश नहीं।

मूल 'जातक' में केवल गाथाएँ होने के कारण स्वभावतः जातकट्ठकथा में भी जातक-कथाओं का वर्गीकरण गाथाओं के अनुसार हुआ है। यह गाथाओं की संख्या के अनुसार न होकर उनके विषय के अनुसार होता तो कदाचित् अधिक अच्छा था। जातकों में विषय-क्रम से कोई वर्गीकरण नहीं।

एक से चौदह-निपात तक के निपात वर्गों में विभक्त हैं। इन वर्गों में किसी किसी का नाम उस वर्ग के पहले जातक के अनुसार है, जैसे अपण्णक वर्ग, किसी किसी का उस वर्ग में आए जातकों के विषय का ध्यान रखकर जैसे स्त्रीवर्ग; लेकिन इसी स्त्रीवर्ग में कुद्दाल पण्डित की कथा[2] है जिसका स्त्रीवर्ग से कोई सम्बन्ध नहीं।

जातकों के नामकरण में कुछ का नामकरण तो उस जातक में आई गाथा के पहले शब्दों का ध्यान रखकर किया गया है जैसे अपण्णक जातक (१), किसी का प्रधान पात्र के अनुसार जैसे बक जातक (३८), किसी का मुख्य विषय के अनुसार जैसे वण्णुपथ जातक (२), किसी का बोधिसत्व ने जो जन्म-ग्रहण किए, जिस मछली, हाथी या बन्दर की योनि में पैदा हुए उनके अनुसार।

बोधिसत्व प्रायः तपस्वी, राजा, वृक्षदेवता, ब्राह्मण आदि होकर पैदा हुए

---

[1] श्री ईशान चन्द्र घोष का अनुमान है कि लगभग तीन हजार होंगी।

[2] कुद्दाल जातक (७०)।

भिक्षु बुद्धदेव के कहने से महापुरुषों के चरित्र के अनन्त प्रभाव को प्रकट करने वाली जातक अर्थवर्णना को महाविहार वालों के मत के अनुसार व्याख्या करूँगा।[1] यहाँ इस आत्म-परिचयात्मक लेख में जो महिंशासक सम्प्रदाय के बुद्धदेव का नाम है, वह कुछ बहुत अनोखा है, खटकने वाला है। महिंशासक सम्प्रदाय स्थविरवाद से बाहर निकला हुआ एक सम्प्रदाय था। महाविहार परम्परा शुद्ध स्थविरवाद को ही मानने वाली परम्परा रही है। आचार्य बुद्धघोष ने अपनी सब अट्ठकथाओं में इसी परम्परा को अपनाया है। यदि जातकट्ठकथा बुद्धघोष रचित मानी जाए, तो उसमें महिंशासक सम्प्रदायी बुद्धदेव की याचना का क्या अर्थ ?

इन कारणों से आचार्य बुद्धघोष को जिन्हें अनेक दूसरी अट्ठकथाएँ लिखने का श्रेय प्राप्त है, इस अट्ठकथा का भी श्रेय देने की प्रवृत्ति नहीं होती।

इन कथाओं का अन्तिम संग्रह या सम्पादन किसी के भी हाथों हुआ हो किन्तु इनकी रचना में तथा इनके जातकट्ठकथा का वर्तमान रूप धारण करने में कई शताब्दियाँ अवश्य लगी होंगी। कुछ न कुछ जातकों का उल्लेख तो स्थविरवाद तथा महायान के प्राचीनतम साहित्य में है। उनकी यथार्थ संख्या कह सकना कठिन है। सम्भव है कि इन कथाओं में से अनेक कथाएँ भगवान् बुद्ध से पूर्व की हैं। बुद्ध ने अपने उपदेशों में उनका उपयोग भर किया है।

कुछ ऐसा अबौद्ध साहित्य है जो यद्यपि भगवान् बुद्ध से पूर्व का समझा जाता है, लेकिन उसकी परम्परा भले ही पुरानी रही हो, उसका सम्पादन पीछे ही हुआ है। उस साहित्य में और बौद्ध कथा-साहित्य में जो साम्य है वह जहाँ एक दूसरे की लेन देन हो सकता है, वहाँ वहाँ अधिक सम्भव है कि एक ही मूलकथा ने दोनों जगह भिन्न भिन्न रूप धारण किया है।

जहाँ तक पालि वाङ्मय का अपना सम्बन्ध है इन कथाओं में से कुछ त्रिपिटक में स्वतन्त्र रूप से आई हैं। सारे त्रिपिटक का वर्तमान स्वरूप कब स्थिर हुआ इसके बारे में कोई निश्चित [illegible] [illegible]। महायान [illegible]

---

[1] जातकट्ठकथा उपोद्घात (प. [illegible]

वट्टगामणी के समय अट्ठकथाओं सहित सारा तिपिटक लेख बद्ध हो गया था।[1] प्रतीत होता है कि तिपिटक तो वट्टगामणी के समय प्रथम शताब्दी में ही अन्तिम रूप से स्थिर हो गया था, लेकिन अट्ठकथाओं ने तो बुद्धघोष के समय अर्थात् पाँचवीं सदी के आरम्भ में आकर अन्तिम रूप ग्रहण किया होगा। यदि बुद्धघोष जातकट्ठकथाओं के अनुवादक या सम्पादक न भी रहे हों, तो भी यह कार्य्य उनके बहुत पीछे नहीं हुआ।

इससे बहुत पहले (ई० पू० द्वितीय शताब्दी में) इस संग्रह की अनेक कथाओं को हम भरहुत के स्तूपों पर उनके नाम के साथ अङ्कित पाते हैं।[2] यद्यपि हम सारी कथाओं के लिए कोई भी एक समय निर्धारित करने में असमर्थ हैं तो भी इतना कह सकते हैं कि इस संग्रह की कहानियाँ ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी के भी पहले से लेकर ईसा के बाद की प्रथम या द्वितीय शताब्दी तक ही रची गई होंगी। यह जातक-संग्रह अपने वर्तमान स्वरूप में कम से कम लगभग दो हजार वर्ष पुराना है।

जातक कथा-संग्रह शुद्ध भारतीय साहित्य होने से अबौद्ध साहित्य की कथाओं में भी इनसे साम्य या इनका प्रभाव दिखाई देना स्वाभाविक है। तिपिटक में न महाभारत का कहीं उल्लेख है, न रामायण का। बुद्ध के आस-पास के किसी और साहित्य में भी नहीं। मिथिजातक सदृश अनेक कथाओं ने महाभारत में स्थान पाया है। रामायण में बुद्ध का नाम आया है।[3] इतना

---

[1] पिटकत्तय पालिं च तस्सा अट्ठकथम्पि च
मुखपाठेन आनेसुं पुब्बे भिक्खू महामति;
हानिं दिस्वान सत्तानं तदा भिक्खू समागता
चिरट्ठितत्थं धम्मस्स पोत्थकेसु लिखापयुं॥
महावंसं॥ (३३, १००-१०२)

[2] तीस से अधिक जातक दृश्यों का निश्चय हो गया है—भरहुत शिलालेख।

[3] श्लोक प्रक्षिप्त माना जाता है; कहते हैं प्राचीन प्रतियों में अप्राप्य है—
यथा हि चोरः स तथा हि बुद्धस्तथागतं नास्तिकमत्र विद्धि॥
तस्माद्धि यः शक्यतमः प्रजानां न नास्तिकेनाभिमुखो बुधः स्यात्॥
अयोध्याकाण्डम्॥ २।१६।३८

ही नहीं सारा रामायण दसरथ जातक,[1] देवधम्म जातक आदि बुद्ध जातक लेकर रचा प्रतीत होता है। यह साम्य कैसे हुआ?

सामान्य लोगों का कहना है कि महाभारत और रामायण इतने अधिक प्राचीन ग्रन्थ हैं कि उनमें यदि कोई परवर्ती उल्लेख पाया जाए तो उसे प्रक्षिप्त ही मानना चाहिए। दूसरे पक्ष का कहना है कि चाहे महाभारत रामायण के मूल ग्रंथ की परम्परा प्राचीन भी रही हो तो भी उनके सम्पादकों ने उनका सम्पादन करते समय अनेक बार इनमें बहुत कुछ मिला दिया। इसलिए महाभारत-रामायण तथा जातकों में यदि कुछ साम्य दिखाई देता है तो यह जातक-कथाओं की ही देन है।

हमारा अनुमान है कि किसी अंश में तो अबौद्ध और बौद्ध साहित्य दोनों एक ही परम्परा के ऋणी हैं। प्राचीन काल का कथा साहित्य आज की तरह

---

[1] दसरथ जातक में है—

फलानं इव पक्कानं निच्चं पपतना भयं।
एवं जातानं मच्चानं निच्चं मरणतो भयं ॥५॥

रामायण में है—

यथा फलानां पक्वानां नान्यत्र पतनाद् भयं।
एवं नराणां जातानां नान्यत्र मरणाद् भयं ॥

दसरथ जातक में है—

एको व मच्चो अच्चेति, एको व जायते कुले ॥१०॥

रामायण में है—

सह् एवो जायते जन्तुरेक [illegible] ।

दसरथ जातक में है—

[illegible]
[illegible] ॥११॥

[illegible] में है—

[illegible]
[illegible]

ही नहीं सारा रामायण दसरथ जातक,[1] देवधम्म जातक आदि कुछ जातक लेकर रचा प्रतीत होता है। यह साम्य कैसे हुआ ?

एक पक्ष के लोगों का कहना है कि महाभारत और रामायण इतने अधिक प्राचीन ग्रन्थ हैं कि उनमें यदि कोई परवर्ती उल्लेख पाया जाए तो उसे प्रक्षिप्त ही मानना चाहिए। दूसरे पक्ष का कहना है कि चाहे महाभारत रामायण के कुछ अंश की परम्परा प्राचीन भी रही हो तो भी उनके सम्पादकों ने उनका सम्पादन करते समय अनेक बार इनमें बहुत कुछ मिला दिया। इसलिए महाभारत-रामायण तथा जातकों में यदि कुछ साम्य दिखाई देता है तो वह जातक-कथाओं की ही देन है।

हमारा अनुमान है कि किसी अंश में तो अबौद्ध और बौद्ध साहित्य दोनों एक ही परम्परा के ऋणी हैं। प्राचीन काल का कथा साहित्य आज की तरह

---

[1] दसरथ जातक में है—

फलानं इव पक्कानं निच्चं पपतना भयं।
एवं जातानं मच्चानं निच्चं मरणतो भयं ॥५॥

रामायण में है—

यथा फलानां पक्वानां नान्यत्र पतनाद् भयं।
एवं नराणां जातानां नान्यत्र मरणाद् भयं ॥

दसरथ जातक में है—

एको व मच्चो अच्चेति, एकोव जायते कुले ॥१०॥

रामायण में है—

यद् एको जायते जन्तुरेकेव विनश्यति।

दसरथ जातक में है—

दस वस्स सहस्सानि सट्ठि वस्स सतानि च
कम्बुगीवो महाबाहु रामो रज्जं अकारयि ॥१३॥

रामायण में है—

दश वर्ष सहस्राणि दश वर्ष शतानि च
वीत शोक भय क्रोधो रामो राज्य मकारयत्।

जिस अविकसित रूप में जातक-कथा की कहानियों ने महाभारत और रामायण में आकर विकास पाया, उससे यही बात ठीक मालूम होता है कि इन कथाओं के प्रारम्भिक रूप या लेखा जातक-कथाओं में विद्यमान है और पीछे के लंबे-चौड़े रूप या महाभारत और रामायण में।

घट जातक, एक प्रकार से छोटा मोटा भागवत ही है। उसमें कृष्ण-जन्म से लेकर कंस की हत्या करने और फिर द्वारिका जा बसने तक की सारी कथा आई है। उसमें चानूर और मुष्टिक पहलवानों की हत्या करने जैसी छोटी छोटी बातें भी हैं। लेकिन श्रीमद्भागवत स्पष्ट रूप से पीछे की चीज होने से इसमें सन्देह नहीं कि कृष्ण-जन्म की कथा अपने प्राचीन रूप में जातक में ही विद्यमान है।

कुछ भी हो महाभारत रामायण की कथाओं से मिलती जुलती जातक में जो कथाएँ हैं, उनका अपना महत्व है और वह कम नहीं।

ईसा की प्रथम शताब्दी में आन्ध्र राजाओं के समय गुणाढ्य नाम के किसी पण्डित ने पैशाची भाषा में "बृहत्कथा" नाम का एक ग्रन्थ लिखा था। पैशाची भाषा या तो आधुनिक दरदी की पूर्वज भाषा थी या उज्जैन के पास की एक बोली।[1] यह गुणाढ्य कौन थे, कहना कठिन है। इनकी "बृहत्कथा" एकदम अप्राप्य है। अब तक किसी के देखने में नहीं आई। इससे नहीं पता जा सकता कि वह "बृहत्कथा" कितनी बृहत् थी और उसमें क्या क्या था। बाण के हर्षचरित में, दण्डी के काव्यादर्श में, क्षेमेन्द्र की बृहत्कथा मञ्जरी में और सोमदेव के कथा सरित्सागर में उसका प्रमाण है। सोमदेव ने, जो कि एक बौद्ध था, अपना कथा सरित्सागर "बृहत्कथा" से ही सामग्री लेकर लिखा और सोमदेव के कथा सरित्सागर में अनेक जातक-कथाएँ विद्यमान हैं। इससे अनुमान होता है कि "बृहत्कथा" का आदि स्रोत जातक-कथाएँ ही रही होंगी।

प्रसिद्ध पञ्चतन्त्र की अधिकांश कथाओं का मूल जातकों में ही है।[2]

---

[1] भारत भूमि और उसके निवासी (पृ० २४६) जयचन्द्र विद्यालंकार।

[2] १ बक जातक (३८)। २ वानरिन्द जातक (५८)। ३ कूट वाणिज जातक (६८)। ४ मित्त चिन्ति जातक (११४) आदि।

उसका कर्ता ब्राह्मण था। बौद्ध कथाएँ जहाँ जन-साहित्य हैं और उनका उद्देश्य जनसाधारण का शिक्षण रहा है, वहाँ पञ्चतन्त्र के ब्राह्मण रचयिता ने उन कथाओं का उपयोग केवल राजकुमारों को शिक्षित करने के लिए किया है।

हितोपदेश में श्लोकों की अधिकता है। वे सचमुच हितोपदेश हैं। उसमें पञ्चतन्त्र से सहायता ली गई है और अनेक जातक-कथाएँ विद्यमान हैं।

आख्यायिका-साहित्य में वैताल पञ्चविंशति का भी स्थान है। उसमें पता नहीं कोई जातक-कथा है या नहीं? सिंहासन द्वात्रिंशिका शुकसप्तति आदि और भी कई ग्रन्थ हैं। जैन वाङ्मय में भी आख्यायिका साहित्य है ही। इन सारे साहित्य में और बौद्ध जातक कथाओं में कहीं न कहीं साम्य अवश्य है, जो अधिकांश में जातक-कथाओं के ही प्रभाव का परिणाम है।

जातक-कथाओं में कई कथाएँ ऐसी हैं जो पृथ्वी के प्रायः हर कोने में पहुँच गई हैं। पञ्चतन्त्र ही इन कथाओं को फैलाने का मुख्य साधन बना प्रतीत होता है। छठी सदी में पञ्चतन्त्र का एक अनुवाद पहलवी अथवा प्राचीन फारसी में हुआ। यह अनुवाद खुसरो नौशेरवाँ के राजवैद्य की कृति था। इसी अनुवाद से पञ्चतन्त्र का एक अनुवाद सीरिया की भाषा में हुआ, जो जर्मन अनुवाद के साथ १८७६ में लीपज़िग् से छपा। पञ्चतन्त्र ही का एक अरबी अनुवाद लगभग ७५० ई० में अलमोकाफ़ के पुत्र अब्दुल्ला ने किया; जिसका नाम था कलेला दमना।[1] यह कथा-संग्रह अरबों को बहुत प्रिय हुआ। आगे चलकर जब अरब योरोप के दक्षिण देशों में फैले तो उन्हें इन कथाओं को यूरोप में फैलाने का श्रेय मिला।

१८११ में पञ्चतन्त्र के अरबी अनुवाद कलेला दमना (کلیله دمنه) का अंग्रेज़ी अनुवाद हुआ। १४८३ में अरबी अनुवाद से ही पञ्चतन्त्र जर्मन में अनूदित हुआ। १०८० में इस अरबी अनुवाद का ग्रीक भाषा में एक अनुवाद हो चुका था। १८६६ में इस ग्रीक अनुवाद से लातीनी भाषा में अनुवाद हुआ। इसी प्रकार १२वीं सदी के अन्त में पञ्चतन्त्र के अरबी अनुवाद का फारसी अनुवाद हुआ जिसका नाम है अनवार सुहेली। १६४४ में उस अनवार सुहेली से

---

[1] ये दोनों नाम पञ्चतन्त्र के करटक और दमनक के विकृत रूप हैं।

अरबी के कलेला दमना की तरह यह ग्रन्थ लोगों को बहुत प्रिय हुआ और इसका प्रचार भी बहुत हुआ। अनेक यूरोपिय भाषाओं में इसका अनुवाद किया गया। यह ग्रन्थ लातीनी, फ्रेंच, इटालियन, स्पैनिश, जर्मन, अंग्रेजी, स्वेडिश और डच में प्राप्य है। १२०४ में आइसलैण्ड की भाषा में भी इसका अनुवाद हुआ, और फिलिपाइन द्वीप में जो स्पेन-बोली बोली जाती है, उस तक में यह प्रकाशित हो चुका है।

कितने ही आश्चर्य्य की बात प्रतीत होने पर भी यह सत्य है कि सन्त जोसफत के रूप में भगवान् बुद्ध आज सारे रोमन कैथालिक ईसाइयों द्वारा स्वीकृत[1] हैं, आदृत हैं और पूजे जा रहे हैं।

इन जातक कथाओं के प्रसार और प्रभाव की कथा अनन्त प्रतीत होती है। एक इटालियन विद्वान ने सिद्ध किया है कि किताब उल् सिन्दबाद की अनेक कथाओं का और अलिफलैला (Arabian Nights) की अनेक कथाओं का भी मूल-स्थान जातक-कथाएँ ही हैं।

जिस समय हूण पूर्वी यूरोप में गए तो वे भी अपने साथ जातक कथाओं में से कुछ ले गए। बहुत सी ऐसी कथाएँ जिनका मूल जातक कथाओं में है सलाव लोगों में मिली हैं।

बौद्ध देशों में जातक कथाओं का प्रचार है ही।

इस प्रकार जातक वाङ्मय चाहे उसे प्राचीनता की दृष्टि से देखें, चाहे विस्तार की, और चाहे उपदेशपरक तथा मनोरञ्जक होने की दृष्टि से, वह संसार में अपना सानी नहीं रखता।

अट्ठकथानुसार इन कथाओं में से तीन चौथाई कहानियाँ जेतवन विहार में कही गईं। शेष राजगृह तथा अन्य कौसम्बी, वैशाली आदि स्थानों में।

जातक कथाओं में जो वर्तमान कथाएँ हैं, उपरी दृष्टि से देखने से, उनका ऐतिहासिक मूल्य अधिक प्रतीत होता है। वे कथाएँ उतनी ऐतिहासिक नहीं

---

[1] देखो पोप सिक्सटस् (१५८५-९०) की २७ नवम्बर की डिक्री जिसमें भारत के बरलाम और जोसफत को कैथालिक ईसाइयों के सन्तों के रूप में स्वीकृत किया है।

है जितनी पार्लमेण्ट। वर्तमान-कथाओं की अपेक्षा अतीत-कथाओं का ऐतिहासिक मूल्य कहीं अधिक है ?

प्रायः सभी जातकों के प्रारम्भ में "पूर्व काल में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय" आता है। पता नहीं यह ब्रह्मदत्त कोई राजा हुआ है या नहीं ? कुछ लोगों का ख्याल है कि 'जनक' की तरह यह ब्रह्मदत्त भी अनेक राजाओं की पदवी रही होगी। हमारा तो ख्याल है कि कथाओं में ब्रह्मदत्त का मूल्य कथा आरम्भ करने के लिए एक निश्चित शब्द-समूह से अधिक कुछ नहीं; जैसे उर्दू की प्रायः हर कहानी 'एक दफा का जिक्र है' से आरम्भ होती है, और अंग्रेजी की वन्स अपान ए टाइम (Once upon a time) से, वैसे ही हमारी अनेक जातक कथाओं के लिए 'पूर्व काल में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय' है।

जातक कथाओं के विषयों के बारे में थोड़े में कुछ भी कह सकना कठिन है। मानव-जीवन का कोई भी पहलू इन कथाओं से अछूता बचा प्रतीत नहीं होता। यही वजह है कि पिछले दो सहस्र वर्ष के इतिहास में यह जातक कथायें मनुष्य समाज पर अनेक रूप से अपनी छाप छोड़ने में समर्थ हुई हैं।

जब कभी कहा जाता है कि भारतवर्ष का सारा साहित्य परलोक चिन्ता-मग्न है, उसको इहलोक की चिन्ता ही नहीं, तो हम उसे अपनी और अपने वाङ्-मय की प्रशंसा समझते हैं। किसी भी जाति का काम केवल परलोक-परक होने से नहीं चल सकता। भगवान् बुद्ध ने इह लोक तथा परलोक चिन्ता में समत्व स्थापित किया। यही कारण है कि जातक कथाओं को बौद्ध वाङ्मय में महत्त्वपूर्ण स्थान मिला और उनका विकास हुआ। जातक साहित्य जन-साहित्य के सच्चे अर्थों में जनता का साहित्य है। इसमें हमारे उठने बैठने खाने पीने, ओढ़ने बिछाने की साधारण बातों से लेकर हमारी शिल्पकला, हमारी कारीगरी, हमारे व्यापार की चर्चा के साथ हमारी अर्थनीति, राज-नीति तथा हमारे समाज के संगठन का विस्तृत इतिहास भरा पड़ा है। उस युग के भूगोल की भी पर्याप्त सामग्री है, विशेष रूप से उस युग के जल-मार्गों तथा स्थल-मार्गों की।

भारतीय जीवन का कोई पहलू ऐसा नहीं जिसका लेखा इन कथाओं में न मिलता [illegible]

पुस्तक में केवल दो ही तरह के टाइपों का प्रयोग है—काला और सफेद। काले टाइप में जो है वह पालि है, अथवा पालि गाथाओं का अनुवाद; और जहाँ कहीं सफेद टाइप में काला टाइप है वह पालि शब्दों के लिए है या पारिभाषिक तथा महत्व-पूर्ण शब्दों के लिए।

पुस्तक की सुन्दर छपाई का श्रेय ला जर्नल प्रेस को है। उसके स्टाफ ने इसकी छपाई में हर तरह से सहयोग दिया है।

अपनी ओर से पूरी सावधानी रखने पर भी भूल हो जाना मानव स्वभाव है; मुझसे भी कुछ अवश्य हुई होंगी। आशा है विज्ञजन सूचित करने की दया दिखावेंगे।

मूलगन्धकुटी विहार
सारनाथ
२३-८-४१

आनन्द कौसल्यायन

विषय-सूची

विषय | पृष्ठ

विषय

विषय

ग. सन्तिके निदान

विषय | पृष्ठ

विषय

विषय

विषय पृष्ठ

जातक

[प्रथम खण्ड]

अनुसार व्याख्या करूँगा। मेरी इस व्याख्या को सब सज्जन अच्छी तरह ग्रहण करें।

जातक की यह व्याख्या 'दूरेनिदान', 'अविदूरे-निदान', 'सन्तिके-निदान'—इन तीनों निदानों में वर्णित है, और जो इसे इस तरह से सुनते हैं, वे आरम्भ से भली प्रकार समझने के कारण ठीक समझते हैं। इस लिए हम इसे इन तीनों निदानों में विभक्त कर के कहेंगे। पहले इन तीनों निदानों के वर्गीकरण को ही समझ लेना चाहिए। भगवान् दीपङ्कर[1] के चरणों में जीवन अर्पण करने के समय से ले कर वेस्सन्तर[2] का शरीर छोड़ तुषित-स्वर्ग लोक में उत्पन्न होने तक की (जीवन-) कथा 'दूरेनिदान' कही जाती है। तुषित-लोक से च्युत हो कर बोध गया (बोधिमण्ड) में बुद्ध होने तक की कथा 'अविदूरे-निदान' कही जाती है। (उपरान्त) 'सन्तिके-निदान' तो भिन्न भिन्न स्थानों में विचरते हुए उन उन स्थानों पर जो जीवन-कथा मिलती है वह (ही है)।

क. दूरेनिदान

१. सुमेध (बाल्य, वैराग्य)

'दूरे निदान' इस प्रकार है :—

चार असंख्य एक लाख कल्प पहले अमरवती नाम की एक नगरी थी। उस नगरी में सुमेध नामक ब्राह्मण रहता था। वह माता-पिता दोनों के कुल से सुजात, शुद्ध-जन्मा, सात पीढ़ी तक कुल दोष से रहित, सुन्दर, दर्शनीय, मनोहर, उत्तम रंग के सौंदर्य से युक्त था। उसने और कोई काम न कर ब्राह्मणों ही की विद्या सीखी थी। बचपन में ही उसके माता-पिता मर गये। तब खजानची (=राशि-वर्द्धक अमात्य)[3] बही-खाता

---

[1] अब से पहले बुद्ध।

[2] देखो वेस्सन्तर जातक (५४७)।

[3] बही-खाता रखने वाला राशि-वर्धक नामक मन्त्री।

(=भाण्डागारिक) से बही मँगा और सोना, चाँदी, मोती आदि से भरी कोठरियों को खोल खोल कर कहने लगा—'इतना मातृ-धन है। इतना पितृ-धन है। इतना दादा-परदादा का धन है. . . । इस प्रकार सात पीढ़ी तक के धन को कह कर सौंपा, "कुमार! तो इसे सँभालो!"

सुमेध पण्डित ने सोचा—"इस धन को इकट्ठा कर मेरे पिता पितामह आदि परलोक जाते हुए एक पैसा (=कार्षापण) भी साथ नहीं ले गये, लेकिन मुझे इसे साथ ले कर ही जाना चाहिए।"

उसने राजा को कह नगर में ढिंढोरा पिटवाया, और जन-समूह को दान दे तापसों के संप्रदाय में शामिल हो गया। इस बात को अधिक स्पष्ट करने के लिए यहाँ सुमेध की कथा का कहा जाना जरूरी है। सुमेध की कथा यद्यपि 'बुद्ध-वंश'[1] में आई है, लेकिन उस कथा के पद्यमय (=गाथा-सम्बन्ध में आई) होने से, (उसका) अर्थ ठीक स्पष्ट नहीं होता। इस लिए हम उस कथा को बीच बीच में उन गाथाओं के सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए कहेंगे।

चार असंख्येय एक लाख कल्प पूर्व दस प्रकार के शब्दों से युक्त अमरवती अथवा अमर नामक एक नगर था, जिसके बारे में बुद्ध-वंश में कहा है:—

"चार असंख्येय एक लाख कल्प पूर्व एक मनोरम, दर्शनीय, दस शब्दों से युक्त, अन्नपान से संयुक्त 'अ म र' नामक नगर था।"

यहाँ 'दस शब्दों से युक्त' का अर्थ है—हाथी-शब्द, अश्व-शब्द, रथ-शब्द, भेरि-शब्द, मृदङ्ग-शब्द, वीणा-शब्द, गीत-शब्द, शङ्ख-शब्द, ताल-शब्द, खाने पीने का शब्द—इन दस शब्दों से युक्त। इन दसों शब्दों को एकत्र ग्रहण करने से:—

हस्ति-शब्द, अश्व-शब्द और भेरि, शङ्ख, रथ आदि शब्द, खाने पीने का शब्द और अन्नपान का घोष।

'बुद्ध-वंश' में इस गाथा को कह कर:—

[1] सुत्तपिटक के खुद्दक-निकाय का एक ग्रन्थ।

"सर्वाङ्ग सम्पूर्ण, सब भोगों से युक्त, सात रत्नों से सम्पन्न, नाना जन समाकुल, देव नगर की तरह वैभवशाली, पुण्यात्माओं के निवास, अमरवती नाम नगर में, करोड़ों का मालिक बहुत से धन धान्य वाला, वेद-पाठी (=अध्यापक) मन्त्रधर, तीनों वेदों में पारङ्गत, लक्षण, इतिहास और सद्धर्म में पूर्णता-प्राप्त सुमेध नामक ब्राह्मण रहता था।"

एक दिन महल के ऊपर के सुन्दर कोठे पर आसन मार कर एकान्त में बैठा हुआ सुमेध पण्डित सोचने लगा—'पण्डित! जन्म ग्रहण करना दुःख है। प्रत्येक जन्म में मृत्यु दुःख है। उत्पन्न होना, बूढ़ा होना, रोगी होना (तथा) मरना; मेरे लिये अनिवार्य है। अतः मुझे चाहिए कि मैं उस अमृत महा-निर्वाण को खोजूँ जो उत्पत्ति, जरा, व्याधि, दुःख तथा सुख से रहित है और शीतल तथा अमृत स्वरूप है। आवागमन से मुक्त होने का एक निर्वाण-मार्ग अवश्य होगा। इसी लिए कहा है —

"तब मैं ने एकान्त में बैठ कर सोचा कि आवागमन तथा शरीर-त्याग— दोनों दुःख हैं। अतः उत्पत्ति, जरा और व्याधि से युक्त मैं, अजर, अमर (और) क्षेम(-स्वरूप) निर्वाण को खोजूँ। अवश्य ही मुझे इस नाना प्रकार के गन्दगी से भरे, अपवित्र शरीर को छोड़ कर माया ममता रहित हो (चला) जाना होगा।

"जो मार्ग है, वह होगा (=रहेगा) ही। वह न हो (ऐसा) नहीं हो सकता। संसार से मुक्ति के पाने के लिए मैं उसी मार्ग को खोजूँगा।"

वह आगे भी ऐसा सोचने लगा —

"जिस प्रकार लोक में दुःख का प्रतिपक्षी सुख है, उसी प्रकार आवागमन (=भव) का प्रतिपक्षी आवागमन का अभाव (=विभव) भी अवश्य होना चाहिए। जिस प्रकार गर्मी के रहने पर, उसको शान्त करने वाली ठंडक भी रहती है, इसी प्रकार राग आदि अग्नियों का दमन करने वाला निर्वाण भी अवश्य होगा। जिस प्रकार पाप का प्रतिपक्षी पुण्य तथा निर्दोषता है, उसी प्रकार इस पापी (=दुःखमय) जन्म के रहते सारे जन्मों के क्षय होने से जन्म रहित निर्वाण भी अवश्य होगा। इसी लिए कहा है:—

"जैसे यदि दुःख है, तो सुख भी है; वैसे ही आवागमन है तो आवागमन का अभाव भी है। जैसे गर्मी के रहने पर, उसके विपरीत शीतलता भी है, इसी प्रकार त्रिविध अग्नि के रहते निर्वाण भी होना चाहिए। जिस प्रकार पाप

के रहने पर पुन्य भी है; उसी प्रकार जन्म के रहने पर आवागमन से मुक्ति भी होनी चाहिए।"

और भी सोचने लगा :—

जिस प्रकार मल के ढेर में डूबे मनुष्य को दूर से भी पाँच रंगों के कमलों से आच्छादित तालाब को देख कर 'मुझे किस मार्ग से तालाब तक पहुँचना चाहिए' सोच तालाब को खोजना चाहिए। यदि वह न खोजे, तो उसमें तालाब का दोष नहीं। इसी प्रकार सब मलों को धोने में समर्थ अमृत रूपी निर्वाण के महान् तालाब के रहते (यदि मनुष्य) उसे न खोजे, तो उसमें अमृत रूपी निर्वाण के महान् तालाब का दोष नहीं। जिस प्रकार डाकुओं से घिरा हुआ मनुष्य भागने का रास्ता रहने पर भी, यदि न भागे तो वह रास्ते का दोष नहीं, उस आदमी का ही दोष है। इसी प्रकार यदि मलों से लिप्त मनुष्य निर्वाण की ओर ले जाने वाले कल्याण-मार्ग के रहते भी, उस मार्ग को न खोजे, तो वह मार्ग का दोष नहीं, उस आदमी का ही दोष है। जैसे रोग-ग्रस्त मनुष्य रोग चिकित्सक वैद्य के रहते भी, यदि उस वैद्य को ढूंढ कर रोग की चिकित्सा न करावे, तो वह वैद्य का दोष नहीं। इसी प्रकार जो (चित्त-) मल के रोग से पीड़ित मनुष्य, मल के दूर करने के उपाय के जानकार आचार्य्य के विद्यमान् रहते भी (उन्हें) नहीं खोजता, तो वह उसीका दोष है, मल-निवारक आचार्य्य का दोष नहीं। इसी लिए कहा है :—

"जैसे गन्दगी में फँसा हुआ मनुष्य, पानी से भरे तालाब को (दूर से) देख कर भी, यदि उसे नहीं खोजता; तो वह तालाब का दोष नहीं। इसी प्रकार मल धो देने वाले अमृत-सरोवर के रहते भी, यदि मनुष्य उस सरोवर को नहीं खोजता, तो वह उस अमृत-सरोवर का दोष नहीं। जैसे शत्रुओं से घिरा हुआ (मनुष्य) यदि भागने का मार्ग रहते भी नहीं भागता है, तो उसमें मार्ग का दोष नहीं। इसी प्रकार मलों से घिरा हुआ (मनुष्य) यदि कल्याणकारी मार्ग के रहते भी उस मार्ग को नहीं ढूंढता है, तो वह उस मार्ग का दोष नहीं। जिस प्रकार रोग से पीड़ित पुरुष, यदि चिकित्सक के विद्यमान् रहने भी, उस रोग की चिकित्सा नहीं करता, तो वह चिकित्सक का दोष नहीं; इसी प्रकार मल के रोग से दुखी, पीड़ित पुरुष भी, यदि मल-निवारक आचार्य को नहीं खोजता, तो वह आचार्य का दोष नहीं।"

और भी सोचने लगा :—

"जैसे शौकीन आदमी गले में लगे हुए मैल को उतार कर सुख-पूर्वक जाता है, इसी प्रकार मुझे भी इस मलिन काय को छोड ममता रहित हो निर्वाण-नगर में प्रवेश करना चाहिए। जिस प्रकार स्त्री-पुरुष मल-मूत्र करने के स्थान पर मल-मूत्र करके न तो उसे अपने अङ्क (=उच्छङ्ग) में ले कर जाते हैं, न उसे अपने पल्ले में ही बाँध कर ले जाते हैं बल्कि उसके प्रति घृणा कर अनिच्छुक हो, उस (मल-मूत्र) को वहीं छोड आते हैं, इसी प्रकार मुझे भी इस मलिन-काय को अनिच्छुक हो छोड अविनाशी (=अमृत) निर्वाण नगर में प्रविष्ट होना चाहिए। जैसे मल्लाह लोग पुरानी नाव को बेपरवाह हो छोड जाते हैं, इसी प्रकार मैं भी इस नौ छिद्रों से चूने वाले शरीर को छोड बे-परवाह हो निर्वाण-नगर में प्रवेश करूँगा। जैसे अनेक रत्नों को ले कर चोरों के साथ जाने वाला मनुष्य, अपने रत्नों के नाश होने के डर से, उन चोरों को छोड कर कल्याणकारी मार्ग ग्रहण करता है, इसी प्रकार यह जो शरीर है, सो यह भी रत्न लूटने वाले डाकुओं की तरह है। यदि मैं इस शरीर के प्रति लोभ रखूँगा, तो मेरा आर्य-मार्ग रूपी पुण्य (=रत्न) नष्ट हो जायगा। इस लिए मुझे इस डाकू के समान शरीर को छोड कर निर्वाण-नगर में प्रवेश करना चाहिए। इसी लिए कहा है —

"जिस प्रकार मनुष्य मुर्दे को गले में बाँधने से घृणा कर उसे स्वेच्छापूर्वक अपने आप खुशी से छोड जाये, उसी प्रकार मैं इस नाना प्रकार की गन्दगी से भरी अपवित्र काया को बे-परवाह तथा आकांक्षा (=अर्थ) रहित हो छोड जाऊँ। जैसे स्त्री-पुरुष मल-मूत्र करने के स्थान पर मल को बिना किसी चाह अथवा आकांक्षा के छोड कर चले जाते हैं, इसी प्रकार मैं इस नाना प्रकार की गन्दगी से भरी काया को पाखाने (=वच्चकुटि) में मल के समान छोड कर चल दूँगा। जैसे मल्लाह पुरानी, टूटी फूटी, पानी भर जाने वाली नाव को बिना किसी चाह या आकांक्षा के छोड कर चले जाते हैं, वैसे ही मैं इस नौ छिद्रों से सदा गन्दगी बहाने वाले शरीर को, मल्लाह की नाव की तरह, छोड कर चल दूँगा। जैसे सामान लेकर जाता हुआ पुरुष चोरों के सामान लूट लेने के डर से (सामान) छोड कर जाता है; इसी प्रकार यह शरीर महा-चोर के समान है। इसलिए मैं इसे पुण्य (=कर्म) के नाश के डर से छोड कर जाऊँगा।"

२. संन्यास

इस प्रकार सुमेध पण्डित नाना प्रकार के दृष्टान्तों से इस भनासक्ति के भाव का चिन्तन कर, पूर्वोक्त विधि से अपने घर पर पड़ी अनन्त भोग की वस्तुओं को याचकों और पथिकों को प्रदान कर, महादान दे, चीजों और कामुकता के लोभ को छोड़, अमर (नामक) नगर से निकल कर अकेले ही हिमालय में धम्मक नाम पर्वत के पास आश्रम, पर्ण-कुटी और टहलने का चबूतरा (=चंक्रमण भूमि)[1] बना कर पाँच नीवरणों[2] से रहित 'इस प्रकार एकाग्र चित्तता' आदि क्रम से कहे गये आठ कारण-गुणों[3] से युक्त अभिज्ञा (=ज्ञान) नामक बल की प्राप्ति के लिए, उस आश्रम में नौ दोषों वाले वस्त्रों को छोड़ कर, बारह गुणों से युक्त छाल (=वल्कल) को धारण कर ऋषियों के नियमानुसार साधु बन गये। इस तरह साधु बन आठ दोषों से युक्त उस पर्ण-कुटी को छोड़, दस गुणों से युक्त 'वृक्ष की छाया' के नीचे जा कर, अनाज के बने सभी भोजनों को छोड़, वृक्ष से गिरे फलों को ही खाने लगे। बैठे, खड़े रहते तथा चलते हुए ही (=अर्थात् कभी न लेट कर) योगाभ्यास (=प्रयत्न) करते हुए सात दिनों के अन्दर ही अन्दर आठ समापत्तियों[4] और पाँच अभिज्ञाओं[5] को पा लिया। इसी प्रकार उसने इच्छित अभिज्ञा-बल प्राप्त किया।

---

[1] टहलते हुए योगाभ्यास करने की जगह।

[2] चित्त की शुद्ध वृत्तियों को ढाँकने वाले—१ काम-च्छन्द, २ व्यापाद (=क्रोध), ३ स्त्यानमृद्ध (=आलस्य), ४ औद्धत्य-कौकृत्य (=उद्धता), ५ विचिकित्सा (=सन्देह)।

[3] १ समाहित (=एकाग्र-चित्त), २ परिशुद्ध, ३ परियोदात, ४ अङ्गण-रहित, ५ उपक्लेश-रहित, ६ मृदु, ७ कम्मनीय, ८ स्थिरता-प्राप्त (=अभिज्ञा-प्राप्त)।

[4] चार रूप तथा चार अरूप समापत्तियाँ।

[5] दिव्य-चक्षु, दिव्य-श्रोत्र, पूर्व जन्म की स्मृति, ऋद्धि-बल, पर-चित्त का ज्ञान।

इसी लिए कहा गया है :—

"इस प्रकार विचार कर मैं अरबों धन याचकों और अनाथों को दे हिमालय में चला आया। हिमालय के पास ही धम्मक नामक पर्वत है। वहाँ मैंने आश्रम, पर्ण-कुटी तथा पाँच दोषों से रहित टहलने का चबूतरा (=चंक्रमण-भूमि) बनाया, और आठ गुणों से युक्त अभिज्ञा-बल प्राप्त किया। नौ दोषों से युक्त वस्त्र को छोड़ कर बारह गुणों से युक्त छाल (वल्कल) का चीवर धारण किया। आठ दोषों से युक्त पर्ण-कुटी को छोड़, दस गुणों वाली 'वृक्षों की छाया' का आश्रय लिया। बो, जोत कर तैयार किए अनाजों को बिल्कुल त्याग दिया; और अनेक गुणों से युक्त 'वृक्षों से गिरे फलों' को ग्रहण किया। वहाँ बैठे, खड़े और टहलते हुए ही योग का अभ्यास कर, सप्ताह के अन्दर अभिज्ञा-बल प्राप्त किया।"

इस पाली[1] में सुमेध पण्डित ने, आश्रम और टहलने के चबूतरे, अपने हाथ से बनाये—ऐसा कहा है। लेकिन इसका (वास्तविक) अर्थ यह है—महापुरुष ने सोचा कि आज मैं हिमालय में जा, धम्मक पर्वत में प्रवेश करूँगा? इस विचार से उन्होंने गृह-त्याग किया।

३. आश्रम

देवताओं के राजा शक्र (=इन्द्र) ने सुमेध के गृह-त्याग को देख विश्व-कर्मा देव-पुत्र को सम्बोधित किया—"तात! इस सुमेध पण्डित ने साधु होने के विचार से घर छोड़ा है; जा इसके लिए निवास स्थान का निर्माण कर।"

विश्वकर्मा ने उसके वचन को स्वीकार कर, रमणीय आश्रम, सुरक्षित पर्ण-कुटी और मनोरम टहलने के चबूतरे का निर्माण किया। भगवान् ने अपने प्रवचन में उस आश्रम के बारे में कहा था :—"सारिपुत्र! उस धम्मक पर्वत में 'मेरे लिए आश्रम किया' और 'पर्णशाला बनाई गई' तथा पाँच दोषों से रहित चङ्क्रमण-भूमि बनाई गई।" सो यहाँ "मेरे लिए किया" का अर्थ

---

[1] पाली; सुत्तपिटक की दो पंक्ति की तरह; बुद्ध-वचन का पर्यायवाची।

है मेरे द्वारा की गई, और 'पर्णशाला बनाई गई' का अर्थ है "पत्तों से ढकी हुई शाला भी मेरे लिए बनी हुई थी।" "पाँच दोषों से रहित"; चबूतरे के यह पाँच दोष हैं—कड़ा होना समतल न होना, बीच में वृक्षों का होना, घनी छाया होना, बहुत संकीर्ण होना तथा लम्बा चौड़ा होना।

कड़ी तथा ऊबड़ खाबड़ भूमि में टहलते हुए टहलने वाले के पैर दुखने लग जाते हैं, छाले पड़ जाते हैं, चित्त एकाग्र नहीं होता, योग-क्रिया (=कर्म-स्थान)[1] सिद्ध नहीं होती। कोमल और समतल पर टहलने से योग-क्रिया सिद्ध होती है। इस लिए भूमि की कठोरता और ऊबड़-खाबड़-पन को एक दोष समझना चाहिए। चबूतरे के किनारे पर बीच में अथवा सिरे पर वृक्ष रहने से बे-परवाही के कारण (कभी कभी) उनमें माथा या सिर टकरा जाता है, इस लिए 'बीच बीच में वृक्षों का होना' दूसरा दोष है। तृण-लता आदि से आच्छादित घनी छाया वाले स्थान में टहलते हुए अन्धकार के समय या तो साँप आदि जीवों को (अपने पैर से) कुचल कर मार देता है, अथवा उनके द्वारा डसे जाने से (स्वयं) दुःख को प्राप्त होता है। इस लिए 'घनी छाया वाला होना' तीसरा दोष है। चौड़ाई में केवल हाथ (रत्न)[2] या आधे हाथ भर चौड़े, बहुत ही तंग चबूतरे पर टहलने से टहलने वाले (पुरुष) की अगल-बगल में फिसल जाने के कारण नाखून और उँगलियाँ तक टूट जाती हैं। इस लिए 'बहुत तंग होना' चौथा दोष है। बहुत चौड़े स्थान में टहलने से (आदमी) का चित्त (इधर उधर) भागता है, एकाग्र नहीं होता इस लिए 'बहुत लम्बा चौड़ा होना' पाँचवाँ दोष है। चौड़ाई डेढ़ हाथ, दोनों तरफ एक एक हाथ चौड़ी पटरी (=अनुचंक्रमण), लम्बाई साठ हाथ और उस पर समतल बालू बिखरा हुआ—चबूतरा ऐसा होना चाहिए। (सिंहल-)द्वीप को श्रद्धावान् बनाने वाले महेन्द्र स्थविर का चबूतरा चेतिय गिरि[3] (विहार)

---

[1] योगाभ्यास का साधन, योग-युक्ति।

[2] रत्न=एक हाथ भर।

[3] लंका में जिस मिश्रक-पर्वत (=मिहिन्तले) पर महामहेन्द्र उतरे थे, उसी पर्वत पर निर्मित विहार।

में वैसा ही था। इसी लिए कहा है 'पाँच दोषों से रहित चबूतरा बनाया'। 'आठ गुणों से युक्त' का मतलब है "साधुओं के आठ सुखों से युक्त"। साधुओं के आठ सुख यह हैं :—धन धान्य के संग्रह (की चिन्ता) का न होना, निर्दोष भिक्षा की प्राप्ति का प्रयत्न करना, तैयार भिक्षा का भोजन करना, राज्य अधिकारियों के देश को सता कर धन दौलत या सीस-कहापण[1] आदि ग्रहण करते हुए (स्वयं) देश को पीड़ित न करना, वस्तुओं में वैराग्य, चोरों द्वारा (धन आदि) लूटे जाने से निर्भयता, राजाओं और राज्यामात्यों से बहुत लगाव न होना, और चारों दिशाओं में बेरोक-टोक पहुँच। चूँकि इस आश्रम में रहते हुए, इन आठ गुणों का आनन्द लिया जा सकता था, इस लिए कहा गया है कि "आठ गुणों से युक्त उस आश्रम को बनाया"। "अभिज्ञा-बल को प्राप्त किया" का मतलब है कि आगे चल कर उस आश्रम में रहते हुए कृत्स्न (=कसिण)[2] परिकर्म का आरम्भ करके अभिज्ञाओं तथा समापत्तियों की प्राप्ति के लिए, अनित्यता और दुःख के भाव की वि द र्श ना[3] का अभ्यास कर प्रयत्न से प्राप्य विदर्शना-बल को प्राप्त किया। चूँकि 'इस आश्रम में रहते हुए इस बल को प्राप्त किया जा सकता है' यह विचार था, इस लिए उस आश्रम को, अभिज्ञा की प्राप्ति के लिए विदर्शना बल (की प्राप्ति) के अनुकूल बनाया'—यह अर्थ है।

"नौ दोषों से युक्त वस्त्र को छोड़ देने" के सम्बन्ध की यह कथानुकूल कथा है। उस समय कुटी, गुफा, टहलने के चबूतरे आदि से युक्त, फल फूल वाले वृक्षों से आच्छादित, रमणीय, मधुर जलाशयों सहित, बाघ आदि हिंसक पशु तथा भयानक पक्षियों से शून्य, शान्त आश्रम बना कर, सुन्दर चबूतरे के दोनों ओर सहारे के लिए बाड़ी लगा कर, और चबूतरे के बीच में बैठने के

---

[1] तत्कालीन सिक्कों का अभिप्राय है।

[2] योगाभ्यास के चालीसों साधनों में से किसी भी एक को साधारणतया 'कर्म-स्थान' कहते हैं। उनमें से प्रथम दस में से किसी को भी कसिण (=कृत्स्न) कहते हैं।

[3] विपश्यना (=प्रज्ञा)।

लिए मूँग के रंग की समतल शिला बना कर, पर्ण-कुटी के अन्दर जटा-मण्डल, वल्कल-चीर, त्रिदण्ड, कुण्डी आदि तापसों के सामान, मण्डप में पानी का बरतन, पानी (-भरा) शङ्ख, पानी (पीने के) सकोरे, अग्निशाला में अँगीठी तथा जलावन इत्यादि—इस प्रकार साधुओं की जो जो आवश्यकतायें हैं, उन का प्रबन्ध करके, पर्ण-कुटी की दीवार पर 'जो कोई साधु होना चाहें, इन चीज़ों को ले कर प्रव्रजित हों'—इन अक्षरों को खोद कर विश्वकर्मा देव-पुत्र के देव-लोक चले जाने पर सुमेध पण्डित ने हिमालय की तराई में गिरि-कन्दराओं के साथ साथ, अपने लिए सुख से रहने योग्य स्थान को ढूँढते हुए नदी के मोड़ पर विश्वकर्मा द्वारा निर्मित, इन्द्र का दिया हुआ, रमणीक आश्रम देखा। टहलने के चबूतरे के छोर पर जा और वहाँ पद-चिह्न को न देख, सोचा—अवश्य साधु लोग समीप के गाँव में भिक्षा माँग ला कर थके हुए लौट कर, पर्ण-कुटी में प्रवेश कर, अन्दर बैठे होंगे। कुछ देर प्रतीक्षा कर यह सोचने लगा—'वे बहुत देर कर रहे हैं' ज़रा देखूँ। (फिर) पर्ण-कुटी के द्वार को खोल अन्दर प्रवेश कर, इधर उधर देखते हुए बड़ी दीवार पर (लिखे) अक्षरों को बाँच कर (सोचा)—यह वस्तुएँ मेरे योग्य हैं, इन्हें ग्रहण कर साधु बनूँगा। यह सोच अपने पहने धोती चादर को छोड़ दिया। इस लिए कहा है—'वहाँ वस्त्र को छोड़ दिया'। सारिपुत्र। इस प्रकार प्रविष्ट हो, मैंने इस पर्ण-कुटी में धोती को छोड़ा"। "नौ दोषों से युक्त" यह कह दिखाया गया है कि नौ दोषों को देख कर छोड़ा।

तापस साधुओं के तापस साधु बनने पर (उनके) पहनने के वस्त्र में नौ दोष होते हैं—'अति मूल्यवान् होना' एक दोष है। 'दूसरे पर निर्भर रह कर मिलना' एक दोष। 'पहनने पर जल्दी से मलिन होना' एक दोष। 'मलिन होने पर वस्त्र को धोना तथा रंगना होता है। 'पहनने से फट जाना' एक। 'फटने से सीना' या पेवन्द लगाना होता है। 'फिर ढूँढने पर कठिनाई से मिलना' एक। 'साधु-जीवन से मेल न खाना' एक। 'चोरों के लिए चोरी करने योग्य होना' एक। जैसे उसे चोर न चुरावे, वैसे छिपाना होता है। 'उपयोग करने से सजावट का कारण होना' एक। 'ले कर चलते समय कन्धे के लिए भार और लोभ होना' एक। "वल्कल चीर को धारण किया" का अर्थ है, "सारिपुत्र! तब मैं ने इन नौ दोषों को देख, वस्त्र को छोड़ छाल (=वल्कल) का

वस्त्र धारण किया—अर्थात् मुञ्ज-तृण की चीर, गाँठ बाँध बाँध कर बनाये वल्कल चीवर को धारण करने और पहनने के लिए ग्रहण किया।"

'बारह गुणों से युक्त' का अर्थ है कि बारह कल्याणकारी बातों से संयुक्त'। वल्कल चीवर में बारह गुण हैं—सस्ता, सुन्दर तथा विहित होना यह पहला गुण है। अपने हाथ से बनाया जा सकता है, यह दूसरा। जल्दी मैला नहीं होता है और धोने में भी कठिनाई नहीं, यह तीसरा। उपयोग करते करते फटने पर सीने की आवश्यकता न रहना, यह चौथा। नया ढूँढने पर आसानी से मिल सकना, यह पाँचवाँ। तापस साधुओं के अनुकूल होना, यह छठा। चोरों के काम का न होना, यह सातवाँ। पहनने वाले के लिए शोक का कारण नहीं होना, यह आठवाँ। पहनने में हलका रहता है, यह नौवाँ। चीवर रूपी सामान (=प्रत्यय) के विषय में संतोष, यह दसवाँ। छाल (=वल्कल) से उत्पन्न होने के कारण धर्म की दृष्टि से निर्दोष होना, ग्यारहवाँ। छाल के चीवर के नष्ट होने पर, उसके लिए परवाह न होना, यह बारहवाँ गुण है।

"आठ दोषों से युक्त पर्ण-शाला को छोड़ा", सो उसे कैसे छोड़ा? (अपनी) उस सुन्दर धोती चादर को छोड़ कर, चीवर रखने के बाँस पर टँगे हुए अनोज-फूल की माला जैसे लाल रंग के छाल के चीवर को ले पहना। उसके ऊपर दूसरा सुनहरी रंग का छाल का चीवर पहना। फिर पुन्नाग-फूल की शय्या के समान और खुर सहित मृग-चर्म को एक कन्धे पर बाँधा। जटाओं को मोड़, जूड़ा बाँध, (उनके) स्थिर करने के लिए (बालों में) सलाई डाली। मोतियों के जाल के सदृश छींके में मूँगे के रंग की कुण्डी को रक्खा। तीन स्थानों (=दोनों सिरों और बीच में) से मुड़ी बँहगी को ले कर, बँहगी के एक सिरे पर कुण्डी और दूसरे सिरे पर अंकुश की पिटारी तथा त्रिदण्ड आदि लटका कर, खारिया के भार को कन्धे पर रख, दक्षिण हाथ में बैसाखी (=टेक कर चलने की लकड़ी) ले, पर्ण-कुटी से निकले; और साठ हाथ लम्बे टहलने के चबूतरे (=महाचंक्रमण-भूमि) पर एक सिरे से दूसरे सिरे तक टहलते हुए अपने वेश को देख कर सोचने लगे—"मेरा विचार सफल हुआ। प्रव्रज्या मुझे शोभती है। बुद्ध आदि सभी वीर पुरुषों ने इस प्रव्रज्या की प्रशंसा की है। मेरा गृह-बन्धन छूट गया। मैं अनासक्ति (=नैष्क्रम्य) के लिए

निकल पड़ा। मुझे उत्तम प्रव्रज्या मिल गई। मैं सन्यास (=भिक्षु-धर्म) के अनुसार आचरण कर मार्ग-फल[1] के सुख को प्राप्त करूँगा।"

(यह सोच) उत्साह से बैठने की जगह चबूतरे के बीच में मूँगे के रंग के शिलापट्ट पर सोने की मूर्ति की तरह बैठे। (फिर) दिन बीत जाने पर, सन्ध्या के समय पर्णशाला के भीतर जा, बाँस की चारपाई के पास के लकड़ी के पट्टे पर लेट विश्राम किया।

(दूसरे दिन) बहुत प्रातःकाल उठ, अपने आने (के उद्देश्य) पर विचार किया—'मैं गृहस्थ जीवन के दोषों को देख, अपार भोग-राशि तथा अनन्त यश को छोड़ जंगल में आ, अनासक्ति की चाह से साधु हुआ। इस लिए अब आगे से मुझे आलस्य नहीं करना चाहिए। एकान्त(-चिन्तन) को छोड़, बेकार घूमने वाले (पुरुष) को झूठे वितर्क रूपी मक्खियाँ खा जाती हैं। इस लिए अब मुझे एकान्त-चिन्तन की वृद्धि करनी चाहिए। मैं गृहस्थ जीवन को रुकावट समझ (घर छोड़ बाहर) निकला हूँ। यह (मेरी) मनोहर कुटिया—(जिसकी कि) पक्के बेल के रंग जैसी लिपि भूमि है; चाँदी सी सफेद दीवारें हैं; कबूतर के पैर के रंग सी पत्तों की छत है; चित्र-विचित्र कालीन के रंग का सा बाँस का पलँग है—सुखदायक निवास स्थान है; मेरे घर की सम्पत्ति और इसमें कोई विशेष अन्तर दिखाई नहीं देता। यह (सोच) पर्ण-कुटी के दोषों पर विचार करते हुए (उसने) आठ दोषों को देखा।

कुटिया के सेवन में आठ दोष हैं—(१) बड़े प्रयत्न से आवश्यक चीजों को जुटा, उनको खोजना-बनाना; (२) (उसके) पत्ते, तृण और मिट्टी के गिर पड़ने पर, उन्हें फिर फिर लगाने के कारण निरन्तर मरम्मत करना; (३) आसन-वासन (=रहनासहन) पर बड़े बूढ़ों का अधिकार है, सोच उन के आने पर बेवक्त उठने पर चित्त एकाग्र नहीं होता। इसके लिए वैसी चिन्ता; (४) सर्दी गर्मी से शरीर का सुकुमार हो जाना; (५) छिप कर घर में सभी पापकर्म करके पाप छिपाने की गुन्जाइश होना; (६) 'यह मेरी है' ऐसी ममता होना; (७) घर होने का मतलब ही है 'अकेला न होना', इसके लिए

---

[1] अर्हत्व-प्राप्ति का मार्ग तथा अर्हत्व-प्राप्ति।

'सापों वाहना', (८) जूँ, पिस्सू, छिपकली आदि का आम तौर से बहुत बढ़ जाना आठवाँ दोष है। इन आठ प्रकार के दोषों को देख कर महात्मा ने कुटिया त्याग दी। इस लिए कहा है—"आठ दोषों से युक्त पर्ण-शाला को छोड़ा।"

"दस गुणों से युक्त वृक्ष के नीचे आ गया" कहने का अभिप्राय यह है कि कुटिया को छोड़, दस गुणों से युक्त वृक्ष की छाया के नीचे आ गया हूँ। ये दस गुण यह हैं—(१) चीज़ों के जुटाने की चिन्ता न होना पहला गुण; क्योंकि वहाँ (वृक्ष) तक केवल जाने भर का ही (परिश्रम) होता है। (२) टीप-टाप करने का बहुत परिश्रम न होना दूसरा, (क्योंकि) चाहे झाड़ू लगायें या न लगायें—दोनों अवस्थाओं में उसे सेवन किया जा सकता है, (३) 'उठने (की चिन्ता) न होना' तीसरा, (४) वह पाप कर्म को छिपा नहीं सकता। वहाँ पाप-कर्म करने लज्जा आती है, इसके लिए पाप-कर्म को न छिपा सकना चौथा, (५) खुले आकाश के नीचे रहने से शरीर जैसा रूखा हो जाता है, वृक्ष की छाया में वैसा नहीं होता, इस लिए शरीर का रुखाई से बचना पाँचवाँ; (६) जोड़ने बटोरने की गुन्जाइश न होना छठा (७) घर के प्रति होने वाली आसक्ति का अभाव सातवाँ, (८) सार्वजनिक शालाओं में से जैसे सफाई या मरम्मत के लिए निकल जाना होता है, वैसे यहाँ से न निकलना पड़ना आठवाँ, (९) प्रसन्नता के साथ रहना नौवाँ, (१०) वृक्ष के नीचे सभी जगह आसन-वासन आसानी से मिल जाने के कारण उसके लिए 'चाह न होना' दसवाँ। इन दस गुणों को देख मैं वृक्ष के नीचे आया हूँ—यह भावार्थ (=वचन) है।

इन (सब) बातों का ख्याल कर अगले दिन महात्मा ने भिक्षा के लिए (गाँव में) प्रवेश किया। गाँव में लोगों ने बड़े उत्साह-पूर्वक भिक्षा दी। भोजन समाप्त कर, आश्रम को लौटे और बैठ कर सोचने लगे—"मैं समझता था कि आहार नहीं मिलेगा, यही सोच मैं प्रव्रजित हुआ। यह चिकना चुपड़ा आहार अभिमान और पौरुष के मदों को बढ़ाने वाला है। (इस प्रकार के) आहार से उत्पन्न दुःख का अन्त नहीं है। इस लिए मैं बोये जोते अनाज से बने भोजन को त्याग, सिर्फ (वृक्ष से) गिरे फल को खाऊँगा।" तब से उसने उसी तरह का भोजन ग्रहण कर, योगाभ्यास में लगे रह, एक सप्ताह के अन्दर ही आठ समापत्तियों और पाँच अभिज्ञाओं को प्राप्त किया। इसी लिए कहा है —

"बोये जोते अनाजों को बिल्कुल त्याग दिया। और अनेक गुणों से युक्त 'वृक्षों से गिरे फल' को ग्रहण किया। वहां बैठे, खड़े, और टहलते योगाभ्यास में लगे रह सप्ताह के अन्दर अभिज्ञा-बल को प्राप्त किया।"

४. दीपंकर का दर्शन

इस प्रकार अभिज्ञा-बल को प्राप्त कर तपस्वी सुमेध के दिन समाधि सुख में बीत रहे थे। उसी समय दीपङ्कर नामक बुद्ध संसार में उत्पन्न हुए। उनके गर्भ-प्रवेश (=प्रतिसन्धि ग्रहण), जन्म, बुद्धत्व प्राप्ति तथा धर्म चक्र प्रवर्तन के समय सारे दस हजार ब्रह्माण्ड (=दस सहस्र लोक-धातु) कम्पित=प्रकम्पित हुए; और महानाद हुआ। बत्तीस पूर्व-निमित्त[1] दिखाई पड़े। लेकिन समाधि के सुख में दिन बिताते तपस्वी सुमेध ने न तो उन शब्दों (=महानाद) को सुना न उन शकुनों (=निमित्तों) को देखा। इसी लिए कहा है :—

"इस प्रकार मेरे सिद्धि-प्राप्त तथा धर्म में रत रहते समय, संसार के नेता दीपङ्कर नामक बुद्ध (=जिन) उत्पन्न हुए। समाधि में होने से मैंने उनके गर्भ-प्रवेश, उत्पत्ति, बुद्धत्व-प्राप्ति तथा धर्मोपदेश के समय हुए चारों शकुनों (=निमित्तों) को नहीं देखा।"

उस समय चार लाख अर्हतों के साथ दसबलों[2] वाले दीपङ्कर क्रमशः चारिका करते, रम्मक नामक नगर में पहुँच (वहां के) सुदर्शन महाविहार में रहते थे। रम्मक नगर-वासियों ने सुना कि साधु-सम्राट दीपङ्कर बुद्धत्व के उत्तम पद को प्राप्त कर क्रमशः चारिका करते (हमारे) रम्मक नगर में आ, सुदर्शन महाविहार में रहते हैं। यह सुन नवनीत, घी आदि भैषज्य और वस्त्र-बिछौने लिवा कर, गन्धमाला हाथ में ले बुद्ध, धर्म तथा संघ के प्रति श्रद्धा से नम्र हो बुद्ध (=शास्ता) के पास गये। और गन्ध आदि से उन की पूजा कर हाथ जोड़ एक ओर बैठे। बुद्ध का धर्म-उपदेश सुन दूसरे दिन के (भोजन के) लिए निमन्त्रण दे, आसन से उठ कर चले गये। अगले दिन भोजन

---

[1] देखो जातक (पृ०६७)

[2] देखिए अंगुत्तर-निकाय, दसको निपातो।

सुमेध ने बुद्ध के ध्यान से उत्पन्न आनन्द से संतुष्ट हो सोचा—"मैं इस स्थान
ो अपने योग-बल से अलंकृत कर सकता हूँ। लेकिन इस प्रकार अलंकृत करने
मेरा मन संतुष्ट न होगा। इस लिए आज मुझे देह से परिश्रम करना चाहिए।"
ह बालू रेत ला कर उस स्थान पर फैलाने लगा। अभी उसने उस स्थान
ो पूरा अलंकृत न कर पाया था कि दीपङ्कर-बुद्ध छः अभिज्ञाओं[1] से युक्त,
ार लाख महा प्रतापी अर्हतों (=क्षीणास्रवों) के साथ उसी अलंकृत मार्ग
आ निकले। उस समय देवता लोग दिव्य माला गन्ध आदि से उनकी
जा कर रहे थे। देवता दिव्य संगीत गा रहे थे और मनुष्य गन्धों तथा
ालाओं से पूजा कर रहे थे। (उस समय) वह अनन्त बुद्ध की लीलाओं
साथ मनः शिला पर अँगड़ाई लेते सिंह की तरह उस अलंकृत मार्ग पर
ल रहे थे। तपस्वी सुमेध ने आँखों से देखा—अलंकृत मार्ग से आते हुए
तीस महापुरुष लक्षणों[2] तथा अस्सी अनुव्यञ्जनों[3] से युक्त बुद्ध
ी अलंकृत मार्ग से आ रहे हैं। उनका मुख मन्डल (फैलाये हुए) दोनों हाथ
(=ब्यामभर) के प्रभा-मन्डल से घिरा था, जिससे मणियों के रंग की
मा निकल कर, आकाश तल में नाना प्रकार के विद्युत प्रकाशों की भाँति
कट्ठी हो दो दो की जोड़ी करके छः रंग[4] की घनी बुद्ध किरणें प्रसारित
र रही थी। उनके अत्युत्तम सुन्दर शरीर को देख कर (सुमेध ने) सोचा—
"आज मुझे बुद्ध के लिए जीवन अर्पण करना चाहिए। भगवान् को कीचड़ में
नहीं चलने देना चाहिए। यदि चार लाख अर्हतों (=क्षीणास्रवों) के साथ
(भगवान्) मणि फलकों से निर्मित पुल पर चलने के समान, मेरी पीठ को
मर्दित करते चलें; (तो) यह दीर्घ काल तक मेरे हित और सुख के लिए होगा"।
वह केशों को खोल मृगछाला (=अजिन चर्म), जटा और छाल (=वल्कल)
े वस्त्रों को काले रंग की कीच पर फैला, मणों की पट्टी (=मणि फलक)

---

[1] दिव्य-चक्षु, दिव्य-श्रोत्र, पूर्व जन्म की स्मृति, ऋद्धि बल, परचित्त का ज्ञान तथा आस्रवक्षय ज्ञान।

[2] देखो, लक्खण-सुत्त (दीर्घ-निकाय)।

[3] महापुरिस-लक्खण (विनय १ ६५)।

[4] नीला पीला सफेद. मजीठा. लाल तथा प्रभास्वर।

५. बुद्ध बनने का संकल्प

उसने कीचड़ में ही पड़े पड़े फिर आँखें खोल दीपङ्कर बुद्ध (=दशबल) की बुद्ध-श्री को देखते हुए सोचा—यदि मेरी इच्छा हो, तो मैं सब चित्त-मलों (=क्लेशों) का नाश कर भिक्षु बन रम्य नगर (=निर्वाण) में प्रवेश कर सकता हूँ। लेकिन अप्रसिद्ध वेषभूषा के साथ चित्त-मलों का नाश कर, निर्वाण-प्राप्ति करना मेरा ध्येय (=कृत्य) नहीं। मेरे लिए (तो) यही उचित (=योग्य) है कि मैं (भी) दशबल दीपङ्कर बुद्ध की तरह उत्तम बुद्ध पद को प्राप्त कर मानव-समूह (=महाजन) को, धर्म रूपी नाव पर चढ़ा संसार-सागर से पार उतार लेने के बाद निर्वाण को प्राप्त होऊँ। (इस लिए) आठ धर्मों पर विचार करते हुए बुद्ध-पद के लिए कामना (=प्रार्थना) करता लेटा रहा।

इसी लिए कहा है :—

'पृथ्वी पर लेटे हुए मुझे ख्याल आया कि यदि मेरी इच्छा हो, तो मैं आज अपने क्लेशों का नाश कर सकता हूँ; लेकिन (इस) अप्रसिद्ध वेष से धर्म के साक्षात् करने से क्या? मैं बुद्धपद (=सर्वज्ञता) प्राप्त कर देव-ताओं सहित (सारे) लोक का बुद्ध होऊँगा। प्रबल-शील (=वीर्य-दर्शी) हो मेरे अकेले (संसार सागर से) पार होने से क्या? बुद्ध-पद (=सर्वज्ञता) प्राप्त कर मैं देवताओं सहित (सारे) लोक को पार उतार सकूँगा। नर-श्रेष्ठ (=दीपङ्कर) के लिए की गई इस (पूजा के) प्रताप (=अधिकार) से, मैं बुद्ध-पद (=सर्वज्ञता) प्राप्त कर बहुत जनता को पार उतार सकूँगा। मैं (अब) आवागमन की धारा (=संसार-स्रोत) को छेद तीनों भवों[1] का नाश कर, देवताओं सहित (सारे) लोक को धर्म रूपी नाव पर चढ़ा कर पार उतारूँगा।"

लेकिन बुद्ध-पद की चाह रखने वाला यदि मनुष्य-योनि, लिङ्ग-प्राप्ति, हेतु (=भाग्य), बुद्ध (=शास्ता) का दर्शन, संन्यास (=प्रव्रज्या) और उसके गुण की प्राप्ति, योग्यता (=अधिकार), कामना (=छन्द)—(इन)

---

[1] काम-भव, रूप-भव तथा अरूप-भव।

परिचारक (=उपस्थायक) होगा। खेमा नामक स्थविरा प्रधान शिष्या (=अग्र श्राविका) होगी, उत्पलवर्णा नामक स्थविरा द्वितीय शिष्या (=श्राविका) होगी। ज्ञान के परिपक्व हो जाने पर यह गृह त्याग (महाभिनिष्क्रमण) करेगा, और महान् तपस्या करने के बाद न्यग्रोध(-वृक्ष) के नीचे खीर ग्रहण कर, नेरञ्जरा[1] नदी के किनारे उसे भोजन कर, बोधि मण्ड पर चढ़ अश्वत्थ[2] वृक्ष के नीचे बुद्ध-पद प्राप्त करेगा।

इसी लिए कहा है —

"सत्कार(=आहुति)-भाजन, लोक के ज्ञाता, दीपङ्कर मेरे सिर के पास खड़े हो कर यह बोले—"इस उग्र तपस्या करने वाले जटिल तपस्वी को देखते हो? अब से चार असंख्येय एक लाख कल्प के बीतने पर यह बुद्ध होगा। तथागत कपिल (वस्तु) नामक रम्य नगर से निकल कर, महान् उद्योग और दुष्कर तपस्या करेंगे। फिर अजपाल वृक्ष के नीचे बैठ खीर ग्रहण कर, नेरञ्जरा नदी के तट पर जायेंगे। वहाँ से नेरञ्जरा नदी के किनारे वह खीर को खा सुसज्जित मार्ग से बोधि-वृक्ष के नीचे जायेंगे। वह अनुपम महायशस्वी (पुरुष) बोधिमण्ड की प्रदक्षिणा कर, अश्वत्थ पीपल-वृक्ष के नीचे बुद्ध (पद को प्राप्त) होगा। इसकी जननी, माता माया (देवी) होगी; पिता शुद्धोदन और यह गौतम होगा। इसके शिष्य (=श्रावक) कोलित और उपतिष्य नाम के वीतरागी, शान्त-चित्त, समाधि-प्राप्त (दो) अर्हत् अग्र-श्रावक होंगे, और आनन्द नामक परिचारक (=उपस्थायक) परिचर्या (=उपस्थान) करेंगे। खेमा तथा उत्पलवर्णा आस्रव-रहित, वीतराग, शान्त-चित्त, समाधि-प्राप्त (दो) अर्हत् प्रधान शिष्यायें (=अग्र-श्राविकायें) होंगी और उन भगवान् के बुद्ध(-पद) प्राप्त करने का वृक्ष (=बोधि) अश्वत्थ (=अश्वत्थ-बोधि) कहलायगा।"

[illegible] सुनकर 'मेरी कामना सम्पूर्ण होगी' सोच संतुष्ट हुआ। जनता (=महाजन) ने बुद्ध (=दशबल) दीपङ्कर के वचन को सुना; और 'यह

---

[1] निलाजन नदी (ज़ि० गया)।

[2] बोध गया का ऐतिहासिक पीपल-वृक्ष।

७. सुमेध का दृढ़ संकल्प

"पूजा के भाजन, लोक के जानकार, दीपङ्कर ने मेरे कार्य की प्रशंसा करके दक्षिण पैर उठाया। यहाँ जितने बुद्ध के शिष्य (=जिन-पुत्र) थे, उन सब ने मेरी परिक्रमा की। नर, नाग, (तथा) गन्धर्व, सभी अभिवादन करके गये। जब संघ-सहित बुद्ध (=लोक नायक) आँखों से ओझल हो गये, तब मैं प्रसन्न चित्त हो उठ बैठा। सुख से सुखित, प्रमोद से प्रमुदित, आनन्द (=प्रीति) से शान्त हो, मैंने आसन लगाया। आसन लगा मैं सोचने लगा—मैं ध्यान-प्राप्त हूँ। अभिज्ञाएँ मुझे मिल चुकी हैं। सहस्रों लोकों में भी मेरे समान (दूसरा) ऋषि नहीं। मैं अद्वितीय (=असदृश) हूँ। मैंने दिव्य-शक्ति (=ऋद्धि-धर्मों) में ऐसा सुख प्राप्त किया है।

"मेरे पालथी मार बैठने पर, इन सहस्र ब्रह्माण्डों के निवासियों ने महानाद किया—"तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"पूर्व (काल) में बोधिसत्त्वों के आसन लगा कर बैठने पर, जो शकुन दिखाई देते रहते हैं, वे आज (भी) दिखाई देते हैं। शीत का चला जाना, उष्णता का शान्त हो जाना—ये शकुन आज भी दिखाई देते हैं। (इसलिए) तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"दस सहस्र ब्रह्माण्डों का निःशब्द और निर्द्वन्द्व होना—ये शकुन आज भी दिखाई देते हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"न आँधी (=महा वायु), न नदियाँ (प्रचण्डता से) बहती हैं। ये शकुन आज भी दिखाई देते हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय जल तथा स्थल (दोनों) पर फूलने वाले सभी फूल फूल जाते हैं। वो सभी आज भी फूले हुए हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय सभी लतायें तथा वृक्ष फलों से लदे होते हैं। वे सभी आज फलों से लदे हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय आकाश और पृथ्वी (दोनों) में विद्यमान रत्न चमकने लगते हैं। वे सभी रत्न आज चमक रहे हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय दिव्य और मानुष (सभी) बाजे (तूर्य) बजते हैं, वे दोनों भी आज बज रहे हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

दिखाई देने लगते हैं। वे भी आज सब दिखाई दे रहे हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय जितने नरक (होते) हैं, वे सब दिखाई देते हैं। वे भी सब आज दिखाई दे रहे हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय दीवार, दरवाजे तथा पर्वत ढाँकने की शक्ति खोये हुए (=निरावरण) होते हैं। वे भी आज आकाश से हो गये हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस क्षण में जन्म और मृत्यु का होना बन्द हो जाता है। वह लक्षण भी आज दिखाई देते हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उद्योग को दृढ़ कर। दृढ़ मन, आगे बढ़। हम यह जानते हैं, तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

दीपङ्कर बुद्ध तथा उन सहस्र ब्रह्माण्डों के देवताओं के वचन को सुन कर, (और भी) अधिक आनन्द (=सौमनस्य) से उत्साहित हो बोधिसत्त्व ने सोचा—बुद्धों का वचन झूठा नहीं होता? बुद्धों का कथन उलट नहीं सकता। जैसे आकाश से फेंके ढेले का गिरना, जन्मने वाले का मरना, उषा (=अरुण के उद्गमन) के बाद सूर्योदय, गुफा से निकलने समय सिंह का गर्जन, भारी गर्भवती स्त्री का जनन—(यह सब) अनिवार्य (=ध्रुव) और अवश्यम्भावी हैं, इसी प्रकार बुद्धों का वचन निष्फल नहीं जाता "मैं निश्चय से बुद्ध होऊँगा।" इसी लिए कहा है —

"तब बुद्ध तथा दस हजार ब्रह्माण्डों के देवताओं के वचन को सुन कर सन्तुष्ट, प्रसन्न हो मैंने सोचा—"बुद्ध एक बात कहने वाले होते हैं। उनका वचन निष्फल नहीं जाता। बुद्धों का कथन असत्य नहीं होता। मैं अवश्य बुद्ध होऊँगा। जिस प्रकार आकाश में फेंका हुआ ढेला, पृथ्वी पर अवश्य गिरता है, इसी प्रकार श्रेष्ठ बुद्धों का वचन अनिवार्य (=ध्रुव=शाश्वत) है। जिस प्रकार सब प्राणियों का मरना अनिवार्य है, उसी प्रकार श्रेष्ठ बुद्धों का वचन अनिवार्य है। जिस प्रकार रात्रि के बीतने पर सूर्योदय निश्चित है, इसी प्रकार श्रेष्ठ-बुद्धों के वचन (की पूर्ति) निश्चित है। जिस प्रकार बसेरे से निकलने सिंह का गर्जन करना निश्चित है, उसी प्रकार श्रेष्ठ-बुद्धों के वचन (की पूर्ति) निश्चित है। जिस प्रकार गर्भ में आये प्राणियों का प्रसव निश्चित है, उसी प्रकार श्रेष्ठ-बुद्धों के वचन (की पूर्ति) निश्चित है।

हुए उसने द्वितीय (पारमिता) शील-पारमिता को देख कर सोचा—'पण्डित सुमेध' अब से तुझे शील-पारमिता भी पूरी करनी होगी। जिस प्रकार चमरी (=चमरी-मृग) अपने जीवन की भी परवाह न कर, अपनी पूँछ की रक्षा करता है, इसी प्रकार तू भी अब से जीवन की भी परवाह न कर शील रक्षा करते हुए बुद्ध-पद को प्राप्त होगा। "(इस लिए) तू द्वितीय शील-पारमिता (की पूर्ति) का दृढ़ संकल्प कर।" इसी से कहा है —

"यह बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं होंगे। और भी जो जो धर्म बुद्ध-पद की प्राप्ति में सहायक हैं, उन्हें भी ढूँढ़ना चाहिए, यह सोचते हुए उसने पूर्व महर्षियों से सेवित द्वितीय पारमिता शील-पारमिता को देखा। (और) अपने मन को समझाया—तू इस दूसरी शील-पारमिता को दृढ़ता पूर्वक ग्रहण कर। यदि बुद्ध-पद की इच्छा है, तो शील की (चरम) सीमा तक पहुँच जा। जिस प्रकार चमरी चाहे मर जाये, लेकिन किसी चीज में फँसी अपनी पूँछ को हानि पहुँचने नहीं देती। उसी प्रकार चारों भूमियों में शील की पूर्ति करते हुए चमरी की पूँछ की भाँति (अपने) शील की रक्षा कर।

(३) नैष्क्रम्य पारमिता

फिर विचार हुआ— बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं हो सकते। और भी खोजते हुए तृतीय नैष्क्रम्य पारमिता को देख विचारा— 'पण्डित सुमेध! अब से तुझे नैष्क्रम्य पारमिता भी पूरी करनी होगी। जिस प्रकार जेल (=बन्धनागार) में चिरकाल तक रहने वाला मनुष्य भी उस के प्रति स्नेह नहीं रखता, बल्कि उस में रहने से उकताया (?) ही रहता है, इसी प्रकार तू सब योनियों (=भवों) को जेल समझ, सब योनियों से उकता कर उन्हें छोड़ने की इच्छा कर, नैष्क्रम्य की ओर मुख कर। इस प्रकार तू बुद्धत्व को प्राप्त होगा। (इस लिए) तू तृतीय नैष्क्रम्य-पारमिता (की पूर्ति) का दृढ़ संकल्प (=अधिष्ठान) कर।' इसी से कहा है —

---

¹ [illegible]

वीर्य-पारमिता को देख यह (विचार) हुआ। "पण्डित सुमेध! अब से तुझे वीर्य-पारमिता भी पूरी करनी होगी। जिस प्रकार (मृग-)राज सिंह सब अवस्थाओं (=ईर्यापथों) में दृढ़ उद्योगी होता है, उसी प्रकार तू भी सब योनियों में, सब अवस्थाओं में दृढ़ उद्योगी, निरालस्य, और यत्नवान् हो बुद्ध-पद को प्राप्त होगा। (इसलिए) तू पाँचवी वीर्य-पारमिता (की पूर्ति) का दृढ़ सकल्प कर। इसीसे कहा है—

बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं होंगे। और भी जो जो बुद्ध-पद की प्राप्ति में सहायक धर्म हैं, उन्हें भी खोजना चाहिए। यह सोचते हुए पूर्व-ऋषियों से सेवित पाँचवीं वीर्य-पारमिता को देखा। पाँचवें तू इस वीर्य-पारमिता को दृढ़ता-पूर्वक ग्रहण कर। यदि बुद्धत्व प्राप्ति की इच्छा है तो वीर्य की सीमा के पार जा। जिस प्रकार मृग-राज सिंह बैठते, खड़े होते, चलते (सर्वंव) निरालस, उद्योगी तथा दृढ़-मनस्क होता है, उसी प्रकार तू भी सब योनियों में दृढ़ उद्योग को ग्रहण कर। वीर्य की सीमा के अंत पर जा कर बुद्ध-पद को प्राप्त करेगा।

(६) क्षान्ति पारमिता

तब 'बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं हो सकते, और भी' सोचते हुए, छठी क्षान्ति पारमिता को देखा। (उसके मन में) यह विचार हुआ। 'पण्डित सुमेध! अब से तुझे क्षान्ति पारमिता भी पूरी करनी होगी। सम्मान और अपमान, दोनों को सहना होगा। जिस प्रकार पृथ्वी पर (लोग) शुद्ध चीज भी फेंकते हैं, अशुद्ध चीज भी फेंकते हैं। पृथ्वी सहन करती है। न तो (अच्छी चीज फेंकने से) खुश होती है, न (बुरी चीज फेंकने से) नाराज। इसी प्रकार तू भी सम्मान तथा अपमान, दोनो को सहने वाला हो कर ही बुद्ध-पद को प्राप्त होगा। (इसलिए) तू छठी क्षान्ति-पारमिता (की पूर्ति) का दृढ़ सकल्प कर। इसी से कहा है—

बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं होंगे और भी जो बुद्ध-पद की प्राप्ति में सहायक धर्म हैं उन्हें भी ढूंढ़ना चाहिए। यह सोचते हुए, पूर्व-ऋषियों से सेवित छठी क्षान्ति-पारमिता को देखा और (मन में) विचार हुआ—छठे तू इस क्षान्ति-पारमिता को दृढ़ता-पूर्वक ग्रहण कर। इसमें स्थिर चित्त हो लगने पर तू बुद्ध-पद को प्राप्त करेगा। जिस प्रकार पृथ्वी (अपने पर) शुद्ध, अशुद्ध सब ही

दो लाख योजन घनी यह पृथ्वी मारी शब्द कर वैसे ही काँप उठी जैसे हाथी द्वारा आक्रान्त नर्कट, अथवा पेरा जाता ऊख-यंत्र; और कुम्हार के चक्र (तथा) तेली के कोल्हू की तरह घूमी। इसीसे कहा है —

'लोक में परमज्ञान (की प्राप्ति में) सहायक धर्म इतने ही हैं। इनसे अधिक अन्य नहीं हैं। उनमें दृढ़ता पूर्वक स्थित हो, स्वभाव, रस तथा सद्धर्मों सहित इन धर्मों पर विचार करने लगा। उस समय धर्म तेज के प्रवाह से दस सहस्र ब्रह्माण्डों वाली पृथ्वी काँप उठी। पेरते ऊख के कोल्हू की तरह और तेल के कोल्हू के चक्र की तरह पृथ्वी हिली और नाद किया।'

रम्य-नगर-वासी, काँपती हुई महा पृथ्वी पर नहीं खड़े रह सके; और प्रलय-वायु से प्रताड़ित महान् शाल वृक्षों की तरह, मूर्छित हो गिर पड़े। कुम्हार के बनते हुए घड़े आदि बर्तन एक दूसरे से भिड़ कर चूर्ण विचूर्ण हो गये। भयभीत त्रसित जनता ने बुद्ध के पास जाकर पूछा —"भगवान्! क्या यह नागों का विप्लव (=आवर्त्त) है, अथवा भूत, यक्ष, देवताओं के विप्लवों में से (कोई) एक है? हम इसे नहीं जानते। सारी जनता भयभीत है। क्या इससे लोक का कुछ अनिष्ट होगा अथवा भला? हमें यह बात बतलाइए।"

शास्ता ने उनका कथन सुनकर कहा —मत डरो, चिन्ता मत करो, यह भय का कारण नहीं। आज जो मैंने पण्डित-सुमेध के भविष्य में गौतम नामक बुद्ध होने की भविष्यत् वाणी (=व्याकरण) की, सो वह (पण्डित सुमेध) अब पारमिताओं पर विचार कर रहा है। उसके पारमिताओं पर विचार करते, तथा उन्हें मन्थन करते समय, धर्म-तेज से सारे दस सहस्र ब्रह्माण्ड एक झटके से काँप उठे और नाद करने लगे। इसीसे कहा है —

"बुद्ध के भोजन-स्थान पर जितनी भी मण्डली थी, वह वहाँ कम्पित और मूर्छित हो पृथ्वी पर लेट गई। हजारों घड़े, सैकड़ों मटके एक दूसरे से भिड़ कर चूर्ण हो गये। विह्वल, त्रसित, भयभीत, शंकित, और उत्पीड़ित मनवाला जन समूह इकट्ठा हो, दीपङ्कर के पास आया (और बोला) —हे आँखों वाले! इस दुनिया का क्या (कुछ) भला होने वाला है या बुरा? सारी दुनिया भय से भरी जाती है। इस (के कष्ट) को दूर करो।"

तब महामुनि दीपङ्कर ने उन (लोगों) को कहा—धैर्य रक्खो। इस भूमि कम्पन से मत डरो। जिसके लिए आज मैंने लोक में बुद्ध होने की भविष्यत्-

"जिस प्रकार फल वाला वृक्ष समय आने पर फलता है। उसी प्रकार महावीर! तेरे में बुद्ध-ज्ञान फले। जिस प्रकार दूसरे सभी बुद्धों ने दस पारमिताओं को पूरा किया; उसी प्रकार महावीर! तू दस पारमिताओं को पूरा कर। जिस प्रकार दूसरे बुद्ध बोधि-मण्ड में बुद्ध-पद को प्राप्त हुए, उसी प्रकार महावीर! तू बुद्ध के परम ज्ञान का जानने वाला हो। जिस प्रकार दूसरे बुद्धों ने धर्म-चक्र चलाया, उसी प्रकार महावीर! तू धर्म का चक्र चला। जिस प्रकार पूर्णिमा के दिन निर्मल चन्द्र चमकता है, उसी प्रकार तू भी पूर्ण-मन हो दस हजार ब्रह्माण्डों में प्रकाशित हो। जिस प्रकार राहु से मुक्त हुआ सूर्य (अपने) तेज से अत्यन्त प्रकाशित होता है, उसी प्रकार तू भी लोक से मुक्त हो (अपनी) श्री से प्रकाशित हो। जिस प्रकार सभी नदियाँ समुद्र की ओर जाती हैं; उसी प्रकार देवताओं सहित (सारा) लोक तेरे पास आवे।"

इस तरह उन (देवताओं) ने सुमेध की स्तुति-प्रशंसा की। तब वह उन दस धर्मों को ग्रहण कर, उनका पालन करते हुए वन में प्रविष्ट हुआ।

सुमेध कथा समाप्त

८. पहले के बुद्ध

(१) दीपंकर बुद्ध

रम्य नगर निवासियों ने भी नगर में प्रविष्ट हो बुद्ध प्रमुख भिक्षु संघ को भोजन (=महादान) दिया। भगवान् (=शास्ता) उनको धर्मोपदेश दे, जन समूह को (त्रि०) शरण आदि में स्थापित कर, रम्य नगर से निकले। तब से आगे भी, आयु भर सभी बुद्धों के कर्तव्य करते हुए क्रमानुसार उपाधि-रहित परिनिर्वाण[1] को प्राप्त हुए। इस विषय में और सब बात, बुद्ध-वंश में कहे अनुसार ही समझना चाहिए। वहाँ कहा है:—

---

[1] परिनिर्वाण दो प्रकार का है:—(१) उपाधि-शेष परिनिर्वाण (=पाँच स्कंधों के शेष रहते निर्वाण; जैसे जीवन्मुक्त) (२) अनुपाधि-शेष परिनिर्वाण।

"जिस प्रकार फल वाला वृक्ष समय आने पर फलता है। उसी प्रकार महावीर! तेरे में बुद्ध-ज्ञान फले। जिस प्रकार दूसरे सभी बुद्धों ने दस पारमिताओं को पूरा किया; उसी प्रकार महावीर! तू दस पारमिताओं को पूरा कर। जिस प्रकार दूसरे बुद्ध बोधि-मण्ड में बुद्ध-पद को प्राप्त हुए, उसी प्रकार महावीर! तू बुद्ध के परम ज्ञान का जानने वाला हो। जिस प्रकार दूसरे बुद्धों ने धर्म-चक्र चलाया, उसी प्रकार महावीर! तू धर्म का चक्र चला। जिस प्रकार पूर्णिमा के दिन निर्मल चन्द्र चमकता है, उसी प्रकार तू भी पूर्ण-मन हो दस हजार ब्रह्माण्डों में प्रकाशित हो। जिस प्रकार राहु से मुक्त हुआ सूर्य्य (अपने) तेज से अत्यन्त प्रकाशित होता है, उसी प्रकार तू भी लोक से मुक्त हो (अपनी) श्री से प्रकाशित हो। जिस प्रकार सभी नदियाँ समुद्र की ओर जाती हैं; उसी प्रकार देवताओं सहित (सारा) लोक तेरे पास आवे।"

इस तरह उन (देवताओं) ने सुमेध की स्तुति-प्रशंसा की। तब वह उन दस धर्मों को ग्रहण कर, उनका पालन करते हुए वन में प्रविष्ट हुआ।

सुमेध कथा समाप्त

९. पहले के बुद्ध

(१) दीपंकर बुद्ध

रम्य नगर निवासियों ने भी नगर में प्रविष्ट हो बुद्ध प्रमुख भिक्षु संघ को भोजन (=महादान) दिया। भगवान् (=शास्ता) उनको धर्मोपदेश दे, जन समूह को (त्रि०) शरण आदि में स्थापित कर, रम्य नगर से निकले। [illegible] आयु भर सभी बुद्धों के कर्तव्य करते हुए क्रमानुसार उपाधि-रहित परिनिर्वाण[1] को प्राप्त हुए। इस विषय में और जो बात, बुद्धवंश में कहे अनुसार ही समझनी चाहिए। कहा भी है —

---

[1] परिनिर्वाण दो प्रकार का है—(१) सोपादिशेष परिनिर्वाण (=[illegible] निर्वाण, जैसे [illegible]) (२) अनुपादिशेष परिनिर्वाण।

मुनि की नौ सरब की सभा थी। उस समय में जटाधारी घोर तपस्वी था। आकाश में विचरण करता था, और पाँच अभिज्ञायें मुझे प्राप्त थीं। (एक एक बार) दस-बीस हजारों को धर्म का साक्षात्कार हुआ। एक दो (करके) धर्म साक्षात्कार करने वालों की तो गणना असख्य है।

तब भगवान् दीपङ्कर का अत्यन्त शुद्ध धर्म (=शासन), बहुत प्रसिद्ध, विस्तार, उन्नति और वैभव को प्राप्त हुआ। चार लाख छः अभिज्ञाओं वाले बड़े बड़े योग बलों से युक्त चार लाख अनुयायी, लोक-वेत्ता दीपङ्कर को सदैव घेरे रहते थे। उस समय यदि कोई (बुद्ध) मानुषिक भव को छोड़, अप्राप्त-मन, शैक्ष रहते मनुष्य शरीर को छोड़ता, तो वह निन्दा का भाजन होता। भगवान् दीपङ्कर का प्रवचन देव-लोक सहित इस लोक में स्थिर-चित्त, क्षीणाश्रव, स्थित-प्रज्ञ, विमल अर्हतों से सुशोभित था।

दीपङ्कर बुद्ध (की जन्म-भूमि) थी रम्मवती नाम की नगरी। पिता था सुदेव नाम का क्षत्रिय। माता का नाम सुमेधा था। दीपङ्कर बुद्ध के सुमङ्गल और तिष्य नाम के दो प्रधान शिष्य (=अग्रश्रावक) तथा सागत नाम का हजूरी (=उपस्थायक) था। उन भगवान् की नन्दा तथा सुनन्दा नाम की दो प्रधान शिष्यायें (=अग्रश्राविकाएँ) थीं, और उनका बोधि-वृक्ष पीपल का वृक्ष था। महामुनि दीपङ्कर का शरीर, दीप-वृक्ष की तरह अस्सी हाथ ऊँचा था (और) प्रथित महान् शाल-वृक्ष की तरह शोभा देता था। उस महर्षि की आयु एक लाख वर्ष की (थी) उतने समय जीवित रह (=ठहर) कर उन्होंने बहुत से जनों को (संसार सागर से पार) उतारा। सद्धर्म को प्रकाशित कर, तथा जन-समूह को पार उतार वह अपने शिष्यों सहित, अग्नि-राशि की तरह प्रज्वलित हो निर्वाण को प्राप्त हुए। वह ऋद्धि, वह यश, और चरणों में वह चक्र-रत्न—वे सब अन्तर्धान हो गये। सच है सभी बनी चीजें (=संस्कार) खाली (=शून्य) हैं।

(२) कौण्डिन्य बुद्ध

भगवान् दीपङ्कर के बाद, एक असंख्य (कल्प) बीतने पर, कौण्डिन्य नामक बुद्ध (=शास्ता) उत्पन्न हुए। उनके भी तीन सम्मेलन (=सन्निपात) हुए। पहले सम्मेलन में दस खरब, दूसरे में दस अरब, तीसरे में नब्बे करोड़।

भर का था, इस प्रकार उन (मङ्गल) का नहीं था। उन भगवान् का शरीर-प्रकाश सदैव दस हजार ब्रह्माण्ड में व्याप्त रहता था। (उनके शरीर-प्रकाश से) वृक्ष, पृथ्वी, पर्वत, समुद्र आदि ही नहीं ऊखल इत्यादि तक भी सुवर्ण-वस्त्र से आच्छादित से जान पड़ते थे। इनकी आयु नब्बे हजार वर्ष की हुई। इतने काल तक चाँद सूर्य आदि (संसार को) अपने प्रकाश से प्रकाशित न करते थे। रात दिन का भेद (=परिच्छेद) मालूम नहीं होता था। (आज कल) जैसे सूर्य प्रकाश से पूर्ण दिन में प्राणी विचरते हैं, वैसे ही (उस समय) वह सदा बुद्ध प्रकाश में विचरते थे। (उस समय) लोग सायंकाल के फूलने वाले कुसुमों तथा प्रातःकाल के बोलने वाले पक्षी आदि से दिन रात का भेद समझते थे। (सवाल होगा—) क्या दूसरे बुद्धों में ऐसा प्रताप नहीं था? नहीं था (ऐसा) नहीं, वे भी यदि चाहते तो दस हजार ब्रह्माण्ड अथवा उससे भी अधिक को, (अपने) प्रकाश से व्याप्त कर सकते। लेकिन पूर्व-प्रार्थना अनुसार, भगवान् मङ्गल की शरीर-प्रभा दूसरे (बुद्धों) की व्याप्त-प्रभा की तरह सदैव दस सहस्र लोक धातु को स्पर्श करती थी।

यह (भगवान् मङ्गल) बोधिसत्त्व (अवस्था) के समय, वेस्सन्तर[1] जैसे जन्म में उत्पन्न हो, पुत्र तथा स्त्री सहित वङ्क पर्वत जैसे पर्वत में रहते थे। तब खरदाठिक नाम का एक यक्ष, महापुरुष का दान (देने) का विचार सुन, ब्राह्मण वेष में निकट आया, और उसने महात्मा से दोनों बच्चे माँगे। महासत्त्व ने 'ब्राह्मण को दोनों बच्चे देने का सकल्प किया, और सन्तुष्ट चित्त हो जल-स्थल सहित सारी पृथ्वी को कम्पित कर दोनों बच्चे प्रदान किये। यक्ष ने टहलने की भूमि के छोर पर (लगी) बाँही के तख्ते के सहारे खड़े हो, महात्मा की आँखों ही के सामने, दोनों बच्चों को मूली के ढेर की तरह खा लिया। यक्ष के मुँह खोलने पर अग्नि-ज्वाला की तरह (उसके) मुँह से रक्तधारा निकलते देख कर भी, महापुरुष का चित्त राई भर (=केशाग्रमात्र) खिन्न नहीं हुआ। बल्कि 'मेरा दान सुदान है' सोच, उसके शरीर में महान् आनन्द पैदा हुआ।

---

[1] भगवान् गौतमबुद्ध का मनुष्य-लोक में सिद्धार्थ से पहले का जन्म (देखो वेस्सन्तर जातक)।

(-देव) ने सोचा—कौन है जो मुझे इस स्थान से गिराना चाहता है ? (तब) दिव्य चक्षु से देखते हुए, महापुरुष को देखा, और 'सुरुचि-ब्राह्मण बुद्ध-सहित भिक्षु संघ को निमन्त्रित कर, (उसे) बिठाने के स्थान की फ़िक्र में है, मुझे भी वहाँ पहुँच कर पुण्य में सहभागी होना चाहिए' (सोच) बढ़ई का भेष बना, बसूली-कुल्हाड़ा हाथ में ले, महात्मा के सम्मुख प्रकट हुआ। और पूछा "कि क्या किसी को मजदूरी से काम है ?"

महापुरुष ने देख कर पूछा, "क्या काम कर सकोगे ?'

"ऐसा कोई हुनर नहीं जो मुझे मालूम न हो। घर हो, अथवा मण्डप, जो कुछ कोई बनवाना चाहे, उसके लिए मैं वही बना देना जानता हूँ।"

"तो, मेरे पास काम है।"

"आर्य ! क्या काम है ?"

"मैंने कल के लिए दस अरब भिक्षुओं को निमन्त्रित किया है। उनके बैठने के लिए मण्डप बनाओगे ?"

"मैं बना दूँगा, यदि मुझे मेरी मजदूरी दे सकोगे।" "तात ! दे सकूँगा।"

"अच्छा ! तो बनाऊँगा।"

(यह कह उसने) जा कर एक स्थान को देखा। कसिण-मण्डल[1] की तरह समतल, बारह तेरह योजन का एक प्रदेश था। उसने 'इतने स्थान में सप्त रत्नमय मण्डप बने' ऐसा दृढ़ सकल्प कर देखा, तो उसी समय (एक) मण्डप पृथ्वी भेद कर उठ आया। उसके सोने के खम्भों पर चाँदी के, रूपे के खम्भों पर सोने के, मणिस्तम्भों पर मणिमय, सप्त-रत्न-मय स्तम्भों पर सप्त-रत्न-मय घटक थे। तब (सोचा—) मण्डप में बीच बीच में घटियों की झालर लटक जावे। उसके देखते ही देखते एक ऐसी झालर लटक गई, जिससे मन्द वायु से हिलने पर पाँचों प्रकार के बाजों (=तूरिय-नाद) का मधुर शब्द निकलता था, और दिव्य सङ्गीत बजने का सा समा होता था। सोचा—'बीच बीच में सुगन्धित माला दाम आदि लटकें।' मालाएँ लटक गईं। 'पृथ्वी भेद कर दस अरब भिक्षुओं के लिए आसन और (सामने पात्र रखने के लिए) आधार बन

---

[1] योगाभ्यास के लिए मिट्टी आदि का बना हुआ समतल पहिये सदृश चक्र।

मनुष्य उसे नहीं परोस सकते थे। देवताओं ने भी इकट्ठे हो कर परोसा। बारह तेरह योजन का लम्बा-चौड़ा स्थान भी भिक्षुओं को (बैठ कर) खाने के लिए काफ़ी न था, लेकिन वह अपने अपने योगबल के प्रभाव से बैठ गये। अन्तिम दिन सब भिक्षुओं के पात्र धुलवा कर, (उन्हें), घी, मक्खन, मधु, खाँड (=फाणित) आदि भैषज्य से भर कर, तीन तीन चीवरों के साथ दिया। नये साधु बने भिक्षुओं को मिले चीवर के कपड़े (=शाटक) ही लाख के मूल्य के थे। बुद्ध ने (पुण्य का) अनुमोदन करते हुए 'इस पुरुष ने इस प्रकार का महादान दिया है, भविष्य में यह क्या होगा?' सोच, 'लक्षाधिक दो असंख्य बरसों के बीत जाने पर, यह गौतम नामक बुद्ध होगा', देख, महापुरुष को सम्बोधन कर, कहा—"तू इतना समय बीत जाने पर गौतम नामक बुद्ध होगा।" महापुरुष इस कथन (=व्याकरण) को सुन, "मैं बुद्ध होऊँगा, मुझे घर-वास से क्या मतलब? मैं साधु होता हूँ" सोच, उतनी सम्पत्ति को थूक के समान त्याग, बुद्ध (=शास्ता) के पास प्रव्रजित हो, बुद्ध-वचन सीख, अभिज्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर, आयु के बीत जाने पर ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुआ।

भगवान् मङ्गल के नगर का नाम उत्तर था। उनका पिता भी उत्तर नामक क्षत्रिय था। माता का नाम भी उत्तरा था। सुदेव तथा धर्मसेन दो उनके प्रधान शिष्य थे। पालित नामक परिचारक (=उपस्थापक) था। सीवली और असोका—दो प्रधान शिष्यायें थीं। नाग-वृक्ष बोधि था। अठासी हाथ ऊँचा उनका शरीर था। नब्बे हज़ार वर्ष जीवित रह कर, जब वह निर्वाण को प्राप्त हुए तो दस हज़ार ब्रह्माण्डों में एक दम अन्धकार छा गया। सभी ब्रह्माण्डों में लोग रोने पीटने लगे।

'कौण्डिन्य (=कोण्डञ्ञ) के बाद मङ्गल नामक नायक ने लोक के अन्धकार का नाश कर धर्म रूपी मशाल (=उल्का) को धारण किया।'

(४) सुमन बुद्ध

इस प्रकार दस हज़ार ब्रह्माण्डों को अन्धकार-मय बना जब भगवान् (मङ्गल) निर्वाण को प्राप्त हुए तो सुमन नामक बुद्ध (=शास्ता) उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य-सम्मेलन (=श्रावक-सन्निपात) हुए। प्रथम

(६) सोभित बुद्ध

उनके बाद सोभित नामक (=शास्ता) उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए। पहले सम्मेलन में एक श्ररब भिक्षु थे। दूसरे में नब्बे करोड़। तीसरे में अस्सी करोड़। उस समय (हमारे) बोधिसत्व श्रजित नामक ब्राह्मण थे। उन्होंने बुद्ध का धर्मोपदेश सुन, (तीन रत्नों की) शरण ग्रहण की, और बुद्ध सहित भिक्षु संघ को भोजन दिया। उनने भी कहा—"तू बुद्ध होगा।" उन भगवान् का नगर सुधर्म्म नामक था। पिता सुधर्म नामक राजा था। माता का भी नाम सुधर्मा था। श्रसम और सुनेत्र (दो) प्रधान शिष्य थे। श्रनोम नामक परिचारक था। नकुला और सुजाता प्रधान शिष्याएँ थीं। नाग-वृक्ष (की) ही बोधि थी। अट्ठावन हाथ ऊँचा शरीर और नब्बे हज़ार वर्ष की आयु थी।

"(भगवान्) रेवत के बाद सोभित नामक बुद्ध (=नायक) (हुए)। (वह) एकाग्र-चित्त, शान्त-चित्त, श्रसम=अद्वितीय पुरुष थे।"

(७) अनोमदर्शी बुद्ध

उसके बाद, एक असंख्येय (कल्प) बीत जाने पर एक कल्प में अनोमदर्शी, पद्म, तथा नारद, तीन बुद्ध हुए। भगवान् अनोमदर्शी के तीन शिष्य सम्मेलन हुए। पहले में आठ लाख भिक्षु, दूसरे में सात लाख, तीसरे में छः लाख (एकत्रित हुए)। उस समय (हमारे) बोधिसत्व, बड़े ऋद्धि वाले, महाप्रतापी, अनेक लाख-करोड़ यक्षों के स्वामी, एक यक्ष-सेनापति थे। उन्होंने बुद्ध के उत्पन्न होने की बात सुन, आ कर बुद्ध सहित भिक्षु संघ को भोजन (=महादान) दिया। बुद्ध ने भी कहा—"तू भविष्य में बुद्ध होगा।" भगवान् अनोमदर्शी के नगर का नाम चन्द्रावती था। पिता यशवान् नामक राजा था। माता का नाम यशोधरा था। निसभ और अनोम दो प्रधान शिष्य थे। वरुण नामक परिचारक था। सुन्दरी तथा सुमना दो प्रधान शिष्याएँ थीं। अर्जुन-वृक्ष (की) बोधि थी। अट्ठावन हाथ ऊँचा शरीर और लाख वर्ष की उनकी आयु थी।

(भगवान्) सोभित के बाद नर-श्रेष्ठ, अमितयश, तेजस्वी, दुरतिक्रम अनोमदर्शी बुद्ध हुए।

सुजात दो बुद्ध पैदा हुए। सुमेध के भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए। सुदर्शन नगर में प्रथम सम्मेलन में एक अरब अर्हत् जमा थे। दूसरे में नब्बे करोड़, तीसरे में अस्सी करोड़। (उस समय) बोधिसत्त्व उत्तर नामक ब्राह्मणकुमार (माणवक) थे। (उन्होंने) पृथ्वी में गाड़ कर रखे हुए अस्सी करोड़ धन को त्याग, बुद्ध सहित भिक्षु-संघ को महादान दे, धर्म को सुन, तीनों (रत्नों) की शरण ग्रहण की, और (घर से) निकल कर साधु हो गये। उन (बुद्ध) ने भी कहा—"तू भविष्य में बुद्ध होगा।"

भगवान् सुमेध का सुदर्शन नाम का नगर था। सुदत्त नाम का राजा पिता था। माता भी सुदत्ता नाम की थी। सरण और सर्वकाम दो प्रधान शिष्य थे। सागर नामक परिचारक था। रामा और सुरामा दो प्रधान शिष्याएँ थीं। महा-कदम्ब-वृक्ष (की) बोधि थी। अट्ठासी हाथ ऊँचा शरीर था। नब्बे हजार वर्ष की आयु थी।

(भगवान्) पद्मोत्तर के बाद सुमेध नामक नायक हुए। वह दुराक्रमणीय उग्रतेज, लोक-श्रेष्ठ मुनि थे।

(१२) सुजात बुद्ध

उनके बाद सुजात नामक बुद्ध (=शास्ता) उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए। पहले सम्मेलन में साठ हजार भिक्षु थे। दूसरे में पचास हजार। तीसरे में चालीस हजार। उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व चक्रवर्ती राजा थे। वे 'बुद्ध उत्पन्न होने की बात' सुन, पास जा, धर्म सुन, बुद्ध सहित भिक्षु-संघ को सप्त रत्नों के साथ चारों महाद्वीपों का राज्य दान दे, बुद्ध के पास साधु हुए। सभी देश-वासी (उस समय) देश की उपज ले, विहार (=आराम) के काम को पूरा करते हुए, बुद्ध सहित संघ को महादान देते थे। उनने भी उसे 'बुद्ध' (होगा) कहा। उन भगवान् का नगर सुमङ्गल था। उग्गत नाम राजा पिता था। प्रभावती नाम की माता थी। सुदर्शन और देव दो प्रधान शिष्य थे। नारद नामक परिचारक (=उपस्थापक) था। नागा और नागसमाला दो प्रधान शिष्याएँ थीं। महावेणु [illegible] बोधि थे [illegible] पुष्प-समूह की तरह [illegible] था [illegible] उन भगवान् का [illegible] था। आयु नब्बे हजार वर्ष की हुई।

"वहाँ उस मण्ड-कल्प में, सिंह को सी ठोड़ी (=हनु) वाले, वृषभ-स्कन्ध अप्रमेय, दुराक्रमणीय सुजात नामक बुद्ध (=नायक) हुए।"

(१३) प्रियदर्शी बुद्ध

उसके बाद अठारह सौ कल्प बीत जाने पर, एक ही कल्प में प्रिय-दर्शी, अर्थ-दर्शी, धर्म-दर्शी—तीन बुद्ध उत्पन्न हुए। प्रिय-दर्शी के भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए थे। पहले सम्मेलन में दस खरब भिक्षु, दूसरे में नौ खरब, तीसरे में आठ खरब थे। उस समय बोधिसत्त्व काश्यप नामक ब्राह्मण (के कुल में पैदा हुए) थे। उन्होंने जवानी में तीनों वेदों में पारङ्गत हो, बुद्ध के उपदेश को सुन दस खरब धन के व्यय से विहार (=सघाराम) बनवा कर, (त्रि-) शरण तथा (पच-) शील को ग्रहण किया। तब बुद्ध ने कहा—"अठारह सौ कल्पों के बीत जाने पर तू बुद्ध होगा।"

उन भगवान् का अनोम नाम का नगर था। सुदिन्न नामक राजा पिता था। चन्दा नामक माता थी। पालित तथा सर्वदर्शी (दो) प्रधान शिष्य थे। सोभित नामक उपस्थायक था। सुजाता तथा धम्मदिन्ना (दो) प्रधान शिष्यायें थीं। पियंगु(-वृक्ष) की बोधि थी। अस्सी हाथ ऊँचा शरीर और नब्बे हजार वर्ष की आयु थी।

"(भगवान्) सुजात के बाद, दुराक्रमणीय, असदृश, महा-यशस्वी, स्वयम्भू (नायक) लोक-नायक हुए।"

(१४) अर्थ-दर्शी बुद्ध

उनके बाद अर्थ-दर्शी नामक बुद्ध उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य-सम्मेलन हुए। पहले में अट्ठानवे लाख भिक्षु (एकत्रित) हुए। दूसरे में अट्ठासी लाख, (और) तीसरे में भी उतने ही। उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व सुसीम नामक महा ऋद्धिवान् तापस के रूप में पैदा हुए थे, उन्होंने देव-लोक से मन्दार पुष्प का छत्र ला बुद्ध की पूजा की। उन्होंने भी कहा—"तू बुद्ध होगा।"

उन भगवान् का सोभित नाम का नगर था। सागर नामक राजा पिता था। सुदर्शना नाम की माता थी। शान्त तथा उपशान्त (दो) प्रधान शिष्य थे। अभय नामक परिचारक (=उपस्थायक) था। धम्मा और सुधम्मा प्रधान शिष्यायें थीं। चम्पक-वृक्ष (की) बोधि थी। उनका शरीर अस्सी हाथ

ऊँचा था। शरीर की प्रभा सदैव, चारों ओर एक योजन तक फैली रहती थी। उनकी आयु लाख वर्ष की (हुई)।

"वहीं उस मण्ड-कल्प में नर-श्रेष्ठ (=नरर्षभ) अर्थदर्शी ने महान् अन्धकार को नाश कर उत्तम बुद्ध-पद को प्राप्त किया।"

(१५) धर्मदर्शी बुद्ध

उनके बाद धर्मदर्शी नामक बुद्ध उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए। पहले सम्मेलन में एक अरब भिक्षु थे। दूसरे में सत्तर करोड़, तीसरे में अस्सी करोड़। उस समय (हमारे) बोधिसत्व देवराज शक्र के रूप में पैदा हुए थे। उन्होंने दिव्य गन्ध-पुष्प तथा दिव्य-वाद्य से (बुद्ध की) पूजा की। बुद्ध ने भी कहा—"(तू बुद्ध होगा)।"

उन भगवान् का सरण नाम का नगर था। सरण नाम का राजा पिता था। सुनन्दा नाम की माता थी। पदुम तथा फुस्सदेव (दो) प्रधान शिष्य थे। सुनेत्र नामक परिचारक (=उपस्थायक) था। खेमा तथा सर्वनामा दो प्रधान शिष्याएँ थीं। रक्त-कुरवक (नामक) वृक्ष की बोधि थी। वह (वृक्ष) बिम्बि-जाल भी कहा जाता है। अस्सी हाथ ऊँचा (उनका) शरीर था और आयु भी लाख वर्ष की।

उसी मण्ड-कल्प में महा यशस्वी धम्मदस्सी (बुद्ध) उस अन्धकार का नाश कर देवताओं सहित (सारे) लोक में प्रकाशित हुए।

(१६) सिद्धार्थ बुद्ध

इस कल्प से चौरानवे कल्प पहले एक कल्प में सिद्धार्थ नाम के एक ही बुद्ध उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य-सम्मेलन (हुए) थे। पहले सम्मेलन में दस खरब, दूसरे में नौ खरब, तीसरे में आठ खरब भिक्षु थे। यह (हमारे) बोधिसत्व उग्र-तेजा, ऋद्धि (=अभिज्ञा)-प्राप्त, मङ्गल नामक तापस के रूप में पैदा हुए थे। उन्होंने महा जम्बु (=जामुन) वृक्ष के फल को ला कर तथागत को प्रदान किया। बुद्ध (=शास्ता) ने उस फल को सेवन कर बोधि-सत्व से कहा—'चौरानवे कल्प बीत जाने पर तू बुद्ध होगा।'"

उन भगवान् (सिद्धार्थ) के नगर का नाम वेभार था। जयसेन नामक राजा पिता था। सुफस्सा नाम की माता थी। सम्बहुल तथा सुमित्र दो प्रधान

शिष्य थे। रेवत नामक उपस्थायक था। सीवली और सुरामा प्रधान शिष्याएँ थीं। कणिकार-वृक्ष (की) बोधि थी। साठ हाथ ऊँचा (उनका) शरीर था और आयु लाख वर्ष की।

(भगवान्) धर्म-दर्शी के बाद सिद्धार्थ नामक नायक का, सारे अन्धकार को नाश कर, सूर्य की भाँति उदय हुआ।

(१७) तिष्य बुद्ध

इस कल्प से ब्यानवे कल्प पहले एक कल्प में तिस्स तथा फुस्स—दो बुद्ध उत्पन्न हुए। भगवान् तिष्य के तीन शिष्य-सम्मेलन हुए। पहले सम्मेलन में एक अरब, दूसरे में नब्बे करोड़, तीसरे में अस्सी करोड़ भिक्षु थे। उस समय (हमारे) बोधिसत्व महाऐश्वर्य-शाली, महायशस्वी सुजात क्षत्रिय के रूप में पैदा हुए थे। उन्होंने ऋषियों के नियम के अनुसार प्रव्रज्या ग्रहण की, और ऋद्धि को प्राप्त हो, बुद्ध के उत्पन्न होने की बात सुन, दिव्य मन्दार-पदुम तथा पारिजात पुष्प ले, चारों प्रकार की परिषद् के बीच चलते हुए तथागत की पूजा की, (और) आकाश में फूलों का चँदवा लगवा दिया। उन शास्ता ने भी कहा—"ब्यानवे कल्प बीत जाने पर तू बुद्ध होगा।

उन भगवान् का क्षेम नामक नगर था। जन-सन्ध नामक क्षत्रिय पिता था। पद्मा (=पदुमा) नामक माता थी। ब्रह्मदेव और उदय दो प्रधान शिष्य थे। सम्भव नाम का परिचारक (=उपस्थायक) था। फुस्सा तथा सुदत्ता दो प्रधान शिष्याएँ थीं। असन-वृक्ष (की) बोधि थी। साठ हाथ ऊँचा उनका शरीर था। लाख वर्ष की आयु थी।

(भगवान्) सिद्धार्थ के बाद, अनुपम, अद्वितीय, अनन्त शीलों से युक्त तथा अनन्त यशों के भागी तिष्य (नामक) लोक के श्रेष्ठ नायक (=बुद्ध) हुए।

(१८) पुस्स बुद्ध

उनके बाद फुस्स नामक बुद्ध (=शास्ता) उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य-सम्मेलन हुए। प्रथम सम्मेलन में साठ लाख भिक्षु (जमा) हुए, दूसरे में पचास लाख, तीसरे में बत्तीस लाख। उस समय (हमारे) बोधिसत्व विजितावी नामक क्षत्रिय [illegible] राज्य को छोड़ [illegible]

पहले सम्मेलन में एक लाख भिक्षु थे। दूसरे में अस्सी हजार, तीसरे में सत्तर (हजार)। उस समय (हमारे) बोधिसत्व अरिन्दम नामक राजा थे। उन्होंने बुद्ध सहित भिक्षु-संघ को चीवर और भोजन (महादान) दे, सप्त रत्नों से सजा गज-रत्न दे, फिर (गज-रत्न के बदले में), उसके समान मूल्य की विहित (=कप्पिय)[1] वस्तुएँ दीं। उनने भी कहा—'अब से इकतीस कल्प बीत जाने पर, तू बुद्ध होगा।"

उन भगवान् का अरुणवती नाम का नगर था। अरुण नाम का क्षत्रिय पिता था। प्रभावती नाम की माता थी। अभिभू और सम्भव प्रधान शिष्य थे। क्षेमङ्कर नामक परिचारक था। मखिला और पदुमा प्रधान शिष्याएँ थीं। पुण्डरीक वृक्ष (की) बोधि थी। सैंतीस हाथ ऊँचा शरीर था और शरीर की प्रभा तीन योजन तक फैली होती थी। सैंतीस हजार वर्ष की उनकी आयु थी।

(भगवान्) विपस्सी के बाद, अतुलनीय, अद्वितीय, नर-श्रेष्ठ सिखि नामक जिन बुद्ध हुए।

(२१) विश्वभू बुद्ध

उनके बाद वेस्सभू नामक शास्ता उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य-सम्मेलन हुए। पहले सम्मेलन में अस्सी लाख भिक्षु थे, दूसरे में सत्तर(-लाख) तीसरे में साठ लाख। उस समय (हमारे) बोधिसत्व सुदर्शन नामक राजा थे। वे बुद्ध सहित भिक्षु-संघ को चीवर और भोजन दे, उनके पास प्रव्रजित हुए। वह सद् (आचार) तथा (सद्) गुणों से युक्त थे। बुद्ध रत्न में उनकी अपार श्रद्धा थी। उन भगवान् ने भी कहा—"अब से इकतीस कल्प बीत जाने पर तू बुद्ध होगा।"

उन भगवान् का अनुपम नाम का नगर था। सुप्पतीत (सुप्रतीत) नाम का राजा पिता था। यशोवती नामक माता थी। सोण और उत्तर प्रधान शिष्य थे। उपशान्त नामक परिचारक था। दामा और सुमाला प्रधान शिष्याएँ थीं। शाल-वृक्ष (की) बोधि थी। साठ हाथ ऊँचा शरीर था। साठ हजार वर्ष की उनकी आयु थी।

---

[1] ऐसी चीजें, जिनका ग्रहण, भिक्षु के लिए अनुचित न हो।

उसी मण्ड-कल्प में अतुलनीय, अद्वितीय, वेस्सभू नाम के बुद्ध लोकमें उत्पन्न हुए।

(२२) ककुसन्ध बुद्ध

उसके बाद इस कल्प में ककुसन्ध, कोनागमन, काश्यप और हमारे भगवान्—यह चार बुद्ध उत्पन्न हुए। भगवान् ककुसन्ध का एक ही सम्मेलन हुआ। उसमें चालीस हज़ार भिक्षु एकत्र हुए। उस समय (हमारे) बोधिसत्व खेम नामक राजा थे। उन्होंने बुद्ध सहित भिक्षु-संघ को पात्र-चीवरों सहित भोजन तथा अंजन आदि दवाइयाँ प्रदान की और बुद्ध का धर्मोपदेश सुन प्रव्रज्या ग्रहण की। उनने भी कहा—"तू बुद्ध होगा।"

भगवान् ककुसन्ध का खेम नाम का नगर था। अग्निदत्त नामक ब्राह्मण पिता था। विशाखा नामक ब्राह्मणी माता थी। विधुर तथा सञ्जीव प्रधान शिष्य थे। बुद्धिज नामक परिचारक था। सामा तथा चम्पका प्रधान शिष्याएँ थीं। महान् शिरीष-वृक्ष (की) बोधि थी। चवालीस हाथ ऊँचा शरीर था। आयु उनकी चालीस हज़ार वर्ष की थी।

भगवान् (वेस्सभू) के बाद नर-श्रेष्ठ, अप्रमेय, दुरासमणीय ककुसन्ध नाम के बुद्ध हुए।

(२३) कोणागमन बुद्ध

उनके बाद कोनागमन बुद्ध उत्पन्न हुए। उनका भी एक ही शिष्य-सम्मेलन हुआ। उसमें तीस हज़ार भिक्षु (एकत्र) हुए। उस समय हमारे बोधिसत्व पर्वत नामक राजा थे। उन्होंने अमात्यों के साथ, बुद्ध के पास जा, धर्मोपदेश सुना, और बुद्ध सहित भिक्षु-संघ को निमन्त्रित कर, प्रतूर्ण, चीनवस्त्र, रेशम (कोनिम्ब), कम्बल, दुकूल और स्वर्ण-वस्त्र के साथ भोजन प्रदान कर शास्ता के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। उनने भी कहा—"तू बुद्ध होगा।"

उन भगवान् का सोभवती नाम का नगर था। यज्ञदत्त नामक ब्राह्मण पिता था। उत्तरा नामक ब्राह्मणी माता थी। भीय्यस और उत्तर (दो) प्रधान शिष्य थे। स्वस्तिज नामक परिचारक था। समुद्रा और उत्तरा प्रधान शिष्याएँ थीं। उदुम्बर नामक वृक्ष की बोधि थी। तीस हाथ ऊँचा शरीर था। [illegible]

तथा लोकान्तरों[1] में उत्पन्न नहीं होते, और न ही वह निज्झामतृष्ण[2] क्षुधापिपासा, कालकञ्जक[3] जैसी योनियों में जाते हैं। दुर्गति[4] में जाने पर भी वह छोटे छोटे जीव के रूप में पैदा नहीं होते। मनुष्य-योनि में पैदा होने पर, वह जन्मान्ध पैदा नहीं होते। वह बहरे नहीं होते, और न ही गूँगे होते हैं। वह स्त्री-योनि में नहीं जाते, न ही दोनों लिङ्गों वाले तथा नपुंसक (होते हैं)। ऐसे पुरुष, जिनका बुद्ध होना निश्चित है, वह (उक्त योनियों की ओर) नहीं लौटते। वह सर्वत्र शुद्ध और आनन्तर्य[5] कर्मों से मुक्त होते हैं। वह कर्मक्रियादर्शी[6] पुरुष झूठी धारणा नहीं ग्रहण करते। यदि वह स्वर्ग में पैदा होते हैं भी, तो असंज्ञी[7] (योनि) में उत्पन्न नहीं होते। शुद्धावास[8] देव-लोक में (उनके लिए उत्पन्न होने का) कारण नहीं होता। नैष्कम्य के झुके हुए, भवाभव वियुक्त सत्पुरुष सब पारमिताओं को पूरा करते, लोको-पकार के लिए विचरण करते हैं।

१०. जातकों में पारमिताओं का अभ्यास

(१) दान पारमिता

इन महात्म्यों को प्राप्त करते हुए ही (बोधिसत्व अन्तिम जन्म तक)

---

[1] तीन चक्रवाल के बीच के अत्यन्त शीत-नरक।

[2] प्रेत की योनि।

[3] असुर-योनि।

[4] तिरश्चीन-योनि।

[5] मातृ-हत्या, पितृ-हत्या, अर्हत की हत्या, बुद्ध के शरीर में जख्म करके उनका रक्त बहाना, संघ-भेद (=संघ में नाइत्तफाकी पैदा करना)। यह पाँच अनन्तर-कर्म हैं। इन कर्मों का फल तुरन्त और अवश्य भोगना पड़ता है।

[6] कर्म और उनका फल मानने वाले।

[7] रूप-लोक की योनियों में से एक।

[8] अनागामी-फल प्राप्त (व्यक्ति) फिर इस लोक में उत्पन्न नहीं होते। वे शुद्धावास-लोक में उत्पन्न हो, वहां आवागमन से मुक्त हो जाते हैं।

पहुँचे। उन्होंने पारमिताओं को पूर्ण करते हुए, अकीर्ति ब्राह्मण, शङ्ख ब्राह्मण धनञ्जय राजा, महासुदर्शन, महागोविन्द, निमि महाराज, चन्द्रकुमार, विसय्ह श्रेष्ठी, शिवि राजा तथा वेस्सन्तर के जन्मों में, दान-पारमिता पूरा करने में पराकाष्ठा कर दी। लेकिन शश-पण्डित जातक में तो निश्चयरूप से (उसको)—

याचक को देख कर, मैंने अपने शरीर तक को दे दिया। दान देने में मेरे समान (कोई) नहीं; यह मेरी दान-पारमिता है।

इस प्रकार शरीर प्रदान करते हुए उनकी दान-पारमिता परमार्थ-पारमिता हुई।

(२) शील-पारमिता

इसी प्रकार शीलव नाग-राज, चम्पेय्य नाग-राज, भूरिदत्त नाग-राज, छद्दन्त नाग-राज, जयद्दिस राजा के पुत्र अलीन शत्रु कुमार के जन्मों में शील-पारमिता की पूर्ति की चरम-सीमा नहीं, लेकिन शङ्खपाल के जन्म में तो निश्चयरूप से (शीला)—

शूल से छेदने और शक्ति (आयुध) से प्रहार करने पर भी सबेरा के प्रति मुझे क्रोध नहीं होता। यह मेरी शील-पारमिता है।

इस प्रकार आत्म-त्याग करते हुए (उन) की शील-पारमिता परमार्थ-पारमिता हुई।

(३) नैष्क्रम्य पारमिता

[illegible]

[illegible]

[illegible]

(४) प्रज्ञा पारमिता

इसी प्रकार विधुर पण्डित, महागोविन्द पण्डित, कुद्दाल पण्डित, अरक पण्डित, बोधि परिव्राजक, महौषध पण्डित के जन्मों में, प्रज्ञा पारमिता की पूर्ति की सीमा नहीं। लेकिन सेनक पण्डित के समय सत्तुभस्त जातक में तो निश्चय रूप से—

प्रज्ञा की खोज में, मैंने ब्राह्मण को दुःख से मुक्त किया। प्रज्ञा में (कोई) मेरे समान नहीं है। यह मेरी प्रज्ञा पारमिता है।

थैली के भीतर वाले साँप को दिखाने में (उन) की प्रज्ञा पारमिता परमार्थ पारमिता हुई।

(५) वीर्य पारमिता

इसी प्रकार वीर्य पारमिता आदि (दूसरी) पारमिताओं की पूर्ति की भी (दूसरे जन्मों में अलग) सीमा नहीं।

हाँ, महाजनक जातक में तो निश्चय रूप से—

जल में किनारा न देख सकने वाले सभी मनुष्य मर गए, (किन्तु मेरे) चित्त में विकार नहीं उत्पन्न हुआ। यह मेरी वीर्य पारमिता है।

इस प्रकार महा समुद्र को पार करते हुए (उन) की वीर्य पारमिता परमार्थ पारमिता हुई।

(६) क्षान्ति पारमिता

क्षान्तिवादी जातक में—

"छेदन करने से जड़ वस्तु की तरह मुझे काट रहे थे, तथापि भी, काशीराज के प्रति मुझे क्रोध नहीं आया। यह मेरी क्षान्ति (क्षमा) पारमिता है।"

इस प्रकार जड़ वस्तु की भाँति अचेतन होकर पीड़ा को सहते हुए वह क्षान्ति पारमिता परमार्थ पारमिता हुई।

(७) सत्य पारमिता

महासुतसोम जातक में—

"सत्यवादिता की रक्षा करते हुए अपने जीवन का परित्याग कर मैंने [illegible] [illegible] यह मेरी सत्य पारमिता है।"

इस प्रकार जीवन परित्याग कर सत्य की रक्षा कर वह सत्य-पारमिता परमार्थ पारमिता हुई।

(८) अधिष्ठान पारमिता

मूग पक्ख (=मूक पक्ष) जातक में—

न तो मेरा माता-पिता से द्वेष है, न महायश से ही द्वेष है। मुझे बुद्ध-पद (=सर्वज्ञता) प्रिय है। इसलिए मैंने इस व्रत का अधिष्ठान किया है।

इस प्रकार जीवन परित्याग करके भी (अपने) व्रत का अधिष्ठान (=दृढ़ता से पालन) करना (यह उन)की अधिष्ठान पारमिता परमार्थ-पारमिता हुई।

(९) मैत्री पारमिता

एकराज जातक में—

न मुझे कोई डराता है, न मैं किसी से डरता हूँ। मैं मैत्री-बल पर निर्भर हो सदैव वन में विचरता हूँ।

इस प्रकार जीवन तक की परवाह न करके मैत्री करना (यह उन)की मैत्री-पारमिता परमार्थ-पारमिता हुई।

(१०) उपेक्षा पारमिता

लोमहंस जातक में—

मुर्दों तथा हड्डियों का तकिया बनाकर श्मशान में सोता हूँ। ग्वाले मेरे पास आकर अनेक प्रकार के रूप दिखाते हैं।

इस प्रकार ग्रामीण बालकों के थूक फेंकने आदि से पीड़ा देने तथा, माला गन्ध उपहार आदि द्वारा सुख देने से भी समभाव (=उपेक्षा) का उल्लंघन नहीं किया। इस प्रकार की (उनकी) उपेक्षा पारमिता परमार्थ-पारमिता हुई।

यहाँ यह संक्षेप से कहा गया है, विस्तार के लिए चरियापिटक[1] को देखना चाहिए।

---

[1] खुद्दक निकाय का एक ग्रन्थ।

इस प्रकार पारमिताओं को पूरा कर वह वेस्सन्तर के जन्म (=आत्म भाव) में आये।

यह पृथिवी अचेतन है। सुख दुख से प्रभावित नहीं होती है; किन्तु वह भी मेरे दान के बल से सात बार काँपी।

इस प्रकार महापृथ्वी को कँपाने वाले महापुण्य कर्मा, (हमारे बोधिसत्त्व) आयु को बिता कर, तुषित-देवलोक में उत्पन्न हुए।

भगवान् 'दीपङ्कर के चरणों' से आरम्भ करके तुषित-लोक में जन्म लेने तक के इस भाग को 'दूरेनिदान' जानना चाहिए।

ख. अविदूरेनिदान

१. गौतम का (बाल्य) चरित

(१) देव-लोक से मनुष्य-लोक की ओर

बोधिसत्त्व के तुषित लोक में रहते समय ही बुद्ध-कोलाहल (=शोर) पैदा हुआ। लोक में कल्प-कोलाहल, बुद्ध-कोलाहल तथा चक्रवर्ती-कोलाहल—तीन प्रकार के कोलाहल उत्पन्न होते हैं। (आज से) लाख वर्ष के बीत जाने पर कल्प-उत्थान होगा (सोच) काम-धातु के लोक-ब्यूह नामक देवता, खुले सिर, बिखरे-केश, रोनी-शकल बना, हाथों से आँसू पोंछते हुए, लाल वस्त्र पहने अत्यन्त कुरूप वेश धारण किये मनुष्य-लोक में घूमते हुए इस प्रकार चिल्लाते हैं—"मित्रो ! लाख वर्ष व्यतीत होने पर कल्प-उत्थान होगा—यह लोक नष्ट हो जायगा। महा-समुद्र सूख जायगा। यह महापृथ्वी और पर्वत-राज सुमेरु उड़ जायेंगे, नष्ट हो जायेंगे। ब्रह्म-लोक तक (समस्त) ब्रह्माण्ड का नाश हो जायगा। मित्रो ! मैत्री-भावना की भावना करो। करुणा, मुदिता, उपेक्षा (भावना) की भावना करो। माता-पिता की सेवा करो। कुल में जो ज्येष्ठ हों उनकी सेवा करो।" यह कल्प-कोलाहल हुआ।

सहस्र वर्ष बीतने पर, लोक में सर्वज्ञ बुद्ध उत्पन्न होंगे (सोच) लोकपाल देवता "मित्रो ! अब से सहस्र वर्ष बीतने पर लोक में बुद्ध उत्पन्न होंगे" उद्घोषित करते हुए घूमते हैं। यह बुद्ध-कोलाहल हुआ।

यह समय अनुकूल नहीं है? सौ वर्ष से कम आयु का समय अनुकूल समय नहीं होता। क्यों? सौ वर्ष से कम की आयु वाले प्राणियों में राग-द्वेष बहुत होते हैं। अधिक राग-द्वेष वाले प्राणियों को दिया गया उपदेश भी प्रभावोत्पादक नहीं होता। पानी पर, लकड़ी से खींची हुई लकीर की तरह वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। इसीलिए यह भी समय अनुकूल समय नहीं है।

महासत्व ने देखा कि लाख वर्ष से नीचे और सौ वर्ष से ऊपर का समय अनुकूल समय है और कि यह सौ वर्ष की आयु वाला समय है; इसलिए बुद्धों के उत्पन्न होने का समय है।

तब द्वीप का विचार करते हुए, उपद्वीपों सहित चारों द्वीपों को (देख) विचार किया—दूसरे तीनों द्वीपों[1] में बुद्ध उत्पन्न नहीं हुआ करते, जम्बुद्वीप में ही वह जन्म लेते हैं, और (जम्बु-द्वीप में जन्मने का) निश्चय किया। फिर 'जम्बु-द्वीप तो दस हजार योजन बड़ा है' कौन से प्रदेश में बुद्ध जन्म लेते हैं? इस तरह प्रदेश पर विचार करते हुए मध्य-प्रदेश को देखा। "मध्य देश की पूर्व दिशा में कजंगल[2] नामक कस्बा है, उसके बाद बड़े शाल (के वन) हैं, और फिर आगे सीमान्त (=प्रत्यन्त) देश। पूर्व-दक्षिण में सललवती[3] नामक नदी है, उसके आगे सीमान्त देश। दक्षिण दिशा में सेतकण्णिक[4] नामक कस्बा है, उसके बाद सीमान्त देश। पश्चिम दिशा में थून[5] नामक ब्राह्मण ग्राम है, उसके बाद सीमान्त देश। उत्तर दिशा में उशीरध्वज[6] नामक पर्वत है, उसके बाद सीमान्त देश।'—इस प्रकार विनय (-पिटक) में (मध्य-) देश का वर्णन है।

वह (मध्य-देश) लम्बाई में तीन सौ योजन, चौड़ाई में ढाई सौ योजन, और घेरे में नौ सौ योजन है। इसी प्रदेश में बुद्ध, प्रत्येक-बुद्ध, प्रधान अग्र-श्रावक

---

[1] अपर-गोयान, पूर्व-विदेह तथा उत्तर-कुरु में।

[2] वर्तमान कंकजोल, जिला संथाल परगना (बिहार)।

[3] वर्तमान सिलई नदी (हजारीबाग और मेदनीपुर जिला)।

[4] हजारीबाग जिले में कोई स्थान।

[5] थानेसर, जिला करनाल।

[6] हिमालय का कोई पर्वत-भाग।

के मालागन्ध से सुशोभित हो, उत्सव मना रही थीं। सातवें दिन प्रातः ही उठ, उसने सुगन्धित जल से स्नान कर, चार लाख का महादान दिया; और सब अलङ्कारों से विभूषित हो, सुन्दर भोजन ग्रहण कर, उपोसथ (=व्रत) के नियमों (=अङ्गों) को धारण किया। फिर सु-अलङ्कृत शयनागार में प्रविष्ट हो, सुन्दर शय्या पर लेटे, निद्रित अवस्था में यह स्वप्न देखा—

'उसे चार-महाराज (दिक्‌पाल) शय्या सहित उठा कर, हिमवन्त (-प्रदेश) में ले जा कर, साठ योजन के मन-शिला (नामक शिला) के ऊपर, सात योजन (छाया) वाले महान् शाल-वृक्ष के नीचे रख कर खड़े हो गये।

तब उन (दिक्‌पालों) की देवियों ने आकर, (महामाया) देवी को अनोतप्त-दह में ले जाकर, मनुष्य-मल दूर करने के लिए स्नान कराया; दिव्य-वस्त्र पहनाया, गन्धों से लेप किया, दिव्य फूलों से सजाया। वहाँ से समीप ही रजत-पर्वत है; जिसके अन्दर सुवर्ण-विमान है। वहीं पूर्व की ओर सिर करके दिव्य-शयन बिछवा कर उन्होंने उसे लिटाया। बोधिसत्त्व श्वेत सुन्दर हाथी बन समीपवर्ती सुवर्ण-पर्वत पर विचर कर, वहाँ से उतर रजत-पर्वत पर चढ़े। फिर उत्तर दिशा से आ कर (उक्त स्थान पर पहुँचे)। उनकी दाहिनी माता जैसी सूण्ड में श्वेत पद्म था। उन्होंने मधुर नाद कर, स्वर्ण-विमान में प्रवेश कर फिर तीन बार माता की शय्या की प्रदक्षिणा की। फिर दाहिनी बगल को चीर, कुक्षि में प्रविष्ट हुए से जान पड़े। इस प्रकार (बोधिसत्त्व ने) उत्तराषाढ़ नक्षत्र में गर्भ में प्रवेश किया।

दूसरे दिन जाग कर देवी ने इस स्वप्न को राजा से कहा। राजा ने चौंसठ प्रधान ब्राह्मणों को बुलवाया। गोबर-लीपी, खीलो (=लाजा) आदि से मङ्गलाचरण की गई भूमि पर महार्घ आसन बिछवाये। उन पर ब्राह्मणों को बैठा घी, मधु, शक्कर से प्रस्तुत की गई खीर से सोने-चाँदी की थालियाँ भर कर, उन्हें सोने-चाँदी की ही थालियों से ढक कर परोसा। और नवीन वस्त्र तथा कपिला गौ आदि के दान से भी उन्हें सतर्पित किया। उनकी सब इच्छाएँ पूरी कर उन्होंने ब्राह्मणों को स्वप्न की बात कह "स्वप्न का (फल) क्या होगा?" पूछा।

ब्राह्मणों ने कहा—"महाराज! चिन्ता न करें। आपकी देवी की कुक्षि में गर्भ प्रतिष्ठित हुआ है। वह स्त्री-गर्भ नहीं, पुरुष-गर्भ है। आपके पुत्र होगा।

वह यदि घर (=गृहस्थ) में रहेगा, तो चक्रवर्ती राजा होगा, यदि घर से निकल कर, प्रव्रजित होगा, तो लोक में कपाट खुला (=ज्ञानी) बुद्ध होगा।"

बोधिसत्व के गर्भ में आने के समय, समस्त दस-सहस्र ब्रह्माण्ड एक प्रकार से काँपने की तरह काँपे। बत्तीस पूर्व-शकुन (=लक्षण) प्रकट हुए। दस सहस्र चक्रवालों में अनन्त प्रकाश हो उठा। मानो (प्रकाश) की उस कान्ति (=श्री) को देखने के लिए ही, अन्धों को आँखें मिल गईं। बहरे शब्द सुनने लगे। गूँगे बोलने लगे। कुबड़े सीधे हो गये। लँगड़े पाँव से चलने लगे। बन्धनों में पड़े हुए सभी प्राणी बेड़ी हथकड़ी से मुक्त हो गए। सारे नरकों की आग बुझ गई। प्रेतों की क्षुधा-पिपासा शान्त हो गई। पशुओं (=तिरश्चीनों) का भय जाता रहा। तमाम प्राणियों के रोग शान्त हो गये। सभी प्राणी प्रिय-भाषी हो गये। घोड़े मधुर स्वर से हिनहिनाने लगे। हाथी चिंघाड़ने लगे। सारे वाद्य (=तूर्य) स्वयं बजने लगे। मनुष्यों के हाथों के आभरण, बिना आघात के टकराये ही, शब्द करने लगे। सब दिशाएँ शान्त हो गईं। प्राणियों को सुखी करती, मृदुल शीतल हवा चलने लगी। बे-मौसम के वर्षा बरसने लगी। पृथ्वी से भी पानी निकल कर बहने लगा। पक्षियों ने आकाश में उड़ना छोड़ दिया। नदियों ने बहना छोड़ दिया। महासमुद्र का पानी मीठा हो गया। सभी जगहें पाँच रंग के कमलों से ढक गईं। जल-थल में उत्पन्न होने वाले सब प्रकार के पुष्प खिल उठे। वृक्षों के स्कन्धों में, स्कन्ध-कमल, शाखाओं में शाखा-कमल, लताओं में लता-कमल पुष्पित हुए। स्थल पर शिला-तलों को फाड़ कर, ऊपर ऊपर से, सात सात हो, दण्ड-कमल निकले। आकाश में लटकने वाले कमल उत्पन्न हुए। चारों ओर से पुष्पों की वर्षा हुई। आकाश में दिव्य वाद्य (=तूर्य) बजे। चारों ओर सारी दस-सहस्री लोक धातु (=ब्रह्माण्ड) माला-गुच्छ की तरह, दाबकर बँधे माला-समूह की तरह, सजे सजाये माला-आसन की तरह, एक माला-पंक्ति की तरह, अथवा पुष्प धूप गन्ध से सुवासित सिनी हुई चवँर की तरह परम शोभा को प्राप्त हुई।

बोधिसत्व के गर्भ में आने के समय से ही बोधिसत्व और उनकी माता के उपद्रव के निवारण करने के लिए चारो देव-पुत्र (महाराज) हाथ में खड्ग लिये हुए पहरा देते थे। (उसके बाद) बोधिसत्व की माता को पुरुष में राग नहीं हुआ। वह बड़े लाभ और यश को प्राप्त हो सुखी तथा अक्लान्त-शरीर

रहती। वह कुक्षिस्थ बोधिसत्व को सुन्दर मणि-रत्न में पिरोए हुए पीले धागे की तरह देख सकती थी। क्योंकि जिस कोख में बोधिसत्व वास करते हैं, वह चैत्य के गर्भ के समान (फिर) दूसरे प्राणी के रहने या उपभोग करने योग्य नहीं रहती, इसीलिए (बोधिसत्व की माता) बोधिसत्व के जन्म के (एक) सप्ताह बाद ही मर कर, तुषित देव-लोक में जन्म ग्रहण करती है। जिस प्रकार दूसरी स्त्रियाँ दस मास से कम (या) अधिक में भी, बैठी या लेटी भी, प्रसव करती हैं, ऐसा बोधिसत्व-माता नहीं करती। वह (बोधिसत्व को) दस मास कुक्षि में रख, खड़ी ही प्रसव करती है। यह बोधिसत्व-माता की धर्मता (=विशेषता) है।

(४) सिद्धार्थ का जन्म

महामाया देवी भी पात्र में तेल की भांति, बोधिसत्व को दस मास कोख में धारण कर, गर्भ के परिपूर्ण होने पर, नैहर (पीहर) जाने की इच्छा से शुद्धोदन महाराज से बोली—'देव, (अपने पिता के) कुल के देवदह नगर को जाना चाहती हूँ।' राजा ने 'अच्छा' कह, कपिलवस्तु से देवदह नगर तक के मार्ग को सम-तल करा और केला, पूर्ण-घट, ध्वजा, पताका आदि से अलंकृत करा, देवी को सोने की पालकी में बिठा, एक हजार अमात्य तथा बहुत भारी सेवक-मण्डली के साथ भेज दिया।

दोनों नगरों के बीच में, दोनों ही नगर वालों का 'लुम्बिनी'[1] वन नामक एक मङ्गल शाल-वन था। उस समय (वह वन) मूल से ले कर शिखर की शाखाओं तक एक दम फूला हुआ था। शाखाओं तथा पुष्पों के बीच में पाँच रङ्गों के भ्रमर-गण, और नाना प्रकार के पक्षि-संघ मधुर-स्वर से कूजन करते विचर रहे थे। सारा लुम्बिनी-वन चित्र-लता-वन—जैसा, प्रतापी राजा के सुसज्जित आपानक जैसा (जान पड़ता) था। उसे देख देवी के मन में शाल-वन में क्रीड़ा करने की इच्छा उत्पन्न हुई। अमात्य, देवी को ले शाल-वन में गए। देवी ने सुन्दर शाल के नीचे जा, शाल की डाली पकड़नी चाही।

---

[1] रुम्मिन देई, नौतनवा स्टेशन (B. N. W. R.) से प्रायः ८ मील पश्चिम, नेपाल की तराई में।

कर रहे थे। सातवें पग पर ठहर "मैं संसार में सर्व-श्रेष्ठ हूँ" नर-पुङ्गवों की इस प्रथम निर्भीक वाणी का उच्चारण करते हुए सिंहनाद किया।

बोधिसत्त्व ने इस प्रकार माता की कोख से निकलते ही तीन जन्मों में, वाणी का उच्चारण किया—महोसध-जन्म में, वेस्सन्तर-जन्म में और इस जन्म में। महोसध-जन्म में तो बोधिसत्त्व के कोख से निकलते ही, देवेन्द्र शक्र आया और चन्दन-सार हाथ में रख कर चला गया। बोधिसत्त्व उसे हाथ में लिये ही निकला। तब उसकी माता ने पूछा—"तात! क्या लेकर आया है?" "अम्मा! औषध?" औषध लेकर आया होने के कारण उसका नाम औषध दारक ही कर दिया गया। उस औषध को लेकर बरतन (=चाटी) में डाल दिया। वह औषध अन्धे, बहरे, इत्यादि सभी प्रकार के आने वाले रोगियों के रोग-उपशमन की दवाई हुई। तब "यह महौषध है, यह महौषध है," इस प्रकार की ख्याति उत्पन्न होने के कारण, (=बोधिसत्त्व) का नाम भी महौषध ही पड़ गया। वेस्सन्तर के जन्म में तो बोधिसत्त्व माता की कोख से निकलते ही 'माँ! घर में कुछ है? दान दूँगा" पूछते हुए निकला। उसकी माता ने "तात तू धनवान् कुल में पैदा हुआ है" (कह) पुत्र की हथेली को अपनी हथेली पर रख, हजार की थैली रखवाई। इस जन्म में तो केवल यह सिंह-नाद ही किया। इस प्रकार बोधिसत्त्व ने तीन जन्मों में माता की कोख से निकलते ही, शब्द उच्चारण किया।

गर्भ धारण के समय की भाँति ही जन्म के समय भी बत्तीस शकुन, प्रकट हुए। जिस समय लुम्बिनी वन में हमारे बोधिसत्त्व उत्पन्न हुए, उसी समय राहुल-माता देवी, आमात्य छन्न (=छन्दक) आमात्य कालउदायी, हस्तिराज आजानीय,[1] अश्वराज कन्थक, महाबोधि-वृक्ष, और खजानों से भरे चार घड़े भी उत्पन्न हुए। उनमें (क्रम से) एक गव्यूति (=$\frac{1}{4}$ योजन=२ मील) भर, एक आधे योजन भर एक तीन गव्यूति भर और एक योजन भर था। यह सात एक ही समय पैदा हुए। दोनों नगरों के निवासी बोधिसत्त्व को लेकर कपिलवस्तु नगर को ही लौटे।

---

[1] उत्तम जाति का।

'कपिलवस्तु नगर में शुद्धोदन महाराज को पुत्र हुआ है; यह कुमार बोधि-वृक्ष के नीचे बैठ कर बुद्ध होगा' (सोच) उसी दिन त्रयस्त्रिंश (तैंतीस) भवन के सन्तुष्ट-चित्त देव-वृंद वस्त्रों को उछाल उछाल कर क्रीड़ा करने लगे।

(५) काल देवल की भविष्यद्वाणी

उस समय शुद्धोदन महाराज के कुलमान्य, आठ समाधि (=समापत्ति) पाने वाले काल-देवल नामक तपस्वी, भोजन करके, दिन में मनोविनोद के लिए त्रयस्त्रिंश देवलोक में गये। वहाँ दिन के विश्राम के लिए बैठे हुए उन्होंने, उन देवताओं को देख कर पूछा—"किस कारण से तुम इस प्रकार सन्तुष्ट-चित्त हो क्रीड़ा कर रहे हो? मुझे भी वह बात बतायो।" देवताओं ने उत्तर दिया "मित्र! शुद्धोदन राजा को पुत्र उत्पन्न हुआ है। वह बोधि-वृक्ष के नीचे बैठ, बुद्ध हो, धर्मचक्र प्रवर्तित करेगा। हमें उसकी अनन्त बुद्ध-लीला देखनी, तथा (उसका) धर्म सुनने को मिलेगा—इस कारण से हम प्रसन्न-चित्त हैं।"

उनकी बात सुन, तपस्वी ने शीघ्र ही देवलोक से उतर, राज-महल में प्रवेश कर, बिछे आसन पर बैठ, पूछा—"महाराज! आपको पुत्र हुआ है, मैं उसे देखना चाहता हूँ।" राजा सु-अलंकृत कुमार को मँगा, तापस की वन्दना कराने को ले गया। बोधिसत्त्व के चरण उठ कर तापस की जटा में जा लगे। बोधिसत्त्व के जन्म में, बोधिसत्त्व के लिए दूसरा कोई वन्दनीय नहीं। यदि अज्ञान में बोधिसत्त्व का सिर तापस के चरण पर रखा जाता, तो तापस का सिर सात टुकड़े हो जाता। तापस ने—'मुझे अपने आपको नाश करना योग्य नहीं है' (सोच) आसन से उठ हाथ जोड़ कर (प्रणाम किया)। राजा ने, इस आश्चर्य को देख, अपने पुत्र की वन्दना की। तपस्वी को अतीत के चालीस और भविष्य के चालीस—अस्सी कल्पों की (बात) याद आ सकती थी। उस ने बोधिसत्त्व के (शरीर के) लक्षणों को देख, 'यह बुद्ध होगा या नहीं' इस बात का विचार कर मालूम किया, कि 'यह अवश्य बुद्ध होगा। यह अद्भुत पुरुष है' जान मुस्कराया। फिर सोचने लगा "इनके बुद्ध होने पर, मैं इसे देख सकूँगा या नहीं?" सोचने से (मालूम हुआ) 'नहीं देख पाऊँगा, (इनके बुद्ध होने से) पहले ही मर कर अरूप-लोक में—जहाँ सौ अथवा हजार बुद्धों के जाने पर भी [illegible] अवस्था [illegible]—[illegible] यह

'ऐसे अद्भुत पुरुष को बुद्ध होने पर नहीं देख पाऊँगा, मेरा दुर्भाग्य है' सोच रो उठा। लोगों ने जब देखा—कि 'हमारे आर्य (=अय्य=बाबा) अभी हँसे और फिर रोने लग गये' तो उन्होंने पूछा—"क्यों भन्ते! क्या हमारे आर्य-पुत्र को कोई खतरा होगा?"

"इसको खतरा नहीं है, यह निस्संशय बुद्ध होगा।"

"तो (आप) किस लिए रोते हैं?"

"इस प्रकार के पुरुष को बुद्ध हुए नहीं देख सकूँगा, मेरा बड़ा दुर्भाग्य (=हानि) है—यही सोच अपने लिए रो रहा हूँ।"

फिर 'मेरे सम्बन्धियों में से कोई इसे बुद्ध-हुआ देखेगा, या नहीं'—विचार, अपने भांजे नालक को इस योग्य जान, अपनी बहिन के घर जाकर (पूछा)।

तेरा पुत्र नालक कहाँ है?

घर में है, आर्य।

'उसे बुला।'

(उसके) पास आने पर बोला—"तात! महाराज शुद्धोदन के घर में पुत्र उत्पन्न हुआ है, यह बुद्ध-अंकुर है। पैंतीस वर्ष बाद यह बुद्ध होगा, और तू इसे देख पायेगा। तू आज ही प्रव्रजित हो जा।"

वह—मैं सत्तासी करोड़ धनवाले कुल में उत्पन्न हुआ हूँ, (तो भी) मामा मुझे अनर्थ में नहीं लगा रहे हैं—सोच उसी समय बाजार से काषाय (वस्त्र, तथा मिट्टी का पात्र मँगवा, सिर-दाढ़ी मुँडा, काषाय वस्त्र पहिन, 'लोक में जो उत्तम पुरुष है, उसके नाम पर मेरी यह प्रव्रज्या है', कह (उसने) बोधिसत्त्व की ओर अंजलि बाँध पाँचों अंगों से वन्दना की, फिर पात्र को झोली में रख, कंधे पर लटका, हिमालय में प्रवेश कर, श्रमण-धर्म का पालन करने लगा।

[illegible]

और ध्यान रख, गृह को त्याग, क्रमशः उरुवेला[1] जा, 'यह भूमि-भाग बड़ा रमणीय है, योगार्थी कुल-पुत्र के योगाभ्यास के लिए उपयुक्त स्थान है' सोच, वहीं रहने लगा। (फिर) "महापुरुष प्रव्रजित हो गये" सुन, (सात) ब्राह्मणों के पुत्रों के पास जाकर कहा—"सिद्धार्थ-कुमार प्रव्रजित हो गये, वह निःसंशय बुद्ध होंगे। यदि तुम्हारे पिता जीवित होते, तो वह आज घर छोड़ प्रव्रजित हुए होते। यदि तुम चाहते हो, तो (मेरे साथ) आओ हम उस पुरुष के पीछे प्रव्रजित होंगे।"

वे सब (लड़के) एक मत न हो सके। तीन प्रव्रजित नहीं हुए। शेष चारों कौण्डिन्य ब्राह्मण को मुखिया बना कर प्रव्रजित हुए। (आगे चल कर) यह पाँचो जने पंचवर्गीय स्थविरों के नाम से प्रसिद्ध हुए।

तब राजा ने पूछा—"क्या देख कर, मेरा पुत्र प्रव्रजित होगा?" (उत्तर मिला) "चार पूर्व लक्षण।" "कौन कौन से चार लक्षण (=निमित्त)?" "बूढ़, रोगी, मृत और प्रव्रजित।"

राजा ने (आज्ञा की)—"अब से इस प्रकार के किसी लक्षण (=बूढ़ आदि) को मेरे पुत्र के पास मत आने दो। मुझे, उसके बुद्ध बनने से मतलब नहीं। मैं उस को सहस्र द्वीपों से घिरे चारों महाद्वीपों का आधिपत्य करते हुए, छत्तीस योजन घेरे की परिषद् के बीच, आकाश के नीचे विचरते देखने की इच्छा रखता हूँ।" यह कह, राजा ने इन चार प्रकार के पुरुषों को कुमार के दृष्टि-गोचर स्थान से बचाने के लिए चारों दिशाओं में तीन तीन कोस की दूरी पर पहरा बैठा दिया। उसी दिन उस माङ्गलिक स्थान पर एकत्र हुए, अस्सी हजार क्षत्रिय-सम्बन्धियों ने अपना एक एक पुत्र (को देने) की प्रतिज्ञा की। यह (कुमार) चाहे बुद्ध हो, अथवा राजा, हम (इसे) अपना एक एक पुत्र देंगे। यदि यह बुद्ध होगा तो क्षत्रिय साधुओं से पुरस्कृत तथा परिवारित हो विचरेगा। यदि राजा होगा तो क्षत्रिय-कुमारों से पुरस्कृत तथा परिवारित हो विचरेगा।

---

[1] बोधगया, जि० गया (बिहार)।

(७) शैशव का एक चमत्कार

राजा ने बोधिसत्त्व के लिए उत्तम रूप वाली, सब दोषों से रहित धाइयाँ नियुक्त कीं। बोधिसत्त्व अनन्त परिवार, तथा महती शोभा और श्री के साथ बढ़ने लगे। एक दिन राजा के यहाँ (खेत) बोने का उत्सव था। उस (उत्सव के) दिन लोग सारे नगर को देवताओं के विमान की भाँति अलंकृत करते थे। सभी दास (=गुलाम) और नौकर आदि नये वस्त्र पहिन, गंध माला आदि से विभूषित हो, राज-महल में इकट्ठे होते थे। राजा को एक हजार हलों की खेती थी। लेकिन उस दिन बैलों की रस्सी की जोत के साथ एक कम आठ सौ रुपहले हल थे। राजा का हल रत्न-सुवर्ण-जटित था। बैलों के सींग, और रस्सी-जोतें भी सुवर्ण-खचित ही थे। राजा बड़े दल-बल के साथ, पुत्र को भी ले, वहाँ पहुँचा। खेत के स्थान पर ही, बहुत पत्तों तथा घनी छाया वाला एक जामुन का वृक्ष था। उसके नीचे कुमार की शय्या बिछाई गई। ऊपर सुवर्ण-तारा-खचित चँदवा तनवाया गया। उसे कनात से घिरवा, पहरा लगवा दिया गया। फिर सब अलङ्कारों से अलंकृत हो, अमात्य गण सहित राजा, हल जोतने के स्थान पर गया। वहाँ उसने सुनहले हल को पकड़ा, अमात्यों ने (अन्य) एक-कम आठ सौ रुपहले हलों को और कृषकों ने शेष दूसरे हलों को। हलों को पकड़ कर, वे इधर उधर जोतने लगे। राजा इस पार से उस पार, और उस पार से इस पार जाता था। यहाँ बड़ी भीड़ थी, बड़ा तमाशा था। बोधिसत्त्व को घेर कर बैठी धाइयाँ, राजकीय-तमाशा देखने के लिए कनात के भीतर से बाहर चली गईं। बोधिसत्त्व इधर उधर किसी को न देख, जल्दी से उठ, आसन-मार (पालथी मार) कर ध्यान दे, प्रथम-ध्यान प्राप्त हो गये। धाइयों ने खाद्य-भोज्य में (लगे रह कर) कुछ देर कर दी। दूसरे वृक्षों की छाया घूम गई, लेकिन (बोधिसत्त्व वाले) वृक्ष की छाया गोल ही खड़ी रही। धाइयों ने 'आर्य-पुत्र अकेले हैं', स्मरण कर जल्दी से कनात उठा, अन्दर घुस कर, बोधिसत्त्व को बिछौने पर आसन मारे बैठे देखा। उस चमत्कार को देख उन्होंने जाकर राजा से कहा—देव ! कुमार इस प्रकार बैठा है। अन्य वृक्षों की छाया ढल गई है, लेकिन जामुन के वृक्ष की छाया गोलाकार ही खड़ी है [illegible]
[illegible]

२. गौतम का चरित

(१) यौवन प्रवेश

क्रमशः बोधिसत्त्व सोलह वर्ष के हुए। राजा ने बोधिसत्त्व के लिए, तीनों ऋतुओं के लायक तीन महल बनवा दिये। उनमें एक नौ तला, दूसरा सात तला, तीसरा पाँच तला था। चालीस हजार नाटक-करने वाली स्त्रियों को नियुक्त किया। बोधिसत्त्व अप्सराओं के समुदाय से घिरे देवताओं की भाँति, अलङ्कृत नटियों से परिवृत, स्त्रियों द्वारा बजाये गये वाद्यों से सेवित, महा-सम्पत्ति को उपभोग करते हुए, ऋतुओं के क्रम से, उतने (ऋतुओं के अनुकूल) प्रसादों में विहरते थे। राहुल-माता देवी इनकी अग्रमहिषी (=पटरानी) थीं।

वह इस प्रकार महा-सम्पत्ति का उपभोग करते रहते थे। उसी समय एक दिन बोधिसत्त्व की ज्ञाति-बिरादरी में ऐसी बात चली—"सिद्धार्थ-क्रीडा में ही रत रहता है। किसी कला को नहीं सीखता, युद्ध आने पर क्या करेगा?" राजा ने बोधिसत्त्व को बुला कर कहा—"तात! तेरे सगे सम्बन्धी कहते हैं कि सिद्धार्थ किसी कला को न सीख कर सिर्फ खेलों में ही लिप्त रहता है। तुम इस विषय में क्या उचित समझते हो?"

"देव! मुझे शिल्प सीखने की नहीं है। नगर में मेरा शिल्प देखने के लिए ढँढोरा पिटवा दें कि आज से सातवें दिन (मैं) ज्ञाति वालों को (अपना) शिल्प (कर्तव्य) दिखाऊँगा।"

राजा ने वैसा ही किया। बोधिसत्त्व ने अक्षण वेध, बाल-वेध जानने वाले धनुर्धारियों को एकत्रित कर, लोगों के मध्य में अन्य धनुर्धारियों से (भी) विशेष बारह प्रकार के शिल्प (=कला) ज्ञाति-बिरादरी वालों को दिखलाये। इन (के विस्तार) को सरभग-जातक[1] में आये (वर्णन) के अनुसार जानना चाहिए। तब बोधिसत्त्व के सगे सम्बन्धियों की शंका दूर हुई।

(२) जरा, व्याधि, मृत्यु और संन्यास-दर्शन

एक दिन बोधिसत्त्व ने बगीचा देखने की इच्छा से सारथी को बुला कर

---

[1] सरभग जातक (१२ २)

रथ जोतने को कहा। उसने 'अच्छा' कह महार्घ उत्तम रथ को सब अलङ्कारों से अलंकृत कर, कमल-पत्र-सदृश चार मङ्गल सिन्धु-देशीय (घोड़ों) को जोत, बोधिसत्त्व को सूचना दी। बोधिसत्व देव-विमान-सदृश रथ पर चढ़ कर बगीचे की ओर चले। देवताओं ने (सोचा), सिद्धार्थ-कुमार के बुद्धत्व प्राप्त करने का समय समीप है, (हम) इन्हें पूर्व-लक्षण दिखायें। (सो उन्होंने) एक देव-पुत्र को जरा से जर्जरित, टूटे-दाँत, पक्के केश, टेढ़े-झुके शरीर, हाथ में लकड़ी लिये, काँपता हुआ (करके) दिखलाया। उसे (केवल) बोधिसत्व और सारथी ही देखते थे। तब बोधिसत्व ने महापदानसुत्त[1] में आये (वर्णन) अनुसार सारथी से पूछा—"सौम्य, यह कौन पुरुष है ! इसके केश भी औरों के समान नहीं हैं।" (और) सारथी का उत्तर पा, (वे) अहो ! धिक्कार है जन्म को, जहाँ जन्म-लेने-वाले को (ऐसा) बुढ़ापा हो, (सोचते हुए) उदास हो, वहाँ से लौट कर महल में चले गये। राजा ने पूछा—'मेरा पुत्र जल्दी क्यों लौट आया ?" "देव ! बूढ़े आदमी को देख कर।" (भविष्यद्वक्ताओं ने) बूढ़े आदमी को देख कर प्रव्रजित होगा कहा था (सोच) राजा ने 'इसलिए, मेरा नाश मत करो। पुत्र के लिए शीघ्र ही नृत्य तैयार करो। भोग भोगते हुए प्रव्रज्या का ख्याल न आवेगा' कह, पहरा और भी बढ़ा कर चारों दिशाओं में आधे योजन तक का करवा दिया।

फिर एक दिन बोधिसत्व उसी प्रकार बगीचे जाते हुए, देवताओं द्वारा निर्मित रोगी पुरुष को देख, पहले की भाँति पूछ, शोकाकुल हृदय से महल में लौट आये। राजा ने भी पूछ कर, पहले की भाँति खिन्न चित्त हो, पहरे को फिर बढ़ा कर चारों ओर पौन योजन तक का कर दिया।

फिर एक दिन बोधिसत्त्व उसी प्रकार उद्यान जाते हुए, देवताओं द्वारा निर्मित मृत-पुरुष को देख, पहले की भाँति पूछ, उदास हो, फिर महल में लौट आये। राजा ने भी पूछ कर पहले की भाँति खिन्न चित्त हो, पहरे को फिर बढ़ा कर चारों ओर एक योजन तक का कर दिया।

फिर एक दिन उद्यान जाते हुए बोधिसत्व ने देवताओं द्वारा निर्मित

---

[1] देखो दीघ-निकाय।

दुशाले बहुत, इसकी शंका न होनी चाहिए (क्योंकि) उनमें सब से बड़े दुशाले (या वकन ही) श्यामा-लता के फूल के बराबर था, (और) दूसरे तो कुतुम्बुक पुष्प के ही बराबर थे। बोधिसत्व का सिर किंजल्क-युक्त कुय्यक फूल के समान था। उनके सब आभूषणों से आभूषित हो, सब (गीत=) तालज्ञ ब्राह्मणों के अपनी अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन कर लेने पर, 'जय हो' आदि वचनों से, तथा सूतमागधों के नाना प्रकार के मङ्गल वचनों तथा स्तुति-घोषों से सत्कृत हो, (बोधिसत्व) सर्वालङ्कार-विभूषित उत्तम रथ पर आरूढ़ हुए।

उसी समय 'राहुल-माता ने पुत्र प्रसव किया' सुन महाराज शुद्धोदन ने आज्ञा की कि मेरे पुत्र को यह शुभ-समाचार सुनाओ। बोधिसत्व ने उसे सुन कहा "राहु पैदा हुआ, बन्धन पैदा हुआ।" राजा ने 'मेरे पुत्र ने क्या कहा', पूछ, उसे सुन, कहा—"अब से मेरे पोते का नाम राहुल-कुमार हो।"

बोधिसत्व भी श्रेष्ठ रथ पर चढ़, बड़े भारी यश, अति मनोरम शोभा तथा सौभाग्य के साथ नगर में प्रविष्ट हुए। उस समय, प्रासाद के ऊपर बैठी, कृशा-गौतमी नामक क्षत्रिय-कन्या ने नगर की परिक्रमा करते हुए बोधिसत्व की रूप शोभा को देख कर, बहुत ही प्रसन्नता तथा हर्ष से यह 'उदान' कहा :—

परम शान्त है वह माता, परम शान्त है वह पिता, और परम शान्त है वह नारी, जिसका इस प्रकार का पति हो।

बोधिसत्व ने यह सुन कर सोचा—यह कहती है, कि इस प्रकार के रूप के देखने वाली माता का हृदय परम शान्त होता है, पिता का हृदय परम शान्त होता है, पत्नी का हृदय परम शान्त होता है। किस के शान्त होने पर हृदय परम शान्त होता है? राग आदि क्लेशों (मलों) से विरक्त होते हुए, (बोधिसत्व) को यह (विचार) हुआ कि राग-अग्नि के शान्त होने पर परम-शान्ति होती है। द्वेष-अग्नि तथा मोह-अग्नि के शान्त होने पर परम-शान्ति होती है। अभिमान मिथ्या-विचार (दृष्टि) आदि सभी क्लेशों के उपशमन होने पर परम-शान्ति होती है। इस ने मुझे सुन्दर-वचन सुनाया है। मैं निर्वाण [illegible]

[illegible]

की खोज में लगना चाहिए।' 'यह इसकी गुरु-दक्षिणा हो'—कह उन्होंने अपने गले से एक लाख का मोती का हार उतार कृशा गौतमी के पास भेज दिया। "सिद्धार्थ-कुमार ने मेरे प्रेम में फँस कर भेंट भेजी है" सोच वह बड़ी प्रसन्न हुई।

(४) गृह-त्याग

बोधिसत्त्व भी बड़े श्री-सौभाग्य के साथ अपने महल में जा, सुन्दर शय्या पर लेट रहे। उसी समय सभी अलङ्कारों से विभूषित, नृत्य गीत आदि में दक्ष देव-कन्या समान परम सुन्दरी स्त्रियों ने अनेक प्रकार के वाद्यों को लेकर, (कुमार को) घेर कर, खुश करने के लिए नृत्य, गीत और वाद्य आरम्भ किया। बोधिसत्त्व (रागादि) मलों से विरक्त-चित्त होने के कारण, नृत्य आदि में रत न हो, थोड़ी ही देर में सो गये। उन स्त्रियों ने भी सोचा—"जिसके लिए हम नृत्य आदि करती हैं, वह ही सो गया। अब (हम) काहे को तकलीफ़ करें।" इसलिए वह भी अपने अपने बाजों को साथ लिये ही सो गईं। उस समय सुगन्धित-तैल-पूर्ण प्रदीप जल रहे थे। बोधिसत्त्व जाग कर, पलंग पर आसन मार बैठ गये। उन्होंने वाद्य-भाण्डों को साथ ही लिये सोई उन स्त्रियों को देखा। (उनमें) किन्हीं के मुँह से कफ और लार बह कर, उनका शरीर भीग गया था, कोई दाँत कटकटा रही थीं, कोई खाँस रही थीं, कोई बर्रा रही थीं, किन्हीं के मुँह खुले हुए थे, किन्हीं के वस्त्र हटे होने से अति घृणोत्पादक गुह्य स्थान दिखलाई दे रहे थे। उन (स्त्रियों) के इन विकारों को देख कर (वे) और भी अधिक दृढ़ता-पूर्वक काम-भोगों से विरक्त हो गये। उन्हें वह सु-अलङ्कृत इन्द्र-भवन सदृश महाभवन सड़ती हुई नाना प्रकार की लाशों से पूर्ण कच्चे श्मशान की भाँति मालूम हुआ। तीनों ही भव (=संसार) जलते हुए घर की तरह दिखलाई पड़े। हा! कष्ट!! हा! शोक!! ऐसी आह निकल पड़ी। उस समय उनका चित्त प्रव्रज्या के लिए, अत्यन्त आतुर हो गया। 'आज ही मुझे महाभिनिष्क्रमण (गृह-त्याग) करना चाहिए' (इस प्रकार निश्चय कर) पलंग पर से उतर, द्वार के पास जा पूछा— कौन है?

ड्योढ़ी में सिर रख कर सोए हुए छन्न ने कहा— आर्य पुत्र! मैं छन्दक हूँ।

मैं आज महाभिनिष्क्रमण करना चाहता हूँ, मेरे लिए एक घोड़ा तैयार करो।

जाता। इसलिए देवताओं ने अपने प्रताप से, ऐसा किया, जिससे कोई उस शब्द को न सुने। उन्होंने हिनहिनाने के शब्द को रोक दिया (और) जहाँ जहाँ (घोड़ा) पैर रखता था, वहाँ वहाँ हथेलियाँ रखीं। बोधिसत्व श्रेष्ठ अश्व की पीठ पर सवार हो छन्दक को उसकी पूँछ पकड़वा, आधी रात के समय महा-द्वार के समीप पहुँचे। उस समय राजा ने यह सोच, कि कहीं बोधिसत्व जिस किसी समय नगर-द्वार को खोल कर, (बाहिर) न निकल जायें, दर्वाजे के दोनों कपाटों में से प्रत्येक को एक हजार मनुष्यों द्वारा खुलने लायक बनवाया था। बोधिसत्व महाबल-सम्पन्न हाथी की गिनती से दस अरब हाथी के बल को धारण करते थे; और पुरुष के हिसाब से एक खरब पुरुषों का बल। उन्होंने सोचा—"यदि द्वार न खुला तो आज मैं कन्थक की पीठ पर बैठे, उसकी पूँछ पकड़ कर लटके छन्दक के साथ ही, घोड़े को जाँघ से दबा कर अठारह हाथ ऊँचे प्राकार को कूद कर पार करूँगा।" छन्दक ने भी सोचा, "यदि द्वार न खुला, तो मैं आर्यपुत्र को कन्धे पर बैठा कन्थक को दाहिने हाथ से बगल में दबा प्राकार फाँद जाऊँगा।" कन्थक ने भी सोचा— "यदि द्वार नहीं खुला, तो मैं अपने स्वामी के पीठ पर वैसे ही बैठे, पूँछ पकड़ कर लटकते छन्दक के साथ ही, प्राकार को लांघ जाऊँगा।" यदि द्वार न खुलता, तो तीनों में से प्रत्येक ऊपर सोचे अनुसार करता। लेकिन द्वार में रहने वाले देवता ने द्वार खोल दिया।

उस समय बोधिसत्व को (वापिस) लौटाने की इच्छा से, आकर, आकाश में खड़े हो मार[1] ने कहा—"मार्ष (मित्र)! मत निकलो। आज से सातवें दिन तुम्हारे लिए चक्र-रत्न प्रगट होगा। दो हजार छोटे द्वीपों सहित चारों महाद्वीपों पर राज्य करोगे। लौटो, मार्ष!"

"तुम कौन हो?"

"मैं वश वर्ती हूँ।"

"मार! मैं भी जानता हूँ कि मेरे लिए चक्र-रत्न प्रगट होगा। लेकिन मुझे राज्य से काम नहीं। मैं तो साहस्रिक लोक-धातुओं को निनादित कर बुद्ध बनूँगा।"

---

[1] कामदेव या शैतान।

"आज से जब कभी तुम्हारे मन में कामना सम्बन्धी वितर्क, द्रोह सम्बन्धी वितर्क, या हिंसा-सम्बन्धी वितर्क उत्पन्न होगा, तब मैं तुम्हें समझूँगा।" कह, मार मौका ताकते हुए, छाया की भाँति ज़रा भी अलग न होते हुए, पीछा करने लगा।

बोधिसत्त्व हाथ में आये चक्रवर्ती-राज्य (के प्रति) अपेक्षा रहित हो, उसे थूक की भाँति छोड़ कर, आषाढ़ की पूर्णिमा को उत्तराषाढ़ नक्षत्र में नगर से निकले। (लेकिन) नगर से निकल कर, (उन्हें) फिर नगर देखने की इच्छा उत्पन्न हुई। चित्त में ऐसा विचार होते ही महापृथ्वी कुम्हार के चक्के की भाँति काँपी, मानों वह रही थी कि 'महापुरुष! तूने लौट कर देखने का काम (कभी) नहीं किया।' बोधिसत्त्व जहाँ से मुँह फेर कर नगर को देखा था, उस भू-प्रदेश में "कन्थक-निवर्तन-चैत्य" का चिन्ह बना वह गन्तव्य-मार्ग की ओर कन्थक का मुँह फेर, अत्यन्त सत्कार और महान् श्री-सौभाग्य के साथ चले। उस समय देवताओं ने उनके सम्मुख साठ हज़ार, पीछे साठ हज़ार, दाहिनी तरफ़ साठ हज़ार और बाईं तरफ़ भी साठ हज़ार मशाल धारण किये। अन्य देवताओं ने चक्रवालों के द्वार-समूह पर अपरिमित मशालों को धारण किया। और (भी) दूसरे देवताओं तथा नाग, सुपर्ण (=गरुड़) आदि (के) दिव्य गन्ध, माला, चूर्ण, धूप से पूजा करते हुए, पारिजात-पुष्प, मन्दार-पुष्प, (की वृष्टि से) घने मेघों की वृष्टि के समय (बरसती) धाराओं की भाँति, आकाश आच्छादित हो गया। दिव्य संगीत हो रहे थे। चारों ओर आठ प्रकार के, साठ प्रकार के अड़सठ लाख बाजे बज रहे थे। समुद्र के उदर में मेघ-गर्जनकाल की भाँति, युगन्धर की कुक्षि में सागर-निर्घोष काल की भाँति (शब्द) हो रहा था। इस श्री और सौभाग्य के साथ जाते हुए, बोधिसत्त्व एक ही रात में तीन राज्यों[1] को पार कर, तीस योजन की दूरी पर अनोमा[2] नामक नदी के तट पर पहुँचे।

क्या अश्व तीन योजन से अधिक न जा सका? नहीं, न जा सका! वह

---

[1] शाक्य, कोलिय और राम-ग्राम।

[2] आमी नदी, जिला गोरखपुर।

(अश्व) एक घनवाल के अन्दर के घेरे को, पृथ्वी पर पड़े चक्के के घेरे तरह, मर्दन करते हुए, कोने कोने पर घूम कर, प्रात काल के भोजन के स मे पूर्व लौट कर अपने लिए तैयार किये गये भोजन को खा सकता था। लेकि उस समय मार्ग आकाश में स्थित देव नाग तथा गरुड आदि द्वारा बरसाये गन्धमाला आदि से जाँघ तक ढका हुआ था। शरीर निकालते निकालते, ग माला के जाल को हटाते हटाते बहुत देर हो गई। इसलिए केवल ठीक यो ही पहुँच सका।

३. गौतम का संन्यास

(१) भिक्षु वेश में

तब बोधिसत्व ने नदी के किनारे खड़े हो छन्दक से पूछा—

"इस नदी का क्या नाम है ?"

"देव! अनोमा है।"

"हमारी भी प्रव्रज्या अनोमा[1] होगी", (सोच) एड़ी से रगड़ कर घोड़े व इशारा किया। घोड़ा छलांग मार कर, आठ ऋषभ[2] चौड़ी नदी के दूसरे त पर जा खड़ा हुआ। बोधिसत्व ने घोड़े की पीठ से उतर, रुपहले रेशम जै (नर्म) बालुका-तट पर खड़े हो, छन्दक को कहा—"सौम्य! छन्दक! मेरे आभूषणों तथा कन्थक को लेकर जा, मैं प्रव्रजित होऊँगा।"

"देव! मैं भी प्रव्रजित होऊँगा।"

"तुझे प्रव्रज्या नहीं मिल सकती, लौट जा" तीन बार कह कर, बोधिसत्व उसे आभरण और कन्थक सौंप सोचने लगे —

"यह मेरे केश श्रमण-भाव (=सन्यासीपन) के योग्य नहीं हैं, और बोधि सत्व के केश काटने लायक दूसरा कोई नहीं है, इसलिए अपने ही आप खड्ग से इन्हें काटूं।"

(यह सोच) दाहिने हाथ में तलवार ले, बायें हाथ से मौर सहित जूड़े को काट डाला। केश सिर्फ़ दो अंगुल के होकर, दाहिनी ओर से घूम, सिर में

---

[1] अनोमा=अन्+अवम्=छोटी नहीं। [2] ...

विरल गये। फिर जिन्दगी भर, उनका वही परिमाण रहा। मूँछ(-दाढ़ी) भी उनके अनुसार ही हो गई। फिर सिर-दाढ़ी मुँड़ाने की जरूरत नहीं रही। बोधिसत्व ने मौर-सहित जूड़े को ले, आकाश में फेंक दिया और (सोचा) यदि मैं बुद्ध होऊँ, तो यह आकाश में ठहरे, नहीं तो, भूमि पर गिर पड़े।" वह जूड़ा-मणि वेष्टन योजन भर (ऊपर) जाकर, आकाश में ठहरा। शक्र देवराज ने दिव्य-दृष्टि से देख, (उसे) उपयुक्त रत्नमय करण्ड में ग्रहण कर त्रयस्त्रिंश (स्वर्ग) लोक में चूड़ामणि चैत्य की स्थापना की।

बोधिसत्व (महा-पुद्गल) ने सुगन्धयुक्त मौर को काट कर, आकाश में, फेंक दिया। देवेन्द्र (=सहस्राक्ष) ने, उसे सुवर्ण-करण्ड में ग्रहण कर शिरोधार्य किया।

फिर बोधिसत्व ने सोचा—यह काशी के बने वस्त्र भिक्षु के योग्य नहीं हैं। तब कस्सप बुद्ध के समय के इनके पुराने मित्र घटिकार महाब्रह्मा ने एक बुद्धान्तर[1] बीतने पर भी जरा को अप्राप्त मित्र-भाव के कारण सोचा—आज मेरे मित्र ने महाभिनिष्क्रमण किया है। मैं उसके लिए भिक्षु की आवश्यक-तायें (=श्रमण परिष्कार) ले चलूँगा।

"योग में युक्त भिक्षु के लिए, तीन चीवर, पात्र, उस्तरा, सुई, काय-बन्धन और पानी छानने का वस्त्र—यह आठ (चीजें) होती हैं।"

(उसने) इन आठ परिष्कारों को लाकर बोधिसत्व को दिया। बोधिसत्व ने अर्हत्-ध्वजा को धारण कर (अर्थात्) श्रेष्ठ प्रव्रज्या-वेष को ग्रहण कर छन्दक को प्रेरित किया।

'छन्दक! मेरी बात से माता पिता को आरोग्य कहना।' छन्दक बोधिसत्व की वन्दना तथा प्रदक्षिणा कर चल दिया। लेकिन कन्थक ने बोधिसत्व की छन्दक के साथ हुई बात को सुना। "अब मुझे, फिर स्वामी का दर्शन नहीं होगा" सोच, आँख से ओझल होने के शोक को न सह सकने के कारण, वह कलेजा फट कर मर गया; और त्रयस्त्रिंश-भवन में कन्थक नामक देवपुत्र हो उत्पन्न हुआ। छन्दक को पहले एक ही शोक था; लेकिन कन्थक की मृत्यु से (अब) दूसरे शोक से (भी) पीड़ित हो (वह) रोता नगर को चला।

[1] दो बुद्धों के बीच का समय।

(२) राजगृह में भिक्षाटन

बोधिसत्त्व भी प्रव्रजित हो उसी प्रदेश में, अनूपिया नामक कस्बे के आमों के बाग में, एक सप्ताह प्रव्रज्या सुख में बिता, एक ही दिन में तीस योजन मार्ग पैदल चल कर, राजगृह में प्रविष्ट हुए। वहाँ प्रविष्ट हो भिक्षा माँगने के लिए निकले। जैसे धनपाल राजगृह में प्रविष्ट हुआ हो, जैसे असुरेन्द्र देवनगर में प्रविष्ट हुआ हो, वैसे ही बोधिसत्त्व के रूप को देख कर सारा नगर संक्षुब्ध हो गया। राज-पुरुषों ने जाकर राजा से कहा—"देव! इस रूप का एक पुरुष नगर में मधूकरी माँग रहा है। वह देव है या मनुष्य, नाग है या गरुड, कौन है हम नहीं जानते?" राजा ने महल के ऊपर खड़े हो महापुरुष को देख आश्चर्यान्वित हो, (अपने) आदमियों को आज्ञा दी—'जाओ! देखो! यदि अमनुष्य होगा, तो नगर से निकल कर अन्तर्धान हो जायगा। यदि देवता होगा, तो आकाश से चला जायगा, यदि नाग होगा तो पृथ्वी में डुबकी लगा कर चला जायगा। यदि मनुष्य होगा, तो जो भिक्षा मिली है, उसे खायेगा।" महापुरुष ने मिश्रित भोजन को संग्रह कर, 'इतना मेरे लिए पर्याप्त होगा' जान, प्रविष्ट हुए द्वार से ही (बाहर) निकल, पाण्डव-पर्वत[1] की छाया में पूरब-मुँह बैठ, भोजन करना आरम्भ किया। उस समय उनके आँत उलट कर मुँह से निकलने जैसे मालूम हुए। तब इस जन्म में, इससे पूर्व ऐसा भोजन आँख से भी न देखा होने से, उस प्रतिकूल भोजन से दुःखित हुए अपने आपको, अपने आप ही यों समझाया—

"सिद्धार्थ! तू अन्न-पान सुलभ कुल में तीन वर्ष के (पुराने) सुगन्धित चावल का भोजन किये जाने वाले स्थान में पैदा होकर भी, गुदरीधारी (भिक्षु) को देख कर (सोचता था)—कि मैं भी कब इसी तरह (भिक्षु) बन कर भिक्षा माँग भोजन करूँगा? क्या वह भी समय होगा?—और यही सोच घर से निकला था। अब यह क्या कर रहा है?" इस प्रकार अपने ही अपने आपको समझा कर निर्विकार हो भोजन किया। राज-पुरुषों ने उस वृत्तान्त को देख, जाकर राजा से कहा। राजा ने दूत की बात सुन, नगर से शीघ्र निकल, बोधि-

---

[1] वर्तमान रत्नगिरि या रत्नकूट।

एक बार श्वास-रहित ध्यान करते समय, काय क्लेश से बहुत ही पीड़ित (एवं) बेहोश हो टहलने के चबूतरे (=चङ्कमण-भूमि) पर गिर पड़े। तब कुछ देवताओं ने कहा, 'श्रमण गौतम मर गये।' कुछ ने कहा 'अर्हत-व्यक्ति का विहरण (=चर्या) ऐसा ही होता है।" तब जिन (देवताओं) का विचार था कि (श्रमण गौतम) मर गये, उन्होंने जाकर राजा शुद्धोदन से कहा—"तुम्हारा पुत्र मर गया।"

मेरे पुत्र ने 'बुद्ध' होने के पश्चात् शरीर छोड़ा अथवा 'बुद्ध' होने से पूर्व ही शरीर छोड़ दिया ?"

"'बुद्ध' न हो सका। प्रयत्न-भूमि में, (प्रयत्न करते हुए ही) गिर कर मर गया।"

यह सुन कर राजा ने (इस बात का) विरोध किया—"मैं इसमें विश्वास नहीं करता। 'बुद्ध' हुए बिना मेरे पुत्र की मृत्यु होने वाली नहीं।"

राजा ने किस लिए विश्वास नहीं किया ? तपस्वी काल देवल के वन्दना करने के दिन तथा जम्बू-वृक्ष के नीचे अलौकिक घटनाएँ देखे रहने के कारण। होश में आकर, बोधिसत्त्व के उठ बैठने पर, उन देवताओं ने फिर महाराज शुद्धोदन को जाकर कहा—"महाराज ! तुम्हारा पुत्र सकुशल है।" राजा ने कहा—"हाँ ! मैं अपने पुत्र के जीवित रहने की बात जानता हूँ।" महासत्त्व की छः वर्ष की दुष्कर तपस्या आकाश में गाँठ बाँधने के समान (निष्फल) हुई। तब उन्होंने सोचा—"यह दुष्कर तपस्या बुद्धत्व-प्राप्ति का मार्ग नहीं है।" (इसलिए) स्थूल आहार ग्रहण करने के लिए ग्रामों तथा नगरों में भिक्षाटन कर, भोजन करना आरम्भ कर दिया। (शरीर के) बत्तीस महापुरुष-लक्षण (फिर) स्वाभाविक अवस्था में आ गये। शरीर फिर सुवर्ण-वर्ण हो गया। पंच वर्गीय भिक्षुओं ने सोचा—छः वर्ष तक दुष्कर तपस्या करके भी यह सर्वज्ञता को प्राप्त नहीं कर सका, अब ग्रामादि में भिक्षा माँग कर स्थूल आहार ग्रहण करता हुआ तो यह क्या ही कर सकेगा ? यह लालची है। तपस्या के मार्ग से भ्रष्ट है। जैसे शिर से नहाने की इच्छा रखने वाले के लिए ओस-बूँद की ओर ताकना (निष्फल) है, वैसे ही हमारा इसकी ओर ताकना (=आशा रखना) है। इससे हमारा क्या मतलब (मिलेगा) ? ऐसा सोच महापुरुष

को छोड़, अपने अपने पात्र चीवर ले, अठारह योजन चल कर ऋषिपतन[1] पहुँचे।

(४) सुजाता की खीर

उस समय उरुवेला (प्रदेश) के सेनानी नामक कस्बे में, सेनानी कुटुम्बी के घर में उत्पन्न सुजाता नाम की कन्या ने तरुणी (वयस्-प्राप्त) होने पर, एक बरगद के वृक्ष से मन्नत मान रक्खी थी (=प्रार्थना की थी)— यदि समान जाति के कुल-घर में जा, पहले ही गर्भ में पुत्र लाभ करूँगी, तो प्रति वर्ष एक लाख के खर्च से तेरी पूजा (=बलि कर्म) करूँगी। उसकी यह प्रार्थना पूरी हुई। महासत्त्व (=बोधिसत्त्व) की दुष्कर तपस्या का छठा वर्ष पूरा होने पर, वैशाख पूर्णिमा के दिन बलि-कर्म करने की इच्छा से, उसने पहले हजार गायों को यष्टिमधु (=जेठी मधु) के वन में चरवा कर, उनका दूध दूसरी पाँच सौ गायों को पिलवाया। (फिर) उनका दूध ढाई सौ गायों को; इस तरह (एक का दूध दूसरे को पिलाते) १६ गायों का दूध आठ गायों को पिलवाया। इस प्रकार दूध का गाढ़ापन, मधुरता, और ओज (बढ़ाने के लिए) उसने क्षीर-परिवर्तन किया। उसने वैशाख-पूर्णिमा के प्रातः ही बलि-कर्म करने की इच्छा से भिन-सार को उठ कर, उन आठ गायों को दुहवाया। बछड़ों ने गौवों के थनों को छेड़ नहीं पाया। थनों के पास नवीन बरतन के लाते ही, क्षीर-धारा अपने आप ही निकलने लगी। उस आश्चर्य को देख, सुजाता ने, अपने ही हाथ से दूध को लेकर, नवीन बरतन में डाल, अपने ही हाथ से आग जला (खीर) पकाना आरम्भ किया। उस खीर के पकते समय, (उसमें) बड़े बड़े बुलबुले उठ कर दक्षिण की ओर (ही) चक्कर करते थे। एक बुलबुला भी बाहर नहीं गिरता था। चूल्हे से जरा सा भी धुआँ नहीं उठता था। उस समय चारों लोकपालों ने आकर चूल्हे पर पहरा देना शुरू किया। महाब्रह्मा ने छत्र धारण किया। शक्र (=इन्द्र) ने ईंधन ला ला आग लगाई। देवताओं ने दो हजार द्वीप परि-वारों और चारों महाद्वीपों के देवताओं और मनुष्यों के भोज्य ओज, अपने देव-प्रताप से, डण्डे पर लगे हुए मधु-छत्ते को निचोड़ कर मधु ग्रहण करने की तरह,

---

[1] सारनाथ (ह. प्र. प. ६४), ज़ि॰ बनारस।

लिए रखा मिट्टी का पात्र (=भिक्षा पात्र) इतने समय तक बराबर बोधिसत्त्व के पास रहा, लेकिन इस समय वह अदृश्य हो गया। बोधिसत्त्व ने पात्र को न देख कर, दाहिने हाथ को फैला जल ग्रहण किया। सुजाता ने पात्रसहित खीर को महापुरुष के हाथ में अर्पण किया। महापुरुष ने सुजाता की ओर देखा। उसने संकेत से जान कर—"आर्य! मैंने तुम्हें यह प्रदान किया, इसे ग्रहण कर यथारुचि पधारिये" कह, वन्दना कर (फिर) 'जैसा मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ, वैसे ही तुम्हारा भी पूरा हो" कह, लाख (मुद्रा) के मूल्य के उस सुवर्ण थाल को लिये पुराने पत्तल की भाँति जरा भी ख्याल न कर चल दी।

बोधिसत्त्व न्यग्रोध के नीचे बैठे हुए स्थान से उठ, वृक्ष की प्रदक्षिणा कर, थाल को ले, नेरञ्जरा के तीर पर गये। वहाँ लाखों बोधिसत्त्वों के बुद्धत्व-प्राप्ति के दिन, उतर कर नहाने योग्य, सुप्रतिष्ठित तीर्थ है; वहाँ किनारे पर थाल को रख कर, उतर नहा कर अनेक लाख बुद्धों का पहरावा अर्हत्-ध्वजा (=चीवर) पहन कर, पूर्व दिशा की ओर मुँह कर बैठ, एक (ही) बीज वाले ताड़-फल के प्रमाण के, उनचास कवल (पिण्ड) करके, उस समस्त निर्जल मधु-पायस का भोजन किया। वही आहार बुद्धत्व-प्राप्ति होने पर, बोधिमण्ड में सप्ताह-सप्ताह कर बैठे रहने के समय, उनचास दिन का आहार हुआ। इतने समय तक न दूसरा आहार किया, न नहाया, न मुँह धोया, न (अन्य) शारीरिक कृत्य किए। (इन सप्ताहों को) ध्यान-सुख, मार्ग (ज्ञान) सुख, फल-सुख (=निर्वाण-सुख) सुख में ही बिताया। हाँ, उस खीर को खा, सोने के थाल को ले, 'यदि मैं बुद्ध हो सकूँ, तो यह थाल पानी के स्रोत की उलटा जावे, यदि न हो सकूँ तो नीचे की ओर जावे' कह कर, (नदी में) फेंक दिया। वह थाल धार को छेद कर, नदी के बीच जा, बीचो बीच ही वेगवान् घोड़े की तरह, अस्सी हाथ (की दूरी) तक स्रोत के उलटा चला और एक भँवर में डूब कर, काल नाग राज के भवन में जा, तीनों बुद्धों के उपभोग किये थालों से टकरा कर 'किरि-किरि' शब्द करता हुआ, उन सब थालों के नीचे जाकर बैठ गया। काल-नाग-राजा उस शब्द को सुन कर, "कल (ही) एक बुद्ध उत्पन्न हुआ था, आज फिर एक बुद्ध उत्पन्न हुआ है" (सोच) अनेक सौ श्लोकों से स्तुति करता रहा। [illegible] (काल नाग) [illegible] [illegible]

बोधिसत्त्व भी नदी तीर के सुपुष्पित शाल वन में दिन बिता कर, शाम को डंठल से फूलों के गिरने के समय, देवताओं द्वारा अलंकृत, आठ ऋषभ चौड़े मार्ग से, सिंह-गति से बोधि-वृक्ष के पास गए। नाग-यक्ष, गरुड़ आदि ने दिव्य गन्ध तथा पुष्पों से पूजा की। दिव्य संगीत का गायन किया। दस सहस्र लोक सर्वत्र सुगन्धित किये। एक समान माला (अलङ्कृत) एक समान 'साधु साधु' के शब्द से गूँजित हुई। उस समय, सामने से घास लिये आते हुए सोत्थिय नामक घास काटने वाले ने, महापुरुष के आकार को देख कर, उन्हें आठ मुट्ठी तृण दिया। बोधिसत्त्व तृण ले, बोधिमण्ड पर चढ़ दक्षिण-दिशा में उत्तर की ओर मुँह करके खड़े हुए। उस समय दक्षिण चक्रवाल दब कर, मानो अवीचि (नरक) तक नीचे चला गया, उत्तर-चक्रवाल ऊपर उठ कर, मानों भवाग्र तक ऊपर चला गया। "मालूम होता है, यहाँ सम्बुद्धत्व नहीं प्राप्त होगा" सोच, बोधिसत्त्व प्रदक्षिणा करते हुए, पश्चिम दिशा की ओर जा पूर्व की ओर मुँह करके खड़े हुए। तब पश्चिम चक्रवाल दब कर, मानो अवीचि (नरक) तक नीचे चला गया। पूर्व-चक्रवाल ऊपर उठ कर, मानो भवाग्र तक ऊपर चला गया। वह जहाँ जहाँ जाकर ठहरे, वहाँ वहाँ नेमियों को लम्बे करके, नाभी के सहारे लिटाये हुए, शकट के पहिए के सदृश महापृथ्वी ऊँची नीची हो उठी। "मालूम होता है, यहाँ भी बोधि (=ज्ञान) की प्राप्ति नहीं होगी" सोच, बोधिसत्त्व प्रदक्षिणा करते उत्तर दिशा की ओर जा दक्षिण की ओर मुँह कर खड़े हुए। तब उत्तर का चक्रवाल दब कर, मानो अवीचि (नरक) तक नीचे चला गया, दक्षिण चक्रवाल ऊपर उठ कर, मानो भवाग्र (लोक) तक ऊपर उठ गया। "मालूम होता है, यह भी बुद्धत्व-प्राप्ति का स्थान न होगा" सोच, बोधिसत्त्व प्रदक्षिणा करते पूर्व दिशा की ओर जा, पश्चिम की ओर मुँह करके खड़े हुए। पूर्व-दिशा, सभी बुद्धों के बैठने का स्थान है इसलिए न हिलती है, न काँपती है। "यह सभी बुद्धों से अपरित्यक्त स्थान है, (यही) दुःख-पञ्जर के विध्वंसन का स्थान है"—जान, (बोधिसत्त्व ने) उन तृणों के छोरों को पकड़ कर हिलाया। उसी समय चौदह हाथ का आसन बन गया, और वह तृण ऐसे (सुन्दर) रूप से बैठ गये, जैसे (सुन्दर) रूप से कोई चतुर चित्रकार अथवा शिल्पी (चित्र)-कार चित्रित नहीं कर सकता। बोधिसत्त्व ने बोधिवृक्ष को भी पीठ की ओर करके, दृढ़ चित्त हो निश्चय किया—"चाहे मेरा चमड़ा, नसें, हड्डी ही क्यों न

पीछे से चल कर करें।" महापुरुष ने भी सब देवताओं के भाग जाने के कारण तीनों दिशाओं को खाली देखा। फिर उत्तर-दिशा की ओर से मार-सेना को आगे बढ़ते देख—"यह इतने लोग मेरे अकेले के विरुद्ध इतने प्रयत्नशील हैं। आज यहाँ माता, पिता, भाई या दूसरा कोई सम्बन्धी नहीं है। मेरी दस पारमिताएँ ही चिरकाल से परिशोधित मेरे परिजन के समान हैं। इसलिए इन पारमिताओं को ही ढाल बना कर, (इस) पारमिता-शस्त्र को ही चला कर, मुझे यह सेना-समूह विध्वंस करना होगा।" (यह सोच) दस पारमिताओं का स्मरण करते हुए बैठे रहे।

तब मार देव-पुत्र ने सिद्धार्थ को भगाने की इच्छा से आँधी उत्पन्न की। तत्काल (उसी क्षण) पूर्व, पश्चिम से झंझावात उठ कर, अर्ध-योजन, (योजन), दो योजन और तीन योजन तक के पर्वत-शिखरों को उखाड़ती, वृक्षों को उन्मूलन करती, चारों ओर ग्राम-नगरों को चूर्ण विचूर्ण करती आगे बढ़ी। किन्तु महापुरुष के पुण्य-तेज से उसकी प्रचण्डता बोधिसत्त्व के पास पहुँचते पहुँचते (इतनी निर्बल हो गई कि) उनके चीवर का कोना भी न हिला सकी। तब पानी में डुबाने की इच्छा से उसने भयंकर महा-वर्षा शुरू की। उसके दिव्य बल से ऊपर सौ (फिर) हजार तहों वाले बादल बरसने लगे। वर्षा की धाराओं के जोर से पृथ्वी में छेद पड़ गये। वन-वृक्षों की ऊपरी चोटियों तक बाढ़ आ गई, तो भी, (वह) महासत्त्व के चीवरों को ओस की बूँदों के समान भी न भिगो सका। उसके बाद पत्थरों की वर्षा की। बड़े बड़े धुआँ-धार जलते दह-कते पर्वत-शिखर आकाश-मार्ग से आये, लेकिन बोधिसत्त्व के पास पहुँच कर दिव्य-पुष्पों के गुच्छे बन गये। उसके बाद आयुध-वर्षा आरम्भ की। एक धार, दुधार, असि (=तलवार), शक्ति, तीर आदि प्रज्वलित आयुध आकाश मार्ग से आने लगे, (लेकिन) बोधिसत्त्व के पास पहुँच कर (वह भी) दिव्य-पुष्प बन गये। उसके बाद अङ्गारों की वर्षा की। लाल लाल रंग के अङ्गार आकाश से बरसने लगे, (लेकिन) बोधिसत्त्व के पैरों पर वह दिव्य-फूल बन कर बिखर गये। उसके बाद राख की वर्षा की। अत्यन्त उष्ण अग्निचूर्ण आकाश से बरसने लगा, (लेकिन) बोधिसत्त्व के चरणों पर वह चन्दन-चूर्ण बन कर गिर पड़ा। तब रेत की वर्षा की। धुआँ-धार, प्रज्वलित, अति सूक्ष्म बालुका आकाश से बरसने लगी, (लेकिन) बोधिसत्त्व के चरणों पर वह दिव्य-

में शाखा-कमल, लताओं में लता-कमल, आकाश में लटकने वाले कमल और शिला-तल को फोड़ कर ऊपर ऊपर सात सात होकर (खिलने वाले) दण्डक-पुष्प भी (खिल) उठे।

दस सहस्र लोक धातु घुमा कर रक्खी हुई माला के सदृश या सुप्रसारित पुष्प-शय्या के सदृश हो गये थे। चक्रवालों के बीच के आठ सहस्र 'लोकान्तर' (जो) पहले सात सूर्यों के प्रकाश से भी प्रकाशित नहीं होते थे; (अब) चारों ओर प्रकाश से प्रकाशित (=एको मासा) हो रहे थे। चौरासी हजार योजन गहरा महासमुद्र मीठे जल वाला हो गया था। नदियों का बहना रुक गया। जन्मान्ध को रूप दिखाई देने लगा था। जन्म के बहरे शब्द सुनने लगे थे। जन्म के पगु पाँव से (चलने) लग गये थे। (बंदियों की) हथकड़ी, बेड़ी आदि बन्धन टूट कर गिर पड़े। इस प्रकार अनन्त प्रभा-शोभा से पूजित (हो) अनेक प्रकार की आश्चर्यकर घटनाएँ घटित हो रही थी।

तब बुद्ध ने बुद्धत्व-ज्ञान का साक्षात् कर, सभी बुद्धों द्वारा कहे गये उदान (प्रीति-वाक्य) को कहा है :—

"दुःखदायी जन्म बार बार लेना पड़ा। मैं संसार में (शरीर रूपी गृह को बनाने वाले) गृह-कारक को पाने की खोज में निष्फल भटकता रहा। लेकिन गृह-कारक! अब मैंने तुझे देख लिया। (अब) तू फिर गृह निर्माण न कर सकेगा। तेरी सब कड़ियाँ टूट गईं, गृह-शिखर बिखर गया। चित्त निर्वाण प्राप्त हो गया; तृष्णा का क्षय देख लिया।"

यह तुषित देवलोक से आरम्भ करके यहाँ बोधिमण्ड में बुद्धत्व (=सर्वज्ञता) प्राप्ति तक की बात 'अविदूरे निदान' कही जाती है।

ग. सन्तिके निदान

(१) बोधि-वृक्ष के आसपास

लेकिन 'सन्तिके निदान' (क्या है)? 'भगवान् श्रावस्ती'[1] में अनाथ

---

[1] बलरामपुर से १० मील पर वर्तमान सहेट महेट (जि० गोंडा, युक्त-प्रान्त)।

पिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे"। वैशाली[1] में महावन की कूटागार शाला में विहार करते थे।" इस प्रकार उन उन स्थानों पर विहार करते समय का वृत्तान्त उन उन स्थानों पर ही मिलता है। जो कुछ इस विषय में कहा गया है, उसे भी आरम्भ से इस प्रकार समझना चाहिए :—

उस उदान (=प्रीति वाक्य) को कह कर (वहीं) बैठे भगवान् के मन में हुआ—"मैं इस (बुद्ध) आसन के लिए चार असंख्येय एक लाख कल्प दौड़ता रहा; इसी आसन के लिए मैंने इतने समय तक, अपने अलंकृत शीश को गर्दन से काट कर दिया; सुअञ्जित आँखों और हृदय-मांस को निकाल कर प्रदान करता रहा; जालिय कुमार सदृश पुत्र, कृष्णाजिना कुमारी सदृश पुत्री माद्रीदेवी सदृश भार्या को दूसरों के दास बनने के लिए दिया। मेरा यह आसन, जय-आसन है, श्रेष्ठासन है। यहाँ (इस आसन) पर बैठे मेरे संकल्प पूरे हुए हैं। अभी मैं यहाँ से नहीं उठूँगा" (यह सोच) कई सहस्र समापत्तियों (=ध्यानों) में रत, सप्ताह भर तक वहीं बैठे रहे। इसीके बारे में कहा है—"भगवान् सप्ताह-भर तक एक ही आसन से विमुक्ति सुख का आनन्द लेते हुए बैठे रहे।"[2]

तब कुछ देवताओं के मन में ऐसा सन्देह उत्पन्न हुआ, 'सिद्धार्थ कुमार को अभी भी (कुछ काम) करना बाकी है। इसीसे यह आसन के मोह को नहीं छोड़ता है।' शास्ता ने देवताओं के संदेह को जान, उसे हटाने के लिए, आकाश में जाकर यमक-प्रातिहार्य[3] दिखाई। महाबोधि-मण्ड में की गई यह प्रातिहार्य, (देह-)सम्बन्धियों के समागम के समय पर की गई प्रातिहार्य, और पाटिकपुत्र (परिव्राजक) के समागम पर की गई प्रातिहार्य—ये सब प्रातिहार्य, गण्डम्ब वृक्ष के नीचे की गई यमक-प्रातिहार्य जैसी ही हुई थीं। इस प्रकार इस प्राति-हार्य से देवताओं के सन्देह को दूर कर, शास्ता ने (वज्र-) आसन से जरा थोड़ा

---

[1] बसाढ़ (जि० मुजफ्फरपुर) के प्रायः २ मील उत्तर वर्तमान कोल्हुआ, जहाँ आज अशोक-स्तम्भ खड़ा है।

[2] विनयपिटक, महावग्ग।

[3] दिव्य-चमत्कार।

में शाखा-कमल, लताओं में लता-कमल, आकाश में लटकने वाले कमल और शिला-तल को फोड़ कर ऊपर ऊपर सात सात होकर (खिलने वाले) दण्डक-पुष्प भी (खिल) उठे।

दस सहस्र लोक धातु घुमा कर रक्खी हुई माला के सदृश या सुग्रथित पुष्प-शय्या के सदृश हो गये थे। चक्रवालों के बीच के आठ सहस्र 'लोकान्तर' (जो) पहले सात सूर्यों के प्रकाश से भी प्रकाशित नहीं होते थे, (अब) चारों ओर प्रकाश से प्रकाशित (=एको भासा) हो रहे थे। चौरासी हजार योजन गहरा महासमुद्र मीठे जल वाला हो गया था। नदियों का बहना रुक गया। जन्मान्ध को रूप दिखाई देने लगा था। जन्म के बहरे शब्द सुनने लगे थे। जन्म के पगु पाँव से (चलने) लग गये थे। (बंदियों की) हथकड़ी, बेड़ी आदि बन्धन टूट कर गिर पड़े। इस प्रकार अनन्त प्रभा-शोभा से पूजित (हो) अनेक प्रकार की आश्चर्यकर घटनाएँ घटित हो रही थीं।

तब बुद्ध ने बुद्धत्व-ज्ञान का साक्षात् कर, सभी बुद्धों द्वारा कहे गये उदान (प्रीति-वाक्य) को कहा है :—

"दुःखदायी जन्म बार बार लेना पड़ा। मैं संसार में (शरीर रूपी गृह को बनाने वाले) गृह-कारक को पाने की खोज में निष्फल भटकता रहा। लेकिन गृह-कारक! अब मैंने तुझे देख लिया। (अब) तू फिर गृह निर्माण न कर सकेगा। तेरी सब कड़ियाँ टूट गईं, गृह-शिखर बिखर गया। चित्त निर्वाण प्राप्त हो गया; तृष्णा का क्षय देख लिया।"

यह तुषित देवलोक से आरम्भ करके यहाँ बोधिमण्ड में बुद्धत्व (=सर्वज्ञता) प्राप्ति तक की बात 'अविदूरे निदान' कही जाती है।

ग. सन्तिके निदान

(१) बोधि-वृक्ष के आसपास

लेकिन 'सन्तिके निदान' (क्या है)? "भगवान् श्रावस्ती[1] में अनाथ

---

[1] बलरामपुर से १० मील पर वर्तमान सहेट महेट (जि० गोण्डा, युक्त-प्रान्त)।

पिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे"। वैशाली[1] में महावन की कूटागार शालामें विहार करते थे।" इस प्रकार उन उन स्थानों पर विहार करते समय का वृत्तान्त उन उन स्थानों पर ही मिलता है। जो कुछ इस विषय में कहा गया है, उसे भी प्रारम्भ से इस प्रकार समझना चाहिए :—

उस उदान (=प्रीति वाक्य) को कह कर (वहाँ) बैठे भगवान् के मन में हुआ—"मैं इस (बुद्ध) आसन के लिए चार असंख्य एक लाख कल्प दौड़ता रहा; इसी आसन के लिए मैंने इतने समय तक, अपने अलङ्कृत सीस को गर्दन से काट कर दिया; सुसज्जित आँखों और हृदय-मास को निकाल कर प्रदान करता रहा; जालिय कुमार सदृश पुत्र, कृष्णाजिना कुमारी सदृश पुत्री माद्रीदेवी सदृश भार्या को दूसरों के दास बनने के लिए दिया। मेरा यह आसन., जय-आसन है, श्रेष्ठासन है। यहाँ (इस आसन) पर बैठे मेरे सङ्कल्प पूरे हुए हैं। अभी मैं यहाँ से नहीं उठूँगा" (यह सोच) दसों सख्य समापत्तियों (=ध्यानों) में रत, सप्ताह भर तक वहीं बैठे रहे। इसीके बारे में कहा है—"भगवान् सप्ताह-भर तक एक ही आसन से विमुक्ति सुख का आनन्द लेते हुए बैठे रहे।"

तब कुछ देवताओं के मन में ऐसा सन्देह उत्पन्न हुआ, 'सिद्धार्थ कुमार को अभी भी (कुछ योग) करना बाकी है। इसीसे वह आसन के मोह को नहीं छोड़ता है।' शास्ता ने देवताओं के संदेह को जान, उसे हटाने के लिए, आकाश में जाकर यमक-प्रातिहार्य[2] दिखाई। महाबोधि-मण्ड में की गई यह प्रातिहार्य, (देह-)सम्बन्धियों के समागम के समय पर की गई प्रातिहार्य, और पाटिकपुत्र (परिव्राजक) के समागन पर की गई प्रातिहार्य—ये सब प्रातिहार्य, गण्डम्ब वृक्ष के नीचे की गई यमक-प्रातिहार्य जैसी ही हुई थीं। इस प्रकार इस प्रातिहार्य से देवताओं के संदेह को दूर कर, शास्ता ने (वज्र-) आसन से ज़रा थोड़ा

---

[1] बसाड़ (जि० मुज़फ़्फ़रपुर) के प्रायः २ मील उत्तर वर्तमान कोल्हुआ, जहाँ आज अशोक-स्तम्भ खड़ा है।

[2] विनयपिटक, महावग्ग।

[3] दिव्य-चमत्कार।

पारमिता, उपेक्षा-पारमिता पूरी नहीं की; इसीलिए मैं इस जैसा नहीं हुआ'' (सोच) दसवीं रेखा खींची। 'मैंने इसकी तरह (श्रद्धा इन्द्रिय आदि) इन्द्रियों की उत्तम अनुत्तम अवस्था सम्बन्धी असाधारण ज्ञान की प्राप्ति के साधन भूत दस पारमिताओं की पूर्ति नहीं की; इसलिए मैं इस जैसा नहीं हुआ'' (सोच) ग्यारहवीं रेखा खींची। वैसे ही 'मैंने इसकी तरह असाधारण आशय-अनुशय ज्ञान, या महाकरुणा समापत्ति (=ध्यान) ज्ञान, यमक-प्रातिहार्य ज्ञान, अनावरण-ज्ञान तथा सर्वज्ञता ज्ञान की प्राप्ति के साधन दस पारमिताओं की पूर्ति नहीं की। इसीलिए मैं इस जैसा नहीं हुआ' (सोच) सोलहवीं रेखा खींची। इस प्रकार, इन कारणों से (देवपुत्र मार) महामार्ग पर सोलह लकीरें खींचते बैठा रहा।

उस समय तृष्णा, अरति तथा रगा (=राग) नामक मार की (तीनों) कन्याओं ने 'हमारा पिता दिखाई नहीं दे रहा है, वह इस समय कहाँ है' (सोच) ढूँढते हुए उसे खिन्न-चित्त भूमि कुरेदते (=लिखते) देखा। उन्होंने पिता के समीप जा पूछा—"तात! आप किस लिए दुखी तथा खिन्न-चित्त हैं?"

"अम्मा! यह महाश्रमण मेरे अधिकार से बाहिर हो गया। इतने समय तक देखते रहने भी इसके छिद्र नहीं देख सका। इसीसे मैं दुखी तथा खिन्नचित्त हूँ" "यदि ऐसा है, तो सोच मत करो। हम इसे अपने वश में करके ले आवेंगी।"

"अम्मा! इसे कोई वश में नहीं कर सकता। यह पुरुष अचल श्रद्धा में प्रतिष्ठित है।"

'तात! हम स्त्रियाँ हैं। हम उसे अभी राग आदि के पाश में बाँध कर ले आवेंगी। आप चिन्ता न करें' (कह) वह भगवान् के पास जा उन्होंने पूछा। "श्रमण! हमें अपने चरणों की सेवा करने दो।"

भगवान् ने न उनके वचन को सुना, न आँख खोल कर (उनकी ओर) देखा। वह अनुत्तम, उपाधिक्षीण (=निर्वाण) में रत हो, विमुक्तचित्त, विवेक (=एकान्त) सुख का अनुभव करते बैठे रहे। तब मारकन्याओं ने सोचा—"पुरुषों की रुचि भिन्न भिन्न होती है। किसी को कन्यायें प्रिय लगती हैं, किसी को नव तरुणियाँ और किसी को बीच की आयु की मध्यमवयस्कायें और किसी को प्रौढ़ायें। (आओ) हम इसे भिन्न भिन्न प्रकार से प्रलोभन दें।" तब उन्होंने सौ सौ रूप धारण किये। कुमारी बनी, अप्रसूता हुईं, एक बार प्रसूता, दो बार प्रसूता, मध्यमवयस्का तथा प्रौढ़ा स्त्रियें बन बन कर ६ बार भगवान् के पास आ

कर पूछा—"श्रमण ! हमें अपने चरणों की सेवा करने दो !" भगवान् ने उस (कथन) को भी मन में नहीं किया। वह उस अनुपम, उपाधिक्षय (=निर्वाण) में रत, विमुक्त-चित्त ही रहे।

(इस विषय में) कोई कोई आचार्य कहते हैं—"उन्हें बूढ़ी स्त्रियों के स्वरूप में देख, भगवान् ने अधिष्ठान किया, कि यह खण्डित दन्त और श्वेत केशा हो जायें" किन्तु यह (कथन) ग्रहण करने योग्य नहीं है, क्योंकि बुद्ध इस प्रकार का अधिष्ठान नहीं करते। हाँ, भगवान् ने, "तुम जाओ। काहे यह सब प्रयत्न करती हो ? जो विरागी नहीं हैं उन लोगों के सन्मुख यह सब करना चाहिए। तथागत का राग नष्ट हो गया, द्वेष (=क्रोध) नष्ट हो गया; मोह नष्ट हो गया" कह अपनी चित्तशुद्धि के विषय में कहा :—

"जिसके जय को पराजय में बदला नहीं जा सकता, जिसके जीते (राग, द्वेष, मोह फिर) नहीं लौट सकते; उस बे-निशान (अपद=स्थान-रहित), अनन्तदर्शी बुद्ध को किस रास्ते पा सकोगे ? जाल रखने वाली जितकी विषय रूपी तृष्णा कहीं भी ले जाने लायक नहीं रह गई; उस अपद, अनन्त दर्शी बुद्ध को किस रास्ते से पा सकोगे ?

इन धर्म-पद के बुद्ध-वग्ग (१४) में आई दो गाथाओं को वह धर्मोपदेश किया। तब ये मार-कन्यायें हमारे पिता ने सत्य ही कहा था, "अर्हन् सुगत को राग (के बन्धन) में लाना आसान नहीं।" (सोच) पिता के पास चली गई। भगवान् भी सप्ताह बिता कर वहाँ से मुचलिन्द वृक्ष के नीचे चले गये।

(३) मुचलिन्द वृक्ष के नीचे

उस समय सप्ताह भर की बदली उत्पन्न हो गई। सर्दी आदि से बचने के लिए, नाग राज मुचलिन्द ने फन तान सात गेंडुरी बनाईं। उसमें गन्धकुटी में बाधारहित विचरने की तरह, विमुक्ति सुख का आनन्द लेते हुए, (भगवान् ने) सप्ताह बिताया फिर राजायतन (—वृक्ष) के पास पहुँच, वहाँ भी विमुक्ति सुख का आनन्द लेते हुए बैठे रहे। इस प्रकार यह सात सप्ताह पूरे हुए। इन सात सप्ताहों में (भगवान्) ने न मुख धोया, न शरीर-शुद्धि की, न भोजन ही किया। (सब समय) (सारे समय को) ध्यान-सुख, मार्ग-सुख और फल (—प्राप्ति के) सुख में ही व्यतीत किया।

तब सात सप्ताहों के बीतने पर, उनचासवें दिन शास्ता को मुँह धोने की इच्छा हुई। देवेन्द्र शक्र ने हर्रे लाकर दी। शास्ता ने उसे खाया। उससे उन्हें शौच (=शरीर शुद्धि) हुआ। तब शक्र ने ही नागलता की दातुन (दन्तकाष्ठ) और मुख धोने के लिए पानी ला दिया। बुद्ध उस दातुन को कर, अनोतत्त-दह (=सरोवर) पर पानी से मुँह धो, फिर राजायतन के नीचे बैठे।

(४) धर्म-प्रचार

उस समय तपस्सु और भल्लिक नामक दो व्यापारी, पाँच सौ गाड़ियों के साथ उत्कल[1] देश से मज्झिम-देश (=मध्य देश) को जा रहे थे। उनके ज्ञाति-सम्बन्धी, देवताओं ने गाड़ियों रोक बुद्ध के लिए आहार तैयार करने के लिए उन्हें उत्साहित किया। उन्होंने लाकर, सत्तू और पूए (=मधुपिण्ड) ले, शास्ता के पास जा, खड़े हो कर प्रार्थना की, "भन्ते ! भगवान्। कृपा कर इस आहार को ग्रहण करें।"

(सुजाता के) खीर के ग्रहण करने के दिन ही भगवान् के पात्र अन्तर्धान हो गये थे। इसलिए भगवान् ने सोचा—तथागत हाथ में तो आहार ग्रहण नहीं करते; मैं किस (बरतन) में आहार ग्रहण करूँ ?" तब उनके विचार को जान कर चारों दिशाओं के चारों महाराजा इन्द्र-नीलमणि के बने पात्र को ले आये। भगवान् ने उन्हें अस्वीकार कर दिया। फिर मूँगे वर्ण के पाषाण के चार पात्र ले आये। चारों देवपुत्रों पर अनुकम्पा करने के लिए भगवान् ने चारों पात्रों को ले, एक दूसरे के ऊपर रख अधिष्ठान किया कि वह एक हो जावें। चारों पात्र मुख द्वार पर प्रकट (चार) रेखाओं वाले हो, बिचले (पात्र) के परिमाण के एक पात्र बन गये। भगवान् ने उस मूल्यवान् पत्थर के पात्र में आहार ग्रहण किया। भोजन करके (दान) अनुमोदन किया। दोनों भाई बुद्ध और धर्म की शरण जाने से दो वचन के उपासक[1] हुए। तब उनमें से एक के [illegible] के लिए कुछ दे [illegible] भगवान् ने सिर पर दाहिने हाथ

[illegible]

[illegible]

को फेर कर (अपने कुछ) बालों (=केश) को दिया। उन्होंने अपने नगर में पहुँच, उस केश को भीतर रख, (ऊपर से) चैत्य बनवाया।

सम्यक् सम्बुद्ध भी वहाँ से उठ, अजपाल न्यग्रोध के पास जा, वहाँ न्यग्रोध (वृक्ष) के नीचे बैठे। तब वहाँ बैठते ही उनके मन में अपने अनुभूत धर्म की गम्भीरता का विचार उत्पन्न हुआ (तब) बुद्धों के अभ्यस्त "इस धर्म का मैंने अनुभव किया है. . ' (इस प्रकार) दूसरों को धर्मोपदेश देने की अनिच्छा का विचार (=वितर्क) उत्पन्न हुआ। तब सहम्पति ब्रह्मा ने "अरे! लोक नाश हो जायगा, अरे! लोक विनाश हो जायगा" कहते, दस सहस्र चक्रवालों से शक्र-सुयाम—सन्तुषित-सुनिर्मित-वशवर्ती-महाब्रह्माओं को ले कर, शास्ता के पास जा, "भन्ते! भगवान्! धर्मोपदेश करें। सुगत! धर्मोपदेश करें" इत्यादि क्रम से धर्मोपदेश करने की प्रार्थना की।

(५) बनारस (सारनाथ)

शास्ता उसे प्रतिज्ञा दे, सोचने लगे, "मैं पहले किसे धर्मोपदेश करूँ?" "इस धर्म को आलार-कालाम शीघ्र ही जान लेगा" सोच कर देखा, तो पता लगा कि उसे मरे एक सप्ताह हो गया। तब उद्दक के बारे में ख्याल आया। मालूम हुआ, वह भी (उसी) रात को मर गया। (तब) सोचा—"पञ्चवर्गीय भिक्षुओं ने मेरा बहुत उपकार किया है।" पञ्चवर्गीय भिक्षुओं के बारे में प्रश्न हुआ, 'वह इस समय कहाँ हैं?' सोचते हुए, वाराणसी (बनारस) के मृगदाव[1] में (विहरते हैं) जान, वहाँ जाकर धर्मचक्र प्रवर्तित करने का विचार किया।

कुछ दिन तक बोधिमण्ड के आस पास ही भिक्षाचार कर विहार करते रहे। आषाढ़ पूर्णिमा के दिन बनारस पहुँचने के विचार से, चतुर्दशी को प्रातःकाल, तड़के ही (=समय) पात्र चीवर ले, अठारह योजन के मार्ग पर चल पड़े। रास्ते में उपक नामक आजीवक[2] को देख कर, उसे अपने 'बुद्ध' होने की बात कह, उसी दिन शाम के समय ऋषिपतन पहुँचे।

---

[1] वर्तमान सारनाथ, बनारस।

[2] उस समय के नग्न साधुओं का एक सम्प्रदाय।

पञ्चवर्गीय-भिक्षुओं ने तथागत को दूर से आते देख निश्चय किया—"आयुष्मानो! यह श्रमण गौतम वस्तुओं के अधिक लाभ के लिए मार्ग-भ्रष्ट हो परिपूर्ण शरीर, मोटी इन्द्रियों वाला, सुवर्ण-वर्ण हो कर आ रहा है। हम इसे अभिवादन आदि न करेंगे। लेकिन महाकुल-प्रसूत होने से यह आसन का अधिकारी है; अतः हम इसके लिए खाली आसन बिछा देंगे।"

भगवान् ने देवों सहित (सारे) लोक के चित्त को वार जान सकने वाले ज्ञान से सोच कर उन (पञ्चवर्गीयों) के विचार को जान लिया। तब उन्होंने समान रूप से सब देव मनुष्यों तक पहुँचने वाले मैत्री-पूर्णचित्त को, विशेष रूप से पंचवर्गीयों की ओर फेरा। भगवान् के मैत्री-चित्त से स्पृष्ट हो, तथागत के समीप आते आते वह अपने निश्चय पर दृढ़ न रह सके और उन्होंने अभिवादन प्रत्युत्थान आदि सब कृत्यों को किया। लेकिन 'सम्बुद्धत्व प्राप्ति' का उन्हें ज्ञान न था, इसलिए वह (तथागत को) केवल नाम लेकर अथवा 'आवुसो' (=आयुष्मान्) कह कर सम्बोधन करते थे।

(६) प्रथम-उपदेश : धर्मचक्र प्रवर्तन

तब भगवान् ने उन्हें "भिक्षुओ! तथागत को नाम से अथवा 'आवुस' कह कर मत पुकारो। भिक्षुओ! तथागत अर्हत् हैं, सम्यक् सम्बुद्ध हैं" कह, अपने बुद्ध होने को प्रकट किया। फिर श्रेष्ठ बुद्धासन पर बैठ, उत्तराषाढ़ नक्षत्र (आषाढ़ी पूर्णिमा के दिन) अठारह करोड़ ब्रह्माओं से घिरे हुए, पञ्चवर्गीय स्थविरों को सम्बोधित कर धर्म चक्र प्रवर्तन सूत्र' का उपदेश किया। उनमें से स्थविर कौण्डिन्य उपदेशानुसार ज्ञान का विकास करते हुए, सूत्र की समाप्ति पर अठारह करोड़ ब्रह्माओं सहित स्रोतआपत्ति फल में स्थित हुए। [illegible]

कर अनत्त-लक्षण सूत्र का उपदेश किया। देशना की समाप्ति पर पाँचों स्थविर अर्हत्-फल में स्थित हुए।

तब शास्ता ने यश कुल-पुत्र को योग्यता (=उपनिस्सय) देख, उसी रात विरक्त हुए, घर छोड़ कर निकले (यश) को, "यश ! आ।" कह बुलाया। उसी रात को उसे स्रोतआपत्ति-फल, (और) अगले दिन अर्हत्-फल में प्रतिष्ठित कर, उसके और भी चौवन (५४) मित्रों को "भिक्षुओ ! आओ"—वचन द्वारा प्रव्रज्या दे कर 'अर्हत्व' प्राप्त कराया।

(७) उरुवेला की ओर

इस प्रकार लोक में इकसठ अर्हत् हो गये। वर्षा-वास की समाप्ति पर शास्ता ने 'प्रवारणा'[1] कर, "भिक्षुओ ! चारिका करो . . .''[2] (कह) भिक्षुओं को साठ दिशाओं में भेज, स्वयं उरुवेल को जाते हुए, मार्ग में कपासिय वन-खंड में तीस भद्रवर्गीय कुमारों को दीक्षित (=विनीत) किया। उन (कुमारों) में जो सब से पिछला था, वह स्रोतापन्न जो सर्वश्रेष्ठ था वह अनागामी हुआ। उन सब को भी "भिक्षुओ ! आओ।" वचन से ही प्रव्रजित कर, (भिन्न भिन्न) दिशाओं में भेज, स्वयं उरुवेल पहुँच (वहाँ) तीन सहस्र पाँच सौ प्रातिहार्य (=चमत्कार) दिखा, सहस्रों जटिलों सहित उरुवेल काश्यप आदि तीन जटिल भाइयों को विनीत कर 'भिक्षुओ ! आओ'—वचन से ही (उन्हें भी) प्रव्रजित कर गया-शीर्ष[3] पर बैठ, आदित्त-पर्याय (—सूत्र)[4] के उपदेश से (उन्हें) अर्हत्-भाव में प्रतिष्ठित कराया। फिर उन सहस्र अर्हतों के साथ (राजा) बिम्बिसार को दी हुई प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिए राजगृह नगर[5] के समीप लट्ठि-वन-उद्यान में पहुँचे।

(८) राजा बिम्बिसार का बौद्ध होना

राजा अपने माली के मुँह से बुद्ध के आने की बात सुन, बारह नहुत[6] (=नियुत) ब्राह्मण-गृहपतियों के साथ, बुद्ध के पास पहुँचे। उनके चक्र से अंकित

---

[1] वर्षा-समाप्ति पर विदायगी।
[2] महावग्ग (महाखंधक)।
[3] गया सीस, गया का ब्रह्मयोनि पर्वत है।
[4] संयुक्त नि० ४३:३ ६।
[5] मगध की राजधानी।
[6] नहुत=दस हजार।

तल वाले, सुनहले वस्त्र के चँदवे के समान प्रभा-पुंज प्रसारित करने वाले, चरणों में सिर से प्रणाम कर, परिषद् सहित एक ओर बैठ गया। तब उन ब्राह्मण-गृहपतियों के मन में यह (शंका) हुई—"क्या उरुवेल-काश्यप महाश्रमण (गौतम) का शिष्य है अथवा महाश्रमण उरुवेल काश्यप का (शिष्य) ? भगवान् ने अपने चित्त से उनके चित्त के वितर्क को जान (उरुवेल काश्यप) स्थविर को गाथा में कहा :—

"उरुवेल-वासी! तपः कृशों के उपदेशक! क्या देख कर (तुमने) आग छोड़ी? काश्यप! तुम से यह बात पूछता हूँ, तुम्हारा अग्नि-होत्र कैसे छूटा?"

स्थविर ने भगवान् का अभिप्राय समझ कर कहा :—"रूप; शब्द, रस, काम-भोग, तथा स्त्रियाँ ये सब यज्ञ से (मिलती हैं), ऐसा कहते हैं। लेकिन (उक्त) उपाधियाँ मल हैं, यह जान कर, विरक्त चित्त हो, मैं ने यज्ञ करना तथा हवन करना छोड़ दिया।"

इस गाथा को कह अपने शिष्य-भाव के प्रकाशनार्थ, तथागत के चरणों में सिर रख, "भन्ते! भगवान्! आप मेरे गुरु (=शास्ता) हैं, मैं आपका शिष्य हूँ" कह, आकाश में एक-ताल, दो-ताल-तीन-ताल......सात-ताल ऊँचे तक, सात बार चढ़ उतर कर, तथागत को प्रणाम कर, एक ओर बैठ गया। इस प्रकार के चमत्कार को देख, लोग कहने लगे "अहो बुद्ध! महाप्रतापी हैं; जिन तथागत ने इस प्रकार के दुराग्रही, अपने को अर्हत् समझने वाले उरुवेल काश्यप को भी उनके मत रूपी जाल को काट कर, दीक्षित किया! भगवान् ने "न केवल अभी मैंने उरुवेल-काश्यप का दमन किया है, अतीत-काल में भी किया है।" कह, तथा इस अर्थ को स्पष्ट करने के लिए महानारद काश्यप जातक[1] कह, चार आर्य्य सत्यों का प्रकाश किया। ग्यारह नहुत (ब्राह्मण-गृहपतियों) सहित मगध-नरेश (बिम्बिसार) सोतआपत्तिफल में प्रतिष्ठित हुए। एक नहुत उपासक हुए।

बुद्ध के पास बैठे ही बैठे राजा (बालक-पन में अपने मन में उठी) पाँच

---

[1] जातक (५४४)

इच्छाओं[1] को कह, निरारण ग्रहण कर, अगले दिन के लिए निमन्त्रण दे, आसन से उठ, भगवान् की प्रदक्षिणा कर चला गया। अगले दिन, जिन्होंने तथागत को देखा था, वे भी, और जिन्होंने नहीं देखा था, वे भी—सभी अठारह करोड़ राजगृह-निवासी, तथागत को देखने की इच्छा से प्रातःकाल ही राजगृह से यष्टि-वन[2] को गये। तीन गव्यूति मार्ग (भी) पर्य्याप्त नहीं था। सारा यष्टि-वन उद्यान हमेशा भरा रहता था। जन समूह भगवान् के सुन्दर स्वरूप को देखते तृप्त नहीं होते थे। यह रूप का प्रकरण (=वर्ण-भूमि) है। ऐसे स्थान पर लक्षण-अनुव्यञ्जनादि के विस्तार के साथ तथागत के शरीर के सारे सौन्दर्य का वर्णन करना चाहिए।

इस प्रकार बुद्ध (दस बल) के सुन्दर शरीर के दर्शन के लिए आने वाले जन-समूह से उद्यान के और मार्ग के निरन्तर भरे रहने से एक भिक्षु को भी बाहिर निकलने का अवकाश नहीं रहा। उस दिन भगवान् को निराहार रह जाने की सम्भावना थी। ऐसा न होने देने के लिए, शक्र का आसन गर्म हुआ। देवेन्द्र ने विचार करके, (आसन गर्म होने के) कारण को जाना, और ब्राह्मण तरुण (=माणवक) का रूप धारण कर, बुद्ध-धर्म-संघ की स्तुति करते हुए, बुद्ध (दस-बल धारी) के सामने उतर देव-बल से अपने लिए जगह कर गाथा बना कहा :—

अनासक्त (=विप्रमुक्त) संयमयुक्त पुराने जटाधारियों (=जटिलों) के साथ (=सिगी-निक्खा) तप्त सुवर्ण (सुवर्ण सदृश) सदमी (=दमित) भगवान् राजगृह में प्रवेश कर रहे हैं।

मुक्त, विप्रमुक्त, पुराने जटिलों के साथ तप्त सुवर्ण से रूपवान् मुक्त भगवान् राजगृह में प्रवेश कर रहे हैं।

उत्तीर्ण (=पार-प्राप्त) विप्रमुक्त, पुराने जटिलों से युक्त, तप्त सुवर्ण जैसे रूपवान् उत्तीर्ण भगवान् राजगृह में प्रवेश कर रहे हैं।

---

[1] 'क्या ही अच्छा होता, यदि मैं राज्याभिषिक्त होता' आदि पाँच इच्छाएँ (महावग्ग)।

[2] राजगृह नगर के समीपवर्ती जठियांव (लट्ठिवन उद्यान)।

दस-वास (वाले); दस-बल (-धारी), दस धर्मों के ज्ञाता, दस गुणों से युक्त, सहस्र अर्हतों के साथ भगवान् राजगृह में प्रवेश कर रहे हैं।"

उक्त गाथाओं से बुद्ध का गुणानुवर्णन करते हुए (देवेन्द्र) आगे आगे चल रहे थे। लोगों ने ब्राह्मण तरुण (माणवक) के रूप की सुन्दरता देख 'यह माणवक अत्यन्त सुन्दर है, हमने इसे पहले नहीं देखा' सोच, पूछा :—'यह माणवक कहाँ से (आया) है? किसका है?' इसे सुन माणवक ने यह गाथा कही :—

"लोक में जो धीर है, सर्वत्र संयत है, अर्हत् है, सुगत है; अद्वितीय बुद्ध है—मैं उसका सेवक (परिचारक) हूँ।"

एक सहस्र भिक्षुओं के साथ बुद्ध (=तथागत) ने, शक्र द्वारा बनाये गये मार्ग से राजगृह में प्रवेश किया। राजा ने बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को भोजन (=महादान) दे (प्रार्थना की)—'भन्ते! मैं बुद्ध-धर्म—संघ (=त्रिरत्न) के बिना न रह सकूँगा। समय, बे समय, भगवान् के पास आऊँगा। यष्टि (=लट्ठि)-वन उद्यान बहुत दूर है। लेकिन हमारा वेणुवन उद्यान अधिक दूर नहीं है। यहाँ आना जाना सहज है। बुद्ध के योग्य निवासस्थान है। भगवान्! आप इसे स्वीकार करें।" (कह,) सोने की झारी में पुष्प गन्ध से सुवासित, मणि के रंग वाले जल को ले कर वेणुवन उद्यान का दान करते हुए बुद्ध (=दशबल) के हाथ में जल डाला। उसी आराम की स्वीकृति से बुद्ध धर्म (=शासन) ने (पहिले से) जड़ पकड़ी—(ऐसा) पुराने कहते। जम्बूद्वीप में वेणुवन को छोड़ और किसी विहार (=शयनासन) के ग्रहण करने के समय पृथ्वी नहीं काँपी। सिंहल (ताम्रपर्णी) में भी महाविहार के अति-रिक्त, और किसी शयनासन के ग्रहण करने समय पृथ्वी नहीं काँपी। (अन-न्तर) वेणुवन को दान कर [illegible] के दान का अनुमोदन कर [illegible] आसन से [illegible]

[illegible]

सारिपुत्र और मौद्गल्यायन की प्रव्रज्या

व्राजक राजगृह के समीप रहते थे। उनमें से (एक) सारिपुत्र ने अश्वजित् स्थविर को भिक्षा-चार करते देखा। वह प्रसन्न-चित्त हो, उनका सत्संग कर उनसे 'जो हेतुओं से उत्पन्न धर्म हैं .....(=ये धम्मा हेतुप्पभवा...)' गाथा को सुन स्रोतआपत्ति फल में प्रतिष्ठित हुए। उन्होंने अपने मित्र मौद्गल्यायन परिव्राजक को भी वह गाथा कही। वह भी स्रोतआपत्ति-फल में प्रतिष्ठित हुए। वह दोनों ही (अपने पूर्व आचार्य) सञ्जय से भेंट कर, अपनी मंडली के साथ शास्ता के पास जा प्रव्रजित हुए। उनमें से महामौद्गल्यायन (एक) सप्ताह में ही अर्हत्व को प्राप्त हुए। सारिपुत्र पन्द्रह दिन में। शास्ता ने उन दोनों को प्रधान शिष्य (=अग्र-श्रावक) बनाया। सारिपुत्र स्थविर ने जिस दिन अर्हत् पद प्राप्त किया, उसी दिन (बुद्ध) शिष्यों का सम्मेलन किया गया।

(१०) शुद्धोदन का संदेश

तथागत के उसी वेणुवन उद्यान में विहार करते समय, शुद्धोदन महाराज ने सुना—"मेरे पुत्र ने छः वर्ष तक दुष्कर तपस्या कर, बुद्ध के उत्तम पद को प्राप्त किया है। वह धर्म-उपदेश का प्रारम्भ (=धर्मचक्रप्रवर्तन) कर, राजगृह के समीप वेणुवन में विहार करता है"। फिर एक मंत्री (=अमात्य) को बुला कर कहा —"अरे! आओ, तुम एक हजार आदमियों को साथ ले, राजगृह जाकर मेरे वचन से, मेरे पुत्र को कहो—'आपके पिता महाराज शुद्धोदन (आपका) दर्शन करना चाहते हैं', कह और मेरे पुत्र को (बुलाकर) ले कर आओ।"

"अच्छा देव!" कह उसने राजा के वचन को शिरोधार्य किया। फिर वह एक हजार आदमियों को साथ ले, शीघ्र ही साठ योजन रास्ते को पार कर (राजगृह) पहुँचा। बुद्ध (उस समय) (भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिका) चार प्रकार की परिषद् के बीच बैठ, धर्म उपदेश कर रहे थे। उसी समय वह विहार में प्रविष्ट हुआ। उसने 'राजा का भेजा सन्देश अभी पड़ा रहे' सोच परिषद् के अन्त में खड़े खड़े शास्ता का धर्म उपदेश सुना;

---

[1] ये धम्मा हेतुप्पभवा तेसं हेतुं तथागतो आह। तेसं च यो निरोधो, एवं वादी महा समणो।

मास रह, तीनों जटाधारी (=जटिल) भाइयों को रास्ते पर ला, एक हजार भिक्षुओं के साथ, पौष मास की पूर्णिमा को राजगृह जा, (वहाँ) दो मास रहे। इतने में बनारस से चले पाँच मास बीत गये। सारा हेमन्त-ऋतु समाप्त हो गया। उदायी स्थविर, आने के दिन से सात-आठ दिन बिता, फाल्गुण की पूर्णिमासी को सोचने लगे—हेमन्त बीत गया। वसन्त आ गया। मनुष्यों ने खेत (सस्य आदि) काट कर, सामने के स्थानों पर रास्ता छोड़ दिया है। पृथ्वी हरित तृण से आच्छादित है। वन-खण्ड फूलों से लदे हैं। रास्ते जाने लायक हो गये हैं। यह बुद्ध (=दश-बल) के लिए अपने सम्बन्धियों (=जाति) को मिलने (=संग्रह करने) का (यह ठीक) समय है। (यह सोच) भगवान् के पास आ कर बोले—

"भन्ते इस समय वृक्ष पत्ते छोड़ फलने के लिए (नये पत्तों से) अंगार-वाले (जैसे) हो गये हैं। उनकी चमक अग्नि-शिखा सी है। महावीर! यह रसभागियों (=भगीरथों भगीरथों¹) (के संग्रह करने) का समय है।

न बहुत शीत है, न बहुत उष्ण है, न भोजन की बहुत कठिनाई है। भूमि हरियाली से हरित है। महामुनि! यह (चलने का) समय है,"

(इत्यादि) साठ गाथाओं द्वारा बुद्ध (=दश-बल) से (अपने) कुल के नगर को जाने के लिए यात्रा की स्तुति की। भगवान् (=शास्ता) ने पूछा—"उदायी! क्या है, जो (तुम) मधुर स्वर से यात्रा की स्तुति कर रहे हो?"

"भन्ते! आपके पिता महाराज शुद्धोदन (आपका) दर्शन करना चाहते हैं। (आप) ज्ञातियों का संग्रह करें।"

"उदायी! अच्छा! मैं ज्ञाति वालों का संग्रह करूँगा, भिक्षु-संघ को कहो कि यात्रा की तैयारी (=व्रत) करें।"

"अच्छा भन्ते!" (कह) स्थविर ने (भिक्षु-संघ को) कहा।

(११) कपिलवस्तु-गमन

भगवान् [illegible]
[illegible]

¹ [illegible] अस्पष्ट है।

के लिए स्थान पर विचार किया। उन्होंने न्यग्रोध (नामक) शाक्य के आराम को रमणीय जान, वहाँ सब प्रकार से सफाई कराई। भगवानी के लिए पहले गन्ध, पुष्प हाथ में ले, सब अलङ्कारों से अलंकृत, नगर के छोटे छोटे लड़कों तथा लड़कियों को भेज फिर राजकुमारों और राजकुमारियों को भेजा। उनके बाद स्वयं गन्ध, पुष्प, चूर्ण आदि से भगवान् की पूजा करते, (उन्हें) न्यग्रोधाराम लिवा ले गये। वहाँ बीस हजार अर्हतों के साथ (जा कर) भगवान्, बिछे श्रेष्ठ बुद्ध के आसन पर बैठे। शाक्य अभिमानी स्वभाव के थे। उन्होंने 'सिद्धार्थ-कुमार हमसे छोटा है, हमारा कनिष्ठ है, हमारा भानजा है, हमारा पुत्र है, हमारा नाती है', सोच छोटे छोटे राजकुमारों को कहा—"तुम प्रणाम करो। हम तुम्हारे पीछे बैठेंगे।" उनके इस प्रकार (बिना प्रणाम किये ही) बैठे रहने पर, भगवान् ने उनके मन की बात जान विचारा—ज्ञाति-सम्बन्धी मुझे प्रणाम नहीं कर रहे हैं। अच्छा तो मैं उनसे प्रणाम कराऊँगा" और अभिज्ञा के सहारे ध्याना-वस्थित हो, आकाश में चढ़, उनके सिर पर पैर की धूली बखेरते हुए से, गण्डम्ब वृक्ष के नीचे किये गये यमक नामक दिव्य-प्रदर्शन (यमक-प्रातिहार्य) जैसी प्रातिहार्य की।

राजा ने इस आश्चर्य को देख कर कहा—'भगवान्! मैं उत्पन्न होने के दिन, तुम्हें काल देवल की वन्दना के लिए ले गया था; उस समय (तुम्हारे) चरणों को उलट कर ब्राह्मण के सिर में लगे देख, मैंने तुम्हारी वन्दना की। यह मेरी प्रथम वन्दना (थी)। फिर खेत बोने के उत्सव के दिन, जामुन की छाया में सुन्दर शय्या पर बैठे रहने के समय, दिन ढल जाने पर भी जामुन के वृक्ष की छाया का बना रहना देख कर भी (मैंने तुम्हारे) चरणों में वन्दना की थी। वह मेरी दूसरी वन्दना (थी)। अब पहले कभी न देखी गई यह प्राति-हार्य, देख कर भी, मैं तुम्हारे चरणों की वन्दना करता हूँ। यह मेरी तीसरी वन्दना है। राजा के वन्दना करने पर, एक शाक्य भी ऐसी नहीं बचा, जो बिना वन्दना किये रहा हो। सभी ने वन्दना की। इस प्रकार भगवान् ज्ञाति-सम्बन्धियों से प्रणाम करवा, आकाश से उतर बिछे आसन पर बैठे। भगवान् के बैठने पर ज्ञाति-सम्बन्धियों का समूह अत्यन्त प्रसन्न (=शिखर-प्राप्त) हो सभी एकाग्र चित्त हो बैठे।

तब महामेघ ने कमल-वर्षा (=पुष्कर-वर्षा) आरम्भ की। ताम्बे के रंग

का पानी, नीचे, शब्द करता हुआ बहने लगा। भीगने की इच्छा वाले भीगते थे, जो नहीं भीगना चाहते थे, उनके शरीर पर बूँद मात्र भी न गिरती थी। यह देख सभी चकित हुए, और कहने लगे—अहो! आश्चर्य! अहो! अद्भुत!

बुद्ध ने कहा कि यहाँ केवल अभी मेरे वंश के समागम के समय ही वर्षा नहीं बरसी पहले भी वह बरसी है" और इस अर्थ को स्पष्ट करने के लिए, महावेस्सन्तर-जातक[1] कही। धर्म उपदेश सुन, सभी उठ, प्रनाम कर चले गये। न राजा ने, न राजा के महामात्य ने, और न दूसरे किसी ने भी कहा कि भगवान्! कल हमारी भिक्षा ग्रहण करें।

(१२) सम्बन्धियों से मिलन

अगले दिन बीस हजार भिक्षुओं सहित बुद्ध (=शास्ता) ने कपिलवस्तु में भिक्षाटन के लिए प्रवेश किया। (वहाँ) न किसी ने उन्हें भोजन के लिए निमन्त्रित ही किया, न किसी ने पात्र ही ग्रहण किया। भगवान् ने इन्द्रकीले[2] पर खड़े हो सोचा—"पूर्व के बुद्धों ने (अपने) कुल के नगर में कैसे भिक्षाटन किया? क्या बीच के घरों को छोड़ कर (सिर्फ) बड़े बड़े आदमियों के ही घर गये, अथवा एक ओर से सब के घर?" फिर देखा कि एक बुद्ध ने भी बीच बीच में घर छोड़ कर भिक्षाटन नहीं किया है, (फिर) निश्चय किया—'मेरा भी (कुल) अब यही (बुद्धों का) कुल है, इसलिए मुझे अपना यह कुल धर्म ग्रहण करना चाहिए। ऐसा करने से भविष्य में मेरे शिष्य (=श्रावक) मेरा ही अनुकरण करते (हुए) भिक्षाचार के व्रत को पूरा करेंगे।" ऐसा (सोच), छोर के घर से ही, एक ओर से भिक्षाचार आरम्भ किया।

"आर्य सिद्धार्थकुमार भिक्षाचार कर रहे हैं" यह (सुन) लोग दुतल्ले, तितल्ले प्रासादों पर से खिड़कियाँ खोल देखने लगे।

राहुल-माता देवी ने भी—'आर्यपुत्र इसी नगर में राजाओं के बड़े भारी ठाट से सोने की पालकी आदि में (चढ़कर) घूमे, और आज (इसी नगर में)

---

[1] जातक (५४७)

[2] किले के द्वार के बाहर खड़ा खम्भा।

वह शिर-दाढ़ी मुँडा, काषाय वस्त्र पहिन, कपाल (=खप्पड़) हाथ में ले, भिक्षाचार कर रहे हैं ! क्या (यह) शोभा देता है' कह, खिड़की खोल कर देखा कि परम वैराग्य से उज्ज्वल (बुद्ध का) शरीर नगर की सड़कों को प्रभासित कर रहा है। चारो ओर व्याम भर प्रभा वाली, बत्तीस महापुरुष लक्षणों और अस्सी अनुव्यञ्जनों से अलंकृत, अनुपम बुद्ध शोभा से शोभायमान भगवान् को देखा और (उसका) शिर से पाँव तक (इस प्रकार) आठ नरसिंह गाथाओं में वर्णन किया—

"चिकने, काले, कोमल, घुँघराले केश हैं; सूर्य्य सदृश निर्मल तलवाला ललाट है, सुन्दर, ऊँची, कोमल, लम्बी नासिका है; नरसिंह अपने रश्मि-जाल को फैला रहे हैं "

इत्यादि फिर (जा कर) राजा से कहा—"आपका पुत्र भिक्षाचार कर रहा है।"

राजा घबराया हुआ, हाथ से धोती सँभालते, जल्दी जल्दी निकल कर, वेग से जा, भगवान् के सामने खड़ा हो बोला—"भन्ते ! हमें क्यों लजवाते हो ? किस लिए भिक्षाटन करते हो ? क्या यह प्रगट करते हो कि इतने भिक्षुओं के लिए (हमारे यहाँ) भोजन नहीं मिलता ?"

"महाराज ! हमारे वंश का यही आचार है।"

"भन्ते ! निश्चय से हम लोगों का वंश महा सम्मत (=मनु) का क्षत्रिय वंश है ? इस वंश में एक क्षत्रिय भी तो कभी भिक्षाचारी नहीं हुआ।"

"महाराज ! यह राज-वंश तो आपका वंश है। हमारा वंश तो दीपङ्कर-कौण्डिन्य . काश्यप (आदि) का बुद्ध-वंश है। और दूसरे अनेक सहस्र बुद्ध भिक्षाचारी (रहे हैं), भिक्षाचार से ही जीविका चलाते रहे हैं।" उसी समय सड़क में खड़े ही खड़े यह गाथा कही —

"उद्योगी आलसी न बने, सुचरित धर्म का आचरण करे, धर्मचारी (पुरुष) इस लोक में भी और परलोक में भी सुख-पूर्वक सोता है।"

गाथा की समाप्ति पर राजा स्रोतापत्ति-फल में स्थित हुआ। (फिर) :—

"सुचरित धर्म का आचरण करे, दुश्चरित धर्म (=धर्म) का आचरण न करे। धर्मचारी (पुरुष) इस लोक और परलोक में सुख पूर्वक सोता है।" इस गाथा को सुन कर राजा सकृदागामी फल में प्रतिष्ठित हुआ। महाधम्मपाल

जातक¹ को सुन कर अनागामी फल में प्रतिष्ठित हुआ। अन्त में मृत्यु के समय, श्वेत छत्र के नीचे, सुन्दर शय्या पर लेटे ही लेटे अर्हत् पद को प्राप्त हुआ। राजा को एकान्तवास कर योगाभ्यास आदि प्रयत्न नहीं करना पड़ा। (उसने) स्रोत-आपत्ति-फल का साक्षात्कार कर, भगवान् का पात्र ले, सपरिषद् भगवान् को महल पर ले जाकर, उत्तम खाद्य भोजन कराये। भोजन के बाद एक राहुल-माता को छोड़, और सभी रनिवास ने आ आ कर भगवान् की वन्दना की। वह परिजन द्वारा—'जाओ, आर्यपुत्र की वन्दना करो' कहने पर 'यदि मेरे में गुण है, तो आर्यपुत्र स्वयं मेरे पास आवेंगे; आने पर ही वन्दना करूँगी' कह न गई।

भगवान् राजा को पात्र दे, दो प्रधान शिष्यों (=सारिपुत्र, मौद्गल्यायन) के साथ, राजकुमारी के शयनागार (=श्री गर्भ) में जा 'राजकन्या को यथारुचि वन्दना करने देना, कुछ न बोलना' कह बिछे आसन पर बैठे। उसने जल्दी से आ पैर पकड़ कर, सिर को पैरों पर रख, अपनी इच्छानुसार वन्दना की। राजा ने भगवान् के प्रति राजकन्या के स्नेह-सत्कार आदि गुण को कहा—'भन्ते! मेरी बेटी आपके काषाय-वस्त्र पहिनने को सुन कर, तभी से काषाय-धारिणी हो गई। आपके एक बार भोजन करने को सुन, एकाहारिणी हो गई। आपके ऊँचे पलङ्ग के छोड़ने की बात सुन, तख्ते पर सोने लगी। आपके माला, गन्ध आदि से विरत होने की बात सुन, माला गन्ध आदि से विरत हो गई। अपने पीहर वालों के 'हम तुम्हारी सेवा सुश्रूषा करेंगे' ऐसा पत्र भेजने पर एक सम्बन्धी को भी नहीं देखती! भगवान्! मेरी बेटी ऐसी गुणवती है।"

'महाराज! इसमें (कुछ) आश्चर्य नहीं, इस समय तो आपकी सुरक्षा में रह, परिपक्व ज्ञान के साथ राजकन्या ने अपनी रक्षा की है। पहले तो बिना किसी रक्षक के, अपरिपक्व ज्ञान रखते भी, पर्वत के नीचे विचरते समय अपनी रक्षा की थी" यह 'चन्द किन्नर जातक'² कहा, बुद्ध आसन से उठ कर चले गये।

दूसरे दिन (नन्द) राजकुमार का अभिषेक, गृहप्रवेश, विवाह—ये तीन मंगल-उत्सव थे। उस दिन, भगवान् नन्द के घर जाकर, उसे प्रव्रजित करने

---

¹ जातक (४४७)।   ² जातक (४८५)।

की इच्छा से नन्दकुमार के हाथ में पात्र दे मंगल कह, आसन से उठ कर चल पड़े। (नन्द की नव वधू) जनपद-कल्याणी ने कुमार को पीछे जाते देखा पर, "आर्य पुत्र ! जल्दी आइयो" कह गर्दन बढ़ा कर देखने लगी। राजकुमार भी (सकोचवश) भगवान् को 'पात्र ग्रहण कीजिये' न कह, विहार (तक) चला गया। उसकी (अपनी) इच्छा न रहने पर भी भगवान् ने उसे प्रव्रजित किया। इस प्रकार भगवान् ने कपिलपुर जाने के तीसरे दिन नन्द[1] को साधु बनाया।

(१३) पुत्र को दाय-भाग

सातवें दिन राहुल-माता ने (राहुल) कुमार को अलंकृत कर, भगवान् के पास यह कह कर भेजा, "तात ! देख ! बीस हज़ार साधुओं श्रमणों के मध्य में (जो वह) सुनहले उत्तम रूप वाले साधु (=श्रमण) हैं वही तेरे पिता हैं। उनके पास बहुत से खज़ाने थे, जो उनके (घर से) निकलने के बाद से नहीं दिखाई देते। जा, उनसे विरासत माँग। (उनसे कह) "तात ! मैं (राज-) कुमार हूँ। अभिषेक प्राप्त करके चक्रवर्ती (-राजा) बनना चाहता हूँ। मुझे धन चाहिए। धन दें। पुत्र पिता की सम्पत्ति का स्वामी होता है।" कुमार भगवान् के पास जा, पिता का स्नेह पा प्रसन्न-चित्त हो, "श्रमण ! तेरी छाया सुखमय है" कह और भी अपने अनुकूल (कुछ कुछ) कहता खड़ा रहा।

भगवान् भोजन के बाद (दान का) महत्त्व कह आसन से उठ कर चले गये। कुमार भी, 'श्रमण ! मुझे दायज दें। श्रमण ! मुझे दायज दें।' कहता भगवान् के पीछे पीछे हो लिया। भगवान् ने कुमार को नहीं लौटाया। परिजन भी उसे भगवान् के साथ जाने से न रोक सके। इस प्रकार वह भगवान् के साथ आराम तक चला गया। भगवान् ने सोचा—"यह पिता के पास के जिस धन को माँगता है, वह (धन) सांसारिक है, नाशवान है। क्यों न मैं इसे बोधिमण्ड में मिला अपना सात प्रकार का आर्य-धन[2] दूँ। इसे अलौकिक दायाद्य का स्वामी बनाऊँ (ऐसा सोच) आयुष्मान् सारिपुत्र को कहा—"सारि-

---

[1] सिद्धार्थ की मौसी और सौतेली माँ महागोतमी प्रजापती का पुत्र।

[2] श्रद्धा, शील (=सदाचार), लज्जा, निन्दा-भय, (बहु-)श्रुत होना, त्याग तथा प्रज्ञा।

पुत्र ! तो लो राहुल-कुमार को साधु बनाओ।" राहुल-कुमार के साधु होने पर राजा को अत्यन्त दुःख हुआ। उस दुःख को न सह सकने के कारण राजा ने (उसे) भगवान से निवेदन कर, वर माँगा—"अच्छा भन्ते ! आर्य (भिक्षु लोग) माता पिता की आज्ञा के बिना (उनके) पुत्र को प्रव्रजित न करें" भगवान ने राजा को वह वर दिया।

फिर एक दिन (भगवान्) राज-महल में प्रातःकाल के भोजन के लिए गये। (भोजन) कर चुकने पर, एक ओर बैठे राजा ने कहा—"भन्ते ! आपके दुष्कर तपस्या करने के समय, एक देवता ने मेरे पास आ कर कहा कि तुम्हारा पुत्र मर गया। उनके वचन पर न विश्वास करके उसके वचन का खण्डन करते हुए मैंने कहा 'मेरा पुत्र बुद्ध-पद प्राप्ति किये बिना मर नहीं सकता'।

ऐसा कहने पर, भगवान् ने कहा, "जब तुमने उस समय में, हड्डियाँ दिखा कर, 'तुम्हारा पुत्र मर गया' कहने पर विश्वास नहीं किया, तो अब क्या विश्वास करोगे?" इसी अर्थ को स्पष्ट करने के लिए (भगवान् ने) महाधम्मपाल जातक[1] कहा। कथा की समाप्ति पर राजा अनागामिफल में स्थित हुआ।

(१४) अनाथपिण्डिक का दान

इस प्रकार पिता को तीन फलों में स्थापित कर, भिक्षुसंघ सहित भगवान् (कपिलवस्तु से चल कर) फिर एक दिन राजगृह का सीतवन में ठहरे। (उस) समय, अनाथपिण्डिक गृहपति पाँच सौ गाड़ियों में माल भर, राजगृह का अपने प्रिय मित्र सेठ के घर ठहरा था। वहाँ उसने भगवान् बुद्ध के उत्पन्न होने की बात सुनी। फिर अत्यन्त प्रातःकाल (उठा और) देवताओं के प्रभाव से खुले द्वार से बुद्ध के पास पहुँचा। धर्मोपदेश सुन, स्रोतापत्ति-फल में प्रतिष्ठित हो, दूसरे दिन भिक्षु-संघ सहित बुद्ध को महादान दे, श्रावस्ती आने के लिए भगवान् (=शास्ता) से वचन लिया।

(अनाथपिण्डिक ने) रास्ते में पैंतालिस योजन तक लाख लाख खर्च करके, योजन योजन पर विहार बनवाये। अट्ठारह करोड़ अशर्फी (=सुवर्ण) बिछा कर जेतवन मोल ले, उसने मकान बनवाना आरम्भ किया। (वहीं) बीच में

[1] जातक (४४७)।

दश-बल बुद्ध की गन्धकुटी बनवाई। उसके इर्द गिर्द अस्सी महास्थविरों के पृथक् पृथक् निवास, एक दीवार-दो दीवार-वाली, हंस के आकार की लम्बी शालायें, मण्डप तथा दूसरे बाकी शयनासन, पुष्करिणियाँ, टहलान (=चङ्कमण), रात्रि के स्थान और दिन के स्थान बनवाये। (इस प्रकार) अट्ठारह करोड़ के खर्च से रमणीय स्थान में सुन्दर विहार बनवा, भगवान् के लिवा लाने के लिए दूत भेजा। भगवान् (=शास्ता) दूत का सन्देश सुन, महान् भिक्षु-संघ के साथ राजगृह से निकल क्रमशः श्रावस्ती नगर में पहुँचे।

महासेठ भी विहार-पूजा की तैयारी (पहले ही से) कर चुका था। उसने तथागत के जेतवन में प्रवेश करने के दिन, सब अलंकारों से अलङ्कृत पाँच सौ कुमारों के साथ, सब अलंकारों से प्रतिमण्डित (अपने) पुत्र को आगे भेजा। अपने साथियों सहित वह, पाँच रंग की चमकती हुई, पाँच सौ पताकायें ले कर बुद्ध के आगे आगे चला। उसके पीछे महासुभद्रा और चूळसुभद्रा (नाम की) सेठ की दो बेटियाँ, पाँच सौ कुमारियों के साथ, पूर्ण-घट ले कर निकलीं। उनके पीछे सब अलंकारों से अलंकृत सेठ की देवी (=भार्या) पाँच सौ स्त्रियों के साथ, भरा थाल लेकर निकली। उसके बाद सफ़ेद वस्त्र धारण किये स्वयं सेठ वैसे ही श्वेत वस्त्र धारण किये अन्य पाँच सौ सेठों को साथ ले, भगवान् की अगवानी के लिए चला।

यह उपासक मण्डली आगे जा रही थी। (पीछे पीछे) भगवान् महाभिक्षु-संघ से घिरे हुए, जेतवन को अपनी सुनहरी शरीर-प्रभा से रञ्जित करते हुए, अनन्त बुद्ध-लीला और अतुलनीय बुद्ध शोभा के साथ जेतवन में प्रविष्ट हुए। तब अनाथपिण्डिक ने उन्हें पूछा—"भन्ते! मैं इस विहार के विषय में कैसे करा करूँ?"

"गृहपति! यह विहार आये हुए तथा न आये हुए भिक्षु-संघ को दान कर दे।"

'अच्छा भन्ते!' कह महासेठ ने सोने की झारी ले, बुद्ध के हाथ पर (दान का) जल डाल, "मैं यह जेतवन विहार सब दिया और सब काल (आगत अना-

---

[1] सेठी नगर का अवैतनिक पदाधिकारी होता था। वह धनिक व्यापारियों में से बनाया जाता था।

गन अनुदिन) के बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को देता हूँ" यह प्रदान किया। शास्ता ने विहार को स्वीकार कर दान की प्रशंसा करते कहा :—

"यह गर्मी सर्दी से, हिंस्र जन्तुओं से, रेंगने वाले (=सर्पादि) जानवरों से, मच्छरों से, बूँदा बाँदी से, वर्षा से और घोर हवा-धूप से रक्षा करता है। यह आश्रय के लिए, सुख के लिए, ध्यान के लिए और योगाभ्यास के लिए (उपयोगी है) इसीलिए बुद्ध ने विहार-दान को श्रेष्ठ-दान (=अग्रदान) कह, उसकी प्रशंसा की है। अपनी भलाई चाहने वाले पुरुष को चाहिए कि सुन्दर विहार बनवाये और उनमें बहु-श्रुतों को निवास कराये और प्रसन्न-चित्त उन सरल चित्त वालों को, अन्न-पान वस्त्र तथा निवास (-शयनासन) प्रदान करे। तब (ऐसा करने पर) वे सब दुःखों के नाश करने वाले, धर्म का उपदेश करते हैं, जिसे जान कर वह मलरहित (=अनाश्रव) परिनिर्वाण को प्राप्त होगा"

इस प्रकार विहार-दान का माहात्म्य कहा।

दूसरे दिन से अनाथपिण्डिक ने विहार-पूजोत्सव आरम्भ किया। विशाखा का प्रासाद का पूजोत्सव चार महीने में समाप्त हुआ। लेकिन अनाथपिण्डिक का विहार-पूजोत्सव नौ महीनों में समाप्त हुआ था। विहार पूजोत्सव में भी अठारह करोड़ ही खर्च हुए। इस प्रकार (उसने) उस विहार ही में चौवन करोड़ धन का दान किया।

पूर्व में भगवान विपस्सी के समय, पुनर्वसुमित्र नामक सेठ ने सोने की ईंटों को सिरे से सिरे लगा कर, (उससे भूमि) खरीद कर, उसी स्थान में योजन भर का संघाराम बनवाया था। भगवान् शिखि के समय श्रीवर्द्ध नामक सेठ ने सोने के फलकों को फैला कर (भूमि) खरीद कर, उसी स्थान पर तीन गव्यूति (६ मील) भर का संघाराम बनवाया था। भगवान् विश्वभू (=वेस्सभू) के समय स्वस्ति (=सोत्थि) नामक सेठ ने सोने के हस्ति-पदों के फैलाव से खरीद कर, उसी स्थान पर आधे-योजन भर का संघाराम बनवाया था। भगवान् ककुसन्ध के समय अच्युत नामक सेठ ने सोने की ईंटों के फैलाव से खरीद कर, उसी स्थान पर गव्यूति (२ मील) भर का संघाराम बनवाया। भगवान् कोनागमन के समय उग्र नामक सेठ ने सोने के कछुओं के फैलाव से खरीद कर, उसी स्थान पर, आधे गव्यूति (एक मील) का संघाराम बनवाया। भगवान् काश्यप के समय में सुमङ्गल नामक सेठ ने सोने की ईंटों के फैलाव से खरीद

कर, उसी स्थान पर सोलह करीस तक का संघाराम बनवाया। लेकिन हमारे भगवान् के समय अनाथपिण्डिक सेठ ने करोड़ों कार्षापणों के फैलाव से खरीद कर, उसी स्थान पर आठ करीस[1] भर में संघाराम बनवाया। यह स्थान सभी बुद्धों से अपरित्यक्त स्थान है। इस प्रकार बोधिमण्ड में सर्वज्ञता-प्राप्ति से महापरिनिर्वाण-मञ्च तक, जिस जिस स्थान पर भगवान् रहे, यह सब 'सन्तिके-निदान' है।

इसीके सम्बन्ध से (आगे) सब जातकों का वर्णन करेंगे।

जातकट्ठकथा की निदान-कथा समाप्त

---

[1] एक करीस = ४ अम्मण। चार अम्मण बीज बोने की जगह।

पहला परिच्छेद

१. अपण्णक वर्ग

१. अपण्णक जातक

अपण्णक (इत्यादि)—यह धर्म-कथा भगवान् ने श्रावस्ती के जेतवन महाविहार में रहते समय कही। किस के कारण यह कथा कही गई? एक सेठ के पाँच सौ तैर्थिक मित्रों के कारण।

क. वर्तमान कथा

एक दिन अनाथपिण्डिक सेठ, अपने पाँच सौ अन्यतैर्थिक[1] मित्रों को साथ ले, बहुत सा गन्ध, माला, लेप, तेल, मधु, मक्खन, वस्त्र-आच्छादन आदि लिवाकर, जेतवन गया। (वहाँ) भगवान् की वन्दना कर, माला आदि से पूजा कर, भिक्षु-संघ को भैषज्य तथा वस्त्र आदि प्रदान कर, बैठने के सम्बन्ध के छः दोषों[2] को छोड़, एक ओर बैठ गया। वे दूसरे मत के शिष्य भी तथागत की वन्दना कर, शास्ता के पूर्ण चन्द्र की शोभा से शोभित मुख, लक्षण और अनुलक्षणों (अनुव्यञ्जनों) से मण्डित, तथा चारों ओर चार हाथ (=व्याम) की दूरी तक प्रभा से प्रकाशित सुन्दर शरीर (=ब्रह्म काय)—जिससे समय समय पर जोड़ा जोड़ा होकर घनी बुद्ध-रश्मियाँ निकलती थीं—को देखते, अनाथपिण्डिक के समीप ही बैठ गये।

---

[1] किसी अन्य पन्थ के अनुयायी।

[2] अत्यन्त समीप, अत्यन्त दूर जिधर से हवा आती हो उधर, ऊँचे स्थान पर, बिल्कुल सामने तथा बिल्कुल पीछे हो कर बैठना—ये बैठने के छः दोष हैं।

दुःख की उत्पत्ति, (३) दुःख का नाश और (४) दुःखनाशक आर्य अष्टांगिक मार्ग। ये हैं मङ्गलप्रद शरण, ये हैं उत्तम शरण, इन शरणों को पा कर (मनुष्य) सारे दुःखों से छूट जाता है॥"[1]

शास्ता ने केवल उन्हें इतना ही धर्मोपदेश नहीं किया; बल्कि यह भी कहा—"उपासको! बुद्धानुस्मृति कर्मस्थान (=योगाभ्यास के लिए मन का विषय), धर्मानुस्मृति कर्मस्थान, संघानुस्मृति कर्मस्थान, स्रोतआपत्ति मार्ग, स्रोतआपत्ति फल, सकृदागामी मार्ग, सकृदागामी फल, अनागामी मार्ग, अनागामी फल, अर्हत्-मार्ग तथा अर्हत् फल, का दायक होता है। (और उस) क्रम से भी धर्मोपदेश कर (अन्त में कहा—) "इस प्रकार की शरण छोड़ कर तुमने अनुचित किया।"

बुद्धानुस्मृति स्रोतापत्ति मार्ग आदि को देते हैं; यह "भिक्षुओ! एक धर्म (=बात) के अभ्यास करने से, बढ़ाने करने से, सम्पूर्ण निर्वेद=विराग, निरोध, उपशमन, अभिज्ञा, सम्बोधि (=परमज्ञान) तथा निर्वाण की प्राप्ति होती है। कौन सा है वह एक धर्म? बुद्धानुस्मृति"[2] आदि सूत्रों से प्रतिपादित करना चाहिए। इस प्रकार भगवान् ने नाना प्रकार से उपासकों को उपदेश दे कहा—"उपासको! पूर्व (काल) में भी मनुष्यों ने (एक बार) तर्क-वितर्क से अयोग्य शरण को शरण समझ ग्रहण किया, और मूनों (=अमनुष्यों) वाले मरुभूमि (=कान्तार) में जा मूनों (=यक्षों) के ग्रास हो बर्बाद हुए। लेकिन उसी मरुभूमि में निर्दोष (=अपण्णक) शरण को अनुकूलता के साथ सम्पूर्ण रूप से ग्रहण करने वाले मनुष्य कल्याण (=स्वस्तीभाव) को प्राप्त हुए।" यह कह (तथागत) चुप हो गये।

तब अनाथपिण्डिक गृहपति आसन से उठ, भगवान् की वन्दना तथा प्रणाम कर, (दोनों) हाथों को जोड़, सिर पर रख, इस प्रकार बोला—"भन्ते! इन उपासकों का इस समय उत्तम शरण को छोड़ वितर्क के पीछे चलना तो हमें मालूम है; लेकिन पूर्व समय में मूनों वाली मरुभूमि में वितर्क के पीछे चलने

[1] धम्मपद, बुद्धवग्ग।

[2] अंगुत्तर निकाय, एकक निपात।

वालों का बर्बाद होना, और निर्दोष-ग्राही (=अपण्णक-ग्राह) ग्रहण करने वालों का कल्याण प्राप्त करना—यह (बात) हमें मालूम नहीं। यह आपको ही मालूम है। भगवान्! अच्छा हो, यदि आप हमें इस बात को आकाश में उदय हुए पूर्ण चन्द्रमा की भाँति प्रकट करें।"

तब भगवान् ने 'गृहपति! मैंने अनन्त (=अप्रमाण) समय तक दस पारमिताओं को पूरा करके, लोगों के सन्देह निवारण के लिए, बुद्ध (=सर्वज्ञता) का ज्ञान प्राप्त किया है। सोने के पात्र (=नालिका) में सिंह के तेल डालने की भाँति अच्छी तरह ध्यान देकर सुनो' कह, सेठ को सचेत कर, बादलों को फाड़ कर निकलते चन्द्रमा की तरह, पूर्व जन्म की छिपी बात को प्रकट किया :—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में काशी देश के बनारस (=वाराणसी) नगर में ब्रह्मदत्त[1] नामक राजा राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व ने (एक) बंजारे (=सार्थवाह) के घर में जन्म ग्रहण किया था। क्रमशः सयाने हो, वह पाँच सौ गाड़ियों से, व्यापार करते हुए विचरते थे। वह कभी पूर्व-देश से अपरान्त देश जाते थे, कभी अपरान्त से पूर्व।

बनारस ही में (एक) और भी बंजारे का पुत्र था, लेकिन वह मूर्ख, जड़ और भोंदू था। उस समय बोधिसत्व ने बनारस से बहुत सा मूल्यवान् माल पाँच सौ गाड़ियों पर लाद, चलने की तैयारी की थी। उस मूर्ख बंजारे के पुत्र ने भी उसी प्रकार, पाँच सौ गाड़ियाँ लाद, चलने की तैयारी की थी। बोधिसत्व ने सोचा यदि यह मूर्ख मेरे साथ साथ जायगा तो एक ही रास्ते से एक हजार गाड़ियों के जाने पर रास्ता काफी न होगा, आदमियों के लिए लकड़ी-पानी तथा बैलों के लिए घास-चारा मिलना कठिन हो जायगा। इसलिए या तो इसे आगे जाना चाहिये या मुझे।

तब उस बालक को बुला, यह बात कह कर पूछा :—हम दोनों एक साथ इकट्ठे नहीं जा सकते तुम आगे जाओगे या पीछे?

---

[1] जातकों में काशी के राजा ब्रह्मदत्त का बहुत उल्लेख है।

उसने सोचा 'आगे जाने में मुझे बहुत लाभ है। बिना बिगाड़े (=अमित्र) रास्ते से जाऊँगा, बैल अछूते तृण खायेंगे, मनुष्यों को तेमन बनाने के लिए अछूते पत्ते मिलेंगे, शान्त (निर्मल) पानी प्राप्त होगा; और मन माने दाम पर सौदा बेचूँगा।' (यह सोच कर) उसने कहा :—"सौम्य! मैं ही आगे जाऊँगा।'

बोधिसत्व ने पीछे जाने में बहुत लाभ देखे। उन्होंने सोचा :—'यह आगे आगे जा कर विषम स्थानों को सम करेगा, मैं उसके गये रास्ते से चलूँगा। आगे जाने वाले बैल पकी कड़ी घास खा लेंगे; इस प्रकार मेरे बैल नये मधुर तृणों को खायेंगे। पत्ते तोड़ लिये गये स्थानों पर, नये उत्पन्न पत्ते, साग भाजी के लिए मधुर होंगे। यह लोग जहाँ पानी नहीं है, ऐसे स्थानों को खोद कर पानी निकालेंगे, सो दूसरों के खोदे हुए कुओं (गढ़ों) से हम पानी पीयेंगे। (वस्तुओं का) मूल्य निश्चित करना वैसा ही है जैसा मनुष्यों की जान लेना होना है। मैं पीछे जा कर इनके निश्चित किये गये मूल्य से सौदा बेचूँगा।" इतने लाभ देख कर उन्होंने कहा :—सौम्य! तुम आगे जाओ।"

"अच्छा! सौम्य!" कह, वह मूर्ख बजारा गाड़ियां को जोत (नगर से) निकला। वह क्रमशः मनुष्यों की बस्तियाँ पार कर कान्तार (=मरुभूमि) के प्रवेश-स्थान पर पहुँचा।

कान्तार पाँच प्रकार के होते हैं —"चोरों का कान्तार, व्याल (=हिंसक जन्तुओं) का कान्तार, भूतों का कान्तार, निर्जल (=निरुदक) और अल्प-भक्ष कान्तार।"

जिस मार्ग पर चोरों का दखल हो, वह चोर-कान्तार (कहा जाता है)। सिंह आदि व्यालों से अधिकृत मार्ग व्याल-कान्तार; जहाँ स्नान करने या पीने के लिए पानी न मिले वह निरुदक कान्तार, भूतों (=अमनुष्यों) वाला मार्ग अमनुष्य कान्तार, और खाने पीने के लायक कंद मूल आदि से शून्य मार्ग अल्प-भक्ष कान्तार। इन पाँच प्रकार के कान्तारों में से वह कान्तार निरुदक-कान्तार तथा अमनुष्य-कान्तार था। इसलिए यह बजारे का लड़का गाड़ियों में बड़े बड़े मटके रखवा, (उन्हें) पानी से भरवा कर (उस) साठ योजन के कान्तार में चला।

कान्तार के बीच में पहुँचने पर, कान्तार में रहने वाले दैत्य ने सोचा कि

यदि मैं इनके साथ के पानी को फेंकता हूँ, तो (इनके) दुर्बल हो जाने पर मैं इस सब को खा सकूँगा। (यह सोच) उसने बिल्कुल सफ़ेद रंग के तरुण बैलों को मनोहर रथ (=यान) में जुतवाया, धनुष-तरकस-ढाल (आदि) हथियार (=आयुध) हाथ में लिये। फिर नीले और सफ़ेद कमलों (की माला को) धारण कर, गीले केश, गीले वस्त्र, दस बारह दैत्यों को साथ ले एक बड़े राजा (=ईश्वर पुरुष) की तरह उस रथ में बैठ कीचड़ में डूबे हुए पहियों के साथ सामने पर हो लिया। उसके आगे पीछे चलने वाले, उसके सेवक (=परि-वारक) भी, गीले केश, गीले वस्त्र, नीले सफ़ेद कमलों की मालायें धारण किये हुए, लाल सफ़ेद कमलों के गुच्छे लिये, पानी तथा कीचड़ की बूँदें टपकाते हुए, और भिस की जड़ें खाते हुए (साथ) चले। जब सामने की हवा चलती थी, तो बनजारा रथ में बैठ, नौकरों (=परिचारकों) के साथ धूली को हटाते हुए आगे आगे चलता था, जब पीछे की हवा चलती थी, तब उसी प्रकार पीछे पीछे चलता था। उस समय तो सामने की हवा थी। इसलिए बनजारा आगे आगे जा रहा था।

दैत्य ने उस बनजारे को आता देख, अपने रथ को रास्ते से एक ओर कर के पूछा—कहाँ जाते हैं? (फिर) कुशल-क्षेम की बातचीत की।

बनजारे ने भी अपने रथ को रास्ते से एक ओर हटा, (अन्य) गाड़ियों को जाने का रास्ता दे, एक ओर खड़े खड़े उस दैत्य से कहा—"जी! हम बनारस से आते हैं" और पूछा—"यह जो आप उत्पल-कुमुद धारण किये, पद्म-पुण्ड-रीक हाथ में लिये, कीचड़ से सने और पानी की बूँदें चुवाते और भिस की जड़ें खाते आ रहे हैं; तो क्या आप लोगों के आने के रास्ते में वर्षा हो रही है? (वहाँ) उत्पल आदि से ढके सरोवर हैं?"

उसकी बात सुन कर दैत्य बोला—'मित्र! यह क्या कहते हो? सामने यह जो हरे रंग की वन-पंक्ति दिखाई देती है, उससे आगे के सारे जंगल में मूसला-धार वर्षा हो रही है। पहाड़ की दरारें भरी हुई हैं। जगह जगह पर पद्म आदि से पूर्ण जलाशय हैं।" फिर आगे पीछे जाती गाड़ियों की ओर, इशारा करके पूछा—"यह गाड़ियाँ ले कर कहाँ जा रहे हो?"

"अमुक देश को।"

इस इस गाड़ी में क्या क्या सौदा है?

"यह (सौदा) है, और यह (सौदा) है।"

"पिछली गाड़ी बहुत भारी मालूम हो रही है। उसमें क्या सौदा है?"

"उसमें पानी है।"

"अभी जो पानी साथ लाये, सो तो अच्छा किया। लेकिन अब यहाँ से आगे पानी की आवश्यकता नहीं। आगे बहुत पानी है। मटकों को फोड़, पानी फेंक सुख से जाओ।"

इस प्रकार की बातचीत कर "आप जाइये, हमें देर होती है" कह, कुछ दूर आ कर, उनकी आँख से ओझल हो, (दैत्य) अपने नगर को ही चला गया।

उस मूर्ख बंजारे ने अपनी मूर्खता के कारण दैत्य की बात मान, मटके फुड़वा, चुल्लू भर भी पानी बाकी न रख, सभी (पानी) फिकवा गाड़ियाँ हँकवाईं। आगे (रास्ते में) ज़रा सा भी पानी न था। आदमी पानी बिना पीड़ित होने लगे। उन्होंने सूर्यास्त तक चलते रह कर, (शाम को) बैलों को खोल, गाड़ियों का घेरा बना खड़ा कर, बैलों को गाड़ियों के पहियों से बाँधा। न बैलों को पानी मिला, न मनुष्यों का भोजन (=यवागू-भात)। दुर्बल मनुष्य जहाँ तहाँ पड़ कर सो रहे। रात होने पर दैत्यों के नगर से (वह) दैत्य आये (और) सब बैलों तथा मनुष्यों को मार, उनका मांस खा, हड्डियाँ (वहीं) छोड़ कर चले गये। इस प्रकार (उस) मूर्ख बंजारे के पुत्र (की मूर्खता) के कारण, वह सब नाश को प्राप्त हुए। उनकी हाथ आदि की हड्डियाँ इधर उधर बिखर गईं, (किन्तु) पाँच सौ गाड़ियाँ जैसी की तैसी खड़ी रहीं।

उस मूर्ख बंजारे के पुत्र के चले जाने के मास आध-मास बाद, बोधिसत्व भी पाँच सौ गाड़ियों के साथ नगर से निकले, और क्रमश: कान्तार के मुख पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने पानी के मटकों में बहुत सा पानी भर लिया (और) अपने तम्बुओं में ढिंढोरा पीट, आदमियों को एकत्रित कर कहा—"बिना मुझे पूछे, एक चुल्लू भर पानी भी काम में न लाना। जंगल में विषैले-वृक्ष भी होते हैं। (इस लिए) किसी ऐसे पत्र, पुष्प या फल को जिसे पहले न खाया हो, बिना मुझ से पूछे कोई न खाय।"

इस प्रकार आदमियों को [illegible] कर पाँच सौ गाड़ियों के साथ मरुभूमि (=कान्तार [illegible]) [illegible]

उस मरुभूमि के मध्य [illegible]

को बोधिसत्व के सार्थ में प्रकट किया। बोधिसत्व ने उसे देखते ही पहचान लिया (और सोचा)—'इस मरुभूमि में जल नहीं है। इसका नाम ही निर्जल-कान्तार है। यह (पुरुष) निर्भय है। इसकी आँखें लाल हैं। (और) इसकी छाया तक दिखाई नहीं पड़ती। निस्सन्देह इसने आगे गये मूर्ख बनजारे के पुत्र का सब पानी फिंकवा, उन्हें पीड़ित कर, उसे मनुष्यों सहित खा लिया होगा। लेकिन यह मेरी पण्डिताई (=बुद्धि) तथा चतुराई (=उपाय-कुशलता) को नहीं जानता।" फिर उससे कहा—'तुम जाओ। हम व्यापारी लोग बिना दूसरा पानी देखे, (साथ) लाये पानी को नहीं फेंकते। जहाँ दूसरा पानी दिखाई देगा, वहाँ इस पानी को फेंक गाड़ियों को हल्का कर चल देंगे।"

दैत्य थोड़ी दूर जा कर, अन्तर्धान हो अपने नगर को चला गया। दैत्य के चले जाने पर आदमियों ने बोधिसत्व से पूछा—'आर्य! यह मनुष्य 'यह हरे रंग वाली वन पाँती दिखाई देती है। उसके आगे मूसलाधार वर्षा बरस रही हैं' कहते हुए, उत्पल-कुमुद आदि की मालायें (धारण किये हुए), पद्म-पुण्डरीक के गुच्छे को (हाथ में) लिये भिस को चबा खाते, भीगे वस्त्र, भीगे-केश, पानी की बूँदें चूते हुए, आते हैं। इसलिए (क्यों न) हम पानी को फेंक, गाड़ियों को हल्का कर, जल्दी जल्दी चलें।"

बोधिसत्व ने उनकी बात न सुन, गाड़ियों को रुकवा, सब मनुष्यों को एकत्रित करवा, (उनसे) पूछा—'क्या तुम में से किसी ने इस कान्तार में तालाब अथवा पुष्करिणी होने की बात पहले कभी सुनी?"

'आर्य! नहीं! यही सुना है कि यह कान्तार निर्जल-कान्तार है।"

"अब कुछ मनुष्य कहते हैं कि इस हरे रंग की वन-पाँती के उस पार वर्षा होती है। (अच्छा, तो) वर्षा की हवा कितनी दूर तक चलती है?"

"आर्य! योजन भर।"

"क्या किसी एक (जने) के शरीर को भी वर्षा की हवा लग रही है?"

"आर्य! नहीं।"

"बादल का सिर (=मेघ शीर्ष) कितनी दूर तक दिखाई देता है?"

"आर्य! योजन भर।"

"क्या किसी को एक भी बादल दिखाई दे रहा है।"

"आर्य! नहीं।"

"बिजली कितनी दूर तक दिखाई देती है ?"

"आर्य ! चार पाँच योजन तक।"

"क्या किसी को बिजली का प्रकाश दिखाई पड़ा है ?"

"आर्य ! नही।"

"बादल की गर्ज कितनी दूर तक सुनाई देती है ?"

"आर्य ! एक दो योजन भर।"

"क्या किसी को बादल की गर्ज सुनाई दी है ?"

"आर्य ! नही।"

"यह मनुष्य नही, यह दैत्य (थे)। (वह) हमारा पानी फिकवा कर, दुर्बल कर, (हमें) खाने के विचार से आये होंगे। आगे जाने वाला मूर्ख बनारे का पुत्र चतुर (=उपाय-कुशल) नहीं था। इन्होने अवश्य पानी फिकवा, पीडा दे, उसे खा लिया होगा। उसकी पाँच सौ गाड़ियाँ जैसी की तैसी भरी खडी होंगी। आज हम उन्हें देखेंगे। चुल्लू भर पानी भी बिना फेंके (गाड़ियो को) हाँको" (कह) हँकवाया।

फिर जाते हुए, उन्हों(=बोधिसत्त्व) ने जैसी की तैसी भरी हुई पाँच सौ गाड़ियाँ, तथा बैलो और आदमियो के हाथो आदि को हड्डियो को इधर उधर बिखरा देख, गाड़ियाँ खुलवा दी। गाड़ियो के इर्द गिर्द घेरे में तम्बू तनवा दिन रहते ही आदमियों और बैलो को शाम का भोजन खिलवा, मनुष्यों के (घेरे के) बीच में बैलो को बँधवा-सुलवा स्वय सर्दारो (बलनायकों) सहित हाथ में खड्ग ले, रात्रि के तीनो याम पहरा देते, खड़े ही खड़े सवेरा कर बैलो को खिला, कमजोर गाड़ियों को छोड, (उनकी जगह) मजबूत को ले, कम मोल का सौदा छोड (उसकी जगह) अधिक दाम वाले सौदे को लाद, जहाँ जाना था, उस स्थान पर चल गये। सामान को दुगुने-तिगुने मोल पर बेच, सारी मडली को (साथ) ले फिर (सानद) अपने नगर को लौट आये।

यह कथा कह कर बुद्ध (शास्ता) ने कहा—गृहपति ! इस प्रकार पूर्व काल में विनर्क के पीछे चलने वाले सर्वनाश को प्राप्त हुए, लेकिन यथार्थ-ग्राही लोग दैत्यों के हाथ से बच कर, सकुशल इच्छित स्थान पर जा, फिर अपने स्थान पर लौट आये।

इस प्रकार इन दो कथाओं को मिला, पूर्वापर कथा सम्बन्ध छोड, सम्बुद्ध

हो जाने पर इस यथार्थ (=अपण्णक)-धर्म-उपदेश के सम्बन्ध में यह गाथा कही—

अपण्णकं ठानमेके दुतियं आहु तक्किका।
एतदञ्ञाय मेधावी तं गण्हे यदपण्णकं॥

[कुछ (पंडित) लोग यथार्थ (=अपण्णक) ठान (=स्थान) कह रहे हैं; तार्किक लोग दूसरी (अयथार्थ)। यह जान कर बुद्धिमान् पुरुष, जो यथार्थ है, उसे ग्रहण करें।]

इसमें जो 'अपण्णक' (शब्द) है, उसका अर्थ है=ऐकांतिक, अविरोधी नैर्याणिक (=निर्वाण को प्राप्त करने वाला)। ठान (=स्थान) का मतलब है, बात या कारण। 'कारण' को 'स्थान' इसलिए कहते हैं, क्योंकि 'फल' उस कारण के अधीन हो कर ठहरता है। 'स्थान को स्थान, अस्थान को अस्थान समझ कर'[1] इत्यादि में 'स्थान' का जो भावार्थ है (=प्रयोग) है, उसे भी जानना चाहिये। यहाँ 'अपण्णक ठान' इन दो शब्दों का मतलब है, सारे हितों सुखों का दाता, पंडितों द्वारा आचरित जो एकांतिक कारण है, यथार्थ कारण है, नैर्याणिक-कारण है। संक्षेप रूप से यह (अर्थ) है। विस्तार से तो (बुद्ध, धर्म, संघ इन) तीन की शरण जाना, (गृहस्थों को) पाँच शील (=सदाचार), (साधुओं को) दस शील (पालन करना), प्रातिमोक्ष (=भिक्षु-नियमों) से (अपनी) रक्षा करना (=संवर), इन्द्रिय-संयम, शुद्ध जीविका रखना, विहित वस्तुओं (=प्रत्ययों) का सेवन, सभी चारों प्रकार की शुद्धता वाला शील, इन्द्रियों का संयम (=गुप्त द्वारता), भोजन की (उचित) मात्रा का ज्ञान, जागरूक रहना, ध्यान, विदर्शना, अभिज्ञा, समापत्ति (=समाधि), आर्य (अष्टांगिक) मार्ग, मार्ग-फल—यह सब अपण्णक बातें (=स्थान) अपण्णक रास्ता (प्रतिपदा), नैर्याणिक रास्ता (है) यह अर्थ है। क्योंकि यह 'अपण्णक-प्रतिपदा' नैर्याणिक प्रतिपदा का ही

---

[1] अंगुत्तर अट्ठान पाली।

नाम है, इसीलिए भगवान् ने अपण्णक-प्रतिपदा का उपदेश देते हुए यह सूत्र[1] कहा है—

"भिक्षुओ ! तीन धर्मों (=बातों) से युक्त भिक्षु अपण्णक (=यथार्थ) प्रतिपदा में लग कर, अपने चित्त के मलों के विनाश के लिए प्रयत्नशील होता है। कौन से तीन धर्मों से ? भिक्षुओ ! भिक्षु इन्द्रियों को वश में रखता है, भोजन की (उचित) मात्रा का जानकार होता है। सचेत रहता है। भिक्षुओ ! भिक्षु कैसे इन्द्रियों को वश में रखता है ? भिक्षुओ ! जब भिक्षु रूप (=स्थूल वस्तुओं) को देख कर, उसके आकार (=निमित्त) को ग्रहण नहीं करता.. . इस प्रकार भिक्षुओ ! भिक्षु इन्द्रियों को वश में रखता है। भिक्षुओ ! भिक्षु कैसे भोजन की (उचित) मात्रा का जानकार होता है ? भिक्षुओ ! जब भिक्षु सोच-समझ कर आहार ग्रहण करता है, न तो मस्ती के लिये, न अभिमान के लिये . । इस प्रकार भिक्षुओ ! भिक्षु भोजन की (उचित) मात्रा का जानकार होता है। भिक्षुओ ! भिक्षु कैसे सचेत (=जागरूक) रहता है ? भिक्षुओ ! भिक्षु दिन में टहलता और बैठता......। इस प्रकार भिक्षुओ ! सचेत होता है।"

इस सूत्र में तीन ही धर्म कहे गए हैं। लेकिन यह अपण्णक-प्रतिपदा अर्हत्-फल की प्राप्ति तक रहती है। यहाँ अर्हत्-फल भी फल-समाधि तथा उपाधि-रहित-निर्वाण की प्राप्ति के मार्ग (=प्रतिपदा) का ही नाम है।

कुछ (=एके) इस शब्द का मतलब है पण्डितजन। अमुक पण्डितजन, इस प्रकार का कोई नियम नहीं। लेकिन यहाँ पर 'एक' शब्द का प्रयोग मंडली सहित बोधिसत्व के ही लिए जानना चाहिये। तार्किक लोगों ने दूसरा ही कहा है (=दुतियं आहु तक्किका)—दूसरा अर्थात् पहले कहे गये अपण्णक स्थान, नैर्याणिक-कारण से भिन्न (=दूसरा) तर्क के पीछे चलना, अनैर्याणिक कारण। तार्किकों ने कहा (=आहु तक्किका) इसे यहाँ पहले शब्द (= दुतिय) से मिला कर पढ़ना चाहिये। अपण्णक स्थान=प्रतिरोधी बात=नैर्याणिक बात-को-बोधिसत्व आदि कुछ बुद्धिमान् (=पण्डित) मनुष्यों ने ग्रहण किया।

---

[1] अंगुत्तर निकाय, तिक निपात।

अपण्णक प्रतिपदा, तथा चार दुर्गतियों (=अपायों) और पाँच नीच-कुलों[1] में जन्म देने वाली सपण्णक प्रतिपदा इस प्रकार यथार्थ (=अपण्णक) धर्म का उपदेश कर, चारों आर्य सत्यों को, सोलह प्रकार से प्रकाशित किया। चारों सत्यों (के प्रकाशित करने के) के अन्त में, वह सब पाँच सौ उपासक स्रोत-आपन्न हो गये।

बुद्ध ने इस धर्म-उपदेश को दिखला कर, दो कथाएँ कह, तुलना कर, जातक का सारांश निकाला।

उस समय का मूर्ख बंजारा देवदत्त था। उसकी मण्डली देवदत्त की मण्डली थी। (इस समय की) बुद्ध की मण्डली, बुद्धिमान् (=पण्डित) बंजारे की मण्डली थी। और बुद्धिमान् बंजारा तो मैं ही था। (यह कह) भगवान् ने धर्म-उपदेश समाप्त किया।

२. वण्णुपथ जातक

"अकिलासुनो" इत्यादि यह धर्म-कथा भगवान् ने श्रावस्ती में विहार करते समय कही। किस के लिए ? एक शिथिल-प्रयत्न भिक्षु के लिए।

क. वर्तमान कथा

बुद्ध के श्रावस्ती में विहार करते समय एक श्रावस्ती-निवासी कुल-पुत्र (=सभ्रान्त तरुण) ने जेतवन जा कर बुद्ध (=शास्ता) के पास जा धर्म-उपदेश सुना, और प्रसन्न-चित्त (हो) इन्द्रिय-सम्बन्धी भोगों (=कामों) में दोष देख, साधु हो, भिक्षु-दीक्षा (=उपसम्पदा) ग्रहण की। पाँच-वर्ष बीत

---

[1] (१) बाँस का काम करने वाले, (२) नेषाद, (=मल्लाह), (३) रथ-कार, (४) मेहतर, (५) चाण्डाल।

जाने पर दो मातृकायें[1] और विदर्शना-क्रम को सीख, बुद्ध से अपने चित्त के अनुकूल योगक्रिया (=कर्मस्थान) ग्रहण की। फिर एक जंगल में प्रविष्ट हो, वर्षावास के तीन महीने तक साधना में लगे रहने पर भी अवभास-मात्र[2] या निमित्त-मात्र भी न उत्पन्न कर सका।

तब उसके मन में यह विचार हुआ—"बुद्ध ने चार प्रकार के व्यक्ति कहे हैं। मैं शायद चौथी प्रकार का—पदपरम—व्यक्ति होऊँगा। मालूम होता है मैं इस जन्म में मार्ग या फल कुछ नहीं प्राप्त कर सकूँगा। तो फिर मैं जंगल में रह कर ही क्या करूँगा? (इसलिए) बुद्ध के पास जा, उनके अति सुन्दर शरीर को देखते तथा (उनके) मधुर धर्मोपदेश को सुनते हुए विचरूँगा।" (यह सोच) फिर जेतवन वापिस चला गया।

तब परिचितों तथा मित्रों ने उससे पूछा—"आयुष्मान्! तू योगाभ्यास (=श्रमणधर्म) करने के लिए भगवान् (=शास्ता) से योगविधि (=कर्मस्थान) ले कर गया था; लेकिन अब लौट कर संघ के साथ घूम रहा है। क्या तेरे साधु होने (=प्रव्रज्या) का उद्देश्य पूरा हो गया है? क्या तू जन्म-ग्रहण से मुक्त हो गया है?"

"आयुष्मानो! मैंने मार्ग या फल नहीं प्राप्त किया। यह सोच, कि (शायद) मैं इनके योग्य नहीं हूँ, मैं अभ्यास को छोड़ चला आया हूँ।"

"आयुष्मान्! दृढ़ पराक्रमी-उपदेशक के धर्म (=शासन) में साधु बन कर तू ने, जो प्रयत्न करना छोड़ दिया, यह उचित नहीं किया। आ तुझे तथागत के पास ले चलें" कह, उसे शास्ता के पास लिवा ले गये।

शास्ता ने उसे देख कर कहा—"भिक्षुओ! तुम इस अनिच्छुक भिक्षु को ले कर आये हो। इस भिक्षु ने क्या (अपराध) किया है?"

"भन्ते! यह भिक्षु ऐसे उबारने वाले (=नैर्याणिक) धर्म में साधु बन, योगाभ्यास (=श्रमण-धर्म) करते करते उस प्रयत्न को छोड़ कर, लौट आया है।"

---

[1] भिक्षु-प्रातिमोक्ष तथा भिक्षुणी-प्रातिमोक्ष

[2] ध्यान के विषय (=object) का अवभास अथवा साकार रूप दिखाई देना।

तब भगवान् ने उससे पूछा—"क्या सचमुच भिक्षु! तूने प्रयत्न ढीला कर दिया।"

"हाँ सचमुच! भगवान्!"

"भिक्षु! ऐसे धर्म में साधु हो तू अपने को 'अल्पेच्छ', 'सन्तुष्ट', 'एकान्त-प्रिय' वा 'प्रयत्नवान्' न बना, क्यों आलसी भिक्षु प्रकट कर रहा है? क्या तू पूर्व-जन्म में उद्योगपरायण नहीं था? (पूर्व जन्म में) तेरे अकेले के उद्योग से मरुभूमि में पाँच सौ गाड़ियों के आदमी और बैल पानी पाकर सुखी हुए थे। अब तू किस लिए हिम्मत हार रहा है?"

वह भिक्षु (भगवान् की) इस बात से सँभल गया।

यह बात सुन कर भिक्षुओं ने भगवान् से प्रार्थना की—"भन्ते! इस समय इस भिक्षु का हिम्मत-हार बैठना तो प्रकट है, लेकिन पूर्व-जन्म में इस अकेले के प्रयत्न से मरुभूमि में बैलों और मनुष्यों का पानी पाकर सुखी होना हमें मालूम नहीं। वह आपके सर्वज्ञ (=सर्वज्ञता) के ज्ञान को ही प्रकट है। हमें भी वह बात (=कारण) कहिये।"

"तो भिक्षुओ! सुनो।" (वह) भगवान् ने उन भिक्षुओं को ध्यान दिला (उस) पूर्व-जन्म की अज्ञात बात को प्रकट किया—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में काशी देश के बनारस नगर में, ब्रह्मदत्त (राजा) के राज्य करने के समय, बोधिसत्व बनजारे के कुल में पैदा हुए। सयाना होने पर पाँच सौ गाड़ियों के साथ वह व्यापार करने लगे। वह एक दिन साठ योजन वाली मरु-भूमि में जा रहे थे। उस कान्तार का रेत इतना बारीक था कि मुट्ठी में लेने पर हाथ में नहीं ठहरता था। सूर्योदय के समय से (ही) अंगारों की राशि की तरह (इतना) गर्म हो जाता था कि उस पर चला नहीं जाता था। इसलिए उस कान्तार को पार करने वाले लकड़ी, पानी, तिल, चावल आदि को गाड़ियों पर लाद, रात को ही चलते थे। (और) उषा (अरुणोदय) के समय गाड़ियों को घेरे में खड़ी कर, उन पर मण्डप तनवा, समय रहते ही भोजन समाप्त कर, छाया में बैठे बैठे दिन बिताते थे। सूर्यास्त होने पर शाम का भोजन कर, भूमि के

उसने बोधिसत्व की बात मान ली; और सब के हिम्मत छोड़ देने पर भी हिम्मत न हार, नीचे उतर कर पत्थर पर चोट की। पत्थर बीच से टूट कर, नीचे गिर पानी के सोते के बीच में पड़ा। (वहाँ से) ताड़ के तने जितनी (ऊँची) पानी की धारा निकली। सब ने पानी पी, स्नान कर, पुराने धुरे (=अक्ष) और जुए फाड़, खिचड़ी-भात पका कर खाया। बैलों को भी खिलाया। (फिर) सूर्यास्त होने पर, पानी के गड्ढे के पास ध्वजा गाड़, इच्छित स्थान को गये। वहाँ उन्होंने सौदे को बेच, दुगुणा, चार गुणा मुनाफ़ा उठाया; और फिर अपने निवास स्थान को लौट आये।

वहाँ अपनी आयु भर जी कर, कर्मानुसार गति को प्राप्त हुए। बोधिसत्व भी दान आदि पुण्य-कर्म करके पर-लोक सिधारे। बुद्ध (=सम्यक्सम्बुद्ध) ने बुद्ध-पद प्राप्त कर लेने पर (ही) यह कथा कह, इस गाथा को कहा था—

> अकिलासुनो वण्णुपथे खणन्ता,
> उदङ्गणे तत्थ पपं अविन्दुं।
> एवं मुनी विरियबलूपपन्नो,
> अकिलासु विन्दे हृदयस्स सन्तिं॥

[प्रयत्नशील लोगों ने बालू के मार्ग में खोद कर पानी पाया। इसी प्रकार वीर्य्य-बल से युक्त मुनि प्रयत्नशील हो हृदय की शान्ति को प्राप्त करे।]

इसमें अकिलासुनो का अर्थ है, आलस्यरहित या प्रयत्नशील। वण्णुपथे वण्णु कहते हैं बालू को, सो इसका अर्थ है बालू का मार्ग। खणन्ता=भूमि को खोदता हुआ। उदङ्गणे, इस में उद् जो है, सो निपात है, अङ्गण=मनुष्यों के घूमने का स्थान=खुला प्रदेश। तत्थ [illegible] पपं अविन्दुं का अर्थ है पानी का [illegible] [illegible] मुनी [illegible] [illegible] [illegible]

भी निरालस हो प्रयत्न करने वाला पण्डित-भिक्षु इस ध्यान आदि भेद से कही गई हृदय की शान्ति को प्राप्त करता है। इसलिए भिक्षु ! (जब) पूर्व-जन्म में तू ने (केवल) पानी के लिये प्रयत्न किया, तो अब इस प्रकार के उबारने वाले (=नैर्याणिक) धर्म (=शासन) में मार्ग-फल की प्राप्ति के लिये क्यों हिम्मत हारता है ?' इस प्रकार धर्मोपदेश के बाद (भगवान् ने) चारों (आर्य-सत्यों) की व्याख्या (=प्रकाशन) की। सत्यों की व्याख्या समाप्त होने पर वह हिम्मत हारा भिक्षु अर्हत्व (नामक) उत्तम-फल में प्रतिष्ठित हुआ।

शास्ता ने दोनो कथाएँ सुना, तुलना कर, जातक का सारांश दिखाया—"उस समय हिम्मत न हार कर पाषाण को तोड कर, जन-समूह को पानी देने वाला (मेरा) छोटा-सेवक (चूळुपस्थायक) यही हिम्मत हारा भिक्षु था। बाकी मंडली आज की बुद्ध-मंडली थी। प्रधान बंजारा तो मैं (स्वयं) ही था" कह (धर्म-)उपदेश समाप्त किया।

३. सेरिवाणिज जातक

'इध चेहि नं विराधेसि'—इस धर्म उपदेश को भी भगवान् ने श्रावस्ती में रहते हुए एक हिम्मत हारे भिक्षु के ही सम्बन्ध में कहा था।

क. वर्तमान कथा

पूर्वोक्त प्रकार से ही भिक्षुओं द्वारा (बुद्ध के सम्मुख) लाए जाने पर बुद्ध (=शास्ता) ने उससे कहा—"भिक्षु ! इस प्रकार के मार्ग-फल-दायक धर्म (=शासन) में साधु हो कर भी (यदि) तू हिम्मत हार बैठेगा, तो तू उसी प्रकार चिन्ता को प्राप्त होगा, जैसे लाख के मूल्य की सोने की थाली गँवा कर

सेरि नामक बनिया।" भिक्षुओं ने भगवान् से उस बात के स्पष्ट करने की प्रार्थना की। भगवान् ने पूर्व-जन्म की अज्ञात बात (इस प्रकार) प्रकट की—

ख. अतीत कथा

अब से पाँच कल्प पूर्व बोधिसत्व सेरिव नामक देश में फेरी करने वाले बनिए (के रूप में पैदा) हुए थे। वह सेरिव नामक एक (दूसरे) फेरी करने वाले लोभी बनिये के साथ नील वाहिनी नामक नदी पार कर, अन्धपुर नामक नगर में गया। (दोनों ने) नगर की गलियों को आपस में बाँट लिया। बोधिसत्व अपने हिस्से की गलियों में सौदा बेचते; दूसरा बनिया अपने हिस्से की गलियों में।

उस समय नगर के एक सेठ का परिवार दरिद्र हो गया था। उसके जाति-सम्बन्धी और (उसका) धन नष्ट हो गया। (उस परिवार में) बाकी रह गई थी अपनी दादी के साथ एक लड़की। दोनों जने दूसरों की नौकरी-चाकरी (=मजदूरी) करके पेट पालते थे। लेकिन, उनके घर में पहले महासेठ के उपयोग में आने वाली दूसरे (साधारण) बरतनों में फेंकी हुई एक सोने की थाली थी। चिरकाल से उपयोग में न आने के कारण वह मैली हो गई थी। वह (दोनों) इतना भी नहीं जानती थी कि यह सोने की थाली है। उस समय वह लोभी बनिया "(हाँरे) मोती लो, (हाँरे) मोती लो" (कहता) घूमता हुआ, उस घर के सामने आया। लड़की ने उसे देख कर अपनी दादी से कहा—

"अम्मा! मुझे एक कण्ठा ले दो।"

"अम्मा! हम दरिद्र क्या देकर लेंगे।"

"हमारे पास यह थाली जो है, यह हमारे किसी काम की नहीं है, इसे दे कर ले लें।"

उसने व्यापारी को बुला कर, आसन पर बिठा, वह थाली दे कर कहा— "आर्य! इस (थाली) को लेकर, अपनी बहन को कुछ दे दो।"

व्यापारी ने थाली हाथ में ले, सोने की थाली होगी (सोच) उलट कर, थाली की पीठ पर सूई से रेखा खींची। 'सोने की है' जान, "इनसे मुफ्त में ही थाली लेनी चाहिये" (सोच) कहा, "यह कितने दाम की होगी? यह तो आधे

समय में सेरिवा नामक व्यापारी लाख के मूल्य की सोने की थाली पाकर, उसकी प्राप्ति के लिये प्रयत्न न करके, उसे गँवा कर, (पीछे) अफसोस को प्राप्त हुआ। उसी प्रकार तू भी इस धर्म में, तैयार की गई सोने की थाली के सदृश, मार्ग-मार्ग को प्रयत्न की ढिलाई के कारण न प्राप्त करके, उससे भ्रष्ट हो, चिरकाल तक अनुताप को प्राप्त करेगा। लेकिन यदि प्रयत्न नहीं छोड़ेगा, तो जैसे बुद्धिमान् व्यापारी ने सोने की थाली पाई, वैसे ही (तू भी) मेरे धर्म (=शासन) में नौ प्रकार के अलौकिक (=लोकोत्तर) धर्मों को प्राप्त करेगा।

इस प्रकार बुद्ध (=शास्ता) ने अर्हत्व-प्राप्ति को सर्वोच्च स्थान दे, यह धर्म उपदेश कर चारों (आर्य-)सत्यों की व्याख्या की। सत्यों की व्याख्या समाप्त होने पर, वह हिम्मत हारा भिक्षु अर्हत्व (नामक) सर्वोत्तम (=अग्र) फल में स्थित हुआ। बुद्ध ने भी दोनों कथाएँ सुना, तुलना कर, जातक का सारांश निकाला।

'उस समय का मूर्ख व्यापारी देवदत्त था; और बुद्धिमान् व्यापारी तो मैं ही था', वह उपदेश समाप्त किया।

४. चुल्लसेट्ठि जातक

"अप्पकेनापि मेधावी"—यह धर्म-उपदेश भगवान् ने राजगृह के पास स्थित जीवक के आम्रवन में विहार करते समय चूल पन्थक स्थविर को उद्देश करके कहा।

क. वर्तमान कथा

यहाँ पहले चुल्लपन्थक की उत्पत्ति कहनी चाहिये—राजगृह में एक धन सेठ की लड़की का अपने नौकर से सम्बन्ध था। दूसरों से अपने इस कर्म को

छिपाने के लिये उसने उस के नौकर से कहा—'अब हम यहाँ नहीं रह सकते। यदि मेरे माता पिता इस दोष को जान लेंगे, तो मेरे टुकड़े टुकड़े कर देंगे। चलो हम विदेश निकल चलें।"

(तब वे) दोनों हाथ में हाथ ले चलने योग्य कीमती चीज़ें (सामान) पीछे ले (नगर के) प्रधान द्वार से बाहर हो किसी अपरिचित स्थान में रहने की इच्छा से निकल भागे। उनके एक ही स्थान पर इकट्ठे रहते समय, दोनों के सहवास से (लड़की को) गर्भ हो गया। गर्भ के परिपक्व होने पर उस (लड़की) ने स्वामी से सलाह की—'गर्भ परिपक्व हो गया। जिस स्थान में जाति-सम्बन्धी नहीं हों वैसे स्थान पर प्रसव होने पर हम दोनों को बड़ा कष्ट होगा। चलो पिता के घर चलें।'

वह 'आज चलें, कल चलें' करते करते दिन बिताने लगा। लड़की सोचने लगी—'यह मूर्ख अपने अपराध के भारीपन के कारण जाने से डरता है। माता पिता हर तरह से हितैषी होते हैं। चाहे यह जाए, या न जाए, मुझे जाना चाहिए।' फिर पति के घर से बाहर गये रहने पर घर के सामान को ठीक ठाक कर दिया। अपने पिता के घर चलने की बात पड़ोसियों को कह, रास्ते पर चल पड़ी। तब उस आदमी ने घर लौट कर, स्त्री को न देख, पड़ोसियों से पूछा। पिता के घर जाने की बात सुन, जल्दी जल्दी अनुगमन करते जा, उसे मार्ग में पाया। उस स्थान पर उसे प्रसव हो चुका था "भद्रे! क्या हुआ?" उसने पूछा। 'स्वामी! एक पुत्र हुआ है। अब क्या करना चाहिये? जिस मतलब के लिये हम पिता के घर जा रहे थे, वह काम रास्ते में ही हो गया। अब वहाँ जाकर क्या करेंगे? चलो लौटें।"

फिर दोनों एक साथ ही वापिस लौटे। उस बच्चे के पन्थ में पैदा होने के कारण उसका नाम पन्थक रक्खा गया।

कुछ समय बाद उसे दूसरा गर्भ हो गया। (पहले की भाँति यहाँ भी सारी कथा समझनी चाहिये)।

पन्थ (=मार्ग) में ही उत्पन्न होने के कारण, पहले उत्पन्न हुए (बालक) का नाम महापन्थक और दूसरे का चुल्लपन्थक कर दिया गया। दोनों बच्चों को लेकर, वह अपने निवास स्थान पर लौट आये। पन्थक बच्चों ने दूसरे बच्चों को 'चाचा, नाना, नानी' कहते सुनकर माता से पूछा—'दूसरे बच्चे, 'चाचा,

कि यह भिक्षु न पाठ ही याद कर सका, न स्वाध्याय ही कर सका। उसी कर्म के फल से (इस जन्म में) यह भिक्षु प्रव्रजित होते ही मन्दबुद्धि हो गया। याद किये पद को यह अगले पद के सीखने समय भूल जाता था। उस समय एक ही गाथा को कण्ठस्थ करने का प्रयत्न करते उसे चार महीने बीत गये। तब उसे महापन्थक ने कहा—"पन्थक! तू इस धर्म (=शासन) के योग्य नहीं है। चार महीने में एक गाथा भी तू नहीं सीख सका, तो प्रव्रज्या का उद्देश्य किस प्रकार पूरा करेगा? निकल यहाँ से"—(कह) विहार से निकाल दिया।

बुद्ध शासन के प्रति स्नेह से चुल्लपन्थक गृहस्थ न होना चाहते थे। महापन्थक उस समय भोजन-प्रबन्धक (=भत्त उद्देसक) थे। (एक दिन) कौमार-भृत्य जीवक[1] बहुत गन्धमाला सहित अपने आम्रवन में गया, (वहाँ) बुद्ध की पूजा कर उसने धर्मोपदेश सुना। आसन से उठ, बुद्ध को प्रणाम कर, महापन्थक के पास जाकर पूछा—"भन्ते! (आजकल) भगवान् के साथ कितने भिक्षु हैं।"

"पाँच सौ भिक्षु हैं।"

"भन्ते! बुद्ध सहित पाँचों सौ भिक्षुओं के साथ कल आप मेरे घर पर भिक्षा ग्रहण करें।" स्थविर ने उत्तर दिया—

"उपासक! चुल्लपन्थक नामक (भिक्षु) मन्द-बुद्धि है, मूढ़ है, उसे छोड़ शेष सब का निमन्त्रण स्वीकार करता हूँ।"

चुल्लपन्थक ने सोचा—'स्थविर इतने भिक्षुओं का निमन्त्रण स्वीकार करते हैं, किन्तु मुझे बाहर रख कर, स्वीकार करते हैं। निस्सन्देह मेरे भाई का मन मेरे प्रति बिगड़ा हुआ है। अब मुझे इस शासन (में रहने) से क्या (लाभ)? गृहस्थ हो कर दान आदि पुण्य करते जीवन व्यतीत करूँगा।"

सो वह एक दिन [illegible] दिया। बुद्ध ने [illegible] इस बात को [illegible]

[illegible]

[1] [illegible]

(उनके) पास जा वन्दना की। बुद्ध ने पूछा—"चुल्लपन्थक! इस समय तू कहाँ जा रहा है।"

"भन्ते! मेरे भाई ने मुझे निकाल दिया है, इसलिये मैं गृहस्थ होने जा रहा हूँ।"

"चुल्लपन्थक! तू मेरे आधीन (=पास) प्रव्रजित हुआ है। यदि भाई ने निकाल दिया, तो तू मेरे पास क्यों नहीं आया? आ, गृहस्थ हो कर क्या करेगा? मेरे समीप रहना।" (यह) चुल्लपन्थक को ले कर गन्धकुटी के दरवाजे में दिखा कर कहा—"चुल्लपन्थक पूर्व दिशा की ओर मुँह करके इस कपड़े के टुकड़े पर 'रजो हरणं रजो हरणं' कह, परिमार्जन करते हुए यहीं (बैठे) रहना।" (और फिर) ऋद्धिबल से निर्मित कपड़े का एक परिशुद्ध टुकड़ा, उसे देकर, (उचित) समय की सूचना मिलने पर (स्वयं) भिक्षुसंघ सहित जीवक के घर जा कर बिछे आसन पर बैठे।

चुल्लपन्थक भी सूर्य की ओर देखते, तथा उस वस्त्र के टुकड़े से 'रजो हरणं रजो हरणं' कह पोंछते बैठा रहा। पोंछते पोंछते उसका वह वस्त्र का टुकड़ा मैला हो गया। तब वह सोचने लगा—"यह वस्त्र का टुकड़ा अति परिशुद्ध (था), लेकिन इस शरीर के कारण, अपने पूर्व-स्वरूप को छोड़ इस प्रकार मैला हो गया।" (यह सोच) उसने "सभी संस्कार अनित्य हैं" का ख्याल कर, संस्कारों के क्षय और व्यय पर विचार करते हुए विदर्शना-भावना (=समाधि) बढ़ाई।

बुद्ध ने 'चुल्लपन्थक का चित्त विदर्शना-भावना पर आरूढ़ हुआ' जान, 'चुल्लपन्थक! तू यह ही मत सोच कि यह वस्त्र का टुकड़ा रज (=धूलि, मैल) से रंजित हो गया। तेरे अपने अन्दर भी राग आदि मैल हैं, उनको दूर कर।' यह [illegible] प्रकाश फैलाकर [illegible] हुए [illegible] गाथा कही—

[illegible]

दोसो रजो न च पन रेणु वुच्चति
दोसस्सेतं अधिवचनं रजोति,
एतं रजं विप्पजहित्व भिक्खवो
विहरन्ति ते विगतरजस्स सासने"।
मोहो रजो न च पन रेणु वुच्चति
मोहस्सेतं अधिवचनं रजोति,
एतं रजं विप्पजहित्व भिक्खवो
विहरन्ति ते विगतरजस्स सासने"।

"राग को (मगल) रज (=धूलि) कहते हैं, न कि रेणु को। रज राग का पर्य्यायवाची शब्द है। भिक्षु इस रज से मुक्त हो कर रज-रहित के शासन में विचरते हैं।

द्वेष (=क्रोध) को रज कहते हैं, न कि रेणु को। रज द्वेष का पर्य्यायवाची शब्द है। भिक्षु इस रज से मुक्त हो कर रज-रहित के शासन में विचरते हैं।

मोह को रज कहते हैं, न कि रेणु को। रज मोह का पर्य्यायवाची शब्द है। भिक्षु इस रज से मुक्त हो कर, मोह-रहित के शासन में विचरते हैं।"

गाथाओं की समाप्ति पर चुल्लपन्थक को प्रति सम्भिदा—ज्ञान के सहित अर्हत्व प्राप्त हुआ, और प्रति-सम्भिदा-ज्ञान के साथ ही साथ तीनों पिटकों का भी ज्ञान हो गया।

उसने पूर्व (-जन्म) में राजा हो, नगर की प्रदक्षिणा करते हुए, माथे से पसीना गिरने पर, शुद्ध वस्त्र से माथे को पोंछा। वस्त्र मैला हो गया 'इस शरीर के कारण इस प्रकार का परिशुद्ध वस्त्र अपने पूर्व-स्वरूप को छोड़ मैला हो गया' सोच उसे, 'सब संस्कार (=निर्माण) अनित्य हैं'—ऐसी अनित्य-बुद्धि हुई। इसी कारण से (इस जन्म में भी) उस (की अर्हत्व-प्राप्ति) का साधन (=प्रत्यय) 'रजो हरण' ही हुआ।[1]

कौमारभृत्य जीवक बुद्ध के लिये दक्षिणा का जल लाया। बुद्ध ने 'जीवक! (अभी) विहार में भिक्षु हैं' [illegible]। महापन्थक ने कहा—

---

[1] अनिच्चा वत सङ्खारा।

"भन्ते ! (अब) विहार में (और) भिक्षु नहीं है।"

शास्ता ने कहा—"जीवक ! है।"

जीवक ने आदमी भेजा, 'भणे ! जाओ, देखो तो विहार में भिक्षु है या नहीं ?'

उस समय चुल्लपन्थक ने, 'मेरा भाई 'विहार में भिक्षु नहीं हैं' कहता है, सो उसे विहार में भिक्षुओं का होना दिखाऊँगा'—सोच, सारे आम्रवन को भिक्षुओं से भर दिया। कुछ भिक्षु चीवर-कर्म (चीवर का सीना) कर रहे थे। कुछ भिक्षु चीवर रँग रहे थे। कुछ भिक्षु पाठ कर रहे थे। इस प्रकार एक दूसरे से भिन्न हजारों भिक्षु बना दिये। उस आदमी ने बहुत से भिक्षुओं को देख, लौट कर जीवक से कहा—"आर्य ! सारा आम्रवन भिक्षुओं से भरा पड़ा है।" उस समय चुल्लपन्थक स्थविर—

"सहस्सक्खत्तुं अत्तानं निम्मिनित्वान पन्थको,
निसीदम्बवने रम्मे याव कालप्पवेदना" ॥

[चुल्लपन्थक अपने को भिन्न भिन्न हजार प्रकार का बना, (भोजन के) समय की सूचना मिलने तक रमणीय आम्रवन में बैठे रहे।]

तब बुद्ध ने उस पुरुष से कहा—"विहार जाकर कहो कि शास्ता चुल्लपन्थक को बुलाते हैं।"

उसके जाकर वैसा कहने पर, सहस्रों मुखों से "मैं चुल्लपन्थक, मैं चुल्लपन्थक", की (आवाज) उठी।

आदमी ने लौट कर कहा—"भन्ते ! सब चुल्लपन्थक ही हैं।"

"अच्छा ! तू जाकर, जो पहले बोले मैं चुल्लपन्थक हूँ, उसका हाथ पकड़ लेना। बाकी सब अन्तर्धान हो जायेंगे।"

उस (आदमी) ने वैसा ही किया। उसी समय हजार के हजार भिक्षु अन्तर्धान हो गये। स्थविर आदमी के साथ आये। बुद्ध ने भोजन के बाद जीवक को बुला कर कहा—'जीवक ! चुल्लपन्थक का पात्र ग्रहण कर। चुल्लपन्थक तुझे [illegible] अनुमोदन करेगा।'

जीवक ने वैसा ही किया। स्थविर ने [illegible]

[illegible] बोलो [illegible]

बुद्ध भिक्षु-संघ के साथ आसन से उठ, विहार में गये। वहाँ भिक्षुओं ने (अपना माध्याह्निक) सम्मान प्रदर्शित किया। फिर आसन से उठ कर (भगवान् ने) गन्धकुटी के सामने खड़े हो, भिक्षुसंघ को सुगतोपदेश (=बुद्धोपदेश) दे, कर्मस्थान[1] बता, भिक्षुसंघ को उत्साहित कर, सुगन्धित गन्धकुटी में प्रवेश कर दाहिनी करवट लेट सिंह-शय्या से शयन किया। तब शाम को, धर्म-सभा में, भिक्षु इधर उधर से एकत्र हुए। लाल बनात की कनात पसारने से, बैठ कर, वह बुद्धता के गुण को वर्णन कर रहे थे—"आवुसो! महापन्थक ने चुल्लपन्थक की प्रवृत्ति (=अध्यास) न जानी; और (यह चार महीनों में एक भी गाथा कण्ठस्थ न कर सका, इसलिये, मूढ़ है सोच विहार से निकाल दिया। लेकिन सम्यक् सम्बुद्ध ने अतुलनीय धर्मराज होने के कारण, प्रातःकाल और मध्याह्न के भोजन के समय के भीतर ही उसे प्रतिसम्भिदा-ज्ञान सहित अर्हत्व प्रदान कर दिया, और प्रति-सम्भिदा-ज्ञान के साथ ही उसे त्रिपिटक (का ज्ञान) भी आ गया। अहो! बुद्धों के बल की महानता!"

तब भगवान् ने यह जान कि धर्म-सभा में इस प्रकार की बातचीत हो रही है, सोचा कि आज मुझे भी वहाँ जाना चाहिए। उन्होंने बुद्ध-शय्या से उठ सुरक्त संघाटी धारण की, बिजली के सदृश (चमकदार) पट्टी (=काय बन्धन) को बाँधा, लाल बनात (कम्बल) सदृश अपने महा-चीवर को पहना, और फिर सुगन्धित गन्धकुटी से निकले। मस्त हाथी का पीछा करने वाले सिंह के समान, अनन्त बुद्ध-लीला के साथ, वह धर्म-सभा में पहुँचे। (वहाँ सभा में आकर) अलंकृत मण्डप के बीच में अच्छी तरह बिछाये श्रेष्ठ बुद्धासन पर बैठ, छः वर्ण की बुद्ध-किरण फैलाते, समुद्र-गर्भ को प्रकाशित करने वाले, युगन्धर पर्वत के शिखर पर स्थित बाल-सूर्य की भाँति, आसन के बीच में विराजमान हुए। सम्यक् सम्बुद्ध के आते ही भिक्षु सब बातचीत छोड़ चुप हो गया। शास्ता ने मृदु, मैत्रीपूर्ण चित्त से परिषद् को देख कर सोचा—"यह परिषद् अति सुन्दर सजी है। किसी एक में भी हाथ की चञ्चलता नहीं; पैर की चञ्चलता नहीं, खाँसने का शब्द या छींकने का शब्द नहीं। सभी बुद्ध का

---

[1] योग विधियाँ।

गौरव करने वाले हैं। सभी बुद्ध के तेज से प्रभावित हैं। मेरे आयु-भर तक भी चुप रहने पर, यह पहले बोलना आरम्भ न करेंगे। मुझे ही बातचीत आरम्भ करने का विषय ढूंढना चाहिए।" अपने ही प्रथम बोलने का निश्चय कर, भगवान् ने मधुर ब्रह्म-स्वर से भिक्षुओं को आमन्त्रित कर पूछा—"भिक्षुओ! इस समय किस बातचीत में लगे थे? इस समय क्या कथा चल रही थी?"

"भन्ते! यहाँ हम कोई और फजूल (=तिरश्चीन-कथा) बात नहीं कर रहे थे। हम यहाँ बैठे आपका गुणानुवाद ही कर रहे थे, कि 'आयुष्मानो! महास्थविर ने चुल्लपन्थक की प्रकृति..... अहो! बुद्धों के बल की महानता!!!"

शास्ता ने भिक्षुओं की बात सुनकर कहा—"भिक्षुओ! इसी जन्म में चुल्लपन्थक ने मेरे कारण धर्म में महानता (महत्व) प्राप्त की है, पूर्व जन्म में भी मेरे कारण उसने भोगों (=ऐश्वर्य) में महानता प्राप्त की थी।"

भिक्षुओं ने भगवान् से, उस बात को प्रकट करने की प्रार्थना की। तब भगवान् ने पूर्व-जन्म की छिपी हुई बात को प्रकट किया—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में, काशी राष्ट्र के, वाराणसी (नगर) में ब्रह्मदत्त (राजा) के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व एक सेठ परिवार में उत्पन्न हुए थे। बड़े होने पर श्रेष्ठी[1] (=सेठी) का पद पा चुल्लसेठी नाम से प्रसिद्ध हुए। वह पण्डित थे, =व्यक्त थे, सब लक्षणों के जानकार थे। एक दिन उन्होंने राजा की सेवा में जाते समय गली में एक मरे चूहे को देखा। उसी समय नक्षत्र का विचार करके कहा—बुद्धिमान (चक्षुष्मान्) कुलपुत्र इस चूहे को ले जाकर, (अपने) परिवार का पालन कर सकता है; अथवा जीविकोपार्जन के धंधे (=कर्मान्त) में लगा सकता है।

एक दरिद्र कुलपुत्र ने श्रेष्ठी की बात सुन, "यह बिना जाने नहीं कह रहा

---

[1] उस समय का एक राजकीय पद जो कि नगर के प्रसिद्ध धनी पुरुष को मिलता था।

है" (सोच) उस चूहे को एक दुकान पर ले जा बिल्ली के (खाने के) लिये दे डाला। उसके लिए उसे एक काकणी (=कार्षापण का आठवाँ हिस्सा) मिली। उस काकणी से उसने गुड़ खरीदा। फिर एक बरतन में पानी ले जंगल से आते हुए मालियों को देख, उन्हें थोड़ा थोड़ा गुड़ और पानी देने लगा। उन्होंने उसे एक एक मुट्ठी फूल दिये। अगले दिन वह उन फूलों को बेच कर प्राप्त किये मूल्य से, फिर गुड़ और पानी का घड़ा ले कर, पुष्प-उद्यान में ही चला गया। मालियों ने उसे आधे चुने पुष्प-वृक्ष दे दिये।

थोड़े समय में इस उपाय से उसने आठ कार्षापण प्राप्त कर लिये। एक दिन ऐसा हुआ कि आँधी आई, और हवा से राज्योद्यान में बहुत सी सूखी लकड़ी, शाखायें और पत्ते गिर पड़े। माली नहीं जानता था कि उनको कैसे हटवाये। उसने आकर माली से कहा—"यदि यह लकड़ी-पत्ते मुझे दो, तो मैं इन सब को यहाँ से उठवा ले जाऊँ।" "आर्य! ले जाओ।" (कह) उसने स्वीकार कर लिया। तब वह चुल्ल-अन्तेवासिक (=छोटा शिष्य) छोटे लड़कों के खेलने की जगह पर गया। उन्हें (थोड़ा थोड़ा) गुड़ दे, थोड़ी ही देर में लकड़ी-पत्ते उठवाकर उद्यान के द्वार पर ढेर लगवा लिया। उस समय राजकीय कुम्हार राज-परिवार के बर्तनों को पकाने के लिए लकड़ी ढूँढ रहा था। राजोद्यान के द्वार पर जा उसने उन (लकड़ी-पत्तों) को देखा। उन्हें खरीद लिया। उस दिन चुल्ल-अन्तेवासिक को लकड़ी के बेचने से सोलह कार्षापण और चाटी तथा दूसरे पाँच बर्तन मिले। (इस प्रकार) धीरे धीरे उसके पास चौबीस कार्षापण हो गये। उसने सोचा 'मेरे लिये यह एक (अच्छा) ढंग है।' वह नगर-द्वार के समीप एक पानी की चाटी रख पाँच सौ घसियारों (=तृण-हारकों) को पानी पिलाने लगा। वे पूछने लगे "सौम्य, तू ने हमारा बहुत उपकार किया है। हम तेरे लिये क्या करें?"

"काम पड़ने पर कहूँगा (करना)"—वह, इधर उधर घूमते हुए, उसने स्थलपथकर्मिक (स्थल-मार्ग के कर्मचारी)[1] से और जल-मार्ग के कर्मचारी[1] (=जलपथकम्मिक) से मित्रता कर ली।

---

[1] उस समय के राज-पदाधिकारी।

कह, बुद्ध होने की अवस्था में यह गाथा कही—

> अप्पकेनापि मेधावी पाभतेन विचक्खणो,
> समुट्ठापेति अत्तानं अणुं अग्गिं व सन्धमं ।

[(चतुर) मेधावी (पुरुष) थोड़ी सी भी आग को फूँक मारकर बड़ा लेने की तरह, थोड़े से भी मूलधन से अपने को उन्नत कर लेता है ।]

इसमें 'अप्पकेनापि' का अर्थ है थोड़े से भी—परिमित से भी। मेधावी=प्रज्ञावान् । पाभतेन=सामान का मूल्य । विचक्खणो=व्यवहार-कुशल। समुट्ठापेति अत्तानं का अर्थ है बहुत सा धन तथा यश कमा कर, उसपर अपने को प्रतिष्ठित करता है । कैसे ? अणुं अग्गिं व सन्धमं, जैसे बुद्धिमान् आदमी थोड़ी सी आग को भी क्रम से गोबर का चूरा आदि डाल कर, तथा मुँह से फूँक मारकर उठा लेता है, बड़ा करता है, बड़ा अग्नि-पुञ्ज बना लेता है । उसी प्रकार बुद्धिमान् मनुष्य थोड़ा भी मूल प्राप्त कर, नाना (प्रकार के) उपायों से धन और यश की वृद्धि करता है, और वृद्धि कर, उसपर अपने को प्रतिष्ठित करता है अथवा उस महान् धन और यश से अपने को उठाता है, प्रसिद्ध करता है, मशहूर करता है ।"—यह अर्थ है ।

इस प्रकार भगवान् ने, 'भिक्षुओ ! इस जन्म में चुल्लपन्थक ने मेरे कारण धर्म में धर्म की महानता को प्राप्त किया, और पूर्व जन्म में मेरे कारण भोगों (=सम्पत्ति) की महानता तथा यश की महानता को प्राप्त किया' कह, इस धर्मोपदेश को समाप्त कर दोनों कथाओं को मिला, जातक का सारांश निकाल दिया— उस समय का चुल्लअन्तेवासिक (अब) चुल्लपन्थक था और चुल्लकसेट्ठि [illegible] सम्यक् सम्बुद्ध ही

५. तण्डुलनालि जातक

क. वर्तमान कथा

इस (आयु)-सीमा तक के भिक्षु ठहरें', इस स्थान पर, इस सीमा तक के भिक्षु ठहरें, करके पृथ्वी या दीवार पर रेखा खींचना था। अगले दिन शलाका की जगह में भिक्षु (पहले दिन से) कम हो जाते या अधिक हो जाते। उनके कम होने पर रेखा नीचे हो जाती, अधिक होने पर ऊपर। वह सीमा (=ठितिका) का ख्याल न कर, रेखा के चिन्ह के अनुसार शलाका बाँटता। तब उसे भिक्षु कहते—"आयुष्मान् लालउदायी ! रेखा चाहे ऊपर हो, चाहे नीचे, लेकिन अच्छे भोजन मिल चुकने की सीमा अमुक-वर्ष के भिक्षुओं तक है, और खराब-भोजन मिल चुकने की सीमा अमुक-वर्ष के भिक्षुओं तक।" (लाल-उदायी) खीझ कर उत्तर देता—"यदि ऐसा है, तो यह रेखा यहाँ किस लिए है ? मैं तुम्हारा विश्वास थोड़े ही करूँगा। मैं (तो) इस लकीर का विश्वास करूँगा।"

तब नए भिक्षुओं ने और श्रामणेरों ने उसे, "(आयुष्मान् ! लालउदायी) तेरे शलाका बाँटने पर भिक्षुओं के लाभ की हानि होती है। तू बाँटने के योग्य नहीं। यहाँ से निकल" कह, शलाका-बाँटने की जगह से निकाल दिया। उस समय शलाका की जगह पर बड़ा कोलाहल हुआ।

उसे सुन बुद्ध ने आनन्द स्थविर से पूछा—"आनन्द ! शलाका की जगह में बड़ा कोलाहल है। यह क्या शोर है ?" स्थविर ने तथागत को वह बात बताई।

शास्ता ने कहा—"आनन्द ! अपनी मूर्खता से लालउदायी न केवल इस जन्म में दूसरों के लाभ की हानि कर रहा है, बल्कि (इसने) पहले भी ऐसा किया है।" स्थविर ने इस बात को स्पष्ट करने के लिये प्रार्थना की। भगवान् ने पूर्व-जन्म की गुप्त बात प्रकट की—

ख. अतीत कथा

"पूर्व समय में, काशी राष्ट्र के बाराणसी (नगर) में ब्रह्मदत्त (नामक) राजा राज्य करते थे। उस समय हमारे बोधिसत्त्व उस (राजा) के अर्घ-कारक (=मूल्य निश्चित करने वाले appraiser of the prices) थे। (वे) हाथी, घोड़े, मणि, सुवर्ण आदि का मूल्य (निश्चित) करते और मूल्य

करता और दे मालिकों को चीज का उचित मूल्य दिलवाते थे। लेकिन राजा लोभी था, उसने लोभी-स्वभाव होने के कारण सोचा—"यदि यह अर्घकारक मूल्य (निश्चित) करता रहा, तो थोड़े ही समय में मेरे घर का धन नष्ट हो जायेगा। (इसलिए) किसी दूसरे को अर्घकारक रखूँगा।" उसने खिड़की खोल कर राजांगन में देखते हुए एक लोभी मूर्ख गंवार आदमी को वहाँ से जाते देख कर सोचा—"यह मेरा दाम लगाने का काम कर सकेगा।" और फिर उसे बुला कर पूछा—"अरे! क्या तू हमारा दाम लगाने का काम कर सकेगा?"

"देव! कर सकता हूँ"। राजा ने अपने धन की रक्षा करने के लिए उस मूर्ख आदमी को अर्घ-कारक के पद पर स्थापित किया। उस समय से यह मूर्ख अर्घ-कारक हाथी, घोड़े आदि का दाम लगाने लगा. दाम को घटा कर जैसा मन में आता, वैसा कहता था। उसके उस पद पर प्रतिष्ठित होने के कारण, जो कुछ वह कहता, वही चीजों का मूल्य होता।

उस समय एक सरदृ (=उत्तरापथ) घोड़े का व्यापारी पाँच सौ घोड़े लेकर आया। राजा ने उस आदमी को बुलवाकर घोड़ों का दाम लगवाया। उसने पाँच सौ घोड़ों का दाम एक तण्डुल नालिका किया और फिर 'घोड़ों के व्यापारी को एक तण्डुल नालिका दे दो' कह घोड़ों को (राजकीय) अश्व-शाला में भिजवा दिया। घोड़ों के व्यापारी ने पुराने अर्घ-कारक के पास जा, उसे समाचार सुना कर पूछा, कि अब क्या करना चाहिए?

उसने उत्तर दिया—"उस आदमी को रिश्वत देकर, उससे कहो—कि हमारे घोड़ों का मूल्य एक तण्डुल-नालिका है, यह तो हमें मालूम हो गया, अब हम यह जानना चाहते हैं कि आपने जो तण्डुल-नालिका मिली है, उसका क्या मूल्य है? क्या आप राजा के सम्मुख खड़े हो कर, यह कहेंगे कि तण्डुल-नालिका का क्या मूल्य है? यदि कहे कि 'कह सकता हूँ' तो उसे राजा के पास लेकर आओ। मैं भी वहाँ आऊँगा।"

घोड़ों के व्यापारी ने 'अच्छा' कह बोधिसत्व के वचन को स्वीकार कर, अर्घ-कारक को रिश्वत दे यह बात कही। उसने रिश्वत पाकर उत्तर दिया—
[illegible]
[illegible]

घोड़ों के व्यापारी ने राजा को प्रणाम करके कहा—"देव! यह तो हमने जाना कि पाँच सौ घोड़ों का मूल्य एक तण्डुल-नालिका है, अब अर्घकारक से पूछें कि एक तण्डुल-नालिका का क्या मूल्य है?"

राजा ने रहस्य न जानने के कारण पूछा—"अरे अर्घकारक! पाँच सौ घोड़ों का क्या मूल्य है?"

"देव! तण्डुल-नालिका।"

"अरे! पाँच सौ घोड़ों का तो मूल्य तण्डुल-नालिका है, उस तण्डुल-नालिका का क्या मूल्य है?" उस मूर्ख ने उत्तर दिया—"तण्डुल-नालिका का मूल्य है भीतर-बाहर (=सब) वाराणसी।"

राजा का पक्ष लेकर, उसने पहले तो घोड़ों का मूल्य एक तण्डुल-नालिका (स्थिर किया) अब घोड़ों के व्यापारी से रिश्वत लेकर, उस तण्डुल-नालिका का मूल्य अन्दर-बाहर (=सब) वाराणसी किया।

"किमग्घति तण्डुलनालिकाय
अस्सान मूलाय वदेहि राज।
बाराणसिं सन्तरबाहिरन्तं
अयमग्घति तण्डुलनालिका॥"

[राजन्! घोड़ों की कीमत, इस तण्डुल-नालिका का क्या मूल्य है? इस तण्डुल-नालिका का मूल्य अन्दर-बाहर सहित (सारी) वाराणसी है।]

उस समय वाराणसी का शहर पनाह (प्राकार) बारह योजन का था, (और) उसके अन्दर-बाहर का तीन सौ योजन का देश (=राष्ट्र) था। वैसे, उस मूर्ख ने अन्दर और बाहर सहित इतनी बड़ी वाराणसी को तण्डुल-नालिका का मूल्य बताया।

इसे सुन अमात्य ताली पीट कर हँसते हुए कहने लगे—"हम आज तक यही समझते रहे कि पृथ्वी और राज्य अमूल्य (होते) हैं। (लेकिन आज मालूम हुआ) कि इतने बड़े राज्य सहित वाराणसी का मूल्य एक तण्डुल-नालिका मात्र है। अहो! मूल्य करने वाले की प्रज्ञा! इतने समय तक यह अर्घकारक कहाँ (छिपा) रहा। हमारा राजा ही (इसके) योग्य नहीं है।"

उस समय राजा ने लज्जित हो, उस मूर्ख को निकाल, बोधिसत्त्व को ही

"हाँ ! ये सब मेरे हैं ।"

"आवुस ! भगवान् ने (अधिक से अधिक) तीन चीवरों (के रखने) की आज्ञा दी है। इस प्रकार के निर्लोभी बुद्ध के धर्म में साधु हो कर (भी) तू इतना सामान रखता है ?" 'चल, तुझे भगवान् के पास ले चलें' कह उसे शास्ता के पास ले गये ?

शास्ता ने देख कर पूछा—"भिक्षुओ ! क्यों जबरदस्ती इस भिक्षु को ले कर आये हो ?"

"भन्ते ! यह भिक्षु बहुत भाण्ड बटोरे है, बहुत सामान रक्खे है।"

"भिक्षु ! क्या तू सचमुच बहुत सामान रखता है ?"

"भगवान् ! हाँ, सचमुच !"

"भिक्षु ! तू किस लिए, बहु-भाण्डिक हो गया ? क्या मैं निर्लोभता, सन्तोष. . एकान्त-चिन्तन और अभ्यास की प्रशंसा नहीं करता ?"

शास्ता की इस बात को सुन वह भिक्षु क्रुद्ध हो, "तो अच्छा ! अब से मैं इस तरह रहूँगा" कह, ऊपर पहने चीवर को उतार, सभा के बीच में केवल एक चीवर (=अन्तरवासक) धारी हो कर खड़ा हो गया।

तब शास्ता ने उसे सँभालते हुए पूछा—'भिक्षु ! क्या तू ने जल-राक्षस के जन्म में लज्जा तथा निन्दा-भय के साथ विहार करते हुए बारह वर्ष नहीं बिताये ? तो फिर अब इस गौरव-पूर्ण बुद्ध धर्म में प्रव्रजित होकर तू किस लिए चार प्रकार की परिषद् के बीच में पहने हुए चीवर को छोड़, लज्जा-भय त्याग खड़ा है ?"

वह शास्ता के वचन को सुन, लज्जा तथा निन्दा-भय से युक्त हो, उस चीवर को पहन, शास्ता को प्रणाम कर, एक ओर बैठ गया। भिक्षुओं ने भगवान् से उस बात के प्रकट करने की प्रार्थना की। भगवान् ने पूर्व-जन्म की छिपी हुई बात प्रकट की—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में काशी देश में, वाराणसी (बनारस) में ब्रह्मदत्त राजा था। उस समय बोधिसत्व ने उस (राष्ट्र) के [illegible] से जन्म ग्रहण किया।

नाम-करण के दिन उसका नाम महिंसासकुमार रखा। उसके खेल-कूद करते, राजा को एक और भी पुत्र हुआ, जिसका नाम चन्द्रकुमार रखा गया, लेकिन उसके खेल-कूद करते समय ही उसकी माता (बोधिसत्व-माता) मर गई। राजा ने दूसरी पटरानी बनाई। वह राजा को प्रिया तथा अनुकूल थी। राजा के सहवास से उसे एक पुत्र पैदा हुआ, जिसका नाम सूर्यकुमार रखा गया। राजा ने पुत्र को देख, सन्तुष्ट हो, कहा— "भद्रे! तेरे पुत्र को वर देता हूँ।" देवी ने 'इच्छा होने पर मांग लूँगी' कह वर को अमानत रखा। (फिर) पुत्र के सयाने होने पर उसने राजा से कहा— "आपने पुत्र-जन्म के समय मुझे वर दिया था, अब मेरे पुत्र को राज्य दीजिये।"

"प्रज्वलित अग्निपुञ्ज के समान चमकते मेरे दो पुत्र हैं, (उन्हें छोड़ कर) तेरे पुत्र को राज्य नहीं दे सकता"—कह राजा ने इन्कार किया। लेकिन रानी को बार बार याचना करते देख, राजा ने सोचा, 'यह मेरे पुत्रों का बुरा भी सोच सकती है।' (इसलिये) पुत्रों को बुला कर कहा— "तात! मैंने सूर्यकुमार के उत्पन्न होने के समय वर दिया था। अब उसकी माता राज्य मांगती है। मैं उसको नहीं देना चाहता। लेकिन स्त्री-जाति पापिन होती है, वह तुम्हारी बुराई भी सोच सकती है। इसलिए अभी तुम जंगल में चले जाओ, मेरे मरने पर आकर अपने कुल के आधीन (इस) नगर में राज्य करना।" (यह कह) रोते कुमारों के सिरों को चूम, (उन्हें जङ्गल में) भेज दिया।

पिता को प्रणाम कर उन्हें राज-प्रासाद से उतरते समय देख, सूर्यकुमार को भी बात मालूम हो गई। 'मैं भी भाइयों के साथ जाऊँगा' (सोच) वह भी उनके साथ निकल पड़ा।

वह हिमालय में प्रविष्ट हुए। बोधिसत्व ने मार्ग से हट, वृक्ष के नीचे बैठ, सूर्यकुमार को बुला कर कहा— "तात! सूर्य! इस तालाब पर जाओ, वहाँ नहा, पानी पी, हमारे पीने के लिये भी कमल के पत्ते में पानी ले आओ।" उस तालाब को कुबेर (=वैश्रवण) ने एक जल-राक्षस को दिया था; और कुबेर ने उस (राक्षस) को यह कहा था कि देव-धर्म जानने वालों को छोड़, अन्य जो कोई इस तालाब में उतरेंगे, वे (सब) तेरे आहार होंगे; (तालाब में) न उतरने वाले तेरे आहार नहीं होंगे।

तब से वह राक्षस, जो उस तालाब में उतरते, उनसे देवधर्म पूछता।

जो न जानते, उनको खा जाता। सूर्य्यकुमार उस तालाब पर पहुँचा। बिना सोचे विचारे ही, उसमें उतरा। राक्षस ने उसे पकड़ कर पूछा—"तुझे देवधर्म मालूम है ?"

उसने उत्तर दिया—"हाँ जानता हूँ। चाँद सूर्य्य देव-धर्म हैं।"

"तू देव-धर्मों को नहीं जानता" (कह) उसने पानी में प्रवेश कर, उसे अपने वासस्थान पर ले जाकर रक्खा। बोधिसत्त्व ने उसे देर करता देख, चन्द्र-कुमार को भेजा। राक्षस ने उसे भी पकड़ कर पूछा—'तुझे देवधर्म मालूम है ?' "हाँ जानता हूँ। चारों दिशायें देव-धर्म हैं।" राक्षस ने 'तू देव-धर्म को नहीं जानता' कह उसे भी पकड़ कर वहीं रक्खा।

उसके भी देर करने पर "कोई आफत पड़ी" सोच, बोधिसत्त्व अपने आप वहाँ पहुँच, दोनों (जनों) के उतरने के पद-चिन्ह देख, "यह तालाब राक्षस के अधिकार में होगा" (सोच) तलवार निकाल, (तीर-)कमान ले खड़े हो गये। जल-राक्षस ने बोधिसत्त्व को पानी में उतरते न देख जंगल में काम करने वाले मनुष्य का रूप धारण कर, बोधिसत्त्व से पूछा—"महाशय! रास्ते के थके तुम किस लिए इस तालाब में उतर, नहा, (पानी) पी, भिसें खा, फूल को धारण कर सुख पूर्वक (आगे) नहीं जाते ?"

बोधिसत्त्व ने उसे देख, सोचा, "यह वही यक्ष होगा" (और) यह जान कर पूछा—"क्या तू ने मेरे भाइयों को पकड़ रक्खा है ?"

"हाँ, मैंने (पकड़ रक्खा है)।"

"किस कारण से ?"

"इस तालाब में उतरने वालों पर मुझे अधिकार है।"

"क्या सब पर अधिकार है ?"

"जो देव-धर्म जानते हैं, उन्हें छोड़ बाकी सब पर अधिकार है ?"

"क्या तू देव-धर्म (जानना) चाहता है ? यदि चाहता है, तो मैं तुझ से देव-धर्म कहूँगा।"

"तो कहें, मैं देव-धर्मों को सुनूँगा।"

"मैं देव-धर्मों को कहने के लिए तैयार हूँ, लेकिन मेरा शरीर साफ नहीं है।"

यक्ष ने बोधिसत्त्व को नहलाया, भोजन करवाया, पानी पिलाया, फूल धारण कराया, सुगन्धियों का लेप कराया, फिर अलंकृत मण्डप के बीच आसन

प्रदान किया। बोधिसत्त्व ने आसन पर बैठ, दक को पैरों में बिठा, 'तो, देवधर्मों को ध्यान-पूर्वक कान देकर सुनो' कह, इस गाथा को कहा—

हिरिओत्तप्पसम्पन्ना सुक्कधम्मसमाहिता,
सन्तो सप्पुरिसा लोके देव-धम्माति वुच्चरे ॥

[लज्जा और निन्दा-भय से युक्त, शुभ-कर्मों से युक्त (लोगों) को शान्त और सत्पुरुष देव-धर्म कहते हैं।]

यहाँ हिरि ओत्तप्पसम्पन्ना का अर्थ है हिरि (=लज्जा) और ओत्तप्प (=निन्दा-भय) से युक्त। इन (दो शब्दों) में, कायिक दुराचार आदि में जो लज्जा मानना है, यह हिरि (=ह्री) है। 'हिरि' लज्जा का ही पर्य्याय-वाची शब्द है। और उन्हीं (=कायिक दुराचार आदि) से जो डरना है, वह 'ओत्तप्प' है; पाप से उद्विग्न होने का यह पर्य्यायवाची शब्द है। सो हिरि (=लज्जा) अपने (अन्दर) से उत्पन्न होती है; ओत्तप्प (=निन्दा-भय) बाहरी (कारणों) से। हिरि का स्वामी (=आधिपत्य) खुद है; किन्तु ओत्तप्प का स्वामी लोक। हिरि में लज्जा का भाव रहता है; ओत्तप्प में निन्दा-भय का भाव। हिरि का लक्षण है (आत्म-)गौरव (आदि) का भाव, ओत्तप्प का लक्षण है दुष्कर्म (=दोष) करने में भयभीत होना। सो (पुरुष) अपने (अन्दर) से उत्पन्न होने वाली 'हिरि' को चार कारणों से उत्पन्न करता है—जात (=जाति) का विचार करके, आयु का विचार करके, वीरता का विचार करके, तथा (अपनी) बहु-श्रुतता (=पाण्डित्य) का विचार करके। सो कैसे? (प्राणि-हिंसा आदि) पाप-कर्म (ऊँची) जात वालों का काम नहीं, यह केवट आदि नीच जातियों का काम है। मेरी (ऊँची) जात वाले को ऐसा कर्म करना अनुचित है—इस प्रकार जात का विचार कर प्राणि-हिंसा आदि पापकर्म के न करते हुए, हिरि उत्पन्न करता है। पाप-कर्म बच्चों का काम है, सयाने पुरुष के लिए ऐसा करना अनुचित है; इस प्रकार आयु का विचार कर, प्राणि-हिंसा आदि पाप को न करते हुए, हिरि उत्पन्न करता है। पाप-कर्म दुर्बलों का काम है, मेरे जैसे वीर (पुरुष) को इस प्रकार का कर्म करना अनुचित है इस प्रकार वीरता (=शूरता) का विचार कर प्राणि-हिंसा आदि पाप-कर्म को न करते हुए, हिरि उत्पन्न करता है। [illegible]

है—"यह लोक-समूह महान् है। इस लोक-समूह में (ऐसे)
हैं, जो ऋद्धिमान् हैं; दिव्यचक्षु (वाले) हैं, दूसरों के चित्त की ब
वाले हैं। वे (अपने) दूर से भी देख लेते हैं, और स्वयं पास होने
दिखाई देते। वे (अपने) चित्त से, (दूसरों के) चित्त को जान
मुझे जान लेंगे (और कहेंगे), 'भो ! देखते हो। इस श्रद्धा-पूर्वक घ
हो), प्रव्रजित हुए कुल-पुत्र को, जो पाप बुरे-कर्मों से युक्त हो, वि
(और) ऐसे देवता भी हैं, जो ऋद्धि-मान् हैं, दिव्य-चक्षु (वाले) हैं,
चित्त की बात जान लेने वाले हैं। वे तो दूर से भी देख लेते हैं, और
होने पर भी दिखाई नहीं देते। वे (अपने) चित्त से, (दूसरों के)
जान लेते हैं। वे मुझे जान लेंगे, (और कहेंगे)—"भो ! देखते हो
श्रद्धा पूर्वक घर से बेघर (हो) प्रव्रजित हुए कुल-पुत्र को, जो पाप बुरे
युक्त हो, विहरता है।" (इस प्रकार) वह लोक को ही स्वामी (=अधि
मान कर बुराइयों को छोड़ता है, भलाइयों का अभ्यास करता है, सदो
छोड़ता है, निर्दोष-कर्म का अभ्यास करता है, अपने आपको पवित्र
रखता है।[1] इस प्रकार ओत्तप्प का स्वामी लोक है।

'हिरि में लज्जा का भाव रहता है, ओत्तप्प में निन्दा-भय'—सो, यहाँ लज
का अर्थ है, लज्जा का आकार-प्रकार। इस भाव से जो युक्त हो, उसे हिरि (क
है)। भय का अर्थ है नरक-भय, इस भाव से जो युक्त है, वह ओत्तप्प।
दोनों (हिरि और ओत्तप्प) ही पाप के त्याग में कारण होते हैं। जैसे पाखाना
शौच करता हुआ कोई कुल-पुत्र, शरम खाने के योग्य किसी को देख कर, लज्जा
करने लगे, शरम खाये; इसी प्रकार अपने-आप में लज्जा का भाव उत्पन्न होने
पर, (व्यक्ति) पाप-कर्म नहीं करता। कोई नरक-गामी होने के भय से डर
कर पाप नहीं करता। यहाँ यह उपमा है—जैसे लोहे के दो गोलों में, एक
शीतल हो, लेकिन मल लगा हुआ, दूसरा उष्ण अङ्गार-वर्ण। (उन दोनों में से)
बुद्धिमान (आदमी) शीतल को मल लगा रहने के कारण घृणा के मारे नहीं
ग्रहण करता, दूसरे को जलने के भय से। सो शीतल (गोले) के मल लगे

---

[1] अंगुत्तर निकाय, तिक निपात।

रहने के कारण, घृणा के मारे न ग्रहण करने की तरह अपने-आप में लज्जा उत्पन्न होने से पाप-कर्म का न करना, और ऊष्ण (गोले) के जलने के डर से, न ग्रहण करने की तरह, नरक के भय से पाप का न करना', जानना चाहिये।

ह्री। (=हिरि) का लक्षण है (आत्म-)गौरव (आदि) का भाव, ओत्तप्प का लक्षण है दुष्कर्म करने में भयभीत होना—ये दोनों ही पाप-कर्म के त्याग में ही कारण होते हैं। एक व्यक्ति अपनी जाति (=जन्म) की महानता का विचार कर, अपने शास्ता की महानता का विचार कर, अपनी विरासत की महानता का विचार कर, अपने गुरुभाइयों (=सब्रह्मचारियों) की महानता का विचार कर, (इन) चार कारणों से गौरव स्वभाव वाली ह्रीं को उत्पन्न कर पाप-कर्म से बचता है। दूसरा व्यक्ति आत्म-निन्दा के भय से, पर-निन्दा के भय से, दण्ड के भय से, दुर्गति के भय से—(इन) चार कारणों से दुष्कर्म करने में भय रूपी ओत्तप्प को उत्पन्न कर पाप-कर्म नहीं करता। यहाँ जाति की महानता आदि के विचार, तथा आत्म-निन्दा आदि के भय विस्तार से कहने चाहियें। इनका विस्तार अगुत्तर निकाय की अट्ठकथा में आया है।

सुक्कधम्मसमाहिता (सुक्लधर्मसमाहित) का अर्थ है, इन हिरि तथा ओत्तप्प से ही आरम्भ करके, जितनी भी आचरणीय भलाइयाँ हैं, वे सब शुक्ल धर्म हैं; और वे संक्षेप में चातुर्भूमिक लौकिक तथा लोकोत्तर धर्म हैं—इन धर्मों से समाहित=समन्नागत=युक्त। सन्तो सप्पुरिसा लोके—काय-कर्मादि के शान्त होने से शान्त, कृतज्ञता=कृतवेदिता के कारण शोभायमान् पुरुष, सत्पुरुष। लोक—संस्कार-लोक, सत्व (=प्राणि) लोक, ओकास (=स्थान)लोक, स्कन्ध-लोक, आयतन-लोक, धातु-लोक—ये अनेक प्रकार के लोक हैं। सो 'एक लोक—सब सत्वों की स्थिति आहार पर निर्भर है. ..अट्ठारह लोक, अट्ठारह धातु-लोक',—इसमें संस्कार-लोक कहा गया है। स्कन्ध-लोक आदि सब उसके अन्तर्गत आ ही गये। यही लोक, परलोक, देव-लोक, मनुष्य-लोक आदि में सत्त्व-लोक कहा गया है—

> यावता चन्दिमसुरिया परिहरन्ति दिसाभन्ति विरोचना,
> ताव सहस्सधा लोको एत्थ ते वत्तति वसो ॥

[जहाँ तक चन्द्रमा तथा सूर्य घूमते हैं, प्रकाश से दिशाओं को प्रकाशित

"यक्ष ! मैं देव-धर्मों को जानता हूँ, और उनके अनुसार आचरण करता हूँ। इसी (भाई) के कारण, हमने इस वन में प्रवेश किया। इसीके कारण, हमारे पिता से इसकी माँ ने राज्य माँगा। हमारे पिता ने उसे वर न दिया, (लेकिन) हमारी रक्षा के लिए, हमें वनवास की आज्ञा दी। (सो) इस कुमार को बिना लिये यदि हम लौटेंगे, तो—"इसे जंगल में एक यक्ष ने खा लिया"—यह बात कहने पर भी कोई विश्वास न करेगा। इसलिए मैं, निन्दा के डर से भय-भीत, इसीको माँगता हूँ।

"साधु, साधु पण्डित ! तू देव-धर्मों को जानता है, और उनके अनुसार आचरण भी करता है" कह, यक्ष ने बोधिसत्त्व को साधु (-वाद) दे, (उसके) दोनों भाई लाकर, (उसे) दे दिये।

तब बोधिसत्त्व ने उसे कहा—"सौम्य ! तू अपने पूर्व के पाप-कर्म के कारण, दूसरों का रक्त-मांस खाने वाले यक्ष की योनि में उत्पन्न हुआ। अब फिर भी पाप-कर्म ही करता है। यह पाप-कर्म नरक आदि से छूटने न देगा। (इसलिए) अब से तू पाप-कर्म को छोड़ कर पुण्य (=कुशल) कर्म कर।" (इस प्रकार) बोधिसत्त्व, उस यक्ष को दमन कर सके। उस यक्ष का दमन कर, उसी यक्ष की रक्षा में वहीं रहने लगे।

एक दिन नक्षत्र देख, पिता के मरने की बात जान, यक्ष को साथ ले, वे वाराणसी पहुँचे। फिर राज्य को ग्रहण कर, चन्द्रकुमार को उप-राज और सूर्य्य-कुमार को सेनापति का स्थान दिया। यक्ष के लिए एक रमणीय स्थान पर, मन्दिर (=आयतन) बनवा दिया, और ऐसा (प्रबन्ध) कर दिया, जिससे उसे श्रेष्ठ माला, श्रेष्ठ पुष्प, और श्रेष्ठ भोजन मिलता रहे। धर्मानुसार राज्य करके वह कर्मानुसार (परलोक) को गये।

शास्ता ने इस धर्म-उपदेश को ला कर, (आर्य-)सत्यों को प्रकाशित किया। आर्य-सत्यों के प्रकाशन के अन्त में, उसने भिक्षुओं को स्रोत आपत्ति-फल में प्रतिष्ठित किया। सम्यक्-सम्बुद्ध ने दोनों कथाएँ कह कर, तुलना कर, जातक का सारांश निकाल दिखाया।

उस समय का उदक-राक्षस, (इस समय का) बहु-भाण्डिक भिक्षु है। सूर्य्य-कुमार (इस समय का) आनन्द, चन्द्र-कुमार (इस समय का) सारिपुत्र, और महिंसास-कुमार नामक ज्येष्ठ भ्राता तो मैं ही था।

राजा ने भगवान् से, उस बात को स्पष्ट कर, कहने की प्रार्थना की। भगवान् ने पूर्व जन्म की छिपी हुई बात प्रकट की—

ख. अतीत कथा

"पूर्व समय में, वाराणसी में, ब्रह्मदत्त राजा बड़े समारोह के साथ उद्यान गया। वह वहाँ पुष्प-फलों की चाह से घूम रहा था; उसी समय उद्यान वन-खण्ड में गा गा कर लकड़ी चुनती एक स्त्री को देख, उसपर आसक्त हो, उसने उससे सहवास किया। उसी क्षण, बोधिसत्व ने उसकी कोख में गर्भ ग्रहण किया। उसकी कोख, वज्र से भरी गई की तरह, भारी हो गई। उसने गर्भ-स्थापित हुआ जान, (राजा से) कहा—"देव! मुझे गर्भ हो गया है।" राजा ने अँगुली की अँगूठी देकर कहा—"यदि लड़की हो, तो इस (अँगूठी) को बेचकर, (अपनी) लड़की को पालना। यदि लड़का हो, तो अँगूठी साथ, उसे मेरे पास लाना"। इतना कहकर, वह चला गया। गर्भ-परिपाक होने पर, उसने बोधिसत्व को जन्म दिया। बोधिसत्व के इधर उधर दौड़ भाग कर क्रीड़ा भूमि में खेलते समय, कोई कोई (उसके सम्बन्ध में) कहते थे, "बिना-बाप-के ने हमें मारा"। इसे सुन, बोधिसत्व ने माता के पास जा पूछा—"माँ, मेरा पिता कौन है?"

"तात! तू वाराणसी-नरेश का पुत्र है।"

"अम्मा! क्या इसका कोई साक्षी (=सबूत) है?"

"तात! राजा 'यदि लड़की हो, तो इस अँगूठी को बेचकर, (अपनी) लड़की को पालना, यदि लड़का हो, तो अँगूठी के साथ, उसे मेरे पास लाना' कह, यह अँगूठी दे गया है।"

"अम्मा! यदि ऐसा है, तो मुझे क्यों पिता के पास नहीं ले चलती?"

उसने पुत्र का विचार जान, राज-द्वार पर जा, राजा को खबर दी। और राजा के बुलाने पर, राजा को प्रणाम कर कहा—"देव! यह तुम्हारा पुत्र है।"

राजा ने पहचानते हुए भी सभा में लज्जा के मारे कहा—'यह मेरा पुत्र नहीं है।'

"देव! यह तुम्हारी अँगूठी है, इसे पहचानेंगे?"

"यह अँगूठी भी मेरी नहीं है।"

"देव! तो अब मेरे पास सच्च किरिया[1] के अतिरिक्त कोई दूसरा साक्षी नहीं है। 'यदि यह बालक आप से पैदा हुआ है, तो आकाश में ठहरे, नहीं तो भूमि पर गिरकर मर जावे' कह, उसने बोधिसत्व को पैरों से पकड़, आकाश में फेंक दिया। बोधिसत्व ने आकाश में पालथी मार, बैठ, मधुर स्वर से पितृ-धर्म (=पिता का कर्तव्य) कहते हुए, यह गाथा कही—

पुत्तो त्याहं महाराज! त्वं मं पोस जनाधिप!
अञ्ञेपि देवो पोसेति किञ्च देवो सकं पजं।

[महाराज! तुम्हारा पुत्र हूँ। जनाधिप! तुम मेरा पालन करो। देव! तुम तो औरों का भी पालन करते हो, (फिर) अपनी सन्तान की (तो बात ही) क्या?]

इसमें पुत्तो त्याहं का मतलब है, मैं तुम्हारा पुत्र हूँ। पुत्र होते हैं चार प्रकार के—आत्मज, क्षेत्रज, अन्तेवासिक तथा दिन्नक (=दत्तक)। अपने हेतु (शरीर) से जो उत्पन्न हुआ हो, वह आत्मज, शय्यासन पर, पलंग पर, छाती पर;—इस प्रकार के स्थानों पर जो (दूसरे से) उत्पन्न हुआ, वह क्षेत्रज; अपने पास रहकर शिल्प (=विद्या) सीखने वाला अन्तेवासिक, तथा पालने-पोसने के लिए दिया गया (बालक) दिन्नक। यहाँ पुत्र शब्द का प्रयोग आत्मज के अर्थ में है। चारों प्रकार की संग्रह-वस्तुओं[2] से जो प्रजा का रञ्जन करे, वह राजा; फिर महान् राजा, सो महाराज, आमन्त्रित करने के लिए ही महाराज! कहा गया है। त्वं मं पोस जनाधिप का अर्थ है, हे जनाधिप! हे महाजन(-समूह) में ज्येष्ठतम! आप मेरा पोषण करें, भरण करें, वृद्धि करें। अञ्ञेपि देवो पोसेति का अर्थ है कि देव अन्य अनेक हाथी-पालक,

---

[1] सच्च किरिया, सत्य और पुण्य की शपथ।

[2] दान प्रिय-वाणी लोक-हित का आचरण तथा समानता।

श्व-पालक आदि मनुष्यों तथा हाथी घोड़े आदि प्राणियों का पालन करते
। किञ्च देवो सकं पजं में किञ्च (=और क्या) शब्द निन्दार्थक तथा
नुग्रहार्थक निपात है। 'देव, अपनी सन्तान, मुझ अपन पुत्र की पालना नहीं
रते' कहकर निन्दा भी की गई है; और 'अन्य बहुत जनो का पालन करते
' कहकर अनुग्रह (का भाव भी जाग्रत) किया गया है। इस प्रकार बोधिसत्त्व
निन्दा करते हुए, तथा अनुग्रह (का भाव जाग्रत) करते हुए कहा—"किञ्च
वो सक पज [=अपनी सन्तान की (तो बात ही) क्या ?]।

राजा ने बोधिसत्त्व को आकाश में बैठे, इस प्रकार धर्मोपदेश करते सुन
ाथ पसार कर कहा—"तात ! आ ! मैं ही पालन करूँगा। मैं ही पालन
रूँगा।" (और भी लोगो ने) सहस्रो हाथ फैलाये। बोधिसत्त्व, और किसी
हाथ में न उतर कर, राजा के ही हाथ मे उतर, उसकी गोद में बैठे। राजा
उन्हें उप-राजा बना, उनकी माता को पटरानी (=अग्र-महिषी) बनाया।
िता के मरने पर वह काष्ठवाहन राजा के नाम से धर्म-पूर्वक राज्य का सञ्चालन
र (अपने) कर्मानुसार परलोक को गया।

शास्ता ने कोसल-नरेश का यह धर्मोपदेश ला दोनो कहानियाँ कह,
ुलना करके जातक कथा का सारांश निकाल दिखाया। उस समय की
ाता, (अब की) महामाया थी, पिता (अब का) शुद्धोदन राजा था और
ाष्ठवाहन-राजा तो मैं ही था।

८. गामणी जातक

अपि अतरमानानं—यह गाथा शास्ता ने जेतवन म विहार करते समय,
क उद्योग हीन (=आलसी) भिक्षु के सम्बन्ध म कही। इस जातक की

अश्व-पालक आदि मनुष्यों तथा हाथी घोड़े आदि प्राणियों का पालन करते हैं। किञ्च देवो सकं पजं में किञ्च (=और क्या) शब्द निन्दार्थक तथा अनुग्रहार्थक निपात है। 'देव, अपनी सन्तान, मुझ अपने पुत्र की पालना नहीं करते' कहकर निन्दा भी की गई है, और 'अन्य बहुत जनों का पालन करते हैं' कहकर अनुग्रह (का भाव भी जाग्रत) किया गया है। इस प्रकार बोधिसत्व ने निन्दा करते हुए, तथा अनुग्रह (का भाव जाग्रत) करते हुए कहा—"किञ्च देवो सक पजं [=अपनी सन्तान की (तो बात ही) क्या ?]।

राजा ने बोधिसत्त्व को आकाश में बैठे, इस प्रकार धर्मोपदेश करते सुन हाथ पसार कर कहा—"तात ! आ ! मैं ही पालन करूँगा। मैं ही पालन करूँगा।" (और भी लोगों ने) सहस्रों हाथ फैलाये। बोधिसत्त्व, और किसी के हाथ में न उतर कर, राजा के ही हाथ में उतर, उसकी गोद में बैठे। राजा ने उन्हें उप-राजा बना, उनकी माता को पटरानी (=अग्र-महिषी) बनाया। पिता के मरने पर वह काष्ठवाहन राजा के नाम से धर्म-पूर्वक राज्य का सञ्चालन कर (अपने) कर्मानुसार परलोक को गया।

शास्ता ने कोसल-नरेश का यह धर्मोपदेश ला दोनो कहानियाँ कह, तुलना करके जातक कथा का सारांश निकाल दिखाया। उस समय की माता, (अब की) महामाया थी, पिता (अब का) शुद्धोदन राजा था और काष्ठवाहन-राजा तो मैं ही था।

८. गामणी जातक

अपि अतरमानानं—यह गाथा शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, एक उद्योग हीन (=आलसी) भिक्षु के सम्बन्ध में कही। इस जातक की

अश्व-पालक आदि मनुष्यों तथा हाथी घोड़े आदि प्राणियों का पालन करते हैं। किञ्च देवो सक्क पज मेँ किञ्च (=और क्या) शब्द निन्दार्थक तथा अनुग्रहार्थक निपात है। 'देव, अपनी सन्तान, मुझ अपने पुत्र को पालना नहीं करते' कहकर निन्दा भी की गई है, और 'अन्य बहुत जनों का पालन करते हैं' कहकर अनुग्रह (का भाव भी ज्ञापन) किया गया है। इस प्रकार बोधिसत्व ने निन्दा करते हुए, तथा अनुग्रह (का भाव ज्ञापन) करते हुए कहा—"किञ्च देवो सक पज [=अपनी सन्तान की (तो बात ही) क्या ?]।

राजा ने बोधिसत्व को आकाश में बैठे, इस प्रकार धर्मोपदेश करते सुन हाथ पसार कर कहा—"तात ! आ ! मैं ही पालन करूँगा। मैं ही पालन करूँगा।" (और भी लोगों ने) सहस्रों हाथ फैलाये। बोधिसत्व, और किसी के हाथ में न उतर कर, राजा के ही हाथ में उतर, उसकी गोद में बैठे। राजा ने उन्हें उप-राजा बना, उनकी माता को पटरानी (=अग्र-महिषी) बनाया। पिता के मरने पर वह काष्ठवाहन राजा के नाम से धर्म-पूर्वक राज्य का सञ्चालन कर (अपने) कर्मानुसार परलोक को गया।

शास्ता ने कोसल-नरेश का यह धर्मोपदेश ला दोनों कहानियाँ कह, तुलना करके जातक कथा का सारांश निकाल दिखाया। उस समय की माता, (अब की) महामाया थी, पिता (अब का) शुद्धोदन राजा था और काष्ठवाहन-राजा तो मैं ही था।

८. गामणि जातक

अपि अतरमानानं—यह गाथा शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, एक उद्योग हीन (=आलसी) भिक्षु के सम्बन्ध में कही। इस जातक की

"भन्ते! और कोई बात-चीत नहीं, बैठे आपके अभिनिष्क्रमण की ही प्रशंसा कर रहे हैं।"

"भिक्षुओ! तथागत ने केवल अब ही अभिनिष्क्रमण नहीं किया; पहले भी अभिनिष्क्रमण किया है।"

भिक्षुओं ने भगवान् से इस बात को स्पष्ट करने की प्रार्थना की। भगवान् ने पूर्व-जन्म की छिपी हुई बात प्रकट की—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में विदेह राष्ट्र (की) मिथिला (नामक नगरी) में, मखादेव नाम का धार्मिक राजा हुआ। वह चौरासी हजार वर्ष तक बाल-क्रीड़ा (खेल कूद) में लगा रहा। उसके बाद उपराजा और फिर महाराजा हुआ। चिरकाल के बाद (उसने), एक दिन (अपने) नाई (कप्पक) से कहा—'सौम्य कप्पक! जब तुझे मेरे सिर में सफ़ेद (बाल) दिखाई दें, तो मुझे कहना।' नाई ने कितने ही समय बाद एक दिन राजा के भुजंगे के रंग के (काले) केशों में केवल एक सफ़ेद (बाल) देखकर राजा से निवेदन किया—'देव! आपके (सिर में) एक सफ़ेद (बाल) (दिखाई) दे रहा है।'

"तो सौम्य! उस सफ़ेद (बाल) को उखाड़कर मेरी हथेली पर रखो।"

ऐसा कहने पर, (नाई ने उस बाल को) सोने की चिमटी से उखाड़कर राजा की हथेली पर रख दिया। उस समय भी राजा की चौरासी हजार वर्ष की आयु शेष थी; लेकिन फिर भी सफ़ेद (बाल) को देखते ही, जैसे यमराज आकर समीप खड़ा हो गया हो, (अथवा) आग लगी कुटिया में दाखिल हुआ हो, उसका चित्त उद्विग्न हो उठा। वह सोचने लगा—'मूर्ख मखादेव! सफ़ेद (बाल) के उगने तक भी तू इन (चित्त के मैलों) का परित्याग न कर सका।' उसके इस प्रकार सफ़ेद (बाल) की उत्पत्ति पर बार बार विचार करने से, (उसका) हृदय गर्म हो उठा। शरीर से पसीना चूने लगा। वस्त्र भीगकर उतारने योग्य हो गये। उस ने 'आज ही मुझे निकलकर प्रव्रजित होना चाहिए' (का निश्चय कर), नाई को लाख (मुद्रा) आमदनी के गाँव देकर ज्येष्ठ-पुत्र को बुलाकर कहा—'तात! मेरे सिर में सफ़ेद (बाल) उग आया है।

विपक्कब्रह्मचरियोस्मि। एवं जानाहि गामणी—कहीं कहीं ग्रामिक पुरुष को; और कहीं कहीं ग्राम में जो बड़ा हो, उसे भी ग्रामणी कहा गया है। लेकिन यहाँ (अपने को) सब जनों में श्रेष्ठ समझ अपनी ही ओर इशारा कर, अपने को सम्बोधन करके उदान कहा है—"भो ग्रामणी ! तू इस बात को इस प्रकार जान। यह जो सौ भाइयों का अतिक्रमण करके, तुझे इस महाराज्य की प्राप्ति हुई है, सो यह आचार्य्य (की कृपा) से हुई है।" उसकी राज्य प्राप्ति के बाद सात आठ दिन व्यतीत होने पर, उसके सभी भाई अपने अपने निवास स्थान को चले गये। ग्रामणी-राजा धर्मानुकूल राज्य का सञ्चालन कर, कर्मानुसार परलोक को प्राप्त हुआ।

शास्ता ने इस धर्म-उपदेश को ला, दिखाकर, (आर्य-)सत्यों को प्रकाशित किया। (आर्य-)सत्यों के प्रकाशन के अन्त में, (वह) आलसी भिक्षु अर्हत्-पद में प्रतिष्ठित हुआ। शास्ता ने दोनों कहानियाँ कह, मेल मिलाकर, जातक का सारांश निकाल दिखाया।

९. मखादेव जातक

उत्तमङ्गरुहा मय्हं... इस गाथा को शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, महाभिनिष्क्रमण के बारे में कहा। वह (=महाभिनिष्क्रमण) पहले निदान-कथा में कहा ही जा चुका है।

क. वर्तमान कथा

उस समय भिक्षु बैठे बुद्ध के महाभिनिष्क्रमण (=अभिनिष्क्रमण) की प्रशंसा कर रहे थे। शास्ता ने धर्म-सभा में आ बुद्धासन पर बैठ भिक्षुओं को सम्बोधित किया—"भिक्षुओ ! बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?"

"भन्ते ! और कोई बातचीत नहीं, बैठे आपके अभिनिष्क्रमण की ही प्रशंसा कर रहे हैं।"

"भिक्षुओ ! तथागत ने केवल अब ही अभिनिष्क्रमण नहीं किया; पहले भी अभिनिष्क्रमण किया है।"

भिक्षुओं ने भगवान् से इस बात को स्पष्ट करने की प्रार्थना की। भगवान् ने पूर्व-जन्म की छिपी हुई बात प्रकट की—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में विदेह राष्ट्र (की) मिथिला (नामक नगरी) में, मखादेव नाम का धार्मिक राजा हुआ। वह चौरासी हजार वर्ष तक बाल-क्रीड़ा (खेल कूद) में लगा रहा। उसके बाद उपराजा और फिर महाराजा हुआ। चिरकाल के बाद (उसने) एक दिन (अपने) नाई (कप्पक) से कहा—"सौम्य कप्पक ! जब तुझे मेरे सिर में सफेद (बाल) दिखाई दे, तो मुझे कहना।" नाई ने कितने ही समय बाद एक दिन राजा के सुरमे के रंग के (अञ्जन-से) केशों में केवल एक सफेद (बाल) देखकर राजा से निवेदन किया—"देव ! आपके (सिर में) एक सफेद (बाल) (दिखाई) दे रहा है।"

"तो सौम्य ! उस सफेद (बाल) को उखाड़कर मेरी हथेली पर रखो।"

ऐसा कहने पर, (नाई ने उस बाल को) सोने की चिमटी से उखाड़कर राजा की हथेली पर रख दिया। उस समय भी राजा की चौरासी हजार वर्ष की आयु शेष थी; लेकिन फिर भी सफेद (बाल) को देखते ही, जैसे यमराज आकर समीप खड़ा हो गया हो, (अथवा) आग लगी कुटिया में दाखिल हुआ हो, उसका चित्त, उद्विग्न हो उठा। वह सोचने लगा—"मूर्ख मखादेव ! सफेद (बाल) के उगने तक भी तू इन (चित्त के मैलों) का परित्याग न कर सका।"
उसके इस प्रकार सफेद (बाल) की उत्पत्ति पर बार बार विचार करने से, (उसका) हृदय गर्म हो उठा। शरीर से पसीना चूने लगा। वस्त्र भीगकर उतारने योग्य हो गये। उस ने "आज ही मुझे निकलकर प्रव्रजित होना चाहिए" (का) निश्चय कर, नाई को लाख की आमदनी के गाँव देकर ज्येष्ठ-पुत्र को बुलाकर कहा—"तात ! मेरे सिर में सफेद (बाल) उग आये हैं।

दिपक्कब्रह्मचारियोस्मि। एवं जानाहि ग्रामणी—कहीं कहीं ग्रामिक पुरुष को; और कहीं कहीं ग्राम में जो बड़ा हो, उसे भी ग्रामणी कहा गया है। लेकिन यहाँ (अपने को) सब जनों में श्रेष्ठ समझ अपनी ही ओर इशारा कर, भाई को सम्बोधन करके उदान कहा है—"भो ग्रामणी ! तू इस बात को इस प्रकार जान। यह जो सौ भाइयों का अतिक्रमण करके, तुझे इस महाराज्य की प्राप्ति हुई है, सो यह आचार्य्य (की कृपा) से हुई है।" उसकी राज्य प्राप्ति के बाद सात आठ दिन व्यतीत होने पर, उसके सभी भाई अपने अपने निवास स्थान को चले गये। ग्रामणी-राजा धर्मानुकूल राज्य का सञ्चालन कर, कर्मानुसार परलोक को प्राप्त हुआ।

शास्ता ने इस धर्म-उपदेश को ला, दिखाकर, (आर्य-)सत्यों को प्रकाशित किया। (आर्य-)सत्यों के प्रकाशन के अन्त में, (वह) आलसी भिक्षु अर्हत्-पद में प्रतिष्ठित हुआ। शास्ता ने दोनों कहानियाँ कह, मेल मिलाकर, जातक का सारांश निकाल दिखाया।

९. मखादेव जातक

उत्तमङ्गरुहा मय्हं......इस गाथा को शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, महानिष्क्रमण के बारे में कहा। वह (=महाभिनिष्क्रमण) पहले निदान-कथा में कहा ही जा चुका है।

क. वर्तमान कथा

उस समय भिक्षु बैठे बुद्ध के गृहत्याग (=अभिनिष्क्रमण) की प्रशंसा कर रहे थे। शास्ता ने धर्म-सभा में आ बुद्धासन पर बैठ, भिक्षुओं को सम्बोधित किया—"भिक्षुओ! बैठ क्या बात-चीत कर रहे हो?"

"भन्ते ! और कोई बात-चीत नहीं, बैठे आपके अभिनिष्क्रमण की ही प्रशंसा कर रहे हैं।"

"भिक्षुओ ! तथागत ने केवल अब ही अभिनिष्क्रमण नहीं किया; पहले भी अभिनिष्क्रमण किया है।"

भिक्षुओं ने भगवान् से इस बात को स्पष्ट करने की प्रार्थना की। भगवान् ने पूर्वजन्म की छिपी हुई बात प्रकट की—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में विदेह राष्ट्र (की) मिथिला (नामक नगरी) में, मखादेव नाम का धार्मिक राजा हुआ। वह चौरासी हजार वर्ष तक बाल-क्रीड़ा (खेल कूद) में लगा रहा। उसके बाद उपराजा और फिर महाराजा हुआ। चिरकाल के बाद (उसने) एक दिन (अपने) नाई (कप्पक) से कहा—"सौम्य कप्पक ! जब तुझे मेरे सिर में सफ़ेद (बाल) दिखाई दें, तो मुझे कहना।" नाई ने कितने ही समय बाद एक दिन राजा के सुरमे के रंग के (अंजन-से काले) केशों में केवल एक सफ़ेद (बाल) देखकर राजा से निवेदन किया—"देव ! आपके (सिर में) एक सफ़ेद (बाल) (दिखाई) दे रहा है।"

"तो सौम्य ! उस सफ़ेद (बाल) को उखाड़कर मेरी हथेली पर रक्खो।"

ऐसा कहने पर, (नाई ने उस बाल को) सोने की चिमटी से उखाड़कर राजा की हथेली पर रख दिया। उस समय भी राजा की चौरासी हज़ार वर्ष की आयु शेष थी; लेकिन सिर में सफ़ेद (बाल) को देखते ही, जैसे यमराज आकर समीप खड़ा हो गया हो, (अथवा) आग लगी कुटिया में दाखिल हुआ हो, उसका चित्त उद्विग्न हो उठा। वह सोचने लगा—"मूर्ख मखादेव ! सफ़ेद (बाल) के उगने तक भी तू इन (चित्त के मैलों) का परित्याग न कर सका।" उसके इस प्रकार सफ़ेद (बाल) की उत्पत्ति पर बार बार विचार करते से, (उसका) हृदय गर्म हो उठा। शरीर से पसीना चूने लगा। वस्त्र भींगकर उतारने योग्य हो गये। उस ने 'आज ही मुझे निकलकर प्रव्रजित होना चाहिए' (का निश्चय कर) नाई को लाख (मुद्रा) आमदनी के गाँव देकर ज्येष्ठपुत्र को बुलाकर कहा—"तात ! मेरे सिर में सफ़ेद (बाल) उग आया है।

विपस्सनब्रह्मचरियोस्मि। एवं जानाहि गामणी—कहीं कहीं ग्रामिक पुरुष को; और कहीं कहीं ग्राम में जो बड़ा हो, उसे भी ग्रामणी कहा गया है। लेकिन यहाँ (अपने को) सब जनों में श्रेष्ठ समझ अपनी ही ओर इशारा कर, अपने को सम्बोधन करके उदान कहा है—"भो ग्रामणी ! तू इस बात को इस प्रकार जान। यह जो सौ भाइयों का अतिक्रमण करके, तुझे इस महाराज्य की प्राप्ति हुई है, सो यह आचार्य (की कृपा) से हुई है।" उसकी राज्य प्राप्ति के बाद सात आठ दिन व्यतीत होने पर, उसके सभी भाई अपने अपने निवास स्थान को चले गये। ग्रामणी-राजा धर्मानुकूल राज्य का सञ्चालन कर, कर्मानुसार परलोक को प्राप्त हुआ।

शास्ता ने इस धर्म-उपदेश को ला, दिखाकर, (आर्य-)सत्यों को प्रकाशित किया। (आर्य-)सत्यों के प्रकाशन के अन्त में, (वह) आलसी भिक्षु अर्हत् पद में प्रतिष्ठित हुआ। शास्ता ने दोनों कहानियाँ कह, मेल मिलाकर, जातक का सारांश निकाल दिखाया।

९. मखादेव जातक

उत्तमङ्गरुहा मय्हं... इस गाथा को शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, महाभिनिष्क्रमण के बारे में कहा। वह (=महाभिनिष्क्रमण) पहले निदान-कथा में कहा ही जा चुका है।

क. वर्तमान कथा

उस समय भिक्षु बैठे बुद्ध के गुणानुवाद (महाभिनिष्क्रमण) की प्रशंसा कर रहे थे। शास्ता ने धर्म-सभा में आ बुद्धासन पर बैठ भिक्षुओं को सम्बोधित किया—"भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?"

"भन्ते ! और कोई बात-चीत नहीं, बैठे आपके अभिनिष्क्रमण की ही प्रशंसा कर रहे हैं।"

"भिक्षुओ ! तथागत ने केवल अब ही अभिनिष्क्रमण नहीं किया; पहले भी अभिनिष्क्रमण किया है।"

भिक्षुओं ने भगवान् से इस बात को स्पष्ट करने की प्रार्थना की। भगवान् ने पूर्व-जन्म की छिपी हुई बात प्रकट की—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में विदेह राष्ट्र (की) मिथिला (नामक नगरी) में, मखादेव नाम का धार्मिक राजा हुआ। वह चौरासी हजार वर्ष तक बाल-क्रीडा (खेल कूद) में लगा रहा। उसके बाद उपराजा और फिर महाराजा हुआ। चिरकाल के बाद (उसने), एक दिन (अपने) नाई (कप्पक) से कहा—"सौम्य कप्पक ! जब तुझे मेरे सिर में सफ़ेद (बाल) दिखाई दे, तो मुझे कहना।" नाई ने कितने ही समय बाद एक दिन राजा के सुरमे के रंग के (=काले) केशों में केवल एक सफ़ेद (बाल) देखकर राजा से निवेदन किया—"देव ! आपके (सिर में) एक सफ़ेद (बाल) (दिखाई) दे रहा है।"

"तो सौम्य ! उस सफ़ेद (बाल) को उखाड़कर मेरी हथेली पर रखो।"

ऐसा कहने पर (नाई ने उस बाल को) सोने की चिमटी से उखाड़कर राजा को हथेली पर रख दिया। उस समय भी राजा की चौरासी हजार वर्ष की आयु शेष थी, लेकिन सिर में सफ़ेद बाल को देखते ही जैसे यमराज [illegible]

विपक्कब्रह्मचरियोस्मि। एवं आनाहि गामणी—कहीं कहीं ग्रामिक पु को; और कहीं कहीं ग्राम में जो बड़ा हो, उसे भी ग्रामणी कहा गया है। लेकि यहाँ (अपने को) सब जनों में श्रेष्ठ समझ अपनी ही ओर इशारा कर, अपने सम्बोधन करके उदान कहा है—"भो ग्रामणी ! तू इस बात को इस प्र जान। यह जो सौ भाइयों का अतिक्रमण करके, तुझे इस महाराज्य की प्रा हुई है, सो यह आचार्य्य (की कृपा) से हुई है।" उसकी राज्य प्राप्ति के ब सात आठ दिन व्यतीत होने पर, उसके सभी भाई अपने अपने निवास स्थान चले गये। ग्रामणी-राजा धर्मानुकूल राज्य का सञ्चालन कर, कर्मानुस परलोक को प्राप्त हुआ।

शास्ता ने इस धर्म-उपदेश को ला, दिखाकर, (आर्य-)सत्यों को प्रका किया। (आर्य-)सत्यों के प्रकाशन के अन्त में, (वह) आलसी भिक्षु अर्ह पद में प्रतिष्ठित हुआ। शास्ता ने दोनों कहानियाँ कह, मेल मिलाकर, जात का सारांश निकाल दिखाया।

९. मखादेव जातक

"उत्तमङ्गरुहा मय्ह ..." इस गाथा को शास्ता ने जेतवन में विह करते समय, महाभिनिष्क्रमण के बारे में कहा। वह (-महाभिनिष्क्रमण) पह निदान-कथा में कहा हो जा चुका है।

क. वर्त्तमान कथा

उस समय भिक्षु बैठे बुद्ध के गृहत्याग (-अभिनिष्क्रमण) की प्रशं कर रहे थे। शास्ता ने धर्म-सभा में आ बुद्धासन पर बैठ भिक्षुओं को सम्बोधि किया—"भिक्षुओ ! बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो ?"

"भन्ते ! और कोई बात-चीत नहीं, बैठे आपके अभिनिष्क्रमण की ही प्रशंसा कर रहे हैं।"

"भिक्षुओ ! तथागत ने केवल अब ही अभिनिष्क्रमण नहीं किया; पहले भी अभिनिष्क्रमण किया है।"

भिक्षुओं ने भगवान् से इस बात को स्पष्ट करने की प्रार्थना की। भगवान् ने पूर्व-जन्म की छिपी हुई बात प्रकट की—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे विदेह राष्ट्र (की) मिथिला (नामक नगरी) में, मखादेव नाम का धार्मिक राजा हुआ। वह चौरासी हज़ार वर्ष तक बाल-क्रीड़ा (खेल कूद) में लगा रहा। उसके बाद उपराजा और फिर महाराजा हुआ। चिरकाल के बाद (उसने), एक दिन (अपने) नाई (कप्पक) से कहा—"सौम्य कप्पक ! जब तुझे मेरे सिर में सफ़ेद (बाल) दिखाई दे, तो मुझे कहना।" नाई ने कितने ही समय बाद एक दिन राजा के सुरमे के रंग के (=काले) केशों में केवल एक सफ़ेद (बाल) देखकर राजा से निवेदन किया—'देव ! आपके (सिर में) एक सफ़ेद (बाल) (दिखाई) दे रहा है।"

"तो सौम्य ! उस सफ़ेद (बाल) को उखाड़कर मेरी हथेली पर रखो।"

ऐसा कहने पर, (नाई ने उस बाल को) सोने की चिमटी से उखाड़कर राजा की हथेली पर रख दिया। उस समय भी राजा की चौरासी हज़ार वर्ष की आयु शेष थी, लेकिन फिर भी सफ़ेद (बाल) को देखते ही जैसे यमराज आकर समीप खड़ा हो गया हो, अथवा आग लगी कुटिया में दाखिल हुआ [illegible] — [illegible] मखादेव ! [illegible]

[illegible]

विप्पवसमहब्रह्मचरियोस्मि। एवं जानाहि गामणी—कहीं कहीं ग्रामिक पुरुष को; और कहीं कहीं ग्राम में जो बड़ा हो, उसे भी ग्रामणी कहा गया है। लेकिन यहाँ (अपने को) सब जनों में श्रेष्ठ समझ अपनी ही ओर इशारा कर, अपने को सम्बोधन करके उदान कहा है—"भो ग्रामणी! तू इस बात को इस प्रकार जान। यह जो सौ भाइयों का अतिक्रमण करके, तुझे इस महाराज्य की प्राप्ति हुई है, सो यह आचार्य्य (की कृपा) से हुई है।" उसकी राज्य प्राप्ति के बाद सात आठ दिन व्यतीत होने पर, उसके सभी भाई अपने अपने निवास स्थान को चले गये। ग्रामणी-राजा धर्मानुकूल राज्य का सञ्चालन कर, कर्मानुसार परलोक को प्राप्त हुआ।

शास्ता ने इस धर्म-उपदेश को ला, दिखाकर, (आर्य-)सत्यों को प्रकाशित किया। (आर्य-)सत्यों के प्रकाशन के अन्त में, (वह) आलसी भिक्षु अर्हत् पद में प्रतिष्ठित हुआ। शास्ता ने दोनों कहानियाँ कह, मेल मिलाकर, जातक का सारांश निकाल दिखाया।

९. मखादेव जातक

उत्तमङ्गरुहा मय्हं . . . इस गाथा को शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, महाभिनिष्क्रमण के बारे में कहा। वह (=महाभिनिष्क्रमण) पहले निदान-कथा में कहा ही जा चुका है।

क. वर्तमान कथा

उस समय भिक्षु बैठे बुद्ध के गृहत्याग (=अभिनिष्क्रमण) की प्रशंसा कर रहे थे। शास्ता ने धर्म-सभा में आ बुद्धासन पर बैठ भिक्षुओं को सम्बोधित किया—"भिक्षुओ! बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?"

"भन्ते ! और कोई बात-चीत नहीं, बैठे आपके अभिनिष्क्रमण की ही प्रशंसा कर रहे हैं।"

"भिक्षुओ ! तथागत ने केवल अब ही अभिनिष्क्रमण नहीं किया; पहले भी अभिनिष्क्रमण किया है।"

भिक्षुओं ने भगवान् से इस बात को स्पष्ट करने की प्रार्थना की। भगवान् ने पूर्व-जन्म की छिपी हुई बात प्रकट की—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में विदेह राष्ट्र (की) मिथिला (नामक नगरी) में, मखादेव नाम का धार्मिक राजा हुआ। वह चौरासी हजार वर्ष तक बाल-क्रीड़ा (खेल कूद) में लगा रहा। उसके बाद उपराजा और फिर महाराजा हुआ। चिरकाल के बाद (उसने), एक दिन (अपने) नाई (कप्पक) से कहा—"सौम्य कप्पक ! जब तुझे मेरे सिर में सफ़ेद (बाल) दिखाई दें, तो मुझे कहना।" नाई ने कितने ही समय बाद एक दिन राजा के सुरमे के रंग के (=काले) केशों में केवल एक सफ़ेद (बाल) देखकर राजा से निवेदन किया—"देव ! आपके (सिर में) एक सफ़ेद (बाल) (दिखाई) दे रहा है।"

"तो सौम्य ! उस सफ़ेद (बाल) को उखाड़कर मेरी हथेली पर रक्खो।"

ऐसा कहने पर, (नाई ने उस बाल को) सोने की चिमटी से उखाड़कर राजा की हथेली पर रख दिया। उस समय भी राजा की चौरासी हजार वर्ष की आयु शेष थी; लेकिन फिर भी सफ़ेद (बाल) को देखते ही, जैसे यमराज आकर समीप खड़ा हो गया हो, (अथवा) आग लगी कुटिया में दाखिल हुआ हो, उसका चित्त, उद्विग्न हो उठा। वह सोचने लगा—"मूर्ख मखादेव ! सफ़ेद (बाल) के उगने तक भी तू इन (चित्त के मैलों) का परित्याग न कर सका।"

उसके इस प्रकार सफ़ेद (बाल) की उत्पत्ति पर बार बार विचार करने से, (उसका) हृदय गर्म हो उठा। शरीर से पसीना चूने लगा। वस्त्र भीगकर उतारने योग्य हो गये। उस ने 'आज ही मुझे निकलकर प्रव्रजित होना चाहिए' (का निश्चय कर), नाई को लाख (मुद्रा) आमदनी के गाँव देकर ज्येष्ठ-पुत्र को बुलाकर कहा—"तात ! मेरे सिर में सफ़ेद (बाल) उग आए हैं।

विपक्कब्रह्मचरियोस्मि। एवं जानाहि गामणी—कहीं कहीं ग्रामिक पु
को; और कहीं कहीं ग्राम में जो बड़ा हो, उसे भी ग्रामणी कहा गया है। लेकि
यहाँ (अपने को) सब जनों में श्रेष्ठ समझ अपनी ही ओर इशारा कर, अपने
सम्बोधन करके उदान कहा है—"भो ग्रामणी ! तू इस बात को इस प्र
जान। यह जो सौ भाइयों का अतिक्रमण करके, तुझे इस महाराज्य की प्रा
हुई है, सो यह आचार्य (की कृपा) से हुई है।" उसकी राज्य प्राप्ति के
सात आठ दिन व्यतीत होने पर, उसके सभी भाई अपने अपने निवास स्थान
चले गये। ग्रामणी-राजा धर्मानुकूल राज्य का सञ्चालन कर, कर्मानुसा
परलोक को प्राप्त हुआ।

शास्ता ने इस धर्म-उपदेश को ला, दिखाकर, (आर्य-)सत्यों को प्रका
किया। (आर्य-)सत्यों के प्रकाशन के अन्त में, (वह) आलसी भिक्षु अर्ह
पद में प्रतिष्ठित हुआ। शास्ता ने दोनों कहानियाँ कह, मेल मिलाकर, जात
का सारांश निकाल दिखाया।

९. मखादेव जातक

उत्तमङ्गरुहा मय्हं. . . . .इस गाथा को शास्ता ने जेतवन में विहा
करते समय, महानिष्क्रमण के बारे में कहा। वह (=महाभिनिष्क्रमण) पह
निदान-कथा में कहा ही जा चुका है।

क. वर्त्तमान कथा

उस समय भिक्षु बैठे बुद्ध के गृहत्याग (=अभिनिष्क्रमण) की प्रशंसा
कर रहे थे। शास्ता ने धर्म-सभा में आ बुद्धासन पर बैठ, भिक्षुओं को सम्बोधित
किया—"भिक्षुओ ! बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो ?"

"भन्ते ! और कोई बात-चीत नहीं, बैठे आपके अभिनिष्क्रमण की ही प्रशंसा कर रहे हैं।"

"भिक्षुओ ! तथागत ने केवल अब ही अभिनिष्क्रमण नहीं किया; पहले भी अभिनिष्क्रमण किया है।"

भिक्षुओं ने भगवान् से इस बात को स्पष्ट करने की प्रार्थना की। भगवान् ने पूर्व-जन्म की छिपी हुई बात प्रकट की—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में विदेह राष्ट्र (की) मिथिला (नामक नगरी) में, मखादेव नाम का धार्मिक राजा हुआ। वह चौरासी हजार वर्ष तक बाल-क्रीड़ा (खेल कूद) में लगा रहा। उसके बाद उपराजा और फिर महाराजा हुआ। चिरकाल के बाद (उसने), एक दिन (अपने) नाई (कप्पक) से कहा—"सौम्य कप्पक ! जब तुझे मेरे सिर में सफ़ेद (बाल) दिखाई दे, तो मुझे कहना।" नाई ने कितने ही समय बाद एक दिन राजा के सुरमे के रंग के (=काले) केशों में केवल एक सफ़ेद (बाल) देखकर राजा से निवेदन किया—"देव ! आपके (सिर में) एक सफ़ेद (बाल) (दिखाई) दे रहा है।"

"तो सौम्य ! उस सफ़ेद (बाल) को उखाड़कर मेरी हथेली पर रखो।"

ऐसा कहने पर, (नाई ने उस बाल को) सोने की चिमटी से उखाड़कर राजा की हथेली पर रख दिया। उस समय भी राजा की चौरासी हजार वर्ष की आयु शेष थी; लेकिन फिर भी सफ़ेद (बाल) को देखते ही, जैसे यमराज आकर समीप खड़ा हो गया हो, (अथवा) आग लगी कुटिया में दाखिल हुआ हो, उसका चित्त, उद्विग्न हो उठा। वह सोचने लगा—'मूर्ख मखादेव ! सफ़ेद (बाल) के उगने तक भी तू इन (चित्त के मैलों) का परित्याग न कर सका।" उसके इस प्रकार सफ़ेद (बाल) की उत्पत्ति पर बार बार विचार करने से, (उसका) हृदय गर्म हो उठा। शरीर से पसीना चूने लगा। वस्त्र भीगकर उतारने योग्य हो गये। उस ने 'आज ही मुझे निकलकर प्रव्रजित होना चाहिए (का निश्चय कर), नाई को लाख (मुद्रा) आमदनी के गाँव देकर ज्येष्ठ-पुत्र को बुलाकर कहा—'तात ! मेरे सिर में सफ़ेद (बाल) उग आया है।

शिपक्खब्रह्मचरियोस्मि। एवं जानाहि गामणी—कहीं कहीं ग्रामिक पुरुष को; और कहीं कहीं ग्राम में जो बड़ा हो, उसे भी ग्रामणी कहा गया है। लेकिन यहाँ (अपने को) सब जनों में श्रेष्ठ समझ अपनी ही ओर इशारा कर, अपने को सम्बोधन करके उदान कहा है—"भो ग्रामणी ! तू इस बात को इस प्रकार जान। यह जो सौ भाइयों का अनतिक्रमण करके, मुझे इस महाराज्य की प्राप्ति हुई है, सो यह आचार्य्य (की कृपा) से हुई है।" उसकी राज्य प्राप्ति के बाद सात आठ दिन व्यतीत होने पर, उसके सभी भाई अपने अपने निवास स्थान को चले गये। ग्रामणी-राजा धर्मानुकूल राज्य का सञ्चालन कर, कर्मानुसार परलोक को प्राप्त हुआ।

शास्ता ने इस धर्म-उपदेश को ला, दिखाकर, (आर्य-)सत्यों को प्रकाशित किया। (आर्य-)सत्यों के प्रकाशन के अन्त में, (वह) आलसी भिक्षु अर्हत्-पद में प्रतिष्ठित हुआ। शास्ता ने दोनों कहानियाँ कह, मेल मिलाकर, जातक का सारांश निकाल दिखाया।

९. मखादेव जातक

उत्तमङ्गरुहा मय्हं. ....इस गाथा को शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, महानिष्क्रमण के बारे में कहा। वह (=महाभिनिष्क्रमण) पहले निदान-कथा में कहा ही जा चुका है।

क. वर्तमान कथा

उस समय भिक्षु बैठे बुद्ध के गृहत्याग (=अभिनिष्क्रमण) की प्रशंसा कर रहे थे। शास्ता ने धर्म-सभा में आ बुद्धासन पर बैठ, भिक्षुओं को सम्बोधित किया—"भिक्षुओ ! बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो ?"

"भन्ते ! और कोई बात-चीत नहीं, बैठे आपके अभिनिष्क्रमण की ही प्रशंसा कर रहे हैं।"

"भिक्षुओ ! तथागत ने केवल अब ही अभिनिष्क्रमण नहीं किया; पहले भी अभिनिष्क्रमण किया है।"

भिक्षुओं ने भगवान् से इस बात को स्पष्ट करने की प्रार्थना की। भगवान् ने पूर्व-जन्म की छिपी हुई बात प्रकट की—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में विदेह राष्ट्र (की) मिथिला (नामक नगरी) में, मखादेव नाम का धार्मिक राजा हुआ। वह चौरासी हजार वर्ष तक बाल-क्रीड़ा (खेल कूद) में लगा रहा। उसके बाद उपराजा और फिर महाराजा हुआ। चिरकाल के बाद (उसने). एक दिन (अपने) नाई (कप्पक) से कहा—"सौम्य कप्पक ! जब तुझे मेरे सिर में सफ़ेद (बाल) दिखाई दे, तो मुझे कहना।" नाई ने कितने ही समय बाद एक दिन राजा के सुरमे के रंग के (=काले) केशों में केवल एक सफ़ेद (बाल) देखकर राजा से निवेदन किया—'देव ! आपके (सिर में) एक सफ़ेद (बाल) (दिखाई) दे रहा है।"

"तो सौम्य ! उस सफ़ेद (बाल) को उखाड़कर मेरी हथेली पर रक्खो।"

ऐसा कहने पर, (नाई ने उस बाल को) सोने की चिमटी से उखाड़कर राजा की हथेली पर रख दिया। उस समय भी राजा की चौरासी हजार वर्ष की आयु शेष थी; लेकिन फिर भी सफ़ेद (बाल) को देखते ही, जैसे यमराज आकर समीप खड़ा हो गया हो, (अथवा) आग लगी कुटिया में दाखिल हुआ हो, उसका चित्त, उद्विग्न हो उठा। वह सोचने लगा—"मूर्ख मखादेव ! सफ़ेद (बाल) के उगने तक भी तू इन (चित्त के मैलों) का परित्याग न कर सका।" उसके इस प्रकार सफ़ेद (बाल) की उत्पत्ति पर बार बार विचार करने से, (उसका) हृदय गर्म हो उठा। शरीर से पसीना चूने लगा। वस्त्र भीगकर उतारने योग्य हो गये। उस ने 'आज ही मुझे निकलकर प्रव्रजित होना चाहिए (का निश्चय कर), नाई को लाख (मुद्रा) आमदनी के गाँव देकर ज्येष्ठ-पुत्र को बुलाकर कहा—'तात ! मेरे सिर में सफ़ेद (बाल) उग आया है।

दिपरक्कमसुधरियोस्मि। एवं जानाहि गामणी—कहीं कहीं ग्रामिक पुरुष को; और कहीं कहीं ग्राम में जो बड़ा हो, उसे भी ग्रामणी कहा गया है। लेकिन यहाँ (अपने को) सब जनों में श्रेष्ठ समझ अपनी ही ओर इशारा कर, अपने को सम्बोधन करके उदान कहा है—"भो ग्रामणी ! तू इस बात को इस प्रकार जान। यह जो सौ भाइयों का अतिक्रमण करके, तुझे इस महाराज्य की प्राप्ति हुई है, सो यह आचार्य (की कृपा) से हुई है।" उसकी राज्य प्राप्ति के बाद सात आठ दिन व्यतीत होने पर, उसके सभी भाई अपने अपने निवास स्थान को चले गये। ग्रामणी-राजा धर्मानुकूल राज्य का सञ्चालन कर, कर्मानुसार परलोक को प्राप्त हुआ।

शास्ता ने इस धर्म-उपदेश को ला, दिखाकर, (आर्य-)सत्यों को प्रकाशित किया। (आर्य-)सत्यों के प्रकाशन के अन्त में, (वह) आलसी भिक्षु अर्हत् पद में प्रतिष्ठित हुआ। शास्ता ने दोनों कहानियाँ कह, मेल मिलाकर, जातक का सारांश निकाल दिखाया।

९. मखादेव जातक

उत्तमङ्गरुहा मय्हं ... इस गाथा को शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, महाभिनिष्क्रमण के बारे में कहा। वह (=महाभिनिष्क्रमण) यहाँ निदान-कथा में कहा ही जा चुका है।

क. वर्तमान कथा

उस समय भिक्षु बैठे बुद्ध के गृहत्याग (=अभिनिष्क्रमण) की प्रशंसा कर रहे थे। शास्ता ने धर्म-सभा में आ बुद्धासन पर बैठ, भिक्षुओं को सम्बोधित किया—"भिक्षुओ ! बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?"

"भन्ते ! और कोई बात-चीत नहीं, बैठे आपके अभिनिष्क्रमण की ही प्रशंसा कर रहे हैं।"

"भिक्षुओ ! तथागत ने केवल अब ही अभिनिष्क्रमण नहीं किया; पहले भी अभिनिष्क्रमण किया है।"

भिक्षुओं ने भगवान् से इस बात को स्पष्ट करने की प्रार्थना की। भगवान् ने पूर्व-जन्म की छिपी हुई बात प्रकट की—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में विदेह राष्ट्र (की) मिथिला (नामक नगरी) में, मखादेव नाम का धार्मिक राजा हुआ। वह चौरासी हज़ार वर्ष तक बाल-क्रीड़ा (खेल कूद) में लगा रहा। उसके बाद उपराजा और फिर महाराजा हुआ। चिरकाल के बाद (उसने), एक दिन (अपने) नाई (कप्पक) से कहा—"सौम्य कप्पक ! जब तुझे मेरे सिर में सफ़ेद (बाल) दिखाई दें, तो मुझे कहना।" नाई ने कितने ही समय बाद एक दिन राजा के सुरमे के रंग के (=काले) केशों में केवल एक सफेद (बाल) देखकर राजा से निवेदन किया—"देव ! आपके (सिर में) एक सफेद (बाल) (दिखाई) दे रहा है।"

"तो सौम्य ! उस सफेद (बाल) को उखाड़कर मेरी हथेली पर रक्खो।"

ऐसा कहने पर, (नाई ने उस बाल को) सोने की चिमटी से उखाड़कर राजा की हथेली पर रख दिया। उस समय भी राजा की चौरासी हज़ार वर्ष की आयु शेष थी; लेकिन फिर भी सफेद (बाल) को देखते ही, जैसे यमराज आकर समीप खड़ा हो गया हो, (अथवा) आग लगी कुटिया में दाखिल हुआ हो, उसका चित्त, उद्विग्न हो उठा। वह सोचने लगा—"मूर्ख मखादेव ! सफेद (बाल) के उगने तक भी तू इन (चित्त के मैलों) का परित्याग न कर सका।" उसके इस प्रकार सफेद (बाल) की उत्पत्ति पर बार बार विचार करने से, (उसका) हृदय गर्म हो उठा। शरीर से पसीना चूने लगा। वस्त्र भीगकर उतारने योग्य हो गये। उस ने 'आज ही मुझे निकलकर प्रव्रजित होना चाहिए' (का निश्चय कर), नाई को लाख (मुद्रा) आमदनी के गाँव देकर ज्येष्ठ-पुत्र को बुलाकर कहा—"तात ! मेरे सिर में सफेद (बाल) उग आया है।

मैं बड़ा हो गया हूँ। (अभी तक) मैं ने मानुषिक भोगों का उपभोग किया है, अब मैं दिव्य भोगों की खोज करूँगा। (यह) मेरा गृहत्याग (=निष्क्रमण) का समय है। (अब) तू इस राज्य को सँभाल। मैं प्रव्रजित हो, मखादेव-आम्र-उद्यान में रहते हुए योगाभ्यास (=श्रमण-धर्म) करूँगा।"

इस प्रकार उसने जब इस प्रव्रज्या के लेने की इच्छा प्रकट की, तो अमात्यों ने आकर उसे पूछा—"देव ! आपके प्रव्रजित होने का क्या कारण है?" राजा ने सफ़ेद (बाल) को हाथ में लेकर, अमात्यों से यह गाथा कही—

> उत्तमङ्गरुहा मय्हं इमे जाता वयोहरा,
> पातुभूता देवदूता पब्बज्जासमयो मम ॥

[यह मेरी आयु का हरण करनेवाले मेरे सिर के बाल पैदा हो गए हैं। यह देव-दूत प्रादुर्भूत हुए हैं। यह मेरी प्रव्रज्या का समय है।]

यहाँ उत्तमङ्गरुहा का अर्थ है केश। हाथ पाँव आदि अङ्गों में उत्तम अङ्ग (=सिर) में उत्पन्न होने के कारण, केश, उत्तमङ्गरुहा कहलाते हैं। इन्हें जाता वयोहरा, अर्थात् तात ! देखो, सफ़ेद (बाल) होने से, यह तीनों प्रकार की आयु के हरण करनेवाले (हैं), (इसलिए) इन्हें जाता वयोहरा। पातुभूता=उत्पन्न हुए। देवदूता, देव कहते हैं मृत्यु को, उसके दूत, सो देवदूत। सिर में सफ़ेद (बालों) के उत्पन्न होने पर (मनुष्य अपने को) यमराज (=मृत्यु-राज) के समीप खड़ा सा समझता है, इसलिए सफ़ेद (बाल) मृत्यु के दूत कहलाते हैं। देवताओं जैसे दूत, इस अर्थ में भी देव-दूत। जिस प्रकार अलंकृत-सजे हुए देवता के, आकाश में खड़े होकर 'अमुक दिन मरोगे' कहने से वह (वचन) वैसे ही होता है, इसी प्रकार सिर में सफ़ेद (बाल) के उत्पन्न होने पर यह देवता की भविष्यवाणी के सदृश ही होता है। इसलिए सफ़ेद (केश) देव सदृश दूत कहलाते हैं। विशुद्धि-देवों के दूत, इस अर्थ में भी देवदूत। सभी बोधिसत्त्व बूढ़े, व्याधित, मृत तथा प्रव्रजित को देख कर ही वैराग्य को प्राप्त हो, निकल कर प्रव्रजित होते हैं। जैसा कहा है—

> जिण्णं च दिस्वा दुखितं च व्याधितं
> मतञ्च दिस्वा गतमायुसङ्खयं

१०. सुखविहारी जातक

'यञ्च अञ्ञे न रक्खन्ति—' यह गाथा, बुद्ध ने अनुपिय नगर के समीप स्थित अनुपिय आम्र-वन में विहार करते समय सुख पूर्वक विहार करनेवाले भद्दिय स्थविर के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

सुख पूर्वक विहार करनेवाले भद्दिय स्थविर छ क्षत्रियों तथा सातवें उपाली की प्रव्रज्या के समय, प्रव्रजित हुए थे। उन (सात) में से भद्दिय स्थविर किम्बिल स्थविर, भृगु स्थविर तथा उपालि स्थविर अर्हत्व पद को प्राप्त हुए। आनन्द स्थविर श्रोतापन्न हुए। अनरुद्ध स्थविर दिव्य-चक्षु के लाभी हुए। देवदत्त ध्यान के लाभी हुए। अनुपिय नगर तक छओं क्षत्रियों की कथा खण्डहाल जातक[1] में आयेगी। आयुष्मान् भद्दिय राज करने के समय, अपनी हिफाजत के लिए, पहरेदारों तथा और भी कई प्रकार की आरक्षा के साथ रहते थे। महल के ऊपरले तल्ले पर, बड़े पलग पर लेटने समय भी, अपने भय-भीत होने की बात स्मरण कर, तथा अब अर्हत्पद प्राप्त कर लेने पर जङ्गल आदि में, जहाँ तहाँ विचरते हुए भी, अपने को निर्भय देख, प्रसन्नता से कहते थे—"अहो! सुख! अहो! सुख।"

इसे सुन भिक्षुओं ने भगवान् से कहा कि—

"आयुष्मान् भद्दिय अपना अर्हत् होना (=अञ्ञं) कह रहे हैं।"[2]

---

[1] खण्डहाल जातक (५४२)

[2] चुल्लवग्ग में भद्दिय का 'गृह-सुख' को याद करना लिखा है।

भगवान् ने कहा, "भिक्षुओ ! भद्दिय, केवल अब ही सुख पूर्वक विहार करनेवाला नहीं है, यह पहले भी सुख पूर्वक ही विहार करनेवाला था।" भिक्षुओं ने भगवान् से, उस बात के स्पष्ट करने की प्रार्थना की। भगवान् ने पूर्व-जन्म की छिपी हुई बात प्रकट की—

ख. अतीत कथा

पूर्व-समय वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोधिसत्त्व ने (एक) प्रसिद्ध, महान् कुल में ब्राह्मण हो, जन्म लिया था। भोगों (=कामों) में लिप्त रहने के दुष्परिणाम (आदीनव) और वैराग्य (निष्क्रमण) में लाभ देखकर, भोगों को छोड़, हिमवन्त में प्रवेश कर, वह ऋषि-प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हुए। उन्होंने आठ समापत्तियों को प्राप्त किया। इनके अनुयायी अनेक थे; पाँच सौ तो तपस्वी थे। इन्होंने वर्षा-काल आने पर हिमवन्त से निकल, तपस्वियों के गण सहित, ग्राम, नगर (=निगम) आदि में घूमते हुए, वाराणसी पहुँच राजा के आश्रित, राज-उद्यान में वर्षा-वास किया। वहाँ वर्षा के चारों मास रहकर, राजा से (चलने के लिए) पूछा। राजा ने प्रार्थना की—"भन्ते आप वृद्ध हैं। आपको हिमवन्त से क्या? शिष्यों को हिमवन्त भेजकर, आप यहीं रहें।'

बोधिसत्त्व ने अपने प्रधान शिष्य को पाँच सौ तपस्वी सौंपकर कहा—"जा। तू इनके साथ हिमवन्त में रह। मैं यहीं रहूँगा।" (इस प्रकार) उनको चलता कर, आप यहीं रहने लगे। इनका, वह प्रधान शिष्य राज-प्रव्रजित था। उसने बड़े भारी राज्य को छोड़, प्रव्रजित हो कसिण-परिकर्म (=योग-अभ्यास) कर, आठ समापत्तियाँ प्राप्त की थी। हिमवन्त में तपस्वियों के साथ रहते रहते एक दिन, उसने (अपने) आचार्य्य को देखने की इच्छा से तपस्वियों को बुलाकर कहा—'तुम उत्कण्ठा रहित हो, यहीं रहो। मैं आचार्य्य की वन्दना करके लौटूँगा'। और आचार्य्य के पास जाकर, प्रणाम कर, कुशल-क्षेम पूछ, एक चटाई फैलाकर, उसपर आचार्य्य के समीप ही लेट रहा।

उस समय राजा तपस्वी को देखने की इच्छा से उद्यान में जाकर, प्रणाम कर, एक ओर बैठ रहा। शिष्य-तपस्वी राजा को देखकर भी (अपने स्थान से)

पहला परिच्छेद

२. सील वर्ग

११. लक्खण जातक

'होति सीलवतं अत्थो'—इस गाथा को, राज-गृह के समीप वेळुवन में विहार करते हुए (बुद्ध ने), देवदत्त के बारे में कहा।

क. वर्तमान कथा

देवदत्त का (भगवान् को) मारने का प्रयत्न करने तक का वृत्तान्त खण्डहाल जातक[1] में; धनपाल (हाथी) के भेजने तक का वृत्तान्त चुल्लहंसजातक[2] में, तथा पृथ्वी में प्रवेश करने तक का वृत्तान्त सोलहवें परिच्छेद में समुद्दवाणिज जातक[3] में आयेगा।

एक समय देवदत्त ने भगवान् से पाँच बातें[4] (=वस्तु) स्वीकार करने की प्रार्थना की। उन (पाँच बातों) के अस्वीकृत होने पर, वह सङ्घ में फूट पैदा कर, पाँच सौ भिक्षुओं को साथ ले गया-सीस में रहने लगा। (समय बीतने पर) उन भिक्षुओं को कुछ अक्ल आई। यह जानकर, बुद्ध ने (अपने दोनों प्रधान शिष्यों, को कहा—

"सारिपुत्त! तुम्हारे साथी पाँच सौ भिक्षु, देवदत्त के मत को पसन्द कर उसके साथ चले गये, लेकिन अब उनको अक्ल आ गई है। तुम बहुत से

---

[1] ५४२ जातक। [2] ५३३ जातक। [3] ४६६ जातक।

[4] सभी भिक्षु आजीवन आरण्य-वासी; वृक्षों के नीचे रहनेवाले (=घर में न रहें); पंसु-कूलिक (=गुदड़ी धारी); पिण्डपातिक (=भिक्षा पर ही जीवित रहना) तथा शाकाहारी (=अमांस भोजी) हों।

भिक्षुओं के साथ वहाँ जाओ, और उन्हें धर्मोपदेश द्वारा मार्ग-फल का बोध करवा, साथ ले आओ।" तब वह वैसे ही (गयासीस) गये; और उन्हें धर्मोपदेश द्वारा मार्ग-फल का अवबोध करवा, फिर एक दिन अरुणोदय के समय उन भिक्षुओं को साथ लेकर, वेलुवन चले आये। आकर, सारिपुत्र स्थविर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर खड़े हुए। तब भिक्षुओं ने स्थविर की प्रशंसा करते हुए, भगवान् से कहा—

"भन्ते ! हमारे ज्येष्ठ-भ्राता, धर्मसेनापति (सारिपुत्र) पाँच सौ भिक्षुओं के बीच में आते कैसे सुन्दर लगते हैं; लेकिन देवदत्त तो अनुयायियों (=परिवार) के बिना रह गया।"

"भिक्षुओ ! जाति-संघ के बीच में आते हुए सारिपुत्र, केवल अब ही सुन्दर नहीं लगते हैं, पहले भी वह शोभा देते थे, और देवदत्त, केवल अब ही बे-जमाती (गण-रहित) नहीं हुआ, पहले भी हुआ है।"

भिक्षुओं ने भगवान् से उस बात को प्रकट करने की प्रार्थना की। भगवान् ने पूर्व-जन्म की छिपी हुई बात प्रगट की—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में मगध देश के राजगृह नगर में, कोई मगध-नरेश राज्य करते थे। उस समय बोधिसत्त्व ने मृग की योनि में जन्म ग्रहण किया था। बड़े होकर वह (एक) हजार मृगों के दल के साथ, जंगल में वास करते थे। उनके लक्खण और काल नाम के दो पुत्र थे। उन्होंने अपने बूढ़ा होने पर, "तात ! मैं अब बूढ़ा हो गया, अब तुम इस मृग-गण को सँभालो" कह एक एक पुत्र को पाँच पाँच सौ मृग सौंप दिये। उस समय से, वह दोनों जने मृग-गण को लेकर घूमने लगे। मगध देश में खेती के दिनों में, खेती पकने के समय, जंगल में मृगों को खतरा होता था। खेती-खानेवाले मृगों को मारने के लिए लोग जहाँ तहाँ गड्ढे खोदते, काँटे लगाते, पत्थर-यन्त्रों (=गुलेल) को सँवारते, कूट-पाश आदि बन्धन फैलाते थे, (जिससे) बहुत से मृग मारे जाते। बोधिसत्त्व ने खेती पकने का समय जान, पुत्रों को बुलवाकर कहा—"यह खेती पकने का समय है। (इस समय) बहुत से मृग मारे जाते हैं। हम बड़े (लोग) तो जिस

किसी ढंग से एक ही स्थान पर (रहते) दिन काट लेंगे, लेकिन तुम अपने साथ के मृग-गण को लेकर, जंगल में, पर्वत में जाओ; और (वहाँ रह) खेती कटने के समय (लौट) आना।"

वे पिता के वचन को 'अच्छा' (कह), अपने अनुयायियों सहित निकल पड़े। उनके जाने के मार्ग में रहने (वाले) मनुष्य, "इस समय मृग पर्वतों पर चढ़ते हैं, इस समय पर्वतों से उतरते हैं" जानते थे और जहाँ तहाँ छिपने योग्य जगहों पर छिप कर वे बहुत से मृगों को मार डालते थे। काल (नामक) मृग अपनी मूढ़ता के कारण, यह जाने योग्य समय है (अथवा) यह नहीं जाने योग्य समय है, न समझ, मृग-गण को ले पूर्वाह्न के समय भी, सायकाल के समय भी, रात के समय भी, (तथा) प्रातःकाल के समय भी ग्राम-द्वार के पास से ही निकलता था। जहाँ तहाँ प्रगट ही खड़े, अथवा छिपे रह मनुष्य बहुत से मृगों को मार डालते। इस प्रकार अपनी मूढ़ता के कारण (उसने) बहुत से मृगों को मरवा कर, बहुत थोड़े से ही मृगों के साथ अरण्य में प्रवेश किया। लेकिन पण्डित =व्यक्त, उपायकुशल लक्खण (नामक) मृग, 'इस समय जाना चाहिए, इस समय नहीं जाना चाहिए' जानता था। वह न ग्राम-द्वार से जाता, न दिन में जाता, न रात्रि (=शाम) के समय जाता, न प्रातःकाल के समय जाता, मृग-गण को लेकर केवल आधी-रात के समय जाता। इसलिए वह एक भी मृग का नाश बिना हुए लिए ही जंगल में प्रविष्ट हुआ। वहाँ चार महीने रहकर वे (मृग) खेत कट जाने पर, पर्वत से उतरे। काल मृग, लौटते समय भी, पहले ही तरह से (लौटकर) बाकी मृगों को भी मरवा कर अकेला ही (वापिस) आया। लेकिन लक्खण मृग की मण्डली का एक भी मृग नष्ट न हुआ और वह पाँच सौ मृगों के साथ, माता पिता के पास (वापिस) आया। बोधिसत्त्व ने दोनों पुत्रों को आता देख, मृग-गण से बात चीत करते हुए यह गाथा कही—

> होति सीलवतं अत्थो पटिसन्थारवुत्तिनं,
> लक्खणं पस्स आयन्तं ञातिसंघपुरक्खतं;
> अथ पस्ससिमं काळं सुविहीनं व ञातिहि ॥

[(सदाचारी) और मेल जोल से व्यतीत करने वालों की उन्नति [illegible]

१२. निग्रोध मृग जातक

"निग्रोधमेव सेवेय्य. . ." यह गाथा, बुद्ध ने जेतवन में विहार करते समय, कुमार काश्यप स्थविर की माता के बारे में कही।

क. वर्त्तमान कथा

वह राजगृह नगर के (एक) महासम्पत्तिशाली सेठ की लड़की थी। अति स्वच्छ-विचार (=ऊँचे कुशल-मूल), परिमार्जित-संस्कार, अन्तिम-शरीर वाली (उस लड़की) के हृदय में मुक्त होने की इच्छा वैसेही प्रज्वलित हो रही थी, जैसे घड़े के अन्दर प्रदीप। जब से होश सँभाला, तभी से उसका मन गृहस्थ में न लगता था। उसने प्रव्रजित होने की इच्छा से माता पिता से कहा—"अम्मा-तात! मेरा मन घर में नहीं लगता। मैं (मोक्ष की ओर) ले जानेवाले बुद्ध-धर्म में प्रव्रजित होना चाहती हूँ। आप मुझे प्रव्रजित करायें।"

"अम्म! क्या कहती है? यह धनी कुल, और तू हमारी अकेली लड़की! तू प्रव्रजित नहीं हो सकती।"

माता-पिता से बार-बार प्रार्थना करने पर भी, प्रव्रज्या की आज्ञा न मिलने पर, वह सोचने लगी—"अच्छा (= हो)। पति-कुल जाकर, स्वामी को मनाकर प्रव्रजित होऊँगी।" फिर आयु-प्राप्त होने पर, पति-कुल जाकर, पति को देवता बना, शीलवान्, सदाचारिणी (=कल्याण धर्मा) हो गृहस्थ में रहने लगी। उनके सहवास से उसकी कोख में गर्भ प्रतिष्ठित हो गया। (लेकिन) उसको गर्भ के प्रतिष्ठित होने का पता नहीं लगा।

उस समय उस नगर में उत्सव (=नक्षत्र) की घोषणा हुई। सब नगर-वासी उत्सव मनाने लगे। नगर देव-नगर की भाँति अलङ्कृत किया गया। लेकिन उसने, इस प्रकार के विशाल उत्सव के रहने पर भी, न अपने शरीर

(चन्दनादि का) लेप लिया, न उसे अलंकृत किया। स्वाभाविक वेष में ही रही रही।

उसके स्वामी ने उससे पूछा—"भद्रे ! सारा नगर (तो) उत्सव मना रहा है, तू अपने को क्यों नहीं सजा रही है ?"

"आर्य ! यह शरीर बत्तीस प्रकार की गन्दगियों से[1] भरा है, इसे अलंकृत करने से ही क्या ? यह शरीर न तो देव का बनाया हुआ है, न ब्रह्मा का बनाया हुआ है, न स्वर्णमय है, न मणिमय, न हरिचन्दनमय है, न ही पुण्डरीक, कमल, उत्पल (आदि) के गर्भ से उत्पन्न हुआ है, न अमृतौषधि से पूर्ण है। (यह) गन्दगी में पैदा हुआ, माता-पिता (के संयोग) से अस्तित्व में आया है। अनित्यता, मालिश तथा मर्दन की आवश्यकता होना, टूटना, ध्वस्त होना—यही इसका स्वभाव है। यह श्मशान को बढ़ानेवाला है, तृष्णा से उत्पन्न है। शोकों का निदान है। विलाप का कारण है। सब रोगों का आलय है। (दण्ड-)कर्मों का भोगनेवाला है। अन्दर से गन्दा है; बाहर नित्य (गन्दगी) चूती रहती है। कीड़ों का निवासस्थान (=आवास) है। श्मशान का यात्री है। मरना (ही) इसका अन्त है। (यह शरीर) सब लोगों की दृष्टि में रहता हुआ भी—

अट्ठी नहारु संयुत्तो तचमंस विलेपनो,
छविया कायो पटिच्छन्नो यथाभूतं न दिस्सति ॥
अन्तपूरो उदरपूरो यक पेलस्स वत्थिनो,
हदयस्स पप्फासस्स वक्कस्स पिहकस्स च।
सिंघाणिकाय खेलस्स, सेदस्स, मेदस्स च
लोहितस्स, लसिकाय, पित्तस्स च वसाय च ॥
अथस्स नवहि सोतेहि असुचि सवति सब्बदा
अक्खिम्हा अक्खिगूथको, कण्णम्हा कण्णगूथको ॥
सिंघाणिका च नासातो मुखेन वमति एकदा
पित्तं सेम्हं च वमति कायम्हा सेदजल्लिका ॥

---

[1] केश, रोम, नख, दाँत, त्वच् आदि (देखो सतिपट्ठान सुत्त, मज्झिम निकाय)।

"आर्य पुत्र ! इस शरीर को अलंकृत करके क्या करोगे ? इस शरीर का अलंकृत करना क्या वैसा ही नहीं है जैसा गन्दगी भरे घड़े के बाहर चित्र बनाना ?" सेठ-पुत्र ने उसके इस वचन को सुनकर कहा—"भद्रे ! यदि तू इस शरीर में इतने दोष देखती है, तो प्रव्रजित क्यों नहीं होती ?" "आर्य पुत्र ! यदि मुझे प्रव्रज्या मिले, तो मैं आज ही प्रव्रजित होऊँ।" सेठ-पुत्र ने 'अच्छा' मैं तुझे प्रव्रजित कराऊँगा, कह, महा-दान दे, महासत्कार कर, बड़ी भी सामग्री (परिवार) के साथ, उसे भिक्षुणी-विहार में ले जाकर, वहाँ देवदत्त के पक्ष की भिक्षुणियों के पास प्रव्रजित कराया। वह प्रव्रज्या प्राप्त कर, संकल्प पूर्ण होने के कारण सन्तुष्ट हुई। तब उसके गर्भ के परिपक्व होने से, उसकी इन्द्रियों (= आकार-प्रकार) का परिवर्तन (= अन्यथा होना), हाथ पैर तथा पीठ का भारीपन, तथा पेट (= उदर पटल) का मोटापन देखकर, भिक्षुणियों ने पूछा—"आर्ये ! तू गर्भिणी सी प्रतीत होती है। यो यह क्या है ?"

"आर्ये ! मैं यह नहीं जानती कि यह क्या है, लेकिन मेरा शील (= सदाचार) परिपूर्ण है।"

तब उन भिक्षुणियों ने उसे देवदत्त के पास ले जाकर, देवदत्त से पूछा—"आर्य ! इस कुल-पुत्री ने बड़ी कठिनाई से (अपने) स्वामी को मना कर प्रव्रज्या प्राप्त की। लेकिन अब इसे गर्भ दिखाई देता है। हम नहीं जानतीं कि यह गर्भ इसे गृहस्थ रहते समय से ही है, अथवा प्रव्रजित होने पर रहा है ? अब हम क्या करें ?" देवदत्त ने बुद्ध न होने के कारण, तथा क्षान्ति मैत्री और दया का भी अभाव होने के कारण, सोचा "मुझे कहेंगे कि मैं इसका [illegible] (= [illegible] करता हूँ), नहीं तो (लोग) मेरी यह बदनामी [illegible] कि देवदत्त के पक्ष की एक भिक्षुणी कोख में गर्भ लिये फिरती है और देवदत्त [illegible] उपेक्षा करता है।

तब उसने बिना सोचे विचारे, पत्थर के ढेले को [illegible] कहा—"जाओ, इसे अप्रव्रजित कर दो।" [illegible] [illegible] (= [illegible]) [illegible]।

तब उस बात को सुनकर भिक्षुणी ने भिक्षुणियों से कहा—"आर्ये ! [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] प्रव्रजित हुई हूँ। [illegible]

२१

लोकाग्र, सम्यक् सम्बुद्ध हैं, उनकी अनुयायी हो प्रव्रजित हुई हूँ। और यह 'प्रव्रज्या' मुझे बड़ी कठिनाई से मिली है, सो मेरी इस (प्रव्रज्या) का लोप मत करो। आओ, मुझे (साथ) लेकर, शास्ता के पास जेतवन चलो।" वे उसे साथ ले, राजगृह से पैंतालीस योजन मार्ग क्रम से चलकर, जेतवन पहुँचीं। बुद्ध को प्रणाम कर, उन्होंने वह बात निवेदित की। शास्ता ने सोचा—"यद्यपि इसको गृहस्थ के समय ही गर्भ रहा है, लेकिन फिर भी तैर्थिकों को यह कहने को हो जायगा कि श्रमण गौतम, देवदत्त द्वारा छोड़ी (भिक्षुणी) को साथ लिये फिरता है। इसलिए इस कथा को शान्त करने के लिए, राजा सहित परिषद् के बीच में, इस अधिकरण (=मुकदमे) का फैसला होना चाहिए।"

फिर एक दिन, कोशल-नरेश, प्रसेनजित्, बड़े अनाथपिण्डिक, छोटे अनाथपिण्डिक, महाउपासिका विशाखा, तथा अन्य प्रसिद्ध प्रसिद्ध महाकुलों को बुलवाकर, सायंकाल के समय चारों प्रकार की परिषद् के एकत्र होने पर, उपाली स्थविर को सम्बोधित किया—"जाओ! चारों प्रकार की परिषद् के बीच में इस तरुण भिक्षुणी के कर्म की परीक्षा करो।"

"भन्ते! अच्छा" कह, स्थविर ने परिषद् के बीच में जाकर, अपने आसन पर बैठ, राजा के आगे उपासिका विशाखा को बुलवाकर, (उसे) यह अधिकरण सौंपा—"विशाखे! इस तरुणी ने अमुक महीने, अमुक दिन प्रव्रज्या ग्रहण की है। तू जाकर, इसका गर्भ प्रव्रज्या से पूर्व का है, अथवा पीछे का; इसे यथार्थ जान।"

उपासिका ने 'अच्छा' कह, इसे स्वीकार कर, कनात तनवा दी। और कनात के अन्दर तरुण भिक्षुणी के हाथ, पाँव, नाभी तथा उदर आदि देखकर, महीने और दिनों का विचार कर, ठीक से जान लिया, कि गृहस्थ रहते यह गर्भ ठहरा। फिर स्थविर के पास जाकर, यह बात निवेदित की। स्थविर ने चारों प्रकार की परिषद् के बीच में उस भिक्षुणी को बरी किया। वह बरी होकर भिक्षु-संघ तथा शास्ता को प्रणाम कर, भिक्षुणियों के साथ ही भिक्षुणी-विहार को गई। गर्भ के परिपाक होने पर उसने ऐसे महाप्रतापी, पुत्र को जन्म दिया जिसने पद्मोत्तर (बुद्ध) के चरणों में प्रार्थना की थी।

तब एक दिन राजा ने भिक्षुणियों के विहार के समीप से जाते हुए, बालक

की आवाज सुनकर मन्त्रियों से पूछा। अमात्यों ने मालूम कर उसे कहा—"देव ! उस तरुण भिक्षुणी के पुत्र हुआ है। यह उसकी आवाज है।"

"भन्ते ! भिक्षुणियों को बच्चों के पालन पोषण में कठिनाई होती है, इसलिए इस (बालक) को हम पालेंगे" (कह) राजा ने उस बच्चे को नटी स्त्रियों को दिलवा कर, (राज-)कुमार की तरह पालन करवाया। नामग्रहण के दिन, उसका नाम काश्यप रखा। (राज-)कुमार की तरह पालन होने से, वह कुमार-काश्यप नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह सात वर्ष की आयु में शास्ता के पास प्रव्रजित हुआ। (बीस वर्ष की) आयु पूरी होने पर उपसम्पदा प्राप्त कर, समय बीतने पर सुन्दर धर्मोपदेशक हुआ। शास्ता ने 'भिक्षुओ! मेरे सुन्दर (=चित्र) धर्म-कथिक श्रावकों में कुमार-काश्यप सर्व-श्रेष्ठ है'[1] (कह) उसे सर्व-श्रेष्ठ पद दिया। आगे चलकर, 'वम्मिक सुत्त'[2] सुनने पर, उसने अर्हत्त्व प्राप्त किया। उसकी भिक्षुणी माता ने भी विदर्शना-भावना (=योगाभ्यास) द्वारा अग्र-फल (=अर्हत्व) प्राप्त किया। कुमार-काश्यप स्थविर, बुद्धों के शासन रूपी आकाश में पूर्ण-चन्द्र की भाँति प्रकाशित हुए।

एक दिन तथागत, भिक्षाटन से लौटकर, भोजन करने के बाद, भिक्षुओं को उपदेश दे गन्धकुटी में प्रविष्ट हुए। भिक्षु उपदेश ग्रहण कर, अपने अपने रात्रि रहने के स्थानों में दिन बिता कर, शाम के समय धर्म-सभा में एकत्रित हो, "आयुष्मानो ! देवदत्त ने 'बुद्ध' न होने के कारण, तथा क्षमा, मैत्री और दया का अभाव होने के कारण, कुमार काश्यप स्थविर और स्थविरी को क्षण में नष्ट कर दिया। लेकिन सम्यक् सम्बुद्ध ने, धर्म-राज होने के कारण, तथा क्षमा, मैत्री और दया रूपी सम्पत्ति से युक्त होने के कारण, उन दोनों को आश्रय दिया" कहते हुए, बैठे बुद्ध-गुणों की प्रशंसा कर रहे थे।

शास्ता ने बुद्ध-लीला से धर्म-सभा में आ, बिछे आसन पर बैठकर पूछा, "भिक्षुओ ! इस समय बैठे क्या बात-चीत कर रहे थे?"

उन्होंने उत्तर दिया, "भन्ते ! आप ही की गुण-कथा (कहने) में लगे थे।"

---

[1] अंगुत्तर निकाय, एतदग्ग वग्ग।
[2] मज्झिम निकाय।

हुए, उस झुंड को उद्यान में दाखिल कर, द्वार को बन्द कर, राजा के पास जा, कहा—देव ! लगातार शिकार के लिए जाने से हमारे काम की हानि होती है। हमने जंगल से मृगों को लाकर (उनसे) आपका उद्यान भर दिया। अब से आप उनका मांस खावें। फिर राजा से आज्ञा मांग चले गये।

राजा ने उनकी बात सुन, उद्यान में जा, मृगों को देखते हुए, (उनमें) दो सुनहरे मृगों को देख, उन्हें अभय-दान दिया। उस दिन से लगाकर, कभी वह स्वयं जाकर, एक मृग को मार लाता, कभी उसका रसोइया ही जाकर मृग को मार लाता। मृग धनुष को देखते ही मरने के भय से डरकर भागते। दो तीन चोटें खाकर दुःखित होते, गिलानी (=रोगी) होते और मर भी जाते। मृग झुंड ने यह बात बोधिसत्व से कही। उसने शाख मृग को बुलवा कर कहा—सौम्य ! मृग बहुत नष्ट हो रहे हैं। यदि मरना अवश्य ही है, तो अब से मृग तीर से न बींधे जावें। गर्दन काटने की जगह (धर्म-गण्डिका स्थान) पर मृगों की बारी बँध जावे। एक दिन मेरी परिषद् (मंडली) में से एक की बारी हो एक दिन तेरी मंडली में से एक की। जिसकी बारी आवे, वह मृग धर्म-गण्डिका पर जाकर, सिर रखकर पड़ रहे। इस प्रकार मृग घायल न होंगे।"

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। उस समय से जिसकी बारी आती, वह मृग जाकर, धर्म-गण्डिका पर गर्दन रखकर पड़ रहता। रसोइया आकर, वहाँ पड़े को लेकर, जाता।

एक दिन शाखा-मृग की टोली में एक गर्भिणी हिरनी की बारी आई। उसने शाखा-मृग के पास जाकर कहा—'स्वामी ! मैं गर्भिणी हूँ। पुत्र पैदा होने पर, हम दो जने बारी बारी से जावेंगे ! अब मेरी जगह किसी और को भेज दो।" उसने उत्तर दिया, "मैं तेरी जगह, किसी दूसरे को नहीं भेज सकता जो तुझ पर पड़ी है, उसे तू ही जान। जा।"

उससे कृपा न मिलने पर, वह बोधिसत्व के पास गई, और जाकर वही बात कही। वह उस (हिरनी) की बात सुन, 'अच्छा तू जा, मैं तेरी बारी टाल दूंगा' कह, स्वयं जाकर धर्म-गण्डिका पर सिर रखकर लेट रहा। रसोइये ने उसे देख, 'अभय-प्राप्त मृग-राज गण्डिका पर पड़ा है, क्या कारण है?' (सोच) जल्दी से जाकर राजा से कहा। राजा ने उसी समय रथ पर चढ़, बहुत से जन-समूह (परिवार) के साथ आकर बोधिसत्व को देखकर पूछा—

"सौम्यमृगराज ! क्या मैंने तुझे अभय-दान नहीं दिया ? यहाँ तू किस लिए पड़ा है ?"

"महाराज ! गर्भिणी हिरणी ने आकर कहा कि मेरी बारी किसी दूसरे पर डाल दो। मैं एक का मरण-दुःख किसी दूसरे पर न डाल सकता था। इसलिए अपना जीवन उसे देकर, और उसका मरना अपने ऊपर लेने के लिए, मैं यहाँ आकर पड़ा हूँ। महाराज ! इसमें और कोई दूसरी शंका न करें।"

राजा ने कहा—"स्वामी ! स्वर्ण-वर्ण मृग-राज ! मैंने तेरे सदृश क्षमा, मैत्री और दया से युक्त मनुष्यों में भी किसी को इससे पहले नहीं देखा। इसलिए मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ। उठ, तुझे और उसको—दोनों को अभय देता हूँ।"

"महाराज ! हम दोनों को अभय मिलने पर बाकी क्या करेंगे ?"

"स्वामी ! बाकियों को भी अभय देता हूँ।"

"महाराज ! इस प्रकार केवल उद्यान के ही मृगों को अभय मिलेगी। बाकी क्या करेंगे ?"

"स्वामी ! उनको भी अभय देता हूँ।"

"महाराज ! मृग तो अभय प्राप्त कर, बाकी चतुष्पाद (=चौपाये) क्या करेंगे ?"

"स्वामी ! उनको भी अभय देता हूँ।"

"महाराज ! चतुष्पाद तो अभय प्राप्त करें, बाकी पक्षी (=द्विज) क्या करेंगे ?"

"स्वामी ! उनको भी अभय देता हूँ।"

"महाराज ! पक्षी तो अभय प्राप्त कर, बाकी जल में रहनेवाले मत्स्य (=मच्छ) क्या करेंगे ?"

"स्वामी ! उनको भी अभय देता हूँ।"

इस प्रकार महासत्त्व (=बोधिसत्त्व) राजा से सब प्राणियों के लिए अभय को उपलब्ध कर, उठकर राजा को पाँच शीलों में प्रतिष्ठित कर "महाराज ! धर्माचरण करें। [illegible] [illegible]

मृगों के झुंड के साथ, अरण्य में चला गया। उस हिरणी ने भी पुष्प सदृश पुत्र को जन्म दिया। वह खेलता खेलता शाखा-मृग के पास चला जाता। उसकी माता उसे वहाँ जाता देख, 'पुत्र! अब से उस के पास ना जाकर (केवल) निग्रोध (-मृग) के पास ही जाना' यह उपदेश देती हुई, यह गाथा कहती—

> निग्रोधमेव सेवेय्य न साखमुपसंवसे,
> नीग्रोधस्मिं मतं सेय्यो यञ्चे साखस्मिं जीवितं ॥

[निग्रोध की ही सेवा करे। शाख के समीप न जाये। शाख (के आश्रय) में जीने की अपेक्षा निग्रोध (के आश्रय) में मरना श्रेयस्कार है]।

निग्रोधमेव सेवेय्य का अर्थ है कि तात ! तू, अथवा अपना हित चाहनेवाला अन्य कोई निग्रोध की ही सेवा करे=भजे=पास रहे। न साखमुपसंवसे का अर्थ है कि शाखा-मृग के पास न रहे, पास जाकर न रहे, उसके आश्रय में रह कर जीविका न चलाए। निग्रोधस्मि मतं सेय्यो का अर्थ है कि निग्रोध राजा के चरणो में मरना भी श्रेष्ठ है; अच्छा है, उत्तम है। यञ्चे साखस्मि जीवितं का अर्थ है कि शाख(-मृग)के पास जो जीना है, वह श्रेष्ठ नहीं है, अच्छा नहीं है, उत्तम नहीं है।

उसके बाद से अभय-प्राप्त मृग मनुष्यो के खेत खाने लगे। मनुष्य 'यह, अभय-प्राप्त मृग है' (सोच) न उन्हें मारते थे, न भगाते थे। उन्होंने राजाङ्गण में इकट्ठे हो, राजा से इसकी शिकायत की। राजा ने उत्तर दिया—"मैंने प्रसन्न चित्त हो, उस श्रेष्ठ निग्रोध मृग को वर दिया है। मैं राज्य छोड़ दूँगा, लेकिन उस प्रतिज्ञा को नहीं छोड़ूँगा। जाओ, मेरे राज्य में किसी को मृग मारने की छुट्टी नहीं है।"

निग्रोध मृग ने उस समाचार को सुन, मृगो के समूह को एकत्र कर, "अब से दूसरो के खेत न खाये जायें" (कह) मृगो को (खेत खाने से) रोक मनुष्यो को कहलवाया कि अब से लगाकर खेती करनेवाले लोगो की रक्षा के लिए बाड़ न बाँधें। (केवल) खेत का [illegible] रक्षा [illegible] । [illegible] निशानी) बाँध दें। इस प्रकार [illegible]
उसके [illegible] बोधि-

उन्होंने उस घटना को देख, (सोचा), यह मूर्ख-मृग न तो माता के लिए सुख न पिता के लिए, (यह मरा तो) कामुकता के लिए। कामुकता के कारण प्राणी दुर्गति में (गिर कर) हाथों का कटना आदि दुर्गति, पाँच प्रकार के बन्ध आदि (तथा) नाना प्रकार के दुःख को प्राप्त होते हैं। दूसरों को मरने का दुःख देना भी, इस लोक में निन्दनीय ही है। जिस देश पर स्त्री स्वामिनी (=विचारक) होती है, अनुशासन करती है, वह स्त्री की अधीनता में रहनेवाला देश भी निन्दनीय ही है। इस प्रकार एक गाथा से तीन निन्दनीय वस्तुओं को दिखाकर, वनदेवताओं को 'साधुकार' देकर गन्धपुष्पादि से पूजा करने के समय मधुर स्वर से उस वन-खण्ड को उन्नादित करते हुए, इस गाथा से धर्मोपदेश किया—

> धिरत्थु कण्डिनं सल्लं पुरिसं गाळ्हवेधिनं,
> धिरत्थु तं जनपदं यत्थित्थी परिणायिका;
> ते चापि धिक्किता सत्ता ये इत्थीनं वसं गता ॥

[काण्डवान तीर से, और गहरा बेधनेवाले मनुष्य को धिक्कार है। जिस जनपद का स्त्री सञ्चालन करती है, उस जनपद को धिक्कार है। जो सत्त्व (=प्राणी) स्त्रियों के वशीभूत हो जाते हैं, उन प्राणियों को धिक्कार है।]

धिरत्थु शब्द 'निन्दा' के अर्थ में 'निपात' है। सो इसे यहाँ त्रास और उद्वेग के कारण निन्दा-वाचक समझना चाहिए। [illegible] और उद्वेग [illegible] धर्मोपदेश न इस प्रकार कहा। 'कण्डिनं' जिसका है, सो [illegible] (=[illegible]) [illegible]। उस कण्ड का [illegible] होने के अर्थ में [illegible] है। इसलिए कण्डिन सल्ल का अर्थ है सल्ल कण्डिन। अथवा [illegible] के कारण [illegible] और [illegible] करके, [illegible] में [illegible] है, इसलिए [illegible]। उस [illegible] को [illegible] प्रकार के [illegible] पुरुष (=[illegible]) के [illegible] के [illegible] (=[illegible]) [illegible] धिक्कार है।

परिणायिका का अर्थ है स्वामिनी (=[illegible]), अधिपति (=[illegible]

करनेवाली। 'दिश्विरता' का अर्थ है गर्हिता। शेष, यहाँ स्पष्ट ही है। इससे आगे, इतना भी न कहकर, जो जो अस्पष्ट है, उसीकी व्याख्या करेंगे। इस प्रकार एक गाथा में तीन निन्दित-चीजें दिखाकर, बोधिसत्व ने वन को उन्नादित करते हुए बुद्ध की भाँति (बुद्ध लीला से) धर्मोपदेश किया।

बुद्ध ने इस धर्मोपदेश को लाकर (आर्य-)सत्यों को प्रकाशित किया। (आर्य-)सत्यों (के प्रकाशित होने) की समाप्ति पर उत्कण्ठित भिक्षु स्रोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हुआ। शास्ता ने दोनों कथायें कह, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिखाया। इससे आगे 'दोनो कथायें कहकर'—यह शब्द बिना कहे, केवल 'मेल मिलाकर' (=अनुसन्धिघटेत्वा)—इतना ही कहेंगे। लेकिन बिना कहने पर भी, उसे, पूर्वोक्त प्रकार से ही ग्रहण करना चाहिए।

उस समय का पर्वतवासी मृग (अब का) उत्कण्ठित-भिक्षु था। मृग पोतिका (अब की) पूर्व-भार्या थी। कामुकता में दोष दिखाकर, उपदेश करनेवाला देवता तो मैं ही था।

१४. वातमिग जातक

"न किरत्थि रसेहि पापियो"—यह गाथा, शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय चुल्लपिण्डपातिक-तिस्स स्थविर के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

शास्ता के राजगृह के समीप वेलुवन में विहार करते समय, एक बड़ा सम्पत्तिशाली सेठ-कुल के तिस्स-कुमार नामक पुत्र ने, एक दिन वेलुवन जा, शास्ता की धर्म-देशना सुन, प्रव्रजित होने की इच्छा से, प्रव्रज्या की याचना की।

माता पिता की आज्ञा न मिलने पर, रट्ठपाल स्थविर[1] की तरह सप्ताह भर भूखे रह, माता पिता से आज्ञा ले, बुद्ध के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। बुद्ध उसे प्रव्रजित करने के बाद, कोई आधे महीने तक वेणुवन में विहार कर, जेतवन को चले गये। वहाँ वह कुल-पुत्र तेरह धुताङ्ग व्रतों को ग्रहण कर, श्रावस्ती में क्रम से[2] भिक्षा माँगते हुए, समय बिताने लगा। चुल्लपिण्डपातिक तिस्स स्थविर का नाम लेने पर, वह बुद्ध मत में वैसे ही प्रगट=प्रसिद्ध था, जैसे आकाश तल पर चन्द्रमा। उस समय राजगृह में उत्सव (=नक्षत्र-क्रीडा) था। स्थविर के माता पिता, उन सब आभरणो को, जिन्हें स्थविर गृहस्थ में रहते पहनते थे, चाँदी की डलिया में रख, (उसे) अपनी छाती पर रख, 'अन्य उत्सवों (=नक्षत्र-क्रीड़ाओ) के मौके पर हमारा पुत्र इन इन आभूषणो से अलंकृत होकर मेले में जाता था। अब हमारे उस अकेले पुत्र को, लेकर श्रमण गौतम श्रावस्ती चला गया। इस समय वह कहाँ बैठा होगा, कहाँ खड़ा होगा' कहते रोते थे। एक वेश्या ने उसके घर जाकर, सेठानी को रोते देख पूछा—"आर्ये! क्यो रोती हो?"

उसने सब बात कह दी।

"आर्ये! आर्य-पुत्र को क्या क्या प्यारा लगता था?"

"अमुक अमुक (चीजें)।"

"यदि तुम, इस घर का सब ऐश्वर्य मुझे दो, तो मैं आर्य-पुत्र को ले आऊँगी।"

सेठानी ने 'अच्छा' कह, स्वीकार कर, खर्चा दे, बहुत से अनुयायियों के साथ उसे यह कहकर भेजा, "जा, अपने बल से मेरे पुत्र को ला।"

तब वह परदे वाली गाड़ी में बैठ, श्रावस्ती पहुँची। (वहाँ) जिस गली में स्थविर भिक्षा माँगने जाया करते थे उसमें घर लिया। फिर सेठ के नौकरों को स्थविर की आँख से ओझल रख, अपने ही आदमियो के साथ स्थविर के भिक्षा के लिए आने के समय, पहले कड़छी भर, फिर कटोरा भर (भिक्षा) देने लगी। (इस प्रकार) रस-तृष्णा से बाँध धीरे धीरे घर के भीतर बिठा कर

---

[1] देखो मज्झिम निकाय सुत्त ८२ (३३०)

[2] एक सिरे से, सभी घरों से।

भिक्षा देती थी। जब उसने (स्थविरको) अपने वश में हुआ जाना; (तो एक दिन) रोगी होने का बहाना कर, वह घर के अन्दर जा लेटी। स्थविर भिक्षा के समय, क्रम से भिक्षा माँगते हुए गृह-द्वार पर आये। नौकर-चाकरों ने स्थविर का पात्र ग्रहण कर उन्हें घर में बिठाया।

स्थविर ने बैठते ही पूछा—"उपासिका कहाँ है?"

"भन्ते! रोगी है, आपका दर्शन करना चाहती है।"

रस-तृष्णा में बँधे होने से वह अपनी प्रतिज्ञा (=व्रतसमादान) तोड़ कर, उसके लेटे रहने की जगह चले गये। उसने अपने आने का (असली) कारण कह, उनके चित्त को लुभा लिया। फिर उसने रस-तृष्णा में बाँध उनका चीवर उतरवा दिया, और अपने वश में कर, गाड़ी में बिठा, बहुत से लोगों के साथ राजगृह चली गई। यह बात प्रसिद्ध हो गई। धर्म सभा में बैठे हुए भिक्षुओं ने कहना आरम्भ किया कि एक वेश्या चुल्ल पिण्डपातिक तिस्स थेर को रस-तृष्णा में बाँधकर (साथ) ले गई। बुद्ध ने धर्मसभा में आ, अलंकृत आसन पर बैठ, पूछा—"भिक्षुओ! क्या बात चल रही है"? उन्होंने वह समाचार कहा। भगवान् ने "भिक्षुओ! यह भिक्षु केवल अब ही रस-तृष्णा में बँधकर, उसके वशीभूत नहीं हुआ, पहले भी हुआ है," कह, अतीत की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व-समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त का (एक) सञ्जय नामक माली था। एक शीघ्रगामी मृग (वात-मृग) उस उद्यान में आता, (लेकिन) सञ्जय को देख कर भाग जाता। सञ्जय उसको डराकर निकालता था। वह बार बार आकर उद्यान में ही चरता था। माली प्रति दिन उद्यान से नाना प्रकार के फल-फूल राजा के पास ले जाता था। एक दिन राजा ने उससे पूछा—"सौम्य! उद्यानपाल! उद्यान में कोई आश्चर्य (की चीज) देखते हो?"

"देव! और तो कुछ नहीं देखता, हाँ यह देखता हूँ कि एक शीघ्र-गामी-मृग आकर उद्यान में चरता है।"

"क्या उसे पकड़ सकोगे?"

"यदि थोड़ा मधु मिले तो इसे यहाँ राज-निवास के अन्दर भी ला सकूँगा।"

धर्म-श्रवण दिन में होता था। समय बीतने पर, उपासिकाओं और भिक्षुणियों ने जाना छोड़ दिया। भिक्षु और उपासक ही (धर्म-श्रवणार्थ) रह गये। उसके बाद धर्म-श्रवण रात को होने लगा। धर्म सुनने के बाद स्थविर भिक्षु अपने अपने निवास स्थान को चले जाते थे। दहर (=कम आयु वाले भिक्षु) उपासकों के साथ उपस्थान शाला (=दान-शाला) में सो जाते थे। उन के सो जाने पर, कोई कोई घुर घुर श्वास खींचते हुए, दाँतों को कटकटाते हुए सोते। कोई कोई थोड़ी देर सोकर उठ खड़े होते। उस विकार (=विकृति) को देखकर, उन्होंने बुद्ध से निवेदन किया। भगवान् 'जो भिक्षु (किसी) अनुपसम्पन्न के साथ सोये, वह पाचित्तिय (=प्रायश्चित्त करने योग्य दोष) का भागी होता है' शिक्षा-पद की घोषणा (=प्रज्ञप्ति) कर, कोसम्बी को चले गये।

भिक्षुओं ने आयुष्मान् राहुल को कहा—"आयुष्मान् राहुल! भगवान् ने शिक्षापद की घोषणा कर दी है। अब तू अपने लिए निवासस्थान ढूँढ़।" इससे पहले, भगवान् के प्रति गौरव रहने से, और उस आयुष्मान् राहुल के शिक्षा-कामी होने से, भिक्षु, आयुष्मान् राहुल के अपने निवास-स्थान पर आने पर उसका बड़ा सत्कार करते थे। उसके लिए छोटी सी चारपाई बिछा देते, और सिरहाना करने के लिए चीवर देते थे। लेकिन उस दिन शिक्षा-पद के भय से निवास-स्थान तक नहीं दिया। राहुल-भद्र भी दशबल(-धारी) मेरे पिता हैं, या धर्म सेनापति (=सारिपुत्र) मेरे उपाध्याय हैं, या महामौद्गल्यायन मेरे आचार्य्य हैं या आनन्द स्थविर मेरे चाचा हैं (सोच) उनमें से किसी एक के पास न जा दशबल(-धारी) के काम आनेवाले शौचागार में, ब्रह्मविमान में प्रविष्ट होने के सदृश, दाखिल हो, (वहीं) रहा।

बुद्धों के शौचागार का द्वार भली प्रकार बन्द रहता है। भूमि सुगन्धियुक्त होती है, सुगन्धित मालाओं की लड़ियाँ फैली ही होती हैं। तमाम रात दीपक जलता है। लेकिन राहुल-भद्र ने, उस शौच-स्थान (=कुटि) में इन सब चीजों (=सम्पत्ति) के होने के कारण, वहाँ वास नहीं किया, बल्कि भिक्षुओं के 'अब तू अपने स्थान को जा' कहने से, उनके उपदेश का गौरव रखनेवाला, सब शिक्षा-कामी होने से वहाँ निवास किया। बीच बीच में, भिक्षु भी, उस आयुष्मान् को दूर से आता देख, उसकी परीक्षा लेने के लिए, मुट्ठ वाली झाड़ू कपड़ा-फेंकने-वाला, बाहर फेंक देते। और उसके आने पर पूछते—"आवुसो!

यह बाहर किसने छोड़ दिये ?" तब किसी के, 'राहुल ! इस मार्ग से गया है' कहने पर, वह 'भन्ते ! मैं यह नहीं जानता हूँ' न कहकर, उन्हें उचित स्थान पर रख, 'भन्ते ! मुझे क्षमा करें' यह क्षमा माँगकर जाता। वह ऐसा शिक्षा-कामी था। इस अपनी शिक्षा-कामना के ही कारण, उसने वहाँ निवास किया।

शास्ता ने अरुणोदय से पूर्व ही शौचालय के द्वार पर खड़े होकर खाँसा। उस आयुष्मान् ने भी खाँसा। "यह कौन है ?" "मैं राहुल हूँ" कह, निकलकर प्रणाम किया। "राहुल ! तू यहाँ किस लिए पड़ा है ?" "रहने का स्थान न मिलने के कारण। भन्ते ! भिक्षु पहले मेरा सत्कार (=मदद) करते थे, लेकिन अब आपत्ति (=दोषी होने) के भय से मुझे निवास-स्थान नहीं देते। सो मैं 'इस स्थान में औरों का दखल नहीं' सोच यहाँ लेटा हूँ।"

भगवान् के मन में 'राहुल को (भी) इस प्रकार लापरवाही कर, भिक्षु, अन्य कुल-पुत्रों को प्रव्रजित कर क्या करेंगे ?' (सोच) धर्म-संवेग उत्पन्न हुआ। सो प्रातःकाल ही, सब भिक्षुओं को एकत्र करवा, भगवान् ने धर्म-सेनापति से पूछा—"सारिपुत्र तुझे मालूम है कि आज (रात) राहुल कहाँ रहा ?" "भन्ते ! नहीं मालूम है।" "सारिपुत्र ! आज राहुल शौचालय (=वच्च कुटि) में रहा है। सारिपुत्र ! तुम राहुल को इस प्रकार छोड़कर, और बालकों को प्रव्रजित कर क्या करोगे ? यह (हाल) रहने पर तो, इस शासन में प्रव्रजित प्रतिष्ठित नहीं होंगे। इससे आगे अनुपसम्पन्न को एक दो दिन, अपने पास रखकर, तीसरे दिन उनका निवासस्थान मालूम कर, उन्हें (वहाँ) बाहर बसाओ"—इस दूसरे नियम को बनाकर, फिर शिक्षा-पद की घोषणा की।

उस समय धर्म-सभा में बैठे भिक्षु, राहुल की प्रशंसा कर रहे थे। "आयुष्मानो ! देखो ! यह राहुल कितना शिक्षा-कामी है ! 'अपने निवास-स्थान को जा' कहने पर, 'मैं बुद्ध का पुत्र हूँ। तुम कौन होते हो स्थान से निकालने वाले ? तुम ही निकलो'—इस प्रकार, किसी एक भिक्षु को भी उत्तर न दे, शौच-स्थान में जा (के) रहा।" उनके इस प्रकार कहते समय, शास्ता ने धर्म-सभा में जा, अलंकृत आसन पर बैठ, पूछा—"भिक्षुओ ! इस समय बैठे क्या बात-चीत कर रहे थे ?" "भन्ते ! और कोई बात नहीं; राहुल के शिक्षा-कामी होने की बात।" शास्ता ने, "भिक्षुओ ! राहुल केवल अब ही शिक्षा-कामी नहीं है पूर्व पशु-योनि में भी शिक्षा-कामी ही रहा है" (कह) पूर्व-जन्म की कथा कही—

तेज वायु से उड़ाये गये बादल की तरह, जल्दी से माता के पास आ गया।

शास्ता ने, 'भिक्षुओ ! राहुल (केवल) अब ही शिक्षा-कामी नहीं है, पहले भी शिक्षा-कामी ही रहा है—इस धर्म-देशना को ला, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय का भांजा-हिरण-बच्चा (अब का) राहुल था। माता (अब की) उत्पल-वर्णा थी। और माया-मृग तो मैं ही था।

१७. मालुत जातक

'काले वा यदि वा जुण्हे ...' इस गाथा को शास्ता ने जेतवन में विहरते हुए, दो चिर-प्रव्रजितों (=वृद्ध-प्रव्रजितों) के बारे में कहा।

क. वर्तमान कथा

वे (दोनों) कोशल जनपद के एक अरण्य-वास में रहते थे। एक का नाम था काल स्थविर और दूसरे का जुण्ह स्थविर। एक दिन जुण्ह (स्थविर) ने काल से पूछा—"भन्ते ! काल ! सर्दी किस समय पड़ती है?" उसने उत्तर दिया—"काल (=कृष्ण पक्ष) में पड़ती है।" एक दिन काल ने जुण्ह से पूछा—"भन्ते ! जुण्ह ! सर्दी किस समय पड़ती है?" उसने उत्तर दिया—"जुण्ह (=शुक्ल पक्ष) में पड़ती है।" वे दोनों अपनी शंका का निराकरण न कर सकने के कारण शास्ता के पास गये। और शास्ता को प्रणाम कर पूछा—"भन्ते ! सर्दी किस समय पड़ती है?" [illegible]
"भिक्षुओ ! [illegible]
[illegible]

१८. मतकभत्त जातक

"एवं चे सत्ता जानेय्युं—" इस गाथा को शास्ता ने जेतवन में विहार करते हुए, श्राद्ध (=मतकभत्त) के बारे में कहा।

क. वर्तमान कथा

उस समय मनुष्य बहुत सी भेड़ बकरी आदि को मार, मृत-सम्बन्धियों की याद में श्राद्ध (=मतकभत्त) करते थे। भिक्षुओं ने उन मनुष्यों को वैसा करते देख शास्ता से पूछा—"भन्ते ! मनुष्य बहुत से प्राणियों की प्राण-हानि कर श्राद्ध करते हैं (=मृतक-भात देते हैं)। क्या भन्ते ! इससे (ऐसा करनेवालों की) उन्नति (हो सकती) है ?" शास्ता ने कहा—"भिक्षुओ ! श्राद्ध करने के विचार से भी प्राण-हानि करनेवाले की कुछ भी उन्नति नहीं है। पूर्व समय में पण्डितों ने आकाश में बैठ, धर्मोपदेश कर, (प्राण-नाश) के दोष दिखा, सकल जम्बूद्वीपवासियों से, इस कर्म को छुड़वा दिया था। अब (वह बात) पूर्व-जन्मों में छिप जाने के कारण, यह (कर्म) फिर प्रादुर्भूत हो गया।" (यह कह) अतीत की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, एक त्रिवेदज्ञ, दिशा-प्रमुख (=लोक-प्रसिद्ध) आचार्य्य-ब्राह्मण ने श्राद्ध करने के विचार से, एक भेड़ा मँगवा कर, अपने शिष्यों को कहा—तात ! इस भेड़े को नदी पर ले जा, नहला, गले में माला डाल, पञ्चाङ्गुलियों (का चिन्ह) दे, सजा कर ले आओ। उन्होंने 'अच्छा' कह, स्वीकार कर, उस (भेड़े) को नदी पर ले जा, (वहाँ) नहला, सजा, नदी के किनारे पर रक्खा। वह भेड़ा, अपने

पूर्व-कर्म का विचार कर, 'ऐसे दुःख से आज मुक्त हो जाऊँगा' सोच हर्षित हो, घड़े के फूटने की तरह, जोर से हँसा और (फिर) 'यह ब्राह्मण मुझे मारकर जिस दुःख को मैंने भोगा है, उसे भोगेगा' सोच, ब्राह्मण के प्रति करुणा का भाव उत्पन्न कर, जोर से रोया। उन ब्रह्मचारियों (=माणवकों) ने उससे पूछा—"सौम्य! भेड़! तू जोर (=महाशब्द) से हँसा और रोया। किस कारण तू हँसा? और किस कारण रोया?" "तुम यह बात, मुझे अपने आचार्य के पास ले जाकर पूछना।" उन्होंने उसे ले जाकर, यह बात अपने आचार्य से जा कही।

आचार्य ने उनकी बात सुनकर भेड़े से पूछा—"भेड़! तू किस लिए हँसा? किस लिए रोया?" भेड़े ने पूर्व-जन्म-स्मरण-ज्ञान से अपने पूर्व-कर्म का स्मरण कर ब्राह्मण को कहा—"हे ब्राह्मण! पूर्व-जन्म में मैंने तेरे सदृश ही मन्त्रपाठी ब्राह्मण हो, 'श्राद्ध करूँगा' (सोच) एक भेड़ा मारकर (मृतक-भात) दिया। सो, मैंने, उस एक भेड़े को मारने के कारण, एक कम पाँच सौ योनियों में अपना सीस कटवाया। यह मेरा पाँचसौवाँ, अन्तिम जन्म है। आज मैं इस दुःख से मुक्त हो जाऊँगा' (सोच) हर्षित हुआ (और) इस कारण से हँसा। और जो रोया? सो (तो यह सोचकर) कि मैं तो, एक भेड़े के मारने के कारण पाँच सौ जन्मों में (अपना) सीस कटा कर, आज इस दुःख से मुक्त हो जाऊँगा, (लेकिन) यह ब्राह्मण मुझे मारकर, मेरी तरह पाँच सौ जन्मों तक सीस कटाने के दुःख को भोगेगा। सो, तेरे प्रति करुणा से रोया।" "भेड़! डर मत। मैं तुझे नहीं मारूँगा।" "ब्राह्मण! क्या कहते हो? तुम चाहे मारो, चाहे न मारो, मैं आज मरण दुःख से नहीं छूट सकता।" "भेड़! डर मत। मैं तेरी हिफाजत (=आरक्षा) करता हुआ, तेरे साथ ही साथ घूमूँगा।" "ब्राह्मण! तेरी हिफाजत अल्प-मात्र है; मेरा किया हुआ पाप बड़ा भारी है।"

ब्राह्मण, भेड़े को मुक्त कर 'इस भेड़े को किसीको न मारने दूँगा' (सोच) शिष्यों को ले भेड़े के साथ ही साथ घूमने लगा। भेड़े ने छूटते ही एक पत्थर की शिला के पास उगी हुई झाड़ी की ओर गर्दन उठाकर पत्ते खाने शुरू किये। [illegible]

खड़े न्यग्रोध-वृक्ष के देवता की मुक्त मुक्त (=बलि-कर्म की प्रतिज्ञा) कर, बिना विघ्न-बाधा के (वापिस) लौट, बहुत से प्राणियों का वध कर, मुक्त पूरी करनी चाही। वह वृक्ष के नीचे गया। तब वृक्ष-देवता ने वृक्ष के टहने पर खड़े होकर यह गाथा कही—

> सचे मुञ्चे पेच्च मुञ्चे मुञ्चमानो हि बज्झति,
> न हेवं धीरा मुच्चन्ति, मुत्ति बालस्स बन्धनं।

[यदि मुक्त होना है, तो आगे (फिर फिर के जन्म) में मुक्त हो, तू तो मुक्त होने का प्रयत्न करता हुआ, और भी बँधता है। धीर (पण्डित) इस प्रकार मुक्त नहीं होते। बाल (=मूर्ख मनुष्य) का, मुक्ति (का प्रयत्न), और भी, उसके बन्धन (का कारण) होता है।]

सचे मुञ्चे पेच्च मुञ्चे=भो पुरुष! यदि तू मुक्त होवे, यदि मुक्त होने की इच्छा होवे, (तो) पेच्च मुञ्चे, तो जैसे परलोक से मुक्त हो सके, वैसे (मुक्त होवें)। मुञ्चमानो हि बज्झति, लेकिन जैसे तू प्राण-घात कर मुक्त होना चाहता है, वैसे तो मुक्त होने का प्रयत्न करनेवाला पाप-कर्म से बँधता है। न हेवं धीरा मुच्चन्ति, जो पण्डित पुरुष हैं वह इस प्रकार जन्म-मरण से मुक्त नहीं होते। क्यों? एव रूपा हि मुत्ति बालस्स बन्धनं इस प्रकार प्राणाति-पात करके प्राप्त की गई "मुक्ति" मूर्ख का बन्धन ही होती है—इस धर्म का उपदेश किया।

उस समय से आरम्भ करके मनुष्यों ने इस प्रकार के जीव-हिंसा-कर्म से हट धर्मानुसार आचरण कर, देव-नगर की पूर्ति की। शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिखाया। "उस समय, मैं ही वृक्ष-देवता था।"

२०. नलपाण जातक

"दिस्वा पदमनुत्तिण्णं . . ." यह गाथा, शास्ता ने कोशल (जनपद) [में] चारिका करते हुए, नलकपान ग्राम पहुँच, नलकपान पुष्करिणी पर केतक-[व]न में विहार करते हुए नलदण्ड (सरकण्डों) के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय, भिक्षुओं ने नलकपान पुष्करिणी में नहा कर, सूई-घर (= सूई [रख]ने की नलियाँ) बनाने के लिए, श्रामणेरों से सरकण्डे मँगवा, उन के चार [त]रफ छेद देख, शास्ता के पास जाकर पूछा—भन्ते ! हम ने सूई-घर बनाने [के] लिए सरकण्डे मँगवाए हैं, वह नीचे से ऊपर तक छिदे हुए हैं। इसका [क्या] कारण है? शास्ता ने "भिक्षुओ ! यह मेरे पुराने अधिष्ठान (= निश्चय) (का फल) है" कह अतीत की कथा कही—

ख. अतीत कथा

[illegible]

एक सरकण्डे लेकर बैठे। ये अस्सी हजार वानर भी एक एक सरकण्डा लेकर पुष्करिणी को घेर कर बैठे। बोधिसत्व के सरकण्डे से खेंच कर पानी पीने के समय उन्होंने भी किनारे पर बैठे ही बैठे पिया। इस प्रकार उनके पानी पीने पर जल-राक्षस कुछ भी न पाकर असन्तुष्ट हो अपने निवास-स्थान को गया। बोधिसत्व भी अपने अनुचरों सहित जंगल में प्रविष्ट हुए।

शास्ता ने 'भिक्षुओ! इन सरकण्डों का एक-छिद्र वाले होना मेरे ही पुराने अधिष्ठान का फल है', कह धर्म-देशना ला, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिखाया।

उस समय जल-राक्षस देवदत्त था। अस्सी हजार वानर बुद्ध-परिषद्। हाँ, उपाय-कुशल कपिराज मैं ही था।

पहला परिच्छेद

३. कुरुंग वर्ग

२१. कुरुंगमिग जातक

"आयमेतं कुरुङ्गस्स. . . " यह गाथा शास्ता ने, वेळुवन में विहार करते समय, देवदत्त के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक समय धर्मसभा में बैठे भिक्षु देवदत्त की निन्दा करते हुए कह रहे थे "आवुसो! देवदत्त ने तथागत के मारने के लिए धनुर्धर नियुक्त किये, शिला फेंकी, धनपालक (हाथी) को छोड़ा—इस प्रकार सब तरह से तथागत के वध का प्रयत्न करता है।" बुद्ध ने आकर बिछे आसन पर बैठ, भिक्षुओं से पूछा—"भिक्षुओ! इस समय क्या बातचीत हो रही है?" "भन्ते! देवदत्त आपके वध के लिए प्रयत्न करता है, यह कह उसकी निन्दा कर रहे हैं।" शास्ता ने 'भिक्षुओ! देवदत्त केवल अब ही मेरे वध का प्रयत्न नहीं कर रहा है, पहले भी किया है, लेकिन [illegible]' कह पूर्वजन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

मारे मृगों को शक्ति (आयुध) से बींध, उनका मांस बेचकर गुजारा करता था। उसने एक दिन, उस वृक्ष के नीचे जा बोधिसत्व के पद-चिन्ह को देखा। उस सेपण्णी-वृक्ष पर अटारी बाँध, प्रातःकाल ही (खाना) खा, शक्ति ले, वन में प्रवेश कर, उस वृक्ष पर चढ अटारी पर जा बैठा। बोधिसत्व भी प्रातःकाल ही अपने निवास-स्थान से निकल सेपण्णि फलों को खाने की इच्छा से उस वृक्ष के नीचे एक दम न जा, 'कभी कभी अटारी बाँध शिकार खेलने वाले शिकारी, वृक्षो पर अटारी बाँधते हैं' (सोच) कही इस तरह की कुछ गडबड़ (=उपद्रव) तो नहीं है (सोचते हुए) बाहर ही खड़े रहे। शिकारी ने बोधिसत्व को न आता जान, अटारी पर बैठे ही बैठे, सेपण्णी-फलों को बोधिसत्व के आगे फेंका। बोधिसत्व ने 'यह फल आ आ कर मेरे सामने गिरते हैं। शायद ऊपर शिकारी है' (सोच) बार बार ऊपर देखते हुए, शिकारी को देख, न देखे की ही तरह हो, कहा—'हे वृक्ष! पहले तू लटका कर गिराते हुए की तरह, फलों को सीधे ही गिराता था। लेकिन, आज तूने अपना वृक्ष-स्वभाव छोड़ दिया। सो, जब तूने वृक्ष-स्वभाव छोड़ दिया, तो मैं भी (तुझे छोड़) दूसरे वृक्ष के नीचे जा अपना आहार खोजूँगा।" यह कहकर, यह गाथा कही—

आतमेतं कुरुङ्गस्स यं त्वं सेपण्णि ! सेय्यसि,
अञ्ञ सेपण्णिं गच्छामि न मे ते रुच्चते फलं ।

[हे सेपण्णि ! यह जो तू (मेरे आगे) विशेष रूप से (फल) फेंक रहा है, उसमे कुरुङ्ग (मृग) को मालूम हो गया है। इसलिए मैं अब दूसरे सेपण्णि-वृक्ष के नीचे जाऊँगा। मुझे तेरे फल अच्छे नहीं लगते]

आतं का अर्थ है प्रकट हो गया। एतं =यह। कुरुङ्गस्स=कुरङ्ग मृग को। यं त्वं सेपण्णि! सेय्यसि का अर्थ है कि हे सेपण्णि-वृक्ष! यह जो तू (मेरे) आगे आगे फलों को बिखेर कर, श्रेष्ठता=विशेषता धारण कर रहा है, फल-बिखेरने वाला हो रहा है, वह सब कुरङ्ग मृग को मालूम हो गया है। न मे ते रुच्चते फलं="इस प्रकार फल देते हुए के, तेरे फल मुझे अच्छे नहीं लगते। तू ठहर! मैं दूसरी जगह जाता हूँ" कह चला गया।

ख. अतीत कथा

"पूर्व समय में, (राजा) ब्रह्मदत्त के वाराणसी में राज्य करने के समय, बोधिसत्व, किसी वैसे कर्म के फलस्वरूप कुत्तो में पैदा हो, सैकडो कुत्तो को साथ लिये, महा श्मशान में रहते थे।

एक दिन राजा उजले-घोडो वाले, सब अलङ्कारों से अलंकृत रथ पर चढ, उद्यान में जा, वहाँ दिन भर खेल, सूर्यास्त होने पर, (वापिस) नगर में प्रविष्ट हुआ। रथ को, उन्होने जैसे का तैसा कसा ही, राजाङ्गण में खडा कर दिया। रात को वर्षा होने से, वह भीग गया। महल के ऊपर रहने वाले पारिवारिक कुत्ते उतर कर, रथ के चर्म और चमडे की रस्सी खा गये। अगले दिन राजा को खबर दी गई कि "देव! कुत्तो ने मोरी में से घुसकर, रथ के चर्म और चमडे की रस्सी खा डाली है।" राजा ने कुत्तो पर क्रोधित हो आज्ञा दी कि "जहाँ-जहाँ कुत्ते दिखाई दें उन्हें मार डालो।" उस समय से कुत्तो पर बडी विपत्ति आई। वे जहाँ जहाँ दिखाई दें, वहाँ वहाँ मारे जाते हुए, भाग कर श्मशान में बोधिसत्व के पास पहुँचे। बोधिसत्व ने पूछा—"तुम बहुत सारे इकट्ठे होकर आये हो, क्या कारण है?" उन्होंने उत्तर दिया—"अन्तःपुर में कुत्तो के रथ के चर्म और चमडे की रस्सी खा लेने से क्रुद्ध हो राजा ने (सभी) कुत्तो के मारने की आज्ञा दी है। बहुत कुत्तो का नाश हो रहा है। महा-भय उत्पन्न हुआ है।" बोधि(-सत्व) ने सोचा—"पहरे के स्थान में, बाहर के कुत्तो को तो (ऐसा करने का) मौका नहीं। राज-महल के अन्दर रहने वाले पारिवारिक कुत्तों की ही यह करनी होगी। लेकिन अब चोरो को तो कुछ (दण्ड) नहीं। अचोर मर रहे हैं। क्यो न मैं राजा को (असली) चोर दिखाकर, (अपने) जाति-संघ को जीवन-दान दिलवाऊँ?" उसने कुत्तों को सान्त्वना दे, "तुम मत डरो। मैं 'अभय-दान' ले आऊँगा। जब तक मैं राजा से मिल (आऊँ), तब तक तुम यहीं रहो।" (वह) पारमिताओं का विचार कर, मैत्री-भावना को आगे कर, अधिष्ठान किया—कि मेरे ऊपर रोडा, मुद्गर या अन्य कोई चीज कोई न फेंके। (और यह अधिष्ठान कर) उसने, अकेले ही नगर के अन्दर प्रवेश किया। सो, उसे देखकर, किसी एक जने ने भी, उसपर क्रोध नहीं किया। राजा कुत्तों के वध की आज्ञा देकर, अपने न्यायासन पर बैठा था। बोधिसत्व

वहीं पहुँच, उछल कर, राजा के आसन के नीचे चले गये। राज-पुरुष उसको निकालने को तैयार हुए। लेकिन, राजा ने रोक दिया। बोधिसत्व ने थोड़ी देर साँस ले, राज्यासन के नीचे से निकल, राजा को प्रणाम कर पूछा—"क्या आप कुत्तों को मरवाते हैं?" "हाँ! मैं (मरवाता हूँ)।" "राजन! उनका क्या अपराध है?" "उन्होंने मेरे रथ के ऊपर का चमड़ा और चमड़े की रस्सी खा ली।" "मालूम है, किन कुत्तों ने खाई है?" "नहीं जानता।"

'देव! 'इन्होंने चर्म खाया है', इसे ठीक से न जान, जहाँ जहाँ (कुत्ते) दिखाई दें, उन सभी को मरवाना उचित नहीं।"

"क्योंकि, रथचर्म को कुत्तों ने खाया था, इसलिए मैंने आज्ञा दे दी कि जहाँ जहाँ (कुत्ते) दिखाई दें, उन सभी को मार डालो।"

"तो, क्या मनुष्य, सभी कुत्तों को मारते हैं? या ऐसे भी कुत्ते हैं, जो नहीं मारे जाते?"

"हैं, हमारे घर के कुत्ते नहीं मारे जाते।"

"महाराज! अभी तो आपने कहा, "क्योंकि, रथचर्म को कुत्तों ने खाया, इसलिए मैंने आज्ञा दे दी कि जहाँ जहाँ (कुत्ते) दिखाई दें, उन सबों को मारो", और अभी आप कहते हैं कि 'हमारे घर के कुत्ते मारे नहीं जाते।" ऐसा होने पर, क्या आप पक्षपाती हो, अगति[1] को नहीं प्राप्त हो रहे? अगति को प्राप्त होना अनुचित है। यह राज-धर्म नहीं। राजा को बात की तह में जाने के विषय में तुला की सदृश निष्पक्ष होना चाहिए। सो, घर के कुत्ते तो मारे नहीं जाते, दुर्बल कुत्ते ही मारे जाते हैं। यदि ऐसा है, तो यह सब कुत्तों का घात करना नहीं है, केवल दुर्बल कुत्तों का घात करना है।" यह कह, बोधिसत्व ने मधुरस्वर से, "महाराज! यह जो आप कर रहे हैं सो (राज-)धर्म नहीं" कहते हुए, यह गाथा कही—

> ये कुक्कुरा राजकुलम्हि वद्धा,
> कोलेय्यका वण्ण बलूपपन्ना,

---

[1] छन्द, दोष, भय तथा मूढ़ता के वशीभूत हो अकर्तव्य करना (अंगुत्तर निकाय, चतुक्कनिपात तथा दीघनिकाय, सिगालोवाद सुत्त)।

ते मे न वज्झा मयमस्म वज्झा,
नायं सघच्चा दुब्बलघातिकायं ॥

[जो वर्ण और बल से युक्त, राज-कुल में पले, राज्य-कुल के कुत्ते हैं, सो तो मारे नहीं जाते, (केवल) हम ही मारे जाते हैं। यह (सब) कुत्तों का मारना नहीं है। (केवल) दुर्बल कुत्तों का मारना है]

येकुक्कुरा=जो कुत्ते। जैसे धारोष्ण पेशाब भी गन्दा मूत्र (कहलाता है); उसी दिन पैदा हुआ शृगाल भी पुराना (=जर) शृगाल (कहलाता है); कोमल गडूच (=गलोचि) बेल भी गन्दी-लता (कहलाती है); स्वर्ण-वर्ण काय भी 'गन्दा-शरीर' (कहलाता है), इसी प्रकार सौ वर्ष का कुत्ता भी कुक्कुर कहलाता है। इसलिए, बूढ़ो, बड़े बड़े शरीर वालों को भी 'कुक्कुर' ही कहा गया है। वद्धा—बंधना (=पल)। कोलेय्यका=राजकुल में पैदा हुए, पले। वण्णबलूपपन्ना—शरीर-वर्ण और काय-बल से युक्त। ते मे न वज्झा—सो यह स्वामियों वाले, सारक्षा वाले (कुत्ते) वध्य नहीं हैं। मयमस्म वज्झा हम, जिनका कोई स्वामी नहीं, कोई हिफाजत करने वाला नहीं; हम ही वध्य हैं। नायं सघच्चा सो ऐसा होने पर, तो यह सब (कुत्तों) का मारना नहीं है, "दुब्बल घातिकायं" दुर्बलों का घात करने से यह (केवल) दुर्बलों को मारना है। राजाओं को चोरों का निग्रह करना चाहिए, अचोरों का नहीं। लेकिन यहाँ चोरों का तो कुछ नहीं, अचोर मारे जाते हैं। ओह! इस लोक में अनौचित्य होता है। आह! अधर्म होता है।

राजा ने बोधिसत्व के वचन को सुनकर पूछा—"पण्डित! क्या तुझे मालूम है कि अमुक (कुत्तों) ने रथ-चर्म खाया है?"

"हाँ! जानता हूँ।"

"किन्होंने खाया है?"

"तुम्हारे घर (ही) में रहने वाले कुत्तों ने।"

"यह कैसे मालूम हो, कि उन्होंने खाया है?"

"उनका खाना मैं दर्शित करूँगा (=दिखाऊँगा)।"

२३. भोजाजानीय जातक

"अपि पस्सेन सेमानो ..." यह गाथा, शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, एक प्रयत्न-हीन भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय शास्ता ने उस भिक्षु को आमन्त्रण कर, 'भिक्षु! पूर्व समय में पण्डित लोग सामर्थ्य से बाहर के (कार्य) में भी प्रयत्नवान होते थे। चोट खाकर भी, प्रयत्न न छोड़ते थे' कह, अतीत की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्व, भोजाजानीय नाम के सैन्धव-कुल (सिन्धु पार के घोड़ों के कुल) में उत्पन्न हो, वाराणसी नरेश के, सब अलंकारों से अलंकृत मांगलिक अश्व हुए। वह लाख के मूल्य की सोने की थाली ही में नाना प्रकार के श्रेष्ठ रसों से युक्त तीन वर्ष के पुराने चावल का (बना) भोजन खाते थे। चार प्रकार की सुगन्धि से लिपी भूमि पर खड़े होते थे। वह (खड़े होने का) स्थान, लाल कम्बल की कनात से घिरा था। उसके ऊपर, सोने के तारे लगा हुआ कपड़े का चन्दवा (बना) था। चारों ओर सुगन्धित पुष्प-मालायें (लटकती) थीं और सदा सुगन्धित तेल का दीपक (जलता) रहता था। ऐसा कोई राजा नहीं है, जो वाराणसी के राज्य की इच्छा न करता हो। एक बार सात राजाओं ने वाराणसी को घेर कर वाराणसी के राजा के पास सन्देश भेजा 'या तो हमें राज्य दे या युद्ध कर।' [illegible] राजा ने अमात्यों को इकट्ठा कर, वह समाचार कह [illegible] पूछा — '[illegible]' [illegible] अमात्यों ने उत्तर

दिया) "देव ! पहले तुम्हें युद्ध के लिए नहीं जाना चाहिए। पहले अमुक नाम के अश्वारोह को भेज कर युद्ध करवाना चाहिए। उसके असमर्थ रहने पर, (हम) फिर सोचेंगे (=जानेंगे)।" राजा ने उस (अश्वारोह) को बुलवा कर पूछा, "तात ! क्या सात राजाओं के साथ युद्ध कर सकोगे ?" "देव ! यदि मुझे भोजाजानीय सिन्धव मिले, तो सात राजा तो क्या, मैं सकल जम्बुद्वीप के राजाओं से युद्ध कर सकूँगा।" "तात ! भोजाजानीय सिन्धव हो, अथवा कोई और हो, जो अच्छा लगे, उसे लेकर युद्ध करो।"

उसने, 'देव ! अच्छा' कह, राजा को प्रणाम किया। फिर प्रासाद से उतर, सिन्धुदेशीय भोजाजानीय (घोड़े) को मंगवा, उस पर कवच बाँध, अपने भी सब शस्त्र धारण कर, खड्ग बाँध, सिन्धु देशी (=घोड़े) की पीठ पर सवार हुआ। फिर नगर से निकल, बिजली की तरह घूमते हुए, पहले सेना के घेरे को तोड़, एक राजा को जीवित ही पकड़ लिया। फिर नगर को बिना लौटे, (उस राजा को) अपनी सेना को सौंप; फिर जाकर, दूसरे सेना के घेरे को तोड़, दूसरे (राजा) को पकड़ लिया। इस प्रकार उसने पाँच राजाओं को जीवित ही पकड़ लिया। छठे सेना के घेरे को तोड़ कर छठे राजा को पकड़ने के समय भोजाजानीय को चोट आ गई। लहू बह रहा था। बड़ी वेदना हो रही थी। अश्वारोह भोजाजानीय को 'चोट लगी' जान, उसे राज-द्वार पर लेटा, साज ढीला कर, दूसरे घोड़े को कसने को तैयार हुआ। बोधिसत्व ने अत्यन्त दुख के ढंग से लेटे ही लेटे आँखें खोल, अश्वारोह को देख, सोचा—'यह (अश्वारोह) दूसरे घोड़े को कस रहा है। यह घोड़ा, सातवें सेना के घेरे को तोड़, सातवें राजा को न पकड़ सकेगा। मेरा किया कराया (काम) नष्ट हो जायगा। यह अतुलनीय अश्वारोह भी नाश को प्राप्त होगा। राजा भी पराये हाथ चला जायगा। मुझे छोड़, कोई भी दूसरा घोड़ा, सातवें सेना के घेरे को तोड़, सातवें राजा को नहीं पकड़ सकता।' (यह सोच) उसने लेटे ही लेटे अश्वारोह को बुलवा, "मित्र अश्वारोह ! मुझे छोड़, सातवें सेना के घेरे को तोड़, सातवें राजा को पकड़ ला सकने वाला, अन्य कोई घोड़ा नहीं है। मैं अपने किये कराये काम को नष्ट न होने दूँगा। मुझे ही उठा कर, कस।" कह यह गाथा कही—

अपि पस्सेन सेमानो सल्लेहि सल्लली कतो,
सेय्योव वळवा भोज्झो युञ्ज मञ्ञेव सारथि ॥

[शल्य से जख़्मी हो गये होने के कारण, एक करवट सोया हुआ भी भोजाजानीय-अश्व ही (किसी दूसरे) घोड़े से श्रेष्ठ है। इसलिए हे सारथी! तू मुझे ही, कस।]

अपि पस्सेन सेमानो=एक पासे पर सोने वाला होता हुआ भी। सल्लेहि सल्लली कतो, शल्य से बिधा रहने पर भी। सेय्योव वळवा भोज्जो, वळवा कहते हैं सिन्धव-कुल में अनुत्पन्न साधारण अश्व को। भोज्ज= भोजाजानीय सिन्धव। इस साधारण घोड़े की अपेक्षा, शल्य से बिधा हुआ भी भोजाजानीय अधिक श्रेष्ठ है=अच्छा है=उत्तम है। युञ्ज मञ्ञेव सारथि, क्योंकि जब ऐसा होने पर भी, मैं ही अधिक श्रेष्ठ हूँ, तो हे सारथी! तू मुझे ही जोड़, मुझे ही कस।"

सवार ने बोधिसत्व को उठा, जख़्मों को बाँधा; और अच्छे प्रकार कस कर, उसकी पीठ पर जा बैठा। सातवें सेना के घेरे को तोड़, सातवें राजा को जीवित ही पकड़, लाकर राज-सेना को सौंपा। बोधिसत्व को भी राज-द्वार पर लाया गया। राजा, उसके दर्शन करने के लिए बाहर निकला। महा-सत्व ने राजा को कहा—"महाराज! (इन) सात राजाओं को मारें मत। शपथ करवा कर, छोड़ दें। मुझे और अश्वारोह को जो यश देना है, वह सब अश्वारोह को ही दें। सात राजाओं को पकड़ ला देने वाला योधा नष्ट करने के योग्य नहीं है। आप भी दान दें। शील (=सदाचार) की रक्षा करें। धर्म से और पक्षपात रहित होकर राज्य करें।" इस प्रकार बोधिसत्व के राजा को उपदेश कर चुकने पर, बोधिसत्व का साज खोल दिया गया। वह, साज के खुलते ही खुलते चल बसा। राजा ने उसका शरीर-कृत्य करवा, अश्वा-रोह को महान् यश दे, सात राजाओं से फिर दुबारा द्रोह न करने की शपथ करवा, उन्हें उन उनके स्थान पर भेज दिया। तदनन्तर, राजा, धर्म से तथा पक्षपात-रहित राज्य करते हुए, आयु समाप्त होने पर, कर्मानुसार, (परलोक को) गया।

बुद्ध ने, 'हे भिक्षु! पहले समय में पण्डितों ने सामर्थ्य से बाहर (=अनायतन) बात के लिए भी प्रयत्न किया है। इस प्रकार की चोट (=प्रहार) खाकर भी

प्रयत्न को ढीला नहीं छोड़ा। तू, इस प्रकार के नैर्वाणिक (=मोक्षदायक) शासन में प्रव्रजित होकर भी, क्यों प्रयत्न ढीला करता है?" कह चार (आर्य-) सत्यों को प्रकाशित किया। सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर, प्रयत्न-हीन भिक्षु, अर्हत्व-फल में प्रतिष्ठित हो गया। शास्ता ने इस धर्म-देशना को यह, मेल मिला कर, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय का राजा (अब का) आनन्द था। अश्वारोह सारिपुत्र, (और) भोजाजानीय सिन्धव (-घोड़ा) तो मैं ही था।

२४. आजञ्ञ जातक

"यदा यदा..." यह भी गाथा, बुद्ध ने जेतवन में विहार करते समय (एक) शिथिल-प्रयत्न भिक्षु के ही बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उस भिक्षु को आमन्त्रित कर—"भिक्षु! पूर्व समय में पण्डितों ने सामर्थ्य से बाहर (स्थान) के लिए भी, जख्म खा कर भी, प्रयत्न किया है" कह, पूर्व की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, पूर्वोक्त अनुसार ही, सात राजाओं ने नगर को घेर लिया। एक रथ-सवार योद्धा ने, दो सहोदर-सैन्धव-घोड़ों को रथ में जोत, नगर से निकल, छः सेना के घेरे को तोड़, छः राजाओं को पकड़ा। उस समय (दो भाइयों में से) ज्येष्ठ भाई पर प्रहार पड़ा। सारथी रथ को मोड़, हाँकता हुआ राज-द्वार पर आया और

ज्येष्ठ-सहोदर को रथ से खोल, साज को ढीला कर, एक पासे पर लिटा, दूसरे घोड़े को कसने को तैयार हुआ। बोधिसत्व ने उसे देख, पूर्व प्रकार से ही सोच, सारथी को बुलवा, लेटे ही लेटे यह गाथा कही—

यदा यदा यत्थ यदा यत्थ यत्थ यदा यदा
आजञ्ञो कुरुते वेगं हायन्ति तत्थ वाळवा' ॥

[जब जब जहाँ, जब, जहाँ जहाँ, जब जब, आजानीय (घोड़ा) प्रयत्न (=वेग) करता है, उस समय (=वहाँ) साधारण घोड़े (सलुक-अश्व) रह जाते हैं।]

यदा यदा का अर्थ है कि पूर्वाह्न समय आदि जिस किसी समय पर। यत्थ=जिस स्थान पर, मार्ग में वा संग्राम में। यदा=जिस क्षण में। यत्थ यत्थ=सात सेना के घेरे के नाम के बहुत से युद्ध-मण्डलों में। यदा यदा=जिस जिस समय, प्रहार पड़े रहने के समय, वा न पड़े रहने के समय। आजञ्ञो कुरुते वेगं सारथी के चित्त का झुकाव (=अच्छी लगने वाली बात) जानने की सामर्थ्य रखने वाला आजञ्ञो=श्रेष्ठ अश्व, शीघ्रता करता है, प्रयत्न करता है, हिम्मत करता है। हायन्ति तत्थ वाळवा=उस वेग (=प्रयत्न) के किये जाते समय, शेष साधारण घोड़े कहे जाने वाले सलुक अश्व रह जाते हैं (=ह्रास को प्राप्त होते हैं)। इसलिए कहा कि इस रथ में मुझे ही जोत।

सारथी ने बोधिसत्व को उठा, (रथ में) जोत, (उसे) हाँक, सातवें सेना के घेरे को तोड़, सातवें राजा को पकड़ (=ले), रथ को हाँक, राजद्वार पर सिन्धव-अश्व को खोला। बोधिसत्व एक ही पासे पर लेटे लेटे, पूर्व प्रकार ही राजा को उपदेश दे, मरण को प्राप्त हुए। राजा, उस का शारीरिक-कृत्य करवा, सारथी का सम्मान कर, धर्मानुसार राज्य कर, यथा-कर्म (परलोक) गया।

बुद्ध ने इस धर्म-देशना को कह, चारों (आर्य-सत्यों) को प्रकाशित कर, जातक का सारांश निकाल दिखाया। सत्यों के प्रकाशन की समाप्ति पर, वह भिक्षु अर्हत्व में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय राजा (अब के) आनन्द स्थविर थे। और अश्व थे सम्यक् सम्बुद्ध।

हूँ।" "सारिपुत्र ! तूने अपने शिष्य को कौन सा कर्मस्थान दिया था ?" "भगवान् ! अशुभ-कर्मस्थान।"

"सारिपुत्र ! तेरी (चित्त-)सन्तति में आशयानुशय-ज्ञान नहीं। जा, शाम को आना और अपने शिष्य को साथ ले जाना।"

इस प्रकार स्थविर को अनुज्ञा कर, शास्ता ने उस भिक्षु को सुन्दर निवास-स्थान और चीवर दिलवा, (फिर) उसे साथ ले, भिक्षाचार के लिए प्रवेश कर, प्रणीत भोजन (=खाद्य-भोज्य) दिलवा, महाभिक्षुसंघ सहित विहार को लौट दिन का समय गन्धकुटी में बिताया। शाम को उस भिक्षु को साथ ले, विहार चारिका करते हुए, आम्रवन में, (दिव्य शक्ति से) एक पुष्करिणी; उसमें पद्मों का एक गुच्छा, और उनमें भी एक बड़ा कमल-फूल निर्माण कर, उस भिक्षु को, "भिक्षु ! तू इस फूल को देखते हुए बैठा रह" (कह) बिठा कर, स्वयं गन्धकुटी में प्रविष्ट हुए।

वह भिक्षु, उस फूल को बार बार देखने लगा। भगवान् ने उस फूल को कुम्हला दिया। उसके देखते ही देखते, वह फूल कुम्हला कर कुरूप हो गया। उसके सिरे पर के पत्ते गिरते गिरते थोड़ी ही देर में सब के सब गिर गये। उसके बाद रेणु गिरी। केवल डोडा शेष रह गया। उस भिक्षु को उसे देखते देखते ख्याल आया—"यह पुष्प अभी सुन्दर था, दर्शनीय था। अभी, इसका रंग बदल गया, पत्ते और रेणु गिर पड़े। केवल डोडा रह गया। जब इस प्रकार का यह फूल कुम्हला गया, तो मेरे शरीर को क्या नहीं हो जायगा ?" (यह सोचते सोचते) सभी संस्कारों की अनित्यता का विचार कर, विदर्शना में स्थापित हुआ। शास्ता ने, 'उसका चित्त विदर्शनारूढ़ हो गया' जान, गन्धकुटी में बैठे ही बैठे, (अपने) तेज को फैला, यह गाथा कही—

उच्छिन्द सिनेहमत्तनो कुमुदं सारदिकं व पाणिना,
सन्तिमग्गमेव ब्रूहय निब्बानं सुगतेन देसितं ॥[1]

[हाथ से शरद ऋतु के कमल की तरह, अपने राग (=स्नेह) की जड़ उखाड़ फेंको। सुगत द्वारा उपदिष्ट निर्वाण रूपी शान्ति-मार्ग में ही उन्नति करो।]

---

[1] धम्मपद, मग्गवग्ग (२८५)

उन भिक्षु ने गाथा के अन्त में अर्हत्त्व प्राप्त कर, मैं सब भवों (=संसार) से मुक्त हो गया हूँ सोच निम्नलिखित गाथाओं में उदान (=प्रीति-वाक्य) कहा—

> सो छुद्धजालो परिपुण्ण मानसो,
> खीणासवो अन्तिमदेहधारी,
> विसुद्ध सीलो सुसमाहितिन्द्रियो
> चन्दो यथा राहुमुखा पमुत्तो।
> समोततं मोहमहन्धकारं
> विनोदयिं सब्बमलं असेसं,
> आलोकमुज्जोतकरो पभङ्करो
> सहस्सरंसी विय भानुमा नभे॥

[वह अर्हत् छिन्न-जाल, परिपूर्णमानस, क्षीणास्रव, अन्तिमदेहधारी, विशुद्धशील, संयत (=सुसमाहित-)इन्द्रिय, राहु के मुख से मुक्त हुए चन्द्रमा की तरह होता है।

मेरा विस्तृत महा मोहान्धकार नष्ट हो गया। मैंने सारे के सारे मैल को हटा दिया, जैसे प्रभास्वर, आलोक को उत्पन्न करने वाला, सहस्र रश्मी सूर्य्य आकाश में (सब अन्धकार को मिटा देता है)]

इस प्रकार, उदान कह, आकर भगवान् की वन्दना की। स्थविर भी आ शास्ता को प्रणाम कर, अपने शिष्य को साथ ले गये। यह बात भिक्षुओं में प्रगट हो गई। वे धर्म-सभा में बैठे बैठे, दशाबल(-धारी) बुद्ध का गुणानुवाद करने लगे—"आवुसो! सारिपुत्र-स्थविर आशयानुशय ज्ञान न होने के कारण अपने साथी के चित्त की अवस्था नहीं जानते थे। लेकिन शास्ता ने (उसे) जानकर, एक ही दिन में, उस (भिक्षु) को प्रतिसम्भिदा-ज्ञान के साथ अर्हत्त्व दे दिया। ओह! बुद्धों की शक्ति (=महानुभाव) !"

बुद्ध ने आ बिछे आसन पर बैठकर पूछा—"भिक्षुओ! यहाँ बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो? [illegible] भगवान् और कुछ नहीं। आपकी ही धर्मसेनापति [illegible] [illegible] शिष्य के आशयानुशय-ज्ञान की बात-चीत।

बुद्ध ने [illegible] भिक्षुओ [illegible] [illegible] [illegible] और इस समय में बुद्ध

होकर, उसका आशय जानता हूँ। मैं पहले भी, उसका आशय जानता ही था" यह पूर्व की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त राज्य करता था। बोधिसत्व उस समय, राजा को अर्थ तथा धर्म सम्बन्धी उपदेश देनेवाले थे। उस समय राजा के माङ्गलिक घोडे के नहाने के स्थान पर एक खलङ्कु घोडे को नहला लिया। माङ्गलिक अश्व को दूसरे घोडे द्वारा नहाये गये तीर्थ (=घाट) पर उतारने लगे, तो उसने घृणा से उतरना न चाहा। साईस (=अश्वगोपक) ने जाकर राजा से कहा—देव ! माङ्गलिक अश्व तीर्थ पर नहीं उतरना चाहता है।'

राजा ने बोधिसत्व को भेजा, "पण्डित ! जाकर मालूम कर कि माङ्गलिक अश्व तीर्थ पर उतारने पर क्यों नहीं उतरता ?" बोधिसत्व ने देव ! अच्छा' कह नदी के तीर पर जाकर, अश्व को देख, उसका निरोगी होना जान सोचा, 'यह किस कारण से इस तीर्थ पर नहीं उतरता ?' यह सोचते हुए, उसे सूझा, 'कि यहाँ पहले किसी और को नहलाया होगा। उसीसे यह घृणा करके तीर्थ पर नहीं उतरता।" यह सोच, उसने अश्व-गोपकों से पूछा—"भो ! इस तीर्थ पर पहले किसे नहलाया ?" "स्वामी ! एक दूसरे घोड़े को।" बोधिसत्व ने "यह (माङ्गलिक अश्व) अपनी शुचिता (=पवित्रता) के कारण यहाँ नहाना नहीं चाहता, इसे अन्य तीर्थ पर नहलाना चाहिए"—इस प्रकार उसका आशय जान, उसने अश्व-गोपकों को कहा—"भो अश्वगोपक ! घृत-मधु-शक्कर मिला दूध भी बार बार पीने से (=भोजन करने से) तृप्ति हो जाती है। यह अश्व अनेक बार इस तीर्थ पर नहाया है। सो, इसे किसी दूसरे तीर्थ पर उतार कर नहलाओ, और जल पिलाओ।" यह कह, यह गाथा कही—

अञ्ञमञ्ञेहि तित्थेहि अस्सं पायेहि सारथि !
अच्चासनस्स पुरिसो पायासस्स पि तप्पति ॥

[हे सारथी ! इस घोड़े को किसी दूसरे तीर्थ पर (नहलाओ और) जल पिलाओ। आदमी, खीर भी बहुत खाने से तृप्त हो जाता है।]

खा, नाना रसों से युक्त सुभोजन करो !" बार बार कहने से, वह जाने का इच्छुक हो गया। उस दिन से, वह गया-शीर्ष पर जाता, और खाकर समय रहते ही वेळुवन लौट आता[1]। इस बात को वह देर तक छिपा कर नहीं रख सका कि वह गया-शीर्ष जाता है, और देवदत्त का जुटाया हुआ भोजन खा कर आता है। थोड़े ही समय में, यह बात प्रगट हो गई। उसके साथियों ने उसे पूछा—"आयुष्मान् ! क्या तुम सचमुच, देवदत्त का जुटाया हुआ भोजन खाते हो ?" "ऐसा, किसने कहा ?" "अमुक, अमुक (व्यक्ति) ने (कहा)।" "आयुसो ! मैं सचमुच गया-शीर्ष जाकर भोजन करता हूँ। लेकिन मुझे, देवदत्त भोजन नहीं देता, दूसरे ही मनुष्य देते हैं।" "आयुष्मान् ! देवदत्त बुद्धों का विरोधी है, दुश्शील है। (वह) अजातशत्रु को अपने प्रति श्रद्धावान् कर, अधर्म से अपने लिए लाभ-सत्कार उत्पन्न करता है। इस प्रकार के कल्याण-कारी शासन में प्रव्रजित होकर भी तू, देवदत्त का अधर्म से पैदा किया हुआ भोजन ग्रहण करता है। आ, तुझे बुद्ध के पास ले चलें", (कह) वे उसे लेकर धर्म-सभा में पहुँचे।

शास्ता ने देखकर पूछा, "भिक्षुओ ! क्यों इस (आने के) अनिच्छुक भिक्षु को लेकर आये हो ?"

"भन्ते ! हाँ, यह भिक्षु आपके पास प्रव्रजित होकर, देवदत्त द्वारा अधर्म से उत्पन्न भोजन ग्रहण करता है।"

"भिक्षु ! क्या तू सचमुच देवदत्त का अधर्म से कमाया हुआ भोजन ग्रहण करता है ?"

"भन्ते ! देवदत्त, मुझे भोजन नहीं देता, अन्य मनुष्य देते हैं, मैं उसे ही ग्रहण करता हूँ।"

बुद्ध ने, "भिक्षु ! बहाना मत बना। देवदत्त अनाचारी है, दुश्शील है। इधर प्रव्रजित हो, मेरे संघ (अनुशासन) में रहता हुआ तू कैसे देवदत्त का भोजन ग्रहण करता है ? तू सदा से ऐसा ही संगति-सेवी रहा है। जहाँ की संगति मिलती है, उसी के पद जाता है।" (कह) पूर्व-जन्म की कथा कही—

---

[1] कथाकार को शायद यह मालूम नहीं कि वेळुवन और गयाशीर्ष में कितना अन्तर है ?

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने समय, बोधिसत्व उसके अमात्य थे। उस समय राजा के महिलामुख नाम का एक मांगलिक हाथी था, शीलवान् और सदाचार सम्पन्न। किसी को कष्ट नहीं देता था। एक दिन आधीरात के समय, चोरों ने उसकी शाला के समीप आकर, उससे थोड़ी ही दूर पर चोर-मन्त्रणा (=चोरों की बात-चीत) की—"ऐसे सुरंग लगानी चाहिए। ऐसे सेंध लगानी चाहिए। 'सुरंग' और 'सेंध' मार्ग-सदृश हैं, तीर्थ सदृश हैं। उन्हें रुकावट-रहित, बाधा-रहित करके ही सामान चुराना चाहिए। और सामान ले जाते समय (मालिकों को) मारकर ही सामान ले जाना चाहिए। ऐसा करने से कोई उठ (कर पकड़) नहीं सकेगा। चोर को शीलवान नहीं होना चाहिए। उसे कठोर-मिज़ाज, कठोर और क्रूर जबरदस्ती करने वाला होना चाहिए।" इस प्रकार आपस में सलाह कर, और एक दूसरे को सिखाकर (वे चोर वहाँ से) गये। इसी तरह फिर एक दिन, फिर एक दिन (करके) बहुत दिन तक वे (चोर) वहाँ आकर मन्त्रणा करते रहे। उस (हाथी) ने उनकी बात-चीत सुन, यह समझ कि यह मुझे सिखा रहे हैं सोचा कि अब से मुझे कठोर-मिज़ाज, कठोर और क्रूर जबरदस्ती करने वाला होना चाहिए। सो, वह वैसा ही हो गया। प्रातः काल ही आने वाले हथवान को सूँड से पकड़ जमीन पर पटक कर मार डाला। दूसरे को भी, तीसरे को भी, जो जो आया सभी को मार डालता। (लोगों ने) राजा को खबर दी कि महिलामुख उन्मत्त हो गया है। जिसे जिसे देखता है, सब को मार डालता है। राजा ने बोधिसत्व को कहा—"पण्डित! जा, मालूम कर हाथी किस कारण से दुष्ट हो गया है।" बोधिसत्व ने जाकर देखा कि हाथी के शरीर में कोई रोग नहीं है, विचार किया कि किस कारण से यह दुष्ट हो गया है? उन्होंने समझा कि निश्चय से पास में किसी को बात-चीत करते सुन, उसे समझ कर कि 'यह मुझे ही सिखा रहे हैं' यह दुष्ट हो गया। [illegible]
[illegible]
[illegible]

हाथी के शरीर में और कोई विकार नहीं है। चोरों की बात-चीत सुनकर दुष्ट हो गया है।" "तो अब क्या किया जाना चाहिए?" "सदाचारी (=शीलवान्) श्रमण-ब्राह्मणों को हाथी-शाला में बिठा, सदाचार सम्बन्धी बात-चीत करवानी चाहिए।" "तो तात! ऐसा करवाओ।" बोधिसत्व ने जाकर, सदाचारी श्रमण-ब्राह्मणों को हाथी-शाला में बिठवाकर कहा—"भन्ते! सदाचार सम्बन्धी बात-चीत करें।" उन्होंने हाथी से कुछ ही दूर बैठकर सदाचार सम्बन्धी बात-चीत की—"किसी को तंग नहीं करना चाहिए। किसी को मारना नहीं चाहिए। सदाचारी (होकर) क्षमा शान्ति-मैत्री और करुणा से युक्त होकर रहना चाहिए।" उसने इसे सुन सोचा, कि यह मुझे ही सिखा रहे हैं। इसलिए अब से मुझे सदाचारी होकर रहना चाहिए। और वह सदाचारी हो गया। राजा ने बोधिसत्व से पूछा—क्यों तात! क्या वह शीलवान् हो गया?" बोधिसत्व ने 'देव! हाँ, इस प्रकार का दुष्ट हाथी पण्डितों (की संगति) के कारण, अपने पुराने-स्वभाव में ही प्रतिष्ठित हो गया' कह, यह गाथा कही—

> पुराण चोरान वचो निसम्म,
> महिलामुखो पोथयमानुचारि,
> सुसञ्ञतानं हि वचो निसम्म
> गजुत्तमो सब्बगुणेसु अट्ठा ॥

[महिलामुख (हाथी) पहले चोरों की बात सुन उनका अनुकरण करने वाला [illegible]]

पुराण चोरान [illegible] निसम्म [illegible]

[illegible]

महिलामुख [illegible]

[illegible]

सम्यक् संयत = सदाचारी (पुरुषों) का। गजुत्तमो = उत्तम गज = मांगलिक हाथी। सब्ब गुणेसु अट्ठा सब पुराने-गुणों में प्रतिष्ठित हो गया।

राजा ने यह देख 'कि यह पशुओं तक के आशय (= मन की अवस्था) को जानता है', बोधिसत्व को बहुत सा ऐश्वर्य (= यश) दिया। फिर वह आयु पर्यन्त जीवित रहकर, बोधिसत्व सहित कर्मानुसार (परलोक) सिधारा।

शास्ता ने 'भिक्षु ! पहले भी जिस जिस को देखा, तू उस उसकी संगति में पड़ गया। चोरों की बात सुनकर, तू उनका अनुयायी हो गया। धार्मिक लोगों की बात सुनकर धार्मिक लोगों का अनुयायी हो गया'—यह धर्म-देशना कर, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय का महिलामुख (अब का) विपक्षी-दल में चला जाने वाला भिक्षु था। राजा (अब का) आनन्द था और अमात्य तो मैं ही था।

२७. अभिण्ह जातक

"नास्स कबलं पदातवे ..." यह गाथा, शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, एक उपासक और एक वृद्ध स्थविर के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में दो मित्र रहते थे। उनमें से एक प्रव्रजित होकर (भी) रोज दूसरे के घर जाता। वह, उसको भिक्षा दे, स्वयं भी उसके साथ ही विहार जाता, और सूर्यास्त होने तक बातचीत करने के बाद, नगर को लौटता। दूसरा भी उसे नगर-द्वार तक पहुँचा आता। उनके परस्पर प्रेम (= विश्वास) की बात भिक्षुओं का प्रसिद्ध हुई। सो, एक दिन भिक्षु धर्म-सभा में बैठे, उनके परस्पर-प्रेम की बातचीत कर रहे थे। बुद्ध ने आकर

(=आबाधा) नहीं है। उसकी एक कुत्ते से बड़ी दोस्ती है। मालूम होता है, उसीको न देखने से, नहीं खाता है" कह, यह गाथा कही—

> नालं कबलं पदातवे न च पिण्डं न कुसे न घंसितुं
> मञ्ञामि अभिण्ह दस्सना नागो सिनेहमकासि कुक्कुरे।

[न कवल (=ग्रास) न पिण्ड, न तृण (=कुश) खा सकता है; न ही मलने देता है। मालूम होता है कि निरन्तर मिलते रहने से हाथी और कुत्ते का प्रेम हो गया।]

नालं=सामर्थ्य नहीं। कबलं, भोजन से पहले दिया जाने वाला कड़वा कौल (=ग्रास) पदातवे, सन्धि के कारण आकार लुप्त हुआ जानना चाहिए; नहीं तो पादातवे; अर्थ, ग्रहण करने के लिए। न च पिण्डं, खाने के लिए गोले बनाकर दिया जाने वाला भात-पिण्ड भी नहीं ग्रहण कर सकता। न कुसे, दिये जाने वाले तृण भी नहीं ग्रहण कर सकता। न घंसितुं; नहाते समय शरीर को मलने भी नहीं देता। इस प्रकार जो जो हाथी नहीं कर सकता, वह सब राजा को वह उस (हाथी) के असमर्थ होने के विषय में अपना अनुभव कहते हुए 'मञ्ञामि' आदि कहा।

राजा ने उसकी बात सुन, पूछा, "पण्डित! अब क्या करना चाहिए?"

"देव! आप यह मुनादी फिरवा दें कि हमारे माङ्गलिक हाथी के मित्र कुत्ते को कोई मनुष्य ले गया है। जिसके घर, यह कुत्ता दिखाई देगा, उसको यह यह दण्ड (मिलेगा)।"

राजा ने वैसा ही किया। उस समाचार को सुन, उस आदमी ने, उस कुत्ते को छोड़ दिया। कुत्ता जोर से दौड़ कर, हाथी के ही पास आ गया। हाथी ने उसे सूण्ड पर ले, माथे पर रख, रो कर, पीट कर, माथे पर से उतार, उसके खा लेने पर आने खाया। 'इसने पशु का भी आशय (=मन की बात) जान लिया' सोच, राजा ने बोधिसत्व को बहुत ऐश्वर्य्य दिया।

बुद्ध ने "भिक्षुओ! यह (दोनों) केवल अब ही परस्पर-प्रेमी नहीं रहे हैं। पहले भी रहे हैं' कह, धर्म-देशना ला, चार आर्य-सत्यों के साथ अनुकूलता दिखा, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिखाया। [यह चार आर्य-

मत्यों के साथ अनुकूलता दिखाना सभी जातकों में है, लेकिन हम इसे वहीं वहीं दिखायेंगे, जहाँ इस का कुछ फल है।] उस समय का कुत्ता (अब का) उपासक था। हाथी (अब का) वृद्ध स्थविर था। अमात्य-पण्डित तो मैं ही था।

२८. नन्दिविसाल जातक

"मनुञ्ञमेव भासेय्य..." यह गाथा शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, छः वर्गीय भिक्षुओं की कठोर-वाणी के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय छः वर्गीय भिक्षु कलह करते, शान्ति-प्रिय भिक्षुओं को तंग करते, उनकी निन्दा करते, उन्हें सिखाते, दस आक्रोश-वस्तुओं[1] से गाली देते। भिक्षुओं ने भगवान् से कहा। भगवान् ने छः वर्गीय भिक्षुओं को बुलवा, 'भिक्षुओ! क्या यह सच है?' पूछ 'सच है' कहने पर, उनको धिक्कारते हुए कहा—"भिक्षुओ! कठोर-वाणी पशुओं तक को अरुचिकर होती है।" पूर्व समय में एक पशु ने, अपने को कठोर-शब्द से पुकारनेवाले से हजार (मुद्रा) हरा दिये।" (यह कह) पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में गन्धार राष्ट्र स्थित तक्षशिला (=तक्षशिला) में गन्धार-नरेश राज्य करते थे। उस समय बोधिसत्त्व बैल की जून में पैदा हुए थे।

---

[1] जाति, नाम, गोत्र, कुल, कर्म, शिल्प (=पेशा), आबाध (=रोग) लिङ्ग, क्लेश (=चित्तविकार) तथा आपत्ति (=कमीनता)।

गये, बोधिसत्त्व के तरुण बछड़ा होने की अवस्था ही में, एक ब्राह्मण ने गो-दक्षिणा देने वाले दाता के पास जा, उन्हें प्राप्त कर, नन्दिविसाल नाम रख, पुत्र की तरह बड़े लाड़-प्यार से यागु-भात इत्यादि खिलाकर पाला। आयु प्राप्त होने पर बोधिसत्त्व ने सोचा—"मुझे इस ब्राह्मण ने बड़ी कठिनाई से पाला है। सकल जम्बुद्वीप में, मेरे साथ एक धुर में जुतने वाला दूसरा बैल नहीं है। क्यों न मैं अपना बल दिखाकर, इस ब्राह्मण को पालने पोसने का [illegible] दूँ ?"

एक दिन उसने ब्राह्मण को कहा—ब्राह्मण ! जा, गो-धन (वाले) सेठ के पास जाकर, "मेरा बैल एक साथ बँधी हुई सौ गाड़ियों को (एक साथ) खींच सकता है' कह एक हजार की शर्त लगा।

उस ब्राह्मण ने सेठ के पास जा, बात-चीत चलाई—"इस गाँव में किसके बैल (अधिक) बलवान हैं ?' उस सेठ ने, 'अमुक के (बैल बलवान) हैं, अमुक के (बैल बलवान) हैं' कह, (अन्त में) कहा कि सकल नगर में हमारे बैलों के सदृश कोई बैल नहीं।" ब्राह्मण ने कहा—'मेरा एक बैल, एक साथ बँधी सौ गाड़ियों को खींच सकता है।'

सेठ ने कहा, 'ऐसा बैल कहाँ है ?'

ब्राह्मण ने उत्तर दिया 'मेरे घर है।'

"तो शर्त लगाओ।' 'अच्छा ! शर्त लगाता हूँ" कह, उसने एक हजार की शर्त लगाई।

उसने सौ गाड़ियों को बालू, कंकड़ तथा पत्थरों से भर, (उन्हें) क्रम से [illegible] कर [illegible]। [illegible] को [illegible] के जुए में एक साथ बाँध, नन्दिविसाल को [illegible] कर, [illegible] में [illegible] के जुए में [illegible] बैठ कहा, "[illegible] हो कूट, हो कूट।'

बोधिसत्त्व [illegible] कि [illegible] को कूट कह कर पुकारता है [illegible]।

सेठ ने [illegible] ब्राह्मण से (एक) हजार (मुद्रा) [illegible] ([illegible]) लिए।

ब्राह्मण (एक) हजार [illegible] कर, बैल को [illegible]

[जब बोले मनोज्ञ(-वाणी) ही बोले, अमनोज्ञ कभी न बोले। मनोज्ञ-वाणी बोलने से, (बैल ने) भारी-भार ढो दिया। उस (ब्राह्मण) को धन मिला, जिससे वह अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ।]

मनुञ्ञमेव भासेय्य का अर्थ है कि किसी दूसरे के साथ बोलते हुए, चार प्रकार के दोषों से रहित,[1] मधुर, सुन्दर, चिकनी, मृदु, प्रिय वाणी ही बोले। गरुम्भारं उदद्धरी, नन्दिविसाल बैल ने अप्रिय-वचन बोलने वाले (ब्राह्मण) के भार को न खींच, पीछे प्रिय-वचन बोलने पर (उसी) ब्राह्मण के भारी-भार को खींच दिया, खींच कर, निकाल कर, रास्ते पर चला दिया। 'द' केवल व्यञ्जन सन्धि के कारण है।

इस प्रकार शास्ता ने 'मनुञ्ञमेव भासेय्य ...' इस धर्म-देशना को लाकर, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय का ब्राह्मण (अब का) आनन्द था। और, नन्दिविसाल तो मैं ही था।

२९. कण्ह जातक

"यतो यतो गरुधुरं ..." यह गाथा, शास्ता ने, जेतवन में विहार करते समय, यमक प्रातिहार्य[2] के बारे में कही। वह तेरहवें परिच्छेद में देवारोहण के साथ, सरभमिग जातक[3] में आयेगी।

---

[1] दुर्भाषित न हो, अप्रिय न हो, अधर्म न हो तथा असत्य न हो (सुभाषित सूत्र, सुत्तनिपात)

[2] एक ओर से पानी दूसरी ओर से आग निकलना, इस प्रकार की जोड़ीदार अलौकिक क्रिया।

[3] ४८३ जातक।

क. वर्तमान कथा

सम्यक् सम्बुद्ध के यमक प्रातिहार्य[1] कर, देव-लोक में रह, महाप्रवारणा के बाद संकिस्स-नगर-[2]द्वार पर उतर, बहुत से अनुयायियों के साथ जेतवन में प्रविष्ट होने पर, धर्म-सभा में बैठे भिक्षु तथागत की गुण-कथा कहने लगे—"आवुसो ! तथागत असम-धुर हैं। तथागत जिस धुर को ढोते हैं, उसे ढोने वाला कोई और नहीं। (शेष) छ शास्ता 'हम ही प्रातिहार्य करेंगे', 'हम ही प्रातिहार्य करेंगे' कहकर, एक भी प्रातिहार्य न कर सके। अहो ! (हमारे) शास्ता असम-धुर हैं।"

शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ ! इस समय बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो ?" "भन्ते ! और कोई (बात-चीत) नहीं, इस तरह से आप ही की गुण-कथा कह रहे हैं।" शास्ता ने "भिक्षुओ ! अब मेरे खींचे (=ढोये) धुर को कौन खींचेगा ? पूर्वजन्म में पशु-योनि में उत्पन्न हुए रहने पर भी, मुझे अपने 'सम-धुर' कोई नहीं मिला' कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्व बैल की योनि में पैदा हुए। तो उसके स्वामियों ने, उसके तरुण बछड़ा ही रहते, उसे एक बूढ़ी के घर में रहने के किराये के स्वरूप में, उस बुढ़िया को दे दिया। उसने यवागु-भात आदि खिलाकर उसका पुत्र की तरह पालन किया। उस (बछड़े) का नाम आर्यिका-कालक पड़ा। आयु-प्राप्त होने पर, वह सुरमे के रंग का (काला) हो, ग्राम के (अन्य) बैलों के साथ चरने लगा। वह सुशील स्वभाव का था। ग्राम-बालक सींग, कान तथा गले को पकड़ कर लटक जाते। पूँछ तक को पकड़ कर खेल करते। पीठ पर बैठ जाते।

उसने एक दिन सोचा—"मेरी माता दरिद्र है। उसने मुझे बड़ी कठि-

---

[1] देखो पटिसम्भिदामग्ग।

[2] संकिसा बसंतपुर, स्टेशन मोटा (E. I. Ry.) ज़िला फ़र्रुख़ाबाद।

माई ने पुत्र की तरह पाला है। मैं क्यों न मजदूरी करके इसकी गरीबी दूर करूँ ?" सो, उसके बाद से, वह मजदूरी ढूंढता हुआ विचरने लगा। एक दिन एक सार्थवाह-पुत्र के पाँच सौ छकड़े एक विषम-तीर्थ (=घाट) पर आए (फँसे)। उसके बैल गाड़ियों को न निकाल सके। पाँच सौ गाड़ियों के बैल एक युग में जोतने पर वे, एक भी गाड़ी न निकाल सके।

बोधिसत्व भी ग्राम के गोरुओं के साथ तीर्थ (=घाट) के पास ही चरते थे। सार्थवाह-पुत्र, गो-शास्त्रज्ञ था। उसने 'इन बैलों में' इन गाड़ियों को निकाल सकने वाला कोई वृषभ-आजानीय है या नहीं ?' सोचते हुए, बोधिसत्व को देख, 'यह आजानीय (वृषभ) है, यह मेरे शकटों को निकाल सकेगा' सोच, ग्वालों से पूछा—"इसका स्वामी कौन है ? मैं इसे शकटों में जोत कर, शकटों के निकल जाने पर स्वामी को मजदूरी (=वेतन) दूँगा।" उन्होंने उत्तर दिया—'इस स्थान पर, इसका स्वामी नहीं है। पकड़ कर जोत लें।" वह, बोधिसत्व को, नाक में रस्सी से बाँध, खींच कर न चला सका। बोधिसत्व, 'मजदूरी कहने पर जाऊँगा' सोच न गये। सार्थवाह-पुत्र ने उनका अभिप्राय जान कर कहा—स्वामी ! तुम्हारे पाँच सौ गाड़ियों को खींच कर निकाल देने पर, एक एक गाड़ी की मजदूरी दो कार्षापण करके, एक हजार (कार्षापण) दूँगा।' तब बोधिसत्व अपने आप चल गये। लोगों ने उसे गाड़ियों में जोता। उसने एक ही एक झटके में गाड़ियों को निकाल कर स्थल पर रख दिया। इस प्रकार सब गाड़ियाँ निकाल दीं।

सार्थवाह-पुत्र ने एक गाड़ी के लिए एक के हिसाब से पाँच सौ (कार्षापण) की पोटली बनाकर, उसके गले में बाँध दी। बोधिसत्व 'यह मुझे निश्चित मजदूरी नहीं देता है, सो मैं इसे जाने नहीं दूँगा' सोच, जाकर, सबसे अगली गाड़ी के सामने मार्ग रोक कर खड़ा हो गया। उसको हटाने के बहुत प्रयत्न करने पर भी न हटा सके।

सार्थवाह-पुत्र ने सोचा, मालूम होता है यह अपनी मजदूरी की कमी को पहचानता है', सो एक कपड़े में एक हजार की पोटली बाँध, 'यह तेरी गाड़ियाँ निकालने की मजदूरी है' कह, उसे, उसकी गर्दन में लटका दिया।

वह हजार की पोटली लेकर माता के पास गया। बच्चे के अनुसार 'आर्यक-कालक' के गले में यह क्या बँधा है (जानने के लिए) नजदीक आने लगे। वह

उनका पीछा कर, उन्हें दूर से ही भगा, माता के पास गया। पाँच सौ गाड़ियों को उतारने के कारण लाल हुई आँखों से थकावट प्रगट हुई। उपासिका उसके गले में एक हजार की थैली देख 'तात! यह तुझे कहाँ से मिली?' पूछ (फिर) ग्राम-दारकों से यह (सब) समाचार जान बोली, 'तात! मैं क्या तेरी मजदूरी से जीने की भूखी हूँ? तूने किस लिए ऐसा कष्ट उठाया है?' (यह कह) उसने बोधिसत्व को गर्म-जल से नहला, सारे शरीर पर तेल लगा, पानी पिला, अनुकूल भोजन खिलाया। बाद में आयु सम्पूर्ण होने पर वह बोधिसत्व सहित कर्मानुसार (परलोक को) गई।

शास्ता ने, 'भिक्षुओ! तथागत (केवल) अब ही अनन्त-धुर नहीं है, पहले भी अनन्त-धुर ही रहे हैं'—यह धर्म-देशना कह, मेल मिला, अभिसम्बुद्ध होने की ही अवस्था में यह गाथा कही—

यतो यतो गरुधुरं यतो गम्भीर वत्तनी,
तदस्सु कण्हं युञ्जन्ति स्वास्सु तं वहते धुरं॥

[जहाँ जहाँ पर धुर भारी होती है, जहाँ जहाँ पर मार्ग कठिन होता है; वहाँ वहाँ कण्ह (=काले बैल) को जोतते हैं। और वह उस धुर को ढो देता है।]

यतो यतो गरुधुरं=जिस जिस स्थान पर धुर भारी होता है, अन्य बैल नहीं उठा सकते। यतो गम्भीर वत्तनी, जो वर्ते यह वत्तनी; मार्ग का पर्याय-वाची। जिस स्थान पर पानी-कीचड़ की अधिकता से, या तट के विषम तरह से टूटा-फूटा रहने से, मार्ग कठिन होता है। तदस्सु कण्हं युञ्जन्ति; अस्सु, केवल निपात है। अर्थ है कि उस समय कण्ह (बैल) को जोतते हैं। तात्पर्य यह है कि जिस समय धुर भारी होता है, मार्ग गम्भीर होता है, उस समय अन्य बैलों को हटा कर, कण्ह(-बैल) को ही जोतते हैं। स्वास्सु तं वहते धुरं; यहाँ भी अस्सु तो केवल निपात है। अर्थ है कि यह उस धुर को ढोता (=खींचता) है।

इस प्रकार भगवान ने भिक्षुओ ... कण्ह-बैल ही उस धुर को खींचता

(=वहन करता) है' दिखाकर, मेल मिलाकर, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय की वृद्धा (अब की) उत्पलवर्णा थी। माण्डव्य-कानक तो मैं ही था।

३०. मुनिक जातक

"मा मुनिकस्स ..." यह गाथा, शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, एक प्रौढ़ कुमारी के प्रति आसक्ति (=लोभ) के बारे में कही। वह (कथा) तेरहवें परिच्छेद (=निपात) की चुल्लनारदकस्सप जातक[1] में आयेगी।

क. वर्तमान कथा

बुद्ध ने उस भिक्षु से पूछा, "भिक्षु ! क्या तू सचमुच उत्तेजित है ?"

"भन्ते ! हाँ।"

"किस लिए ?"

"भन्ते ! प्रौढ़-कुमारी के लोभ के कारण।"

बुद्ध ने, "भिक्षु ! यह (कुमारी) तेरा अनर्थ-करने वाली है। पूर्व-जन्म में भी तू, इसके विवाह के दिन प्राणों से हाथ धोकर, महा जन(-समूह) का भोजन बना" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोधिसत्व एक गाँव (=ग्रामक) में एक कुटुम्बि के घर गो-योनि में पैदा हुए।

---

[1] चुल्लनारद जातक (४७७)

होकर, अपने को जो भूसा मिला है, उसे खा, एवं दीर्घायु-लक्षण—यह दीर्घायु होने का कारण है।

उसके थोडी देर बाद ही, वे मनुष्य आ गये। (उन्होंने) मुनिक को मार कर, (उसे) नाना प्रकार से पकाया। बोधिसत्व ने चुल्ललोहित से पूछा—"तात! तूने मुनिक को देखा?" भाई! मैंने देख लिया मुनिक को मिलने वाले भोजन का फल। इसके भात (=भोजन) से हमारा तृण-पलाल-भूसा लाख दर्जा अच्छा है, दोष-रहित है, दीर्घायु का लक्षण है।

बुद्ध ने, "हे भिक्षु! तू इस प्रकार, पूर्वजन्म में भी, इस कुमारी के कारण प्राणों से हाथ धो, लोगों का सालन बना"—यह धर्म-देशना कह, आर्य (-सत्यो) को प्रकाशित किया। (आर्य-)सत्यो के (प्रकाशन के) अन्त में उत्कण्ठित भिक्षु स्रोतापत्ति-फल में प्रतिष्ठित हुआ। शास्ता ने भी मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय का मुनिक सूअर (अब का) उत्कण्ठित भिक्षु था। तरुण-कुमारी, यह (प्रौढ़-कुमारी) ही; चुल्ल-लोहित (अब के) आनन्द, (और) महा-लोहित तो मैं ही था।

दूसरे ने कहा, "भन्ते ! इसने जान-बूझ कर, बिना छाने, जीवों सहित जल पिया।"

"भिक्षु ! क्या तूने सचमुच जान-बूझ कर जीवों सहित जल पिया?"

"भन्ते ! हाँ, मुझसे बिना छना पानी पिया गया।"

शास्ता ने, "भिक्षु ! पूर्व समय में देव-नगर में राज्य करते हुए पण्डितों ने युद्ध में पराजित हो, समुद्र की सतह पर भागते हुए, 'हम ऐश्वर्य के लिए प्राण-वध न करेंगे' सोच, महान् ऐश्वर्य का त्याग कर, गरुड़-बच्चों को प्राण-दान दे, रथ को रोक दिया", कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व-समय में मगध-राज्य के राजगृह नगर में, एक मगध-नरेश राज्य करते थे। जैसे वर्तमान समय के शक्र (=इन्द्र) देव, (अपने) पूर्व-जन्म में, मगध राष्ट्र के मचल ग्राम में पैदा हुए थे, उसी प्रकार बोधिसत्व उस समय, उसी मचल ग्राम के एक महान् कुल में उत्पन्न हुए थे। नामकरण के दिन, उसका नाम मघ-कुमार रक्खा गया। आयु-बढ़ने पर, वह मघ-माणवक के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसके माता पिता ने, अपने समान जाति के कुल से (उसके लिए) एक लड़की ला दी। पुत्र-पुत्रियों सहित उसकी बढ़ती होने, वह दानपति हो गया। वह पाँच-शीलों की धारणा करता। उस गाँव में (कुल) तीस ही कुल थे। वे तीसों कुलों के मनुष्य एक दिन गाँव के बीच में खड़े होकर ग्राम-कृत्य कर रहे थे। बोधिसत्व जहाँ खड़े थे, वहाँ के रेत को पाँव से हटा, उस स्थान को रमणीक बनाकर, वहाँ पर खड़े हुए। एक दूसरा आदमी आकर उस स्थान पर खड़ा हो गया। बोधिसत्व दूसरी जगह को रमणीक बनाकर, वहाँ खड़े हो गये। वहाँ भी एक और आदमी आकर खड़ा हो गया। बोधिसत्व ने और दूसरा, और दूसरा करके, सभी के खड़े होने के स्थान को रमणीक बनाकर, फिर वहाँ एक मण्डप बनवा दिया। (फिर) मण्डप को हटाकर, एक शाला बनवाई। उसमें तख्तों के आसन बिछवा कर, (पानी की) चाटी रखवाई। कुछ समय बीतने पर, वह तीस के तीस जन, बोधिसत्व के समान विचार के हो गये। बोधिसत्व उन्हें पाँच शीलों में प्रतिष्ठित कर, उसके बाद से उनको साथ ले पुण्य करते विचरते रहे।

वे भी बोधिसत्त्व के साथ पुण्य करते हुए प्रातःकाल ही उठ कर वसुला, (=वासी) परसु, (=कुल्हाड़ा) तथा मूसल हाथ में ले, चौरस्तों (=चतुमहापथों) पर जा, वहाँ मूसल से पत्थरों को उलट रास्ते से हटा देते (=पवट्टेन्ति)। गाड़ियों के धुरों में बाधक वृक्षों को हटाते। ऊँच-नीच को बराबर करते। पुल बनाते। पुष्करिणियाँ खोदते। शालायें बनाते। दान देते। शील की भारक्षा करते। इस प्रकार प्रायः सभी ग्रामवासी, बोधिसत्त्व के उपदेशानुसार सदाचारी बन गये।

तब उनके ग्राम-भोजक ने सोचा कि पहले जब यह लोग शराब पीते थे, जीव-हिंसा करते थे, तो मुझे इनसे चाटी, कार्षापण के रूप में तथा दण्ड-बलि (=जुर्माने) आदि के रूप में धन मिलता था। लेकिन अब यह मघ, माणवक 'शील भारक्षा कराता हूँ', (करके) लोगों को जीव-हिंसा नहीं करने देता। "अच्छा! अब तुझे पाँच-शील रखाऊँगा!" (कह) क्रुद्ध हो, उसने राजा से जाकर कहा—

"देव! बहुत से चोर ग्राम-घात आदि करते घूम रहे हैं।" राजा ने उसकी बात सुन आज्ञा दी—"जा, उन्हें (पकड़) ला।" उसने जाकर, सब को बाँध ला कर राजा से कहा—"देव! चोरों को ले आया।" राजा ने उनके कर्म की परीक्षा किये बिना ही आज्ञा दी कि उन्हें हाथी से रौंदवा दो। सब को राजाङ्गण में लिटा कर हाथी को लाया गया।

बोधिसत्त्व ने लोगों को उपदेश दिया—"तुम अपने शील का विचार करो। चुगल-खोर के प्रति, राजा के प्रति, हाथी के प्रति और अपने शरीर के प्रति एक जैसी मैत्री भावना करो।" उन्होंने वैसा ही किया। उन्हें रौंदने के लिए हाथी को आगे बढ़ाया गया। आगे बढ़ाया जाने पर भी, वह उनके ऊपर से नहीं जाता था। चिंघाड़ मार कर भागता था। दूसरे, तीसरे हाथी को लाया गया। वे भी, वैसे ही भागे।

राजा ने सोचा, 'इनके हाथ में कोई औषध होगी', इसलिए आज्ञा दी कि इनकी तलाशी लो। तलाशी लेने वालों ने (कुछ) न देखकर कहा 'देव! नहीं है।" राजा ने सोचा, 'कोई, मन्त्र जपते होंगे'। (सो आज्ञा दी) पूछो कि क्या कोई जपने का मन्त्र है? राज-पुरुषों ने पूछा। बोधिसत्त्व ने कहा,

"(मन्त्र) है।" राजपुरुषों ने सूचना दी, "देव ! (यह कहता है) कि (मन्त्र) है।" राजा ने सब को बुला कर कहा—"तुम्हें जो मन्त्र मालूम है, सो कहो।"

बोधिसत्व ने कहा—"देव ! हमारे पास दूसरा कोई मन्त्र नहीं है। हम तीस जने जीव-हिंसा नहीं करते, चोरी नहीं करते, मिथ्याचार (=व्यभिचार) नहीं करते, झूठ नहीं बोलते, शराब नहीं पीते, मैत्री-भावना करते हैं, दान देते हैं, (ऊँचे-नीचे) रास्तों को बराबर करते हैं, पुष्करिणियाँ खोदते हैं, शालायें बनाते हैं,—यही हमारा मन्त्र है, यही हमारी आरक्षा (=परित्त) है, और यही हमारी वृद्धि है।"

राजा ने उन पर प्रसन्न हो, चुगल-खोर के घर की सब दौलत उनको दिला चुगल-खोर को उनका दास बना दिया। वह हाथी और ग्राम भी उन्हीं को दे दिया। उस समय से उन्होंने यथेच्छ पुण्य करते हुए, चौरास्ते पर एक बड़ी भारी शाला बनवाने की इच्छा से, बढ़ई को बुलाकर, (उससे) शाला की नींव रखवाई। स्त्रियों (=मातुगाम) के प्रति आसक्ति न होने के कारण, उन्होंने उस शाला (के निर्माण) में स्त्रियों को हिस्सेदार नहीं बनाया। उस समय बोधिसत्व के घर में सुधम्मा, चित्ता, नन्दा और सुजाता नाम की चार स्त्रियाँ थीं। उनमें से सुधर्मा ने बढ़ई के साथ मिल, 'भाई ! इस शाला (के निर्माण) में, मुझे मीरी (=ज्येष्ठरी) कर' (वह) उसे रिश्वत दी। उसने 'अच्छा' कह, स्वीकार कर, पहले से ही कर्णिक (=शहतीर के योग्य)-वृक्ष को सुखवाकर, छीलकर, बींधकर, शहतीर बना तैयार करके, वस्त्र से लिपटवा कर, रखवाया। फिर शाला को समाप्त कर, कर्णिका रखने के समय कहा—'ओह ! आर्यो ! एक बात याद न रही।" "भो ! क्या ?" "कर्णिका (= (=शहतीर) चाहिए" "अच्छा ! ले आयेंगे।" "अब के (ताजे) कटे वृक्ष से न बन सकेगी। पहले से ही काट कर, छील कर, बींध कर, रक्खी हुई कर्णिका मिलनी चाहिए।" "तो अब क्या किया जाये ?" "यदि किसीके घर में बेचने के लिए रक्खी हुई कर्णिका हो, तो उसे खोजना चाहिए।" ढूँढ़ते हुए, उन्हें सुधर्मा के घर में (कर्णिका) मिली, (लेकिन वह उसे) मूल्य देकर न ले सके। "यदि मुझे शाला (के निर्माण) में हिस्सेदार बनाओ, तो दूँगी" कहने पर, उन्होंने कहा कि हम स्त्रियों को हिस्सा (=पत्ति) नहीं देते। तब बढ़ई ने उन्हें कहा—'आर्यो ! क्या कहते हो ? ब्रह्मलोक को छोड़ और कोई ऐसी

बड़ा है। देवताओं के पारिजात वृक्ष की भाँति, वहाँ असुरों का चित्रपाटली नामक कल्पस्थायी वृक्ष है। उन (असुरों) को चित्रपाटली वृक्ष के पुष्पित होने पर पता लगा कि यह हमारा देव-लोक नहीं है, क्योंकि देव-लोक में तो पारिजात वृक्ष फूलता है। सो, उन्होंने यह जान कि "बूढ़े शक्र ने, हमें बेहोश करके, महासमुद्र की सतह पर फेंक हमारा देव-नगर ले लिया है" निश्चय किया कि हम उसके साथ युद्ध करके अपना देव-नगर लेंगे। खम्भे पर च्यूँटियों के चढ़ने की तरह, वे सुमेरु पर्वत के साथ साथ चढ़ते हुए (ऊपर) उठे। शक्र ने 'असुर उठे' सुन, समुद्र-पृष्ठ पर ही आकर उनसे युद्ध करते हुए, उनसे हार कर, डेढ़ सौ योजन (लम्बे-चौड़े) वैजयन्त रथ में दक्षिण समुद्र के ऊपर ऊपर भागना आरम्भ किया। समुद्र-तल पर वेग से चलता हुआ उसका रथ, सिम्बलि वन के पास से गुजरा। उसके रास्ते में आया सिम्बलि वन, ताड़ के पत्तों की तरह टूट टूट कर, समुद्र-तल पर गिरने लगा। समुद्र-तल पर उलटते पलटते गरुड़-बच्चे महा चीत्कार करने लगे। शक्र ने (अपने सारथी) मातलि से पूछा—"मातलि! यह अत्यन्त करुणाजनक क्या शब्द है?"

"देव! आपके रथ के वेग से घूर्णित होकर गिरते हुए सिम्बलि वन के कारण, मरने के भय से भयभीत गरुड़-पोतक एक साथ चीत्कार कर रहे हैं।"

महासत्त्व ने कहा—"सम्म मातलि। हमारे कारण इन्हें कष्ट न हो। ऐश्वर्य्य के लिए, हम जीवहिंसा नहीं करते। इनके लिए, हम अपने प्राणों का परित्याग कर, (उन्हें) असुरों को दे देंगे। इस रथ को लौटाओ।" कह, यह गाथा कही—

> कुलावका मातलि! सिम्बलिस्मिं,
> ईसा मुखेन परिवज्जयस्सु;
> कामं चजाम असुरेसु पाणं,
> मायिमे दिजा विकुलावा अहेसुं॥

[मातलि! सिम्बलि वन में जो गरुड़-बच्चे हैं, (उन्हें रथ के) अगले सिरे (=ईसामुख) से (हानि पहुँचने से) बचाओ। हम असुरों को अपने प्राण भले ही दे दें। लेकिन इन पक्षियों के घोंसले नष्ट न हों।]

कुलावका=गरुड़ के बच्चे। मातलि!—यह सारथी का सम्बोधन है। सिम्बलिस्मि—इस शब्द से स्पष्ट है कि देरा, यह सिम्बिल-वृक्षों में लटक रहे हैं। ईसामुखेन परयज्जयस्सु; इनको ऐसे बचाओ, जिससे यह इस रथ के अगले सिरे (=ईसामुख) से नष्ट न हों। कामं चजाम असुरेसु पाणं—यदि हमारे असुरों को अपने प्राण देने से, इनका कल्याण होता हो तो हम अवश्य ही प्रसन्नता पूर्वक असुरों को अपने प्राण दे देंगे। मायिमे दिजा विकुलाया अहेसुं; लेकिन यह पक्षी (=द्विज); यह गरुड़-बच्चे, अपने घोंसलों के विध्वंस, विचूर्ण हो जाने के कारण आश्रय-रहित (=बिना घोंसले के) न हो। हमारा दु:ख इनके ऊपर मत डाल। रथ को लौटा। रथ को लौटा।"

यह शब्द सुन, मातलि-सारथी ने, रथ को रोक दूसरे मार्ग से, देव-लोक की ओर हाँक दिया। असुरों ने रथ को लौटता देख सोचा, "निश्चय से दूसरे चक्रवालों से भी शक्र आ रहे हैं। सेना की सहायता (=बल) मिलने से ही रथ लौटाया गया होगा।" यह सोच मरने से भय-भीत हो भाग कर असुर-भवन में छिप गये। शक्र भी देव-नगर में प्रवेश कर, दो देव-लोकों के देवताओं सहित नगर के बीच में खड़े हुए। उसी क्षण पृथ्वी फूटी, (और) उसमें से सहस्र योजन ऊँचा वेजयन्त प्रासाद (=महल) निकला। विजय के अन्त में निकलने के कारण, उसका नाम वेजयन्त रक्खा गया। शक्र ने, असुरों का फिर दुबारा आना रोकने के लिए पाँच जगहों पर पहरा (=आरक्षा) स्थापित किया। जिसके बारे में कहा है—

> अन्तरा द्विन्नं अयुज्झपुरानं पञ्चविधा ठपिता अभिरक्खा,
> उरग करोटि पयस्स च हारी मदनयुता चतुरो च महन्ता॥

[दोनों अयुद्ध-पुरों के बीच में पाँच प्रकार की आरक्षा स्थापित की गई—सर्पों की, गरुड़ों की, कुम्भाण्ड (=बावन राक्षसों) की, यक्षों की तथा चारों महाराजाओं की]

दोनों नगर युद्ध से अजेय होने के कारण अयुद्ध-पुर कहलाये—देवनगर तथा असुर नगर। जब असुर बलवान् होते, तब देवताओं के भाग कर देव-नगर में प्रविष्ट हो द्वारों के बन्द कर लेने पर एक लाख असुर भी उनका युद्ध

न कर सकते। जब देवता बलवान् होते, तब असुरों के भाग कर, असुर नगर के द्वार बन्द कर लेने पर, एक लाख शक्र भी (उनका) कुछ न कर सकते। इसलिए यह दोनों नगर अयुद्ध-पुर कहलाये। इन दोनों (नगरों) के बीच में, शक्र ने पाँच स्थानों पर पहरा (=आरक्षा) स्थापित किया।

'उरग' शब्द से नागों का ग्रहण है। ये जल में बल-शाली होते हैं। इसलिए सुमेरु पर्वत के प्रथम चक्कर में उनका पहरा है 'करोटि' शब्द से गरुड़ों का ग्रहण है। उनका 'नाम' 'करोटि' इसलिए पड़ा, क्योंकि वह जीवों को खाते हैं। दूसरे चक्कर में उनका पहरा है। 'पयस्स हारी' शब्द से कुम्भाण्डों का ग्रहण किया गया है। यह दानव-राक्षस (होते) हैं। तीसरे चक्कर में उनका पहरा है। 'मदन युत' शब्द से यक्षों का ग्रहण है। ये विषम-आचरण वाले (तथा) युद्ध प्रिय होते हैं। चौथे चक्कर में उनका पहरा है। 'चतुरो च महत्ता' का अर्थ है चारों महाराजा। पाँचवे चक्कर में उनका पहरा है। सो यदि असुर क्रुद्ध होकर (अथवा) मन बिगाड़ कर देव-पुर पहुँचते, तो उरग उन्हें सुमेरु पर्वत के पाँच प्रकार के घेरों में से जो प्रथम-घेरा है, उससे बाहर निकाल देते। इसी प्रकार बाकी चक्करों में दोष।

इन पाँच स्थानों में पहरा स्थापित करके, देवेन्द्र (शक्र) के दिव्य सम्पत्ति का उपभोग करते समय, सुधर्मा ने च्युत हो (= मर) कर, उस शक्र की ही भार्या बन कर जन्म ग्रहण किया। कणिका (=कड़ाही) देने के फलस्वरूप उसके लिए पाँच सौ योजन (लम्बी चौड़ी) सुधर्मा नामक रत्न-मणि-सभा (=शाला) उत्पन्न हुई, जिसमें दिव्य श्वेत छत्र के नीचे, योजन भर के काञ्चन पलंग के ऊपर बैठ कर, देवेन्द्र शक्र देव मनुष्यों के कर्तव्य (का सम्पादन) करते थे। चित्रा भी मर कर, उसी की भार्या होकर उत्पन्न हुई। उद्यान लगाने के फलस्वरूप उसके लिए चित्र-लता-वन नाम का उद्यान उत्पन्न हुआ। नन्दा भी च्युत होकर, उसीकी भार्या होकर उत्पन्न हुई। पुष्करिणी बनवाने के फलस्वरूप उसके लिए नन्दा नाम की पुष्करिणी पैदा हुई।

कोई भी शुभ-कर्म न किया होने के कारण सुजाता एक अरण्य की किसी कन्दरा में बगुली की योनि में उत्पन्न हुई। शक्र ने, 'सुजाता नहीं दिखाई देती, वह कहाँ उत्पन्न हुई?' विचार करते हुए, उसे देखा। वहाँ जाकर

उसे साथ लाया और उसे रमणीय देव-नगर, सुधर्म देवसभा, चित्रलता-वन और नन्दा पुष्करिणी दिखाई। फिर 'यह कुल-धर्म करके मेरी स्त्रियाँ होकर उत्पन्न हुईं, लेकिन तू कुल-धर्म न किये रहने के कारण पशु-योनि (=तिरश्चीन) की योनि में उत्पन्न हुई। अब से सदाचार की रक्षा कर'—यह उपदेश देकर, उसे पाँच शीलों में प्रतिष्ठित किया और उसे वहीं ले जाकर छोड़ दिया। वह भी उस समय से सदाचार (=शील) की रक्षा करने लगी। कुछ दिनों के बाद 'यह शील की रक्षा कर सकती है, (या नहीं)?' जानने के लिए, जाकर उसके सामने मछली की योनि में चित-पड़े प्रकट हुए। उसने मृत मत्स्य समझ सिर पर प्रहार किया। मत्स्य ने पूँछ हिलाई। उसने 'जीता है' समझ, उसे छोड़ दिया। शक्र 'साधु साधु' (कह) 'शील की रक्षा कर सकेगी' (सोच) चला गया। वहाँ से च्युत होकर वह वाराणसी में कुम्हार के घर पैदा हुई।

शक्र ने 'कहाँ पैदा हुई ?' (सोच) 'वहाँ पैदा हुई' जान, सोनहरी खीरों की गाड़ी भरकर, गाँव के बीच में एक बूढ़े के वेष में बैठ चिल्लाना शुरू किया—"खीरे ले लो, खीरे ले लो।"

मनुष्यों ने आकर कहा—'तात ! दो।'

"मैं केवल सदाचारियों को देता हूँ। तुम सदाचार की रक्षा करते हो ?"

"हम शील(=शील) नहीं जानते. मूल्य से दो।"

"मुझे कीमत की जरूरत नहीं. मैं केवल सदाचारियों को ही देता हूँ।"

"कौन है यह लाल-बुझक्कड़ (=बालको) !" कहते मनुष्य चले गये। सुजाता ने उस समाचार को सुन, 'मेरे लिए लाये गये होंगे' सोच, जाकर कहा—'तात ! दो।"

"अम्म ! क्या सदाचार की रक्षा करती हो ?"

"हाँ ! रक्षा करती हूँ।"

'यह (सब) मैं तेरे ही लिए लाया हूँ' (कह) गाड़ी सहित गृह-द्वार पर छोड़ चला गया। वह भी जीवन पर्यन्त सदाचार की रक्षा कर, वहाँ से च्युत हो, वेपचित्ति असुरेन्द्र की लड़की होकर उत्पन्न हुई। सदाचार (की रक्षा करने) के फलस्वरूप सुन्दरी हुई। असुरेन्द्र ने उसकी उमर होने पर 'मेरी लड़की अपनी इच्छा के अनुसार स्वामी वरण करे'—इस इच्छा से—असुरों

को एकत्रित किया। शक्र 'यह कहाँ उत्पन्न हुई', देखते हुए, 'वहाँ उत्पन्न हुई' जान, सुजाता यथेच्छा स्वामी को चुनने (का अवसर मिलने) पर, मुझे ही चुनेगी' सोच असुर का रूप बनाकर वहाँ गया। सुजाता को सजाकर, सभा में लाकर कहा गया कि यथारुचि स्वामी को चुनो। उसने देखते हुए शक्र को देख, अपने पूर्व स्नेह के भी कारण 'यह मेरा स्वामी है' (करके) ग्रहण किया। वह उसे देव-नगर में ला, वहाँ उसे ढाई करोड़ नटनियों (नृत्यबालाओं) की मुखिया बना, आयु पर्य्यन्त रहकर, यथा-कर्म (परलोक) सिधारा।

बुद्ध ने यह धर्म-देशना कह 'हे भिक्षु! पूर्व समय में देव राज्य करते हुए पंडितों ने, इस प्रकार अपने जीवन का परित्याग करते हुए भी (जीवहिंसा) नहीं की। और तू इस प्रकार के कल्याण-कारी शासन में प्रव्रजित होकर भी छाने बिना, जीव-सहित जल पीयेगा" (कह) उस भिक्षु को झिड़क, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय का मातलि (नामक) सारथी (अब का) आनन्द था। शक्र तो मैं ही था।

३२. नच्च जातक

"रुदं मनुञ्ञं..." यह गाथा बुद्ध ने जेतवन में विहार करते समय, एक बहुत सामान रखने वाले भिक्षु के बारे में कही। कहानी पूर्वोक्त देवधम्म[1] जातक के सदृश ही है।

क. वर्तमान कथा

बुद्ध ने उस भिक्षु से पूछा — "भिक्षु! क्या तू सचमुच बहु-सामान वाला है?"

---

[1] जातक (६)

हो। पक्षियों ने मोर के पास आकर कहा—"सम्य मोर! हम राज-पीना ने इतने पक्षियों के बीच में स्वामी खोजते हुए, तुझे चुना है।"

मोर ने, "तो क्या वह आज भी मेरे बल को न देखती" (कह) अति प्रसन्न हो, लज्जा-भय छोड़कर, उतने बड़े पक्षि-संघ के बीच में पंखों को पसार कर, नाचना आरम्भ कर दिया। नाचते समय वह नंगा (=बिना ढका) हो गया। सुवर्ण हंस-राज ने लज्जित हो, 'इसको न तो अन्दर की लज्जा है, न बाहर का भय है। इस लज्जा-भय रहित को मैं (अपनी) लड़की न दूंगा' (कह) पक्षियों के संघ के बीच में यह गाथा कही—

> रुदं मनुञ्ञं रुचिरा च पिट्ठी
> वेळुरियवण्णूपनिभा च गीवा,
> ब्याम-मत्तानि च पेखुणानि
> नच्चेन ते धीतरं नो ददामि ॥

[(यद्यपि तेरा) स्वर मनोहारी है, पीठ सुन्दर है, गर्दन बिल्लौर के रंग की है, पंखड़ियाँ दो हाथ (=ब्याम) भर की हैं, (तो भी) तेरे नाचने के कारण, तुझे लड़की नहीं देता हूँ]

रुदं मनुञ्ञं, 'रुद' में 'त' का 'द' कर दिया गया। रुदं, मतलब यह है कि [illegible] शब्द मधुर। रुचिरा च पिट्ठी, तेरी पीठ भी चित्रित तथा शोभासम्पन्न है। वेळुरियवण्णूपनिभा—बिल्लौर मणि के वर्ण सदृश। ब्याम-मत्तानि; एक ब्याम (=दो हाथ) भर। पेखुणानि-पंखड़ियाँ। नच्चेन ते धीतरं नो ददामि—'लज्जा-भय छोड़ कर नाचने के कारण ही, तुझे, ऐसे निर्लज्ज को लड़की नहीं देता हूँ" कह, हंस-राज ने उसी परिषद् के बीच में अपने भांजे हंस-बच्चे को लड़की दे दी। मोर हंस-बच्ची को न पा, लज्जित हो, वहाँ से उड़ कर भाग गया। हंस-राज भी अपने निवास-स्थान को चला गया।

बुद्ध ने "भिक्षुओ! न केवल अब ही यह लज्जा-भय छोड़ने के कारण (बुद्ध-)शासन [illegible] से वंचित हुआ है, पूर्व-जन्म में भी स्त्री-रत्न की प्राप्ति से इसे हाथ धोना पड़ा था।" यह धर्म-देशना ला, [illegible] आर्य-सत्य [illegible]

भर लेता। घर जाकर, उन्हें बेच, उस आमदनी (=मूल्य) से जीविका चलाता था।

तब एक दिन बोधिसत्व ने उन बटेरों को कहा—"यह चिड़ीमार हमारी जात-बिरादरी का नाश करता है। मैं एक उपाय जानता हूँ, जिससे यह हमें न पकड़ सकेगा। अब से, जैसे ही यह तुम्हारे ऊपर जाल फेंके, वैसे ही आप सब एक एक गाँठ में सिर रख कर, जाल के सहित उड़कर, उसे यथेष्ट स्थान पर ले जाकर, किसी काँटे-दार झाड़ी के ऊपर डाल दो। ऐसा होने पर, हम नीचे से जहाँ तहाँ से भाग जायेंगे।" उन सब ने 'अच्छा' कहा। दूसरे दिन जाल फेंकने पर, (वे) बोधिसत्व के कथनानुसार जाल को उठा कर, एक काँटेदार झाड़ी पर फेंक, अपने आप नीचे से, जहाँ तहाँ से निकल भागे।

चिड़ीमार को झाड़ी में से जाल निकालते ही निकालते विकाल हो गया। वह खाली हाथ ही (घर) लौटा। अगले दिन से लगाकर बटेर (रोज़) वैसा ही करते। वह (चिड़ीमार) भी सूर्यास्त होने तक जाल को ही छुड़ाते रह कर, कुछ भी न पा, खाली हाथ ही घर लौटता। तब उसकी भार्य्या ने क्रुद्ध होकर कहा—"तू रोज़ रोज़ खाली हाथ लौटता है। मालूम होता है बाहर किसी और को भी परवरिश कर रहा है।" चिड़ीमार ने "भद्रे! मुझे किसी और को पालना पोसना नहीं है। केवल यह बटेर एक मत होकर चुगते हैं। मेरे फेंके जाल को लेकर, काँटों की झाड़ी पर डाल चले जाते हैं। लेकिन वह सदैव एक मत होकर नहीं रहेंगे। तू चिन्ता मत कर। जिस समय वह विवाद में पड़ेंगे, उस समय उन सब को लेकर तुझे हँसाता हुआ घर लौटूँगा।" कह, भार्य्या को यह गाथा कही—

> सम्मोदमाना गच्छन्ति जालमादाय पक्खिनो,
> यदा ते विवदिस्सन्ति तदा एहिन्ति मे वसं॥

[(अभी) पक्षी एक राय होने के कारण जाल को लेकर (उड़) जाते हैं, लेकिन जब वह विवाद करेंगे, तभी वह मेरे वश में आ जायेंगे।]

यदा ते विवदिस्सन्ति, जिस समय यह [illegible] के [illegible] (उड़कर [illegible]) [illegible] [illegible] करेंगे [illegible] करेंगे, तदा एहिन्ति मे वसं—

उस समय यह सभी मेरे वश में आ जायेंगे। और मैं उन्हें लेकर तुझे हँसाता हुआ, आऊँगा (कह) भार्य्या को आश्वासन दिया।

कुछ ही दिन के बाद चुगने की भूमि (=गोचर-भूमि) पर उतरता हुआ एक बटेर ग़लती से (=ख्याल न रहने से) दूसरे के सिर पर से लाँघ गया। दूसरे ने क्रोध से कहा, "मेरे सिर पर से कौन लाँघा?" "मैं ग़लती से लाँघ गया। क्रुद्ध मत हो।" कहने पर भी वह क्रोध ही करता रहा। बार बार बोलते हुए, वह एक दूसरे को ताना देने लगे, "मालूम होता है, जैसे तू ही जाल को उठाता है!"

उन्हें विवाद करते देख, बोधिसत्व ने सोचा—"विवाद करने वालों का कुशल नहीं। अब यह जाल न उठायेंगे, और महान् विनाश को प्राप्त होंगे। चिड़ीमार को अवसर मिल जायगा। मैं अब यहाँ नहीं रह सकता।"(यह सोच) वह अपनी परिषद् (=जमात) को ले दूसरी जगह चला गया। चिड़ीमार ने भी कुछ दिन के बाद आ, बटेरों की बोली बोल, उनके एकत्र होने पर, उन पर जाल फेंका। तब एक बटेर ने दूसरे को कहा, 'जाल ही उठाते उठाते तेरे सिर के बाल गिर पड़े, ले, अब तो उठा।' दूसरे ने कहा—"जाल ही उठाते उठाते तेरे दोनों परों की परखड़ियाँ गिर पड़ीं। ले, अब तो उठा।' सो उनके 'तू उठा', 'तू उठा', विवाद करते करते ही, चिड़ीमार जाल को उठा, उन सब को एकत्रित कर, पेटी भर भार्य्या को प्रसन्न करता हुआ, घर लौटा।

बुद्ध ने, 'सो हे महाराजाओ! ज्ञाति-सम्बन्धियों का कलह उचित नहीं है। कलह विनाश का ही कारण होता है'; यह धर्म-देशना लाकर, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय का मूर्ख (=अपण्डित) बटेर (अब का) देवदत्त था। और पण्डित-बटेर तो मैं ही था।

३४. मच्छ जातक

"न मं सीतं न मं उण्हं. . . " यह गाथा, बुद्ध ने जेतवन में विहार करते समय, पूर्व-भार्य्या के लुभाने के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय बुद्ध ने उस भिक्षु से पूछा— भिक्षु ! क्या तू सचमुच उत्कण्ठित है ?"

"भगवान् ! सचमुच।"

"तुझे किस ने उत्कण्ठित किया ?"

"भन्ते ! मेरी पूर्व-भार्य्या के हाथों में माधुर्य्य है। उसे नहीं छोड़ सकता हूँ।"

तब बुद्ध ने, "हे भिक्षु ! यह स्त्री तेरा अनर्थ करने वाली है। पूर्व-जन्म में भी तू इसके कारण मरते मरते, मेरी शरण आने से मरने से बचा" (कह) पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व उसके पुरोहित थे। मछुओं ने नदी में जाल फेंका। एक महामत्स्य अपनी मछली के साथ रति-क्रीडा करता हुआ आ रहा था। उसके आगे आगे जाती वह मछली जाल-गन्ध सूँघ कर जाल से हट कर निकल गई। लेकिन वह कामासक्त, लोभी मत्स्य जाल के भीतर ही जा फँसा। मछुओं ने उसे जाल में प्रविष्ट हुआ जान, जाल को उठा, मत्स्य को बिना मारे ही ले जा बालू के ऊपर डाल दिया। (उन्होंने) सोचा इसे अङ्गारों पर पका कर खायेंगे।

इसलिए अङ्गार बनाने लगे और सलाई (=काँटे) को छीलने लगे। मत्स्य ने, 'अङ्गार पर तपने का, काँटे से बिंधने का या अन्य कोई दुःख मुझे पीड़ा नहीं देता, लेकिन यह जो मछली सोचेगी कि वह किसी दूसरी मछली के पास चला गया, उसीसे मुझे दुःख होता है, उसीसे मुझे बाधा होती है', (कह) रोते पीटते यह गाथा कही—

न मं सीतं न मं उण्हं न मं जालस्मि बाधनं,
यं च मं मञ्ञते मच्छी, अञ्ञं सो रतिया गतो' ॥

[न मुझे शीत की पीड़ा है, न उष्णता की पीड़ा है, न जाल में बँधने की पीड़ा है। (मुझे दुःख है तो यह है) कि मेरी मछली, मेरे बारे में समझेगी कि वह रति के मारे किसी दूसरी मछली के पास चला गया।]

'न मं सीतं न मं उण्हं...' मत्स्यों को पानी से बाहर निकालने के समय शीत लगता है, पानी में जाने पर गरमी लगती है। सो दोनों के बारे में 'न तो मुझे शीत ही पीड़ा देता है, न गरमी।' (वह) रोता है। (और) जो अङ्गार में पकने का दुःख होगा, उसके बारे में भी 'न मुझे गरमी पीड़ा देती है' (यह) रोता ही है। न मं जालस्मि बाधनं, और जो मेरा जाल में बँधना हुआ, यह भी मुझे पीड़ा नहीं देता (यह) रोता है। यं च मं आदि का संक्षेपार्थ यह है— यह मछली मेरे जाल में फँसने और इन मछुओं द्वारा पकड़ लिये जाने की बात न जानकर, मुझे न देखती हुई सोचेगी कि वह मत्स्य कामरति के मारे अब दूसरी मछली के पास चला गया होगा—यह उसका मेरे प्रति बुरा-भाव होना मुझे पीड़ा देता है (वह) बालू के ऊपर पड़ा पड़ा रोता पीटता है।

उस समय दासों से घिरा हुआ पुरोहित, स्नान करने के लिए नदी के किनारे आया। उसे सब प्राणियों की बोली समझ में आती थी। सो, इस मत्स्य का रोना पीटना सुन कर, उसके मन में यह (विचार उत्पन्न) हुआ— यह मत्स्य कामासक्ति के दुःख से पीड़ित होकर रोता है। इस प्रकार आतुर (=दुःखित) चित्त होकर मरने पर भी यह नरक में ही उत्पन्न होगा। मैं इसका उद्धार करने वाला होऊँगा।' (यह सोच) मछुओं के पास जाकर कहा—

"भो! तुमने हमें एक दिन भी सालन (=व्यञ्जन) के लिए मछली नहीं दी?"

मछुओं ने कहा—"स्वामी क्या कहते हैं? आपको जो मछली अच्छी लगे, उसे ले जाइये।"

"हमें और किसी मछली से काम नहीं, यही (मत्स्य) दे दो।"

"स्वामी! ले जायें।"

बोधिसत्व, उसे दोनों हाथों से ले, नदी के किनारे बैठ "भो! मत्स्य! यदि मैं आज तुझे न देखता, तो तेरे प्राण जाते रहते। अब से क्लेश (=काम-वासना) के वशीभूत न होना"—यह उपदेश कर, पानी में छोड़, नगर में प्रविष्ट हुए।

बुद्ध ने इस धर्म-देशना को कह (आर्य-)सत्यों को प्रकाशित किया। (आर्य-)सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर उत्कण्ठित भिक्षु स्रोतापत्ति-फल में प्रतिष्ठित हुआ। बुद्ध ने भी मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय की मछली (अब की) पुरानी भार्या थी। मत्स्य (अब का) उत्कण्ठित भिक्षु। (और) पुरोहित तो मैं ही था।

३५. वट्टक जातक

"सन्ति पक्खा ..." यह गाथा, बुद्ध ने मगध में चारिका करते समय, दावाग्नि के बुझने के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

एक समय बुद्ध ने मगध में चारिका करते हुए मगध के गांवड़े में भिक्षाटन कर, भिक्षाटन से लौटकर, भोजनानन्तर भिक्षुसंघ सहित रास्ता लिया।

उस समय महादावाग्नि उठी। (शास्ता के) आगे पीछे बहुत भिक्षु थे। वह आग भी एक-धुआँ, एक ज्वाला हो फैलती ही चली आ रही थी। बुद्ध मरने से भयभीत अज्ञ (=पृथग्जन) भिक्षु 'हम प्रति-अग्नि जलायेंगे, जिससे जले स्थान पर दूसरी आग न फैल सकेगी' (सोच) अरणि निकाल कर आग जलाने लगे। दूसरों ने कहा—"आवुसो! तुम क्या करते हो? गगनमध्य स्थित चन्द्रमा को (न देखते हुए की तरह), पूर्व दिशा में उगने वाले, सहस्र रश्मिधारी सूर्य्यमण्डल को (न देखते हुए की तरह), समुद्र के तट पर खड़े होकर समुद्र को (न देखते हुए की तरह), सुमेरु पर्वत के पास खड़े होकर सुमेरु पर्वत को (न देखते हुए की तरह) क्या तुम लोक में सदैव अग्र व्यक्ति, सम्यक् सम्बुद्ध को अपने साथ न जाते देखकर ही कहते हो कि हम प्रति-अग्नि देंगे (=जला-देंगे)? क्या तुम बुद्ध-बल को नहीं जानते? (चलो) बुद्ध के पास चलेंगे।" आगे पीछे जाते हुए वे सभी इकट्ठे होकर दसबल(-धारी) के पास गये।

महाभिक्षुसंघ को साथ लिये बुद्ध एक जगह खड़े थे। दावाग्नि (सब को) परास्त करती हुई की भाँति, घोषणा करती आ रही थी।

जिस स्थान पर तथागत खड़े थे, वहाँ पहुँच, उस स्थान से चारों ओर सोलह करीस[1] भर दूरी के स्थान पर, वह वैसे ही बुझ गई, जैसे तिनकों की मशाल (=उल्का) पानी में डुबोने पर। (बुद्ध के) आसपास से बत्तीस करीस की दूरी में (वह आग) न फैल सकी।

भिक्षु बुद्ध का गुणानुवाद करने लगे—"अहो! बुद्धों का सामर्थ्य (=गुण)! यह अचेतन आग भी बुद्धों के खड़े होने की जगह पर न फैल सकी, (और) पानी में तिनकों की मशाल की तरह बुझ गई। अहो! बुद्धों का प्रताप!"

शास्ता ने उनकी बात-चीत सुनकर कहा—"भिक्षुओ! यह मेरा अब का बल नहीं है, जिसके कारण यह आग इस भूमि-प्रदेश में पहुँच कर बुझ गई है। किन्तु यह मेरी पुरानी सत्य-क्रिया का बल है। इस प्रदेश में इस सारे कल्प भर आग न जलेगी। यह कल्प भर स्थिर रहने वाली प्रातिहार्य

---

[1] इतना रकबा जिस में एक करीस बीज (चार अम्मन) बोया जा सके।

(=अलौकिक क्रिया) है।" आयुष्मान् आनन्द ने शास्ता के बैठने के लिए चौतही संघाटी बिछा दी। शास्ता पल्थी मारकर बैठ गये। भिक्षु-संघ भी तथागत को प्रणाम कर तथा घेरकर बैठ गया। तब बुद्ध ने भिक्षुओं के यह याचना करने पर कि 'भन्ते! यह जो (अब की बात) है, सो तो हमें प्रगट है। अतीत की जो बात छिपी हुई है, उसे प्रगट करें।' पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

"पूर्व समय में, मगध राष्ट्र के उसी प्रदेश में, बोधिसत्व, बटेर की जूनि में जन्म ग्रहण कर, माता की कोख से निकल, अण्डे को फोड़, निकलने समय ही, एक बड़े गेंद जितना (बड़ा) बटेर हुआ। सो (उसके) माता पिता उसे घोंसले में लिटा, चोंच से चोगा ला, उसे पालते थे। उसमें, न तो पर फैला कर आकाश में उड़ने का सामर्थ्य था, न टाँग उठा कर पृथ्वी पर चलने का सामर्थ्य। उस प्रदेश में प्रति वर्ष दावाग्नि लग जाती। (आग लग जाने के) समय भी, वह चिल्लाता हुआ, उसी स्थान (=प्रदेश) पर रहा। पक्षी-गण अपने अपने घोंसले से निकल, मरने से भयभीत, चिल्लाते हुए भागे। बोधिसत्व के माता पिता भी मरने से भयभीत (हो) बोधिसत्व को छोड़ (अपने) भाग गये। बोधिसत्व ने घोंसले में पड़े पड़े गर्दन उठाकर, फैलती आती आग को देख, सोचा—"यदि मुझ में परों को फैला कर आकाश मार्ग से जाने का सामर्थ्य हो, तो उड़कर दूसरी जगह चला जाऊँ, यदि पैरों पर खड़े होकर जाने का सामर्थ्य हो, तो पैदल दूसरी जगह चला जाऊँ। मेरे माता-पिता भी मरने से भय-भीत (हो) मुझ अकेला छोड़कर, अपने प्राण लेकर भाग गये। अब मुझे किसी की शरण नहीं। मैं त्राण-रहित हूँ; शरण-रहित हूँ। मुझे अब क्या करना चाहिए?" तब उसके (मन में) यह हुआ—"इस लोक में शील-गुण (=शील-गुण) है, सत्य है, पूर्व समय में पारमिताओं को पूरा कर बोधि-वृक्ष के नीचे बैठ सर्वज्ञ-ज्ञान प्राप्त कर, शील-समाधि प्रज्ञा विमुक्ति—विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन से युक्त, सत्य-दया-करुणा-क्षान्ति से समन्वित, सब प्राणियों के प्रति समान मैत्री भावना रखने वाले, सर्वज्ञ बुद्ध हैं, उनके द्वारा साक्षात् किये गये धर्म-गुण (=गुण) हैं मुझ में भी एक सत्य है (अर्थात्) (मुझ

में भी) एक विद्यमान् स्वाभाविक धर्म दिखाई देता है। इसलिए मुझे चाहिए कि मैं पूर्व समय के बुद्धों, और उनके द्वारा साक्षात् किये गये धर्म-तत्वों का विचार करूँ; और अपने में विद्यमान सत्य-स्वाभाविक धर्म को लेकर सत्य-क्रिया कर अग्नि को वापिस लौटा, अपना और शेष (सब) पक्षियों का कल्याण करूँ। इसीलिए कहा गया है—

> अत्थि लोके सीलगुणो सच्चं सोचेय्यनुद्दया,
> तेन सच्चेन काहामि सच्चकिरियमनुत्तरं,
> आवज्जित्वा धम्मबलं सरित्वा पुब्बके जिने,
> सच्चबलमवस्साय सच्चकिरियं अकासहं ॥[1]

[लोक में सदाचार (=शील-गुण) है, सत्य (है), शौच (है), दया (है):—मैं उस सत्य से उत्तम सत्य-क्रिया को करता हूँ। धर्म-बल तथा पूर्व समय के बुद्धों (=जिनों) का स्मरण कर, और सत्य-बल को देखकर, मैंने सत्य-क्रिया की।]

तो बोधिसत्व ने पूर्व समय में परिनिर्वाण को प्राप्त बुद्धों के गुणों का ध्यान कर, अपने में विद्यमान सत्य-स्वभाव के बारे में सत्य-क्रिया करते हुए यह गाथा कही—

> सन्ति पक्खा अपतना सन्ति पादा अवञ्चना,
> माता पिता च निक्खन्ता जातवेद! पटिक्कम ॥

[पंख हैं (लेकिन उनसे) उड़ा नहीं जाता; पैर हैं (लेकिन उनसे) चला नहीं जाता। मेरे माता-पिता (मुझे छोड़) चले गये। इसलिए हे अग्नि पीछे हट जा।]

सन्ति पक्खा अपतना; मेरे पंख हैं, लेकिन इनसे मैं उड़ नहीं सकता = आकाश-मार्ग से जा नहीं सकता; इसलिए अपतना। सन्ति पादा अवञ्चना, मेरे पाँव भी हैं, लेकिन मैं उनसे वञ्चना = पाँव से चलना नहीं कर सकता, इसलिए अवञ्चना। माता पिता च निक्खन्ता, जो मुझे घोंसले में छोड़, वह

---

[1] देखो चरिया-पिटक (वट्टपोत चरिया)।

माता-पिता भी मरने के डर से भाग गये। जातवेद ! यह अग्नि का सम्बोधन है। वह जात (=उत्पन्न) होते ही, वेदियति (=प्रगट होती है) इसलिए 'जातवेद' कहलाती है। पटिक्कम, वापिस जा=लौट जा (कह) जातवेद को आज्ञा देता है।

सो (इस प्रकार) महासत्व ने 'यदि मेरा पङ्खों-सहित होना सत्य है, और उनको फैलाकर आकाश में न उड़ सकने (की बात) सत्य है, यदि मेरा पाँव-सहित होना, और उनको उठाकर न चल सकने की तथा माता-पिता की मुझे घोंसले में ही छोड़ कर चले जाने (की बात) सत्य है, स्वभाव-भूत है; तो हे जातवेद ! इस सत्यता के कारण तू यहाँ से लौट जा' कह घोंसले में पड़े ही पड़े सत्य-क्रिया की। उसके सत्य-क्रिया (करने) के साथ ही अग्नि १६ करीष भर स्थान से (दूर) हट गई। लौटती हुई और न बुझती हुई (वह) आग (शेष) जंगल में चली गई, (लेकिन) उस स्थान पर पानी में डाले मशाल की तरह, बुझ गई—

> सह सच्चकते मय्हं महा पज्जलितो सिखी,
> वज्जेसि सोलस करीसानि उदकं पत्वा यथा सिखी[1] ॥

[मेरे सत्य(-क्रिया) के साथ ही, महाप्रज्वलित आग ने, सोलह करीष (भूमि) को वैसे ही छोड़ दिया, जैसे पानी में पड़ने पर आग।]

सो यह स्थान इस सारे कल्प के लिए अग्नि से सुरक्षित हो गया, यह कल्प भर स्थिर रहनेवाली प्रातिहार्य हुई। इस प्रकार बोधिसत्व सत्य-क्रिया करके, जीवन की समाप्ति पर, कर्मानुसार (परलोक) गये।

बुद्ध ने "भिक्षुओ ! यह जो इस जगल का अग्नि से न जलना है, यह मेरा अब का बल नहीं, किन्तु यह पूर्व-जन्म में बटेर-बच्चा होने के समय का मेरा सत्य-बल है"—यह धर्म-देशना कह (आर्य-)सत्यों को प्रकाशित किया। सत्यों के अन्त में कोई स्रोतापन्न हुए, कोई सकृदागामी हुए, कोई अनागामी हुए, कोई अर्हत् हुए। बुद्ध ने भी मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय के माता-पिता (अब के) माता-पिता ही थे। बटेर राज तो मैं ही था।

---

[1] देखो चरियापिटक, (वट्टपोत चरिया)।

३६. सकुण जातक

"यं निस्सिता..." यह गाथा, बुद्ध ने जेतवन में विहार करते समय, दग्धपर्णशाल (=जिसकी पर्णशाला जल गई थी) भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक भिक्षु, शास्ता के पास से कर्मस्थान ग्रहण कर, जेतवन से निकल, कोशल (जनपद) के एक सीमान्त ग्राम के समीप, एक अरण्य में रहता था। (वर्षावास) के पहले ही महीने में उसकी पर्णशाला जल गई। उसने मनुष्यों से कहा—"मेरी पर्णशाला जल गई। मैं कष्टपूर्वक रहता हूँ।" मनुष्यों ने कहा—"अभी हमारे खेत सूखे हैं, (उन्हें) पानी देकर (पर्णशाला) बना-देंगे" पानी दे चुकने पर, "बीज बोकर" बीज बो चुकने पर, "मेंड बाँध कर," मेंड बाँध चुकने पर, "गुड़ाई करके" (गुड़ाई कर चुकने पर), "काट कर," (काट चुकने पर), दौरी करके—इस प्रकार, यह यह काम गिनाते हुए, उन्होंने तीन महीने गुजार दिये। वह भिक्षु तीन महीने तक खुले में कष्ट से रहने के कारण कर्मस्थान के अभ्यास में उन्नति न कर, मार्ग-फल [illegible] (=विशेष) न प्राप्त कर सका। प्रवारणा[1] के पश्चात्, वह, बुद्ध के पास पहुँच, प्रणाम कर, एक ओर बैठा। शास्ता ने उससे बात-चीत करते हुए पूछा—"भिक्षु ! क्या वर्षावास सुखपूर्वक व्यतीत किया ? क्या कर्मस्थान सफल हुआ ?" उसने वह समाचार कह, उत्तर दिया कि निवासस्थान के अनुकूल न होने से मेरा कर्मस्थान सफल नहीं हुआ। बुद्ध ने "भिक्षु ! पहले समय में तिरश्चीन प्राणी भी अपनी अनुकूलता अननुकूलता पहचानते थे, तूने क्यों न पहचानी ?" कह पूर्वजन्म की कथा कही—

---

[1] वर्षावास समाप्ति कृत्य

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में, वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोधिसत्त्व पक्षी-योनि में उत्पन्न हो, पक्षी-गण सहित, अरण्य में, शाखा-टहनियों से युक्त (एक) बड़े वृक्ष के आश्रय में रहते थे। एक दिन उस वृक्ष की एक दूसरे से रगड़ खाती हुई शाखाओं से चूर्ण (सा) गिरने (तथा) धुआँ उठने लगा। इसे देख, बोधिसत्त्व ने सोचा—"यह इस प्रकार रगड़ खाती हुई दो शाखायें आग पैदा करेंगी (=फेंकेंगी), जो गिर कर पुराने पत्तों में लग जायगी, (और) फिर इस वृक्ष को भी जला देगी। हम यहाँ नहीं रह सकते। हमें यहाँ से भाग कर, अन्यत्र जाना चाहिए।" (यह सोच) उसने पक्षी-गण को यह गाथा कही—

> यं निस्सिता जगति रुहं विहङ्गमा स्वायं अग्गिं पमुञ्चति,
> दिसा भजथ वक्कङ्गा। जातं सरणतो भयं ॥

(जिस वृक्ष का पक्षियों ने आश्रय लिया है, सो यह वृक्ष आग छोड़ता है। (इसलिए) हे पक्षियो ! (अन्य अन्य) दिशाओं को जाओ। (हमारे) शरण(-गत) स्थान से ही भय उत्पन्न हो गया।]

जगति रुहं; जगति कहते हैं पृथ्वी को। वहाँ उत्पन्न होने वाला रुक्ख, जगतिरुह। विहङ्गमा, विह कहते हैं आकाश को, वहाँ (=आकाश में) गमन करने से पक्षी को विहङ्गम कहते हैं। दिसा भजथ; इस वृक्ष को छोड़, अन्यत्र भाग कर चारों दिशाओं में विचरो। वक्कङ्गा—पक्षियों का सम्बोधन। वे (अपने) उत्तमाङ्ग को, गले को कभी कभी वङ्क (=टेढ़ा) करते हैं, इसलिए 'वक्कङ्गा' कहलाते हैं, अथवा उनके दोनों ओर पङ्ख वङ्क होने से भी, वह 'वक्कङ्गा' कहलाते हैं। जातं सरण तो भयं; हमारे आश्रय-स्थान वृक्ष से ही भय पैदा हो गया। आओ ! अन्यत्र चलें।

बोधिसत्त्व की बात मानने वाले बुद्धिमान् पक्षी उसके साथ एक ही उड़ान में उड़ कर अन्यत्र चल गये। लेकिन जो मूर्ख थे वे 'यह ऐसे ही एक बूँद पानी

को शयनासन न मिले। सारिपुत्र के शिष्यों को भी स्थविर के लिए शयनासन ढूँढने पर शयनासन न मिला। स्थविर ने शयनासन न मिलने से, बुद्ध के शयनासन से कुछ ही दूर, एक वृक्ष के नीचे, बैठ कर और चल-फिर कर (रात) बिताई। बुद्ध ने तड़के ही निकल कर खाँसा। स्थविर ने भी खाँसा। "यह कौन है?" "भन्ते! मैं सारिपुत्र हूँ।" "सारिपुत्र! तू इस समय यहाँ क्या कर रहा है?" उसने यह (सब) हाल कह दिया। बुद्ध को स्थविर की बात सुन, यह सोचते सोचते कि, 'जब मेरे जीते जी ही भिक्षु एक दूसरे के प्रति गौरव तथा सम्मान पूर्वक नहीं विचरते, तो मेरे परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने पर यह क्या करेंगे' धर्म-संवेग उत्पन्न हुआ। उन्होंने प्रभात होने पर, भिक्षुसंघ को इकट्ठा करवा भिक्षुओं से पूछा—"भिक्षुओ! क्या सचमुच छ-वर्गीय भिक्षु आगे आगे आ कर स्थविरों के शयनासन दखल कर लेते हैं?"

"भगवान्! सचमुच।"

तब (भगवान् ने) छ-वर्गीय भिक्षुओं को धिक्कार, धार्मिक कथा कह (सब) भिक्षुओं को सम्बोधित किया—"भिक्षुओ! प्रथम आसन, प्रथम जल, और प्रथम परोसे के योग्य कौन है?"

कुछ भिक्षुओं ने कहा—"जो क्षत्रीय कुल से प्रव्रजित हुआ हो।" कुछ ने, "जो ब्राह्मण-कुल से, जो गृहपति-कुल (=वैश्य-कुल) से।" औरों ने, "विनय-धर, धर्म-कथिक, प्रथम ध्यान के लाभी, द्वितीय-तृतीय-चतुर्थ ध्यान के लाभी।" औरों ने कहा—"स्रोतआपन्न, सकृदागामी, अनागामी, अर्हत्, त्रि-विद्याओं का ज्ञाता, छ अभिज्ञा-प्राप्त।"

इस प्रकार उन भिक्षुओं के अपनी अपनी रुचि के अनुसार अग्र आसन आदि के योग्य के कहने के समय, बुद्ध ने कहा—"भिक्षुओ! मेरे शासन में अग्रासन आदि प्राप्त करने के लिए न क्षत्रिय-कुल में से प्रव्रजित होना प्रमाण है, न ब्राह्मण-कुल से, न वैश्य-कुल से प्रव्रजित होना प्रमाण है, न विनयधर (होना) न सूत्र-धर (होना) न अभिधर्म का ज्ञाता (होना), न प्रथम-ध्यान आदि का लाभी (होना) न स्रोतआपन्न आदि (होना)। हे भिक्षुओ! इस शासन में [illegible] [illegible] और [illegible] किया— [illegible] के [illegible] अग्रासन, अग्रजल और अग्र-[illegible] [illegible] है। इस

लिए इन सब में से जो सबसे बड़ा[1] है, वही यहाँ योग्य है। हे भिक्षुओ ! अब इस समय सारिपुत्र मेरा अग्र-श्रावक है, मेरे बाद धर्म-चक्र प्रवर्तित करने वाला है, मेरे बाद वही शयनासन पाने का अधिकारी है। सो, उसीने शयनासन न मिलने के कारण आज की रात वृक्ष के नीचे बिताई। अब तुम अभी से इस प्रकार अगौरव-युक्त तथा असम्मान-युक्त हो, तो समय बीतने पर क्या करके विचरोगे ?" फिर उनको उपदेश देने के लिए बुद्ध ने, "भिक्षुओ ! पूर्व समय में तिरश्चीन योनि में उत्पन्न हुओं ने भी 'हमारे लिए यह उचित नहीं है कि हम एक दूसरे का आदर न कर, सत्कार न कर, अनुचित ढंग से विचरते रहें। हम अपने में से जो बड़ा है, उसे जानकर, उसे प्रणाम (=अभिवादन) आदि करेंगे। सो उन्होंने अच्छी प्रकार परीक्षा कर, यह मालूम किया कि उनमें कौन बड़ा है। उसे प्रणाम आदि करते हुए, देव-पद को भरते हुए (परलोक) गये" कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में हिमालय के पास एक बड़ा बर्गद था। उसको आश्रय कर, तित्तिर, बानर और हाथी—तीन मित्र विहार करते थे। वे तीनों एक दूसरे का आदर न करने वाले, सत्कार न करने वाले, साथ दीक्षित न करने वाले थे। तब उनके मन में यह (विचार) हुआ—हमारे लिए इस प्रकार रहना उचित नहीं। जो हम तीनों में बड़ा है, उसे प्रणाम आदि करते हुए रहें। फिर 'हम में कौन जेठा है?' इसे सोचते हुए, एक दिन 'एक ऐसा उपाय है' (जिससे मालूम हो सके कि कौन जेठा है) सोच, तीनों बर्गद के नीचे बैठे।

वहाँ बैठने पर तित्तिर और बन्दर ने हाथी से पूछा—"सौम्य हाथी ! तू इस बड़ वृक्ष को किस समय से जानता है ?"

उसने उत्तर दिया—सौम्यो ! जब मैं बच्चा था, तो इस बर्गद के वृक्ष को मैं जाँघ के बीच करके लाँघ जाता था। बीच करके खड़े होने के समय, इसकी फुनगी मेरे पेट को छूती थी। सो मैं इसे, इसके नाटा होने के समय से

---

[1] भिक्षुओं में पूर्व प्रव्रजित बड़ा होता है।

जानता हूँ।" फिर दोनों जनों ने पूर्व प्रकार से बन्दर से पूछा।

वह बोला—सौम्यो! जब मैं बच्चा था, तो भूमि पर बैठ कर, बिना गर्दन उठाये, इस बर्गद के पौधे के फुनगी के अंकुरों को खाता था। सो मैं इसे छोटा होने के समय से जानता हूँ। शेष दोनों ने पूर्व प्रकार से ही तित्तिर से पूछा। वह बोला—"सौम्यो! पहले अमुक स्थान पर एक बड़ा बर्गद का पेड़ था। मैंने उसके फल खाकर इस स्थान पर बीट की। उससे यह वृक्ष पैदा हुआ। सो मैं इसे इसके अनुत्पन्न-काल से जानता हूँ। इसलिए, मैं तुम (दोनों) से जन्म से जेठा हूँ।"

ऐसा कहने पर बन्दर और हाथी ने तित्तिर पण्डित को कहा—सौम्य! तू हम में जेठा है। इसलिए अब से हम तेरा सत्कार करेंगे, गौरव करेंगे, मानेंगे, वन्दना करेंगे, पूजा करेंगे, अभिवादन करेंगे, सेवा करेंगे, हाथ जोड़ेंगे और भी सब उचित-कर्म करेंगे, तथा तेरे उपदेशानुसार चलेंगे। (इसलिए) अबसे तू हमें उपदेश देना और अनुशासन करना।" उस समय से तित्तिर उन्हें उपदेश देने लगा। (उसने) उन्हें (पाँच) शीलों में प्रतिष्ठित किया। अपने आप भी उसने शील ग्रहण किये। वे तीनों जने पाँच शीलों में प्रतिष्ठित हो, एक दूसरे का आदर करते, सत्कार करते, साथ जीविका करते हुए रह कर, जीवन के अन्त में देव-लोक गामी हुए।

उन तीनों का यह समझौता तैत्तिरीय-ब्रह्मचर्य्य कहलाया। भिक्षुओ! वह तिर्यग् योनि के प्राणी थे। (तो भी) वे, एक दूसरे का गौरव करते, सत्कार करते विहरते थे। तुम इस प्रकार के सु-आख्यात धर्म-विनय में प्रव्रजित हो कर भी किस लिए एक दूसरे का गौरव न करते, सत्कार न करते विहरते हो?"

भिक्षुओ! अब से तुम्हें वृद्ध-पन (=जेठे-पन) के अनुसार अभिवादन, प्रत्युत्थान, (बड़े के सामने खड़े होना), हाथ जोड़ना, कुशल प्रश्न, प्रथम-आसन, प्रथम-जल, प्रथम-परोसा देने की अनुज्ञा करता हूँ। अब से कनिष्ठतर भिक्षु द्वारा ज्येष्ठतर का शयनासन दखल नहीं किया जाना चाहिए। जो दखल करेगा उसे दुक्कट की आपत्ति (लगेगी)। इस प्रकार शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला अभिसम्बुद्ध हो कर यह गाथा कही—

> य वुड्ढमपचायन्ति नरा धम्मस्स कोविदा,
> दिट्ठेव धम्मे पासंसा सम्पराये च सुग्गति ॥

[जो धर्म के ज्ञाता नर, बड़ों की पूजा करते हैं; वे इसी जन्म में प्रशंसा के भागी तथा परलोक में सुगति के भागी होते हैं।]

ये वुड्ढमपचायन्ति; जाति-वृद्ध, वयो-वृद्ध, गुण-वृद्ध—तीन प्रकार के बड़े होते हैं। उनमें (ऊँची) जाति वाला जाति-वृद्ध, (अधिक) आयु वाला वयो-वृद्ध, गुण (-विशेष) से युक्त गुण-वृद्ध। इनमें से यहाँ 'वृद्ध' शब्द से गुण-सम्पन्न और वयो-वृद्ध का ही मतलब है। अपचायन्ति, बड़ों के सत्कार करने के कर्म से पूजते हैं। धम्मस्स कोविदा, बड़ों की पूजा के काम में दक्ष = होशियार। दिट्ठेव धम्मे, इसी जन्म में। पासंसा, प्रशंसा के अधिकारी। सम्पराये च सुग्गति, इस लोक को छोड़ कर जो गन्तव्य परलोक है, वहाँ भी उनकी सुगति ही होती है। सारांश यह है—कि हे भिक्षुओ! चाहे क्षत्रिय हों, चाहे ब्राह्मण; चाहे वैश्य हो, चाहे शूद्र; चाहे गृहस्थ हो, या प्रव्रजित; चाहे तिर्यक् योनि के ही प्राणी हों—जो कोई भी प्राणी, धर्म से बड़ों की पूजा करने के कर्म में दक्ष, होशियार होते हैं, गुण-सम्पन्नों की, वयो-वृद्धों की पूजा करते हैं, वे इस जन्म में 'बड़ों का आदर करने वाला है'—इस प्रकार की प्रशंसा, स्तुति को प्राप्त करते हैं, और शरीर-भेद होने पर स्वर्ग-लोक में उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार बुद्ध ने 'ज्येष्ठों के सत्कार' करने के धर्म की प्रशंसा कर, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय का हस्ति-नाग (बड़ा हाथी) मोग्गल्लान (स्थविर) था। बानर सारिपुत्र था। तित्तिर-पण्डित तो मैं ही था।

३८. बक जातक

क. वर्तमान कथा

एक जेतवन-वासी भिक्षु, चीवर सम्बन्धी काटना, रफ़ू करना, . . . बिछाना तथा सीना आदि जो जो कृत्य हैं, उन सब के करने में दक्ष था । अपने इस दक्षपन से वह चीवर बनाता था । इसलिए वह चीवर-वर्द्धक नाम से प्रसिद्ध हुआ । लेकिन वह क्या करता था ? पुराने चिथड़ों में, हथियारी का हाथ लगा, उनके मृदु, सुन्दर चीवर बना, रँगने के बाद, उन्हें कफ दे (=आटे वाले पानी से रँग कर), शङ्ख से रगड़, उज्ज्वल, मनोज्ञ करके रखता था। जो चीवर बनाना नहीं जानते, वह भिक्षु नया कपड़ा लेकर, उसके पास आते और कहते—"हम चीवर बनाना नहीं जानते। हमें चीवर बना दें।" वह "आवुसो! चीवर बना कर समाप्त करने में बहुत दिर लगता है। मेरे पास बना बनाया चीवर पड़ा है। इस कपड़े को रख कर (उस बने बनाये) चीवर को ले जाओ" (कह चीवर) लाकर दिखाता। वह उसके रंग की तड़क-भड़क देख, अन्दर के बारे में कुछ न जानते हुए, (कपड़ा) पक्का है, मान, वह चीवर ले, और चीवर-वर्द्धक को नया कपड़ा दे कर चले जाते। थोड़ा मैला होने पर, गरम पानी से धोया जाने पर, वह चीवर अपनी असलियत दिखा देता। जहाँ तहाँ पुराना-पन दिखाई देने लग जाता। वे (भिक्षु) पछताते थे। इस प्रकार आने वालो को पुराने चिथडो से ठगने के कारण, वह भिक्षु सर्वत्र प्रसिद्ध हो गया। जैसे यह जेतवन में वैसे ही एक गाँव में भी एक (और) चीवर-वर्द्धक भिक्षु संसार को ठगता था। उसे मिलने वाले भिक्षुओं ने कहा—"भन्ते! जेतवन में एक चीवर-वर्द्धक भिक्षु इस प्रकार ससार को ठगता है।"

उस भिक्षु के मन में हुआ—"मैं उस जेतवन-वासी भिक्षु को ठगूँ।" सो वह चीथड़ों का अच्छा चीवर बना कर, सुन्दर रंग से रँग कर, उसे पहन जेतवन गया। दूसरे ने उसे देखते ही (चित्त में) लोभ उत्पन्न कर पूछा—"भन्ते! क्या यह चीवर आपने बनाया है?"

"आवुसो! हाँ (मैंने बनाया है)।"

"भन्ते! यह चीवर मुझे दे दें। आपको दूसरा मिलेगा।"

"आवुसो! हम ग्रामवासी हैं। हमें प्रत्यय (=चीवर आदि आवश्यकतायें) आसानी से नहीं मिलते। मैं यह चीवर तुझे देकर, स्वयं क्या पहनूँगा?"

"आर्य ! प्रथम कल्प से लेकर (आज तक) मछलियों की चिन्ता (= हित) करने वाला (कोई) बगुला नहीं हुआ। क्या तू हमें एक एक करके खाना चाहता है ?"

"मैं अपने पर विश्वास करने वालों को—तुम्हें—नहीं खाऊँगा। लेकिन यदि मेरी तालाब के होने की बात पर विश्वास न हो, तो मेरे साथ एक मछली को (पहले) तालाब देखने के लिए भेजो।"

मछलियों ने उसकी बात पर विश्वास कर, यह जल और स्थल दोनों जगहों पर समर्थ है (सोच) एक काणी महामछली दी; और कहा इसे ले जाओ। उसने उसे ले जाकर, तालाब में छोड़ दिया; और सब तालाब को दिखा कर, फिर (वापिस) लाकर उन मछलियों के पास छोड़ दिया। उसने उन मछलियों से तालाब के सौन्दर्य (सम्पत्ति) की प्रशंसा की। उन्होंने उसकी बात सुन, जाने की इच्छुक हो, (बगुले से) कहा—"अच्छा ! आर्य ! हमें लेकर चलो।"

बगुला पहले उस काणे महामत्स्य को तालाब के किनारे ले जाकर, तालाब दिखा कर, तालाब के किनारे उत्पन्न वरुण-वृक्ष पर जा बैठा। फिर उस (मछली) को शाखाओं के बीच में डाल, चोंच से कोंच कोंच कर मार, और मांस खा (मछली के) कांटों को वृक्ष की जड़ में डाल दिया। फिर जाकर 'उस मछली को मैं छोड़ आया। अब दूसरी आये' (कह), इस उपाय से एक एक को ले जा, सब को खाकर, आकर देखा तो वहाँ एक भी बाकी न थी।

केवल एक केकड़ा वहाँ बाकी रह गया था। बगुले ने उसे भी खाने की इच्छा से कहा—भो। कर्कटक। मैं उन सब मछलियों को ले जाकर महातालाब में छोड़ आया। आ, तुझे भी ले चलूँगा।"

"ले कर जाते हुए, मुझे कैसे पकड़ोगे ?"

"डस कर (=चोंच में पकड़ कर) लेकर जाऊँगा।"

"तू ! इस प्रकार ले जाते हुए, मुझे गिरा देगा। मैं तेरे साथ न जाऊँगा।"

"डर मत ! मैं तुझे अच्छी प्रकार पकड़ कर ले जाऊँगा।"

केकड़े ने सोचा—"इसने मछलियों को (तो) तालाब में ले जाकर नहीं छोड़ा है। यदि मुझे तालाब में ले जाकर छोड़ देगा, तो इस में इसकी कुशल है; यदि नहीं छोड़ेगा, तो इसकी गर्दन छेद कर, इसका प्राण हर लूँगा।"

सो उसने कहा—"सौम्य बगुले ! तू ठीक से न पकड़ सकेगा। लेकिन हमारा जो पकड़ना होता है, वह पक्का होता है। इसलिए यदि मुझे अपने डंक से तू अपनी गर्दन पकड़ने दे, तो तेरी गर्दन को अच्छी तरह पकड़े, मैं तेरे साथ चलूँगा।" उसने उसको ठगने की इच्छा को, 'न जानते हुए' 'अच्छा' कह, स्वीकार किया। केकड़े ने अपने डंक से, लोहार की संडासी की तरह, उसकी गर्दन को अच्छी तरह पकड़ कर कहा—"अब चल।" वह उसे ले जाकर, तालाब दिखा कर वरण-वृक्ष की ओर उड़ा।

केकड़े ने कहा—"मामा ! तालाब तो यहाँ है; लेकिन तू यहाँ से ले जा रहा है।" बगुले ने कहा—"मालूम होता है कि तू समझता है कि 'मैं प्यारा मामा और तू मेरी बहन का प्रिय-पुत्र है' यह उठाये फिरते हुए मैं तेरा दास हूँ। देख इस वरण-वृक्ष के नीचे पड़े (मछलियों के) काँटों के ढेर को। जैसे मैं इन सब मछलियों को खा गया; वैसे ही तुझे भी खाऊँगा।"

केकड़े ने उत्तर दिया—"यह मछलियाँ अपनी मूर्खता से तेरा आहार हुई। मैं तुझे अपने को खाने न दूँगा। किन्तु तेरा ही विनाश करूँगा। तू अपनी मूर्खता के कारण नहीं जानता कि तू मुझसे ठगा गया। मरना होगा, तो दोनों मरेंगे। देख, मैं तेरे सिर को काट कर भूमि पर फेंक दूँगा।" (कह) उसने संडासी की तरह अपने डंक से उसकी गर्दन भींची। बगुले ने चोंच मुँह, आँखों से आँसू गिराते हुए मरने से भयभीत हो, कहा—"स्वामी ! मुझे जीवन दे। मैं तुझे नहीं खाऊँगा।"

"यदि ऐसा है, तो उतर कर मुझे तालाब में छोड़।"

उसने रुख कर, तालाब पर ही उतर, केकड़े को तालाब के किनारे कीचड़ पर रखा। केकड़ा कैंची से कुमुद की डंठल काटने की तरह, उसकी गर्दन काट कर पानी में घुस गया। वरण-वृक्ष के देवता ने उस आश्चर्य को देख, साधुकार देते हुए, (तथा) वन को उन्नादित करते हुए, मधुर स्वर में यह गाथा कही—

नाच्चन्तं निकतिप्पञ्ञो निकत्या सुखमेधति,
आराधेति निकतिप्पञ्ञो बको कक्कटकामिव ॥

धूर्त-बुद्धि (आदमी) अपनी धूर्तता से सदैव सुख नहीं पा सकता। धूर्त-बुद्धि (अपने किये का फल) ऐसे पाता है जैसे बगुले ने केकड़े (के हाथ)।

नाच्चन्त निकतिप्पञ्ञो निकत्या सुखमेधति, निकति कहते हैं ठगी को। निकतिप्पञ्ञो, ठगने वाला आदमी (=धूर्त) उस धूर्तता से (=उस ठगी से); न अच्चन्तं सुखमेधति, सदैव सुख में प्रतिष्ठित नहीं रह सकता, अवश्य ही विनाश को प्राप्त होता है। आरायेति=प्राप्त करता है। निकतिप्पञ्ञो, धूर्तता सीखा हुआ आदमी=पापी आदमी, अपने किये पाप-कर्म का फल पाता है, भोगता है। कैसे? बको कक्कटकामिव, जैसे बगुले ने केकड़े से गर्दन छिदवाई; इसी प्रकार पापी पुरुष इस जन्म में, या अगले जन्म में, अपने किये पाप के फलस्वरूप, भय का भागी होता है। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए, महासत्व ने वन को उन्नादित करते हुए धर्मोपदेश किया।

शास्ता, 'भिक्षुओ! न केवल अभी ग्रामवासी चीवर-वाले (भिक्षु) ने इसे ठगा, पूर्व जन्म में भी ठगा है' कह, इस धर्म-देशना को ला, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय का वह बगुला (अब का) जेतवन वासी चीवर-वाला हुआ। केकड़ा (अब का) ग्रामवासी चीवर-वाला। वृक्ष-देवता तो मैं ही था।

३९. नन्द जातक

"मञ्ञे सोवण्णयो रासि. . . ." यह गाथा, शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, सारिपुत्र स्थविर के शिष्य के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह भिक्षु सुभाषी था, बात सह लेने वाला था, और बड़े उत्साह से स्थविर की सेवा करता था। एक समय (सारिपुत्र) स्थविर, शास्ता की आज्ञा ले,

चारिका करते हुए, दक्षिणागिरि[1] जनपद पहुँचे। वहाँ पहुँच कर वह भिक्षु अभिमानी हो गया। स्थविर का कहना नहीं मानता था। 'आवुस ! यह कर' कहने पर स्थविर का विरोधी हो जाता था। स्थविर उसका आशय (=चित्त की बात) न समझते (=जानते)। वह, वहाँ चारिका कर, फिर (वापिस) जेतवन लौट आये। स्थविर के जेतवन-विहार पहुँचने के समय से वह भिक्षु फिर पूर्ववत् हो गया। स्थविर ने शास्ता से निवेदन किया—"भन्ते ! मेरा एक शिष्य एक स्थान पर (रहते समय) सौ (मुद्रा) के खरीदे हुए गुलाम की तरह रहता है, दूसरे स्थान पर (रहते हुए) अभिमानी हो, 'यह कर' कहने पर विरोधी हो जाता है।" शास्ता ने कहा—"सारिपुत्र ! इस भिक्षु का यह स्वभाव अब ही नहीं है, यह पहले भी एक स्थान पर सौ सौ (मुद्रा) से खरीदे गुलाम की तरह रहता था; एक स्थान पर प्रतिपक्षी, (प्रति-)शत्रु हो जाता था।" यह कह स्थविर के याचना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्व ने एक कुटुम्ब में जन्म लिया। एक गृहस्थ उसका मित्र था। गृहस्थ अपने बूढ़ा था, लेकिन उसकी स्त्री तरुण थी। उसको स्त्री से एक पुत्र पैदा हुआ। उसने सोचा—(कदाचित्) यह तरुण स्त्री, मेरी मृत्यु के बाद किसी दूसरे पुरुष को लेकर, इस धन को नष्ट कर दे। मेरे पुत्र को न दे। सो, मैं इस धन को पृथ्वी में गाड़ दूँ।" (यह सोच) घर के नन्द नामक नौकर को ले, जंगल में जा, एक स्थान पर धन को गाड़, उसको बता कर कहा—"तात ! नन्द ! मेरे मरने पर, मेरे पुत्र को यह धन बता देना। उसकी ओर से लापरवाह न होना।" (इस प्रकार) उपदेश दे कर मर गया।

क्रम से उसका पुत्र बड़ा हो गया। माता ने कहा—"तात ! तेरे पिता ने नन्द को ले जाकर, धन गाड़ा था। सो, उसे मँगवाकर कुटुम्ब को पाल!" उसने एक दिन नन्द से पूछा—"मामा ! क्या मेरे पिता ने कहीं कुछ धन गाड़ा है ?"

---

[1] राजगृह के आस-पास।

"स्वामी ! हाँ ।"

"वह कहाँ गड़ा है ?"

"स्वामी ! जंगल में ।"

"तो चलें" कह, कुदाल टोकरी ले, जहाँ धन गड़ा था, वहाँ पहुँच कर पूछा—"मामा ! धन कहाँ है ?"

नन्द ने धन के ऊपर जा कर, उस पर खड़े हो, धन के कारण अभिमानी हो कुमार को गाली दी—अरे ! दासी पुत्र ! चेटक ! यहाँ तेरा धन कहाँ से आया !"

कुमार ने उसके कठोर वचन को सुन कर, अनसुने की तरह कहा—"तो चलें ।"

उसको साथ ले, लौट कर, फिर दो तीन दिन गुजरने पर गया। नन्द ने वैसे ही गाली दी ।

कुमार ने उसके साथ कठोर बात न बोल लौट कर सोचा—"यह दास, 'इस बार धन बता दूँगा' कह कर आता है। लेकिन (वहाँ) जाकर गाली देता है। न मालूम, इसका क्या कारण है ? मेरे पिता का एक कुटुम्बिक मित्र है। उसे पूछ कर, (इसका कारण) मालूम करूँगा ।" (यह सोच) बोधिसत्व के पास जा, सब हाल कह, पूछा—"तात ! क्या कारण है ?"

बोधिसत्व ने, 'तात ! जिस स्थान पर खड़ा हो कर नन्द गाली बकता है, उसी स्थान पर तेरे पिता का धन है। इस लिए जब नन्द तुझे गाली दे, तो 'आ रे ! दास ! क्या गाली बकता है' कह, उसे खींच, कुदाली से, उस स्थान को खोद, कुल से प्राप्त धन को निकाल, दास से उठवा कर, "(घर) ले आ" कह, यह गाथा कही—

> मञ्ञे सोवण्णयो रासि सोवण्णमाला च नन्दको,
>
> यत्थ दासो आमजातो ठितो थुल्लानि गज्जति ॥

[जहाँ पर धाम दासी-पुत्र नन्दक खड़ा हो कर कठोर शब्दों की गर्जना करता है, मैं समझता हूँ (वहीं) स्वर्णमय (आभरणों) का ढेर है, वहीं सोने की माला (है) ।]

मञ्ञे, समझता मैं मानता हूँ। सोवण्णयो, सुन्दर वर्ण होने से सोनाला (स्वर्ण) । [illegible]

स्थान में 'सोवण्ण' से इन सब का मतलब है। उनका ढेर, सोवण्ण का ढेर। सोवण्णमालाय, तेरे पिता के पास, जो सुवर्ण माला थी, वह भी मैं जानता हूँ कि यहीं है। नन्दको यत्थ दासो जिस स्थान पर दास नन्दक खड़ा है; आम-जातो, हाँ (=आम) मैं दासी हूँ, इस प्रकार दासत्व के भाव को प्रगट करने वाली दासी का पुत्र। ठितो थुल्लानि गज्जति, यह जिस स्थान पर खड़ा हो कर स्थूल (वचन)=कठोर वचन बोलता है, यहीं, मैं समझता हूँ कि तेरा कुल-धन है।

बोधिसत्व ने कुमार को धन लाने का उपाय बताया। कुमार बोधिसत्व को प्रणाम कर, घर गये; और फिर नन्द को ले, धन के गड़े होने की जगह गये। और जैसे कहा था, वैसे ही किया। फिर उस धन को ला, कुटुम्ब को पाला। वह बोधिसत्व के उपदेशानुसार दान आदि पुण्य कर्म करके, जीवन की समाप्ति पर, यथाकर्म (परलोक) सिधारा।

बुद्ध ने, 'पहले भी इस (भिक्षु) का यही स्वभाव था' कह, यह धर्मदेशना ला, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय का नन्द (अब का) सारिपुत्र का शिष्य था। लेकिन पण्डित-कुटुम्बिक तो मैं ही था।

४०. खदिरंगार जातक

"कामं पतामि निरयं ..." यह गाथा शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, अनाथपिण्डिक के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

अनाथपिण्डिक [illegible]

[illegible]

धर्म, संघ) को रत्न समझ, और किसी (रत्न) को रत्न ही न समझ, शास्ता के जेतवन में विहार करने के समय, प्रति दिन तीन बार दर्शनार्थ जाता था। एक बार प्रातःकाल ही जाता, दूसरी बार जल-पान करके जाता, तीसरी बार शाम को जाता। और भी बीच बीच में जाता ही था। जाते समय 'श्रामणेर[1] वा अन्य बच्चे मेरे हाथ की ओर देखेंगे कि क्या ले कर आया है' सोच, वह कभी खाली हाथ नहीं गया। प्रातःकाल जाते समय यवागु लिवा कर जाता, प्रातराश करके जाते समय घी, मक्खन, मधु, गुड़ आदि और शाम को जाते समय गन्ध, माला, वस्त्र आदि ले कर जाता। इस प्रकार प्रति दिन परित्याग करते करते इसने जितना परित्याग किया, इसका (कोई) माप नहीं। बहुत से व्यापारियों ने भी, हाथ की लिखित देकर, इससे अट्ठारह करोड़ धन ऋण लिया था। महा-सेट्ठी उनसे वह धन नहीं मँगवाता था। और भी, इसका कुलागत अट्ठारह करोड़ धन नदी के किनारे गाड़ा हुआ था। आँधी-वायु से नदी के कूल के टूटने से वह समुद्र में बह गया। वहाँ वे लोहे की गागरें, जैसी की तैसी मुहर लगी हुई, समुद्र में चक्कर घूमती थीं। और, इस के घर में पाँच सौ भिक्षुओं के लिए भात सदा बँधा ही था। सेठ का घर भिक्षुसंघ के लिए चौरस्ते पर खोदी गई पुष्करिणी की तरह था। वह सब भिक्षुओं के लिए माता पिता हुआ था। सो, उसके घर, सम्यक् सम्बुद्ध भी जाते, अस्सी महास्थविर भी जाते, और आने जाने वाले भिक्षुओं की तो गणना ही न थी। वह घर सात तल्लों का और सात ड्योढ़ियों वाला था। उसकी चौथी ड्योढ़ी में एक मिथ्या-धारणा वाली देवी रहती थी। सम्यक् सम्बुद्ध के घर में प्रवेश करने समय वह अपने कोठे(=विमान)पर बैठी न रह सकती थी। बच्चों को साथ ले उतर कर, वह जमीन पर खड़ी होती। अस्सी महास्थविर तथा अन्य स्थविरों के भी प्रविष्ट होने, तथा निकलने समय उसे वैसा ही करना पड़ता। उसने सोचा 'जब तक श्रमण गौतम, तथा उसके श्रावक इस घर में आते-जाते रहेंगे, तब तक मुझे सुख नहीं। मैं नित्य प्रति उतर उतर कर जमीन पर नहीं खड़ी हो सकती, सो मुझे ऐसा (उपाय) करना चाहिए, जिससे ये (श्रमण) इस घर में प्रवेश न करें।'

---

[1] भिक्षु बनने के पूर्व "श्रामणेर" की अवस्था।

सो एक दिन वह लेटे हुए महाकर्मचारी के पास आकर, (अपना) प्रकाश फैला कर खड़ी हो गई। "यहाँ कौन है?" पूछने पर उत्तर दिया, "मैं चौथी ड्योढ़ी में रहने वाली देवी हूँ।"

"किस लिए आई है?"

"क्या तुम सेठ की करनी को नहीं देखते? वह अपने भविष्य का कुछ भी ख्याल न कर, धन से जाकर, केवल श्रमण गौतम की पूजा करता है। धन को न व्यापार में लगाता है, न कर्मान्त (=खेती) में। तुम सेठ को उपदेश करो, जिसमें वह अपने काम में लगे; जिससे श्रावकों सहित श्रमण गौतम, इस घर में प्रवेश न किया करें।"

उस (=महाकर्मचारी) ने उसे उत्तर दिया—"मूर्ख देवी! सेठ जो धन खर्च करता है, वह कल्याणकारी बुद्ध-शासन के लिए खर्च करता है। यदि वह (मेरी) चोटी पकड़ कर मुझे बेच भी देगा, तो भी मैं कुछ न कहूँगा। तू जा।"

इसी तरह, एक दिन, उसने सेठ के पुत्र को जाकर उपदेश दिया। सेठ के पुत्र ने भी उसे पूर्वोक्त प्रकार से झाड़ बताई। सेठ को तो वह जाकर, कुछ कह ही न सकती थी।

सेठ के निरन्तर दान देते रहने से, व्यापार न करने के कारण आमदनी कम हो जाने से, धन में बहुत न्यूनता आ गई। (और) ऐसे ही क्रम से होते रहने से, उसके दरिद्र हो जाने पर, उसके पहनने के वस्त्र, बिस्तर, भोजन आदि भी पूर्व-सदृश न रहे। ऐसा होने पर भी, वह भिक्षुसंघ को दान देता, लेकिन हाँ, अब प्रणीत (आहार) न दे सकता। एक दिन वन्दना करके बैठे उसे, शास्ता ने पूछा—"गृहपति! तुम्हारे घर से दान दिया जाता है?"

"भन्ते! दिया जाता है, लेकिन वह होता है (केवल) कनी का चावल और कांजी।"

"गृहपति! मैं रूखा-सूखा दान दे रहा हूँ सोच संकुचित न हो, प्रसन्न (=पवित्र) चित्त से बुद्धों, प्रत्येक-बुद्धों तथा बुद्ध-श्रावकों को दिया हुआ दान रूखा-सूखा दान नहीं होता, क्यों? (उसका) बड़ा फल होने से। चित्त प्रसन्न (=पवित्र) रख सकने वाले का दान 'रूखा-सूखा-दान' नहीं होता—यह इस प्रकार जानना चाहिए—

नत्थि चित्ते पसन्नम्हि अप्पिका नाम दक्खिणा,
तथागते वा सम्बुद्धे अथवा तस्स सावके॥
न किरत्थि अनोमदस्सिसु पारिचरिया बुद्धेसु अप्पिका,
सुक्खाय अलोणिकाय च पस्स फलं कुम्मासपिण्डिया॥

[चित्त प्रसन्न हो, तो तथागत=सम्बुद्ध अथवा उसके श्रावक को दी गई दक्षिणा 'थोड़ी' नहीं होती। और न ही अनोमदर्शी आदि बुद्धों की की हुई सेवा (=पारिचरिया) "थोड़ी" होती है। सूखे, अलूणे, कुल्माष-पिण्ड के (ही दान के) फल को देख।]

उसे और भी कहा कि हे गृहपति! तू अपना 'रूखा-सूखा' दान देता हुआ ही आठ आर्य-पुद्गलों को दे रहा है; लेकिन वेलाम (ब्राह्मण) के जन्म में उत्पन्न होने के समय, सारे जम्बुद्वीप के हलों को रुकवा कर सात रत्न देते हुए, पाँच महा नदियों को एक साथ, एक प्रवाह करने की तरह (चित्त को प्रसन्नता से भर कर) महादान देने के समय, कोई त्रिशरण-गत वा पञ्च-शील रक्षक (=सदाचारी) न मिला। इस प्रकार दान का अधिकारी पुद्गल मिलना भी दुर्लभ है। सो "मेरा दान रूखा-सूखा है" समझ, तू सङ्कुचित मन हो। यह वह वेलामसूत्र[1] कहा।

सो वह देवी (यद्यपि) पहले, सेठ के साथ बात भी न कर सकती थी, (तो भी) अब सेठ के दुर्गति-प्राप्त होने से, '(शायद) वह मेरी बात मान ले' सोच, आधी रात के समय, (सेठ के) शयनागार में प्रविष्ट हो, (अपना) प्रकाश फैला आकाश में खड़ी हुई।

सेठ ने उसे देख कर पूछा—"यह कौन है?"

"सेठ! मैं चौथी ड्योढ़ी में रहने वाली देवी।"

"किस लिए आई है?"

"तुझे नेक-सलाह देने की इच्छा से।"

"अच्छा! तो कह।"

"बड़े सेठ! तू भविष्य की चिन्ता नहीं करता। बेटे-बेटी की ओर नहीं

---

[1] यह सूत्र त्रिपिटक में नहीं मिला।

देवता। तूने श्रमण गौतम के शासन के लिए बहुत धन खर्च कर दिया। सो, तू चिरकाल तक धन खर्च करते रहने से तथा (खेती आदि) नवीन कर्मान्तों के न करने से, श्रमण गौतम के कारण निर्धन हो गया। ऐसा होने पर भी तू श्रमण गौतम (का पीछा) नहीं छोड़ता। आज भी श्रमण तेरे घर में आते ही हैं। जो कुछ वह ले गये, सो अब वापिस नहीं मँगवाया जा सकता; वह ले जायें। लेकिन अब से, तू श्रमण गौतम के पास जाना, और उसके श्रावकों को इस घर में आने देना—बन्द कर दे। (चलते चलते जरा) रुक कर भी, श्रमण गौतम को बिना देखे, (अपने) व्यापार और वाणिज्य को करते हुए, (अपने) कुटुम्ब को पाल।"

उसने उसे पूछा—"जो नेक-सलाह तू मुझे देना चाहती है, वह यही है?"

"हाँ! यही है।"

"तुझ जैसे (=वैसे) सौ, हजार (और) लाख देवताओं (के उपदेश) से भी मैं हिलने वाला नहीं। दस-बल(-धारी) के प्रति मेरी श्रद्धा सुमेरु पर्वत की तरह अचल (है), सुप्रतिष्ठित (है)। मैंने कल्याण-कारी (त्रि-)रत्न-शासन के लिए जो धन खर्च किया है, उसे तूने 'अनुचित' कहा। तूने बुद्ध-शासन को दोष दिया। इस प्रकार की अनाचारिणी, दुश्शीला और मनहूस के साथ मैं एक घर में नहीं रह सकता। निकल, मेरे घर से, शीघ्र निकल और (किसी) दूसरी जगह जा।"

स्रोतापन्न, आर्य-श्रावक (अनाथपिण्डिक) की बात सुन कर, न ठहर सकने के कारण, वह अपने निवास-स्थान पर गई और बच्चों को हाथ से पकड़े हुए, (वहाँ से) निकल आई। (लेकिन) निकल कर, अन्य निवास-स्थान न मिलने के कारण, 'सेठ से क्षमा माँग, वहीं रहूँगी' सोच, नगर-रक्षक देवपुत्र के पास जा, उसे प्रणाम कर, खड़ी हुई।

'किस लिए आई?' पूछने पर, वह बोली—स्वामी! मैंने बिना सोचे समझे, सेठ को (कुछ) कह दिया। उसने क्रुद्ध हो, मुझे निवास-स्थान से निकाल दिया। सेठ के पास ले जा, उससे क्षमा दिलवा मुझे रहने के लिए स्थान दिल-वाइए (=दीजिए)।

"तूने सेठ को क्या कहा?"

स्वामी! मैंने सेठ को कहा कि अब से बुद्ध-उपस्थान (=सेवा), संघ-

उपस्थान मत करो। श्रमण गौतम को घर में मत आने दो।"

"तूने अनुचित कहा। (बुद्ध-)शासन की निन्दा की। मैं तुझे ले कर सेठ के पास जाने की हिम्मत नहीं कर सकता।"

वह, उससे कुछ सहायता न पा, चारों महाराजाओं के पास गई। उनसे भी वैसा ही इनकार मिलने पर शक्र देवेन्द्र के पास जा, वह हाथ जोड़, बड़ी नम्रता से याचना करने लगी—"हे देव! निवास-स्थान न मिलने से, मैं बच्चों को हाथ से पकड़े पकड़े, अशरणा हो घूमती हूँ। अपनी कृपा से, मुझे निवास-स्थान दिलवाइए।"

उसने भी कहा—तूने अनुचित किया जो बुद्ध-शासन की निन्दा की! मैं भी तेरे पक्ष में सेठ के साथ बातचीत तो नहीं कर सकता; लेकिन एक ऐसा उपाय बताता हूँ कि जिससे सेठ क्षमा कर दे।

"अच्छा! देव! कहें।"

"मनुष्यों ने तमस्सुक दे कर सेठ के हाथ से अट्ठारह करोड़ (की) संख्या में धन लिया है। तू सेठ के मुनीम (=आयुत्तक) का भेस बना, किसी को बिना जताए, उन लेखों को ले, कुछ यक्ष-तरुणों के साथ, एक हाथ में लेख और एक हाथ में कलम ले कर, उन (आदमियों) के घर जा, और घर के बीच में खड़ी हो, अपने यक्ष-बल (=आनुभाव) से उन्हें डरा, 'यह तुम्हारे लेख हैं। हमारे सेठ ने अपने ऐश्वर्य के समय में तुम्हें कुछ नहीं कहा, लेकिन अब वह निर्धन (=दुर्गति-प्राप्त) हो गया है। तुमने जो कार्षापण लिए हैं सो दो' (कह) अपनी यक्ष-बल की सामर्थ्य दिखा कर, वह सब अट्ठारह करोड़ सोना वसूल (=प्राप्त) कर सेठ के खाली कोठे को भर। दूसरे अचिरवती[1] नदी के किनारे गड़ा धन, नदी-कूल के टूट जाने से समुद्र में बह गया है, उसे भी अपने सामर्थ्य से मँगवा, खाली कोठे भर। और भी, अमुक स्थान पर बिना स्वामी का अट्ठारह ही करोड़ धन है, उसे भी ला कर खाली कोठे भर। इस बिना स्वामी के धन से इन खाली कोठों को भर के चौवन-कोटि करके महासेठ से क्षमा माँगना।'

---

[1] अचिरवती।

यह देख! 'अच्छा' कह, उसके कथन को स्वीकार कर, तदनुसार सब धन लाकर, आधी रात के समय, सेठ के शयनागार में प्रविष्ट हो, (अपना) प्रकाश फैला, आकाश में खड़ी हुई।

"यह कौन है?" पूछने पर बोली—"सेठ जी! मैं तेरी चौथी ड्योढ़ी में रहने वाली अधिमुक्त देवी हूँ। मैंने अपनी महामोह (भरी) मूढ़ता के कारण, बुद्ध-गुणों को न जानकर, पिछले दिनों में आपसे (जो) कुछ कहा, मेरे उस दोष को क्षमा करें। मैंने देवेन्द्र शक्र के वचनानुसार आपका ऋण वसूल (=साध) कर अट्ठारह करोड़; समुद्र में बहा हुआ अट्ठारह करोड़, जिस किसी स्थान में बिना मालिक का अट्ठारह करोड़;—इस प्रकार चौवन करोड़ लाकर, खाली कोठों को भरने से, दण्ड पूरा किया, जेतवन विहार के (निर्माण) में जितना धन खर्च हुआ, उतना एकत्र कर दिया। निवास-स्थान न मिलने से मैं कष्ट पा रही हूँ। सेठ जी! मैंने अज्ञान से जो (भूल) कर दी, उसे क्षमा करें।"

अनाथपिण्डिक ने, उसकी बात सुन, 'यह कहती है—मैंने दण्ड भुगत लिया, और अपने दोष को स्वीकार करती हूँ' सोच विचार किया कि इसे सम्यक् सम्बुद्ध के पास ले चलना चाहिए; इसका ख्याल कर तथागत अपने गुणों को जनायेंगे। सो उसे कहा, 'अम्म! देवी! यदि तू मुझ से क्षमा प्रार्थना करना चाहती है, तो शास्ता के सम्मुख क्षमा-प्रार्थना करना।"

"अच्छा! ऐसा करूँगी; लेकिन मुझे शास्ता के पास ले चलना।" उसने 'अच्छा' कह, रात्रि समाप्त होने पर प्रातःकाल ही उसे ले, शास्ता के पास जा, शास्ता को उसका सब किया-कराया कह सुनाया। शास्ता ने, "हे गृहपति! जब तक पाप-कर्म करने वाले का पाप पकता नहीं है, तब तक वह सुख भोगता है, लेकिन जब उसका पाप-कर्म पकता है (=फल देता है), तब से वह दुख ही दुख भोगता है। (इसी प्रकार) जब तक पुण्य-कर्म (=भद्र) करने वाले का पुण्य पकता नहीं, तब तक वह दुख भोगता है, लेकिन जब उसका पुण्य-कर्म पकता है, तब से वह सुख ही सुख भोगता है" कह, धम्मपद की इन दो गाथाओं को कहा—

पापोऽपि पस्सति भद्रं याव पापं न पच्चति,
यदा च पच्चति पापं अथ पापो पापानि पस्सति ॥

भद्रोपि पस्सति पापं याव भद्रं न पच्चति,
यदा च पच्चति भद्रं अथ भद्रो भद्रानि पस्सति ॥

इन गाथाओं के (कहे जाने के) अन्त में, वह देवी स्रोतापत्ति-फल में प्रतिष्ठित हुई। उसने शास्ता के चक्राङ्कित चरणों में गिर कर कहा—"भन्ते! मैंने राग में अनुरक्त हो, दोष (=क्रोध) से दूषित हो, मोह से मूढ़ हो, अविद्या से अंधी हो, आपके गुणों को न जानने के कारण अप-शब्दों का प्रयोग किया, सो वह मुझे क्षमा करें।" शास्ता से क्षमा माँग, उसने सेठ से क्षमा माँगी।

उस समय अनाथपिण्डिक ने शास्ता के सम्मुख अपना गुण वर्णन किया—"भन्ते! यह देवी 'बुद्ध-सेवा आदि मत करें' (कह) मना करने पर भी, मुझे रोक नहीं सकी, 'दान नहीं देना चाहिए' कह रोकने पर भी, मैंने दान दिया ही। भन्ते! क्या यह मेरा गुण नहीं?"

शास्ता ने, "हे गृहपति! तू स्रोतापन्न (है), आर्य-श्रावक (है), अचल श्रद्धा वाला (है), विशुद्ध-दृष्टि (=विचार) है, यदि यह अल्प शक्ति देवी तुझे (दान देने से) रोकने पर भी, नहीं रोक सकी, तो यह आश्चर्य (की बात) नहीं। आश्चर्य तो यह है कि बुद्ध के अनुत्पन्न हुए रहने पर (भी), (उनके) ज्ञान के अपरिपक्व रहने पर भी, पूर्व समय में पण्डितों ने, कामावचर-लोक के स्वामी मार (=शैतान) के आकाश में खड़े हो कर 'यदि दान दोगे, तो इस नरक में पकाओ' (कहते हुए) अस्सी हाथ गहरा अङ्गारों का ढेर दिखाकर 'दान मत दो' मना करने पर भी, पद्म की कर्णिका के बीच में खड़े हो कर दान दिया।' यह कह, अनाथपिण्डिक के याचना करने पर पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय [illegible] सेठ के घर में उत्पन्न हो [illegible] प्रकार की सुख सामग्री (=[illegible]) में [illegible] की तरह [illegible] क्रम से [illegible], [illegible] वर्ष [illegible] के मरने पर,

सेठ का स्थान ग्रहण कर, नगर के चार द्वारों पर चार दान-शालायें, नगर के बीच में एक, अपने निवासस्थान के द्वार पर एक—छः दान-शालायें बनवा कर महा-दान देते, सदाचार की रक्षा करते तथा व्रत (=उपोसथ कर्म) रखते थे। सो एक दिन, प्रातःकाल का जल-पान करने के समय, बोधिसत्त्व के लिए नाना प्रकार के अग्र रसों से युक्त, मनोज्ञ भोजन लाये जाने पर, एक सप्ताह के बाद ध्यान से उठ कर, एक प्रत्येक-बुद्ध, भिक्षा माँगने के समय का ख्याल कर, 'आज मुझे (भिक्षा के लिए) वाराणसी सेठ के गृह-द्वार पर जाना चाहिए' (सोच), नाग-लता की दातुन कर, अनोतप्त-दह (झील) पर मुँह धो, मनोशिला तल पर खड़े हो (चीवर) पहन, काय-बन्धन (=पट्टी) बाँध, चीवर धारण कर, ऋद्धिमय-मिट्टी का बर्तन (=पात्र) ले, आकाश से आकर, बोधिसत्त्व का भोजन लाये जाने के ठीक समय, (उसके) गृहद्वार पर आकर खड़े हुए।

बोधिसत्त्व ने उसे देखते ही, आसन से उठ, सत्कार कर सेवक की ओर देखा। (उसको) "स्वामी क्या करूँ?" पूछने पर कहा—"आर्य्य का पात्र लाओ।" उसी क्षण पापी मार ने पर्राते हुए उठ कर 'इस प्रत्येक-बुद्ध को आज से सात दिन पहले आहार मिला है, आज न मिलने पर, इसका विनाश हो जायगा सो, मैं इसका विनाश करूँगा और सेठ के दान देने में रुकावट डालूँगा' (सोच), उसी क्षण आकर देहली के बीच में अस्सी हाथ गहरा अङ्गारों से भरा गढ़ा बनाया। वह खदिर अङ्गारों से परिपूर्ण, प्रज्वलित, ज्योतिमान् गढ़ा, अवीची महा-नरक सदृश प्रतीत होता था। उसे बना कर, अपने आप आकाश में ठहरा। पात्र लेने के लिए जाने वाला आदमी उसे देखते ही भय-भीत हो कर लौटा। बोधिसत्त्व ने पूछा—"तात! लौट क्यों आया?"

"स्वामी! आङ्गन (देहली) में जलते हुए, दहकते हुए अङ्गारों का बड़ा भारी गढ़ा है।" दूसरा, तदनन्तर तीसरा—इस प्रकार जितने आये, सभी भयभीत होकर भाग गये।

बोधिसत्त्व ने सोचा—"आज वशवर्ती मार मेरे दान में रुकावट डालने के लिए उद्यत हुआ होगा। यह नहीं जानता कि मुझे सौ मार, हजार मार भी (मिलकर) नहीं हिला सकते। आज मालूम करूँगा कि मार में और मुझ में—हम दोनों में—कौन अधिक शक्तिशाली है, कौन अधिक प्रतापवान् है?।" सो उसने जैसी की तैसी परोसी हुई थाली को अपने (सिर पर) ले, घर से निकल,

यह कह दृढ़-निश्चय पूर्वक बोधिसत्व, भोजन की थाली को ले, अङ्गारों के गड्ढे के ऊपर से चले। उसी समय, अङ्गारों के अस्सी हाथ गहरे गड्ढे के तल के ऊपर ही ऊपर, (दूसरे पद्मों के अतिरिक्त) एक सातवें महापद्म ने उत्पन्न होकर, बोधिसत्व के पैरों को स्पर्श किया। फिर एक महा-तुम्बा भर रेणु उठी। और उसने महासत्व के सिर पर से गिर कर, उनके सारे शरीर को स्वर्ण-चूर्ण से भावित की तरह कर दिया। उसने पद्म की कली में खड़े होकर नाना (प्रकार के) अग्र रसों (से युक्त) भोजन, प्रत्येक-बुद्ध के पात्र में रक्खा। प्रत्येक-बुद्ध, उसे स्वीकार कर, (दान-) अनुमोदन कर, पात्र को आकाश में फेंक, जन (-समूह) के देखते ही देखते, अपने आप भी ऊपर जाकर, नाना प्रकार की बादलों की पंक्तियों को मर्दित करते हुए से, हिमवन्त को चले गये। मार भी पराजित हो, दुर्मन-चित्त अपने निवास-स्थान को चला गया। बोधिसत्व पद्म की कली में खड़े ही खड़े, जन(-समूह) को दान-शील आदि की बड़ाई करके, धर्मोपदेश दे, जनसमूह के साथ ही, अपने निवास-स्थान में प्रविष्ट हो जीवित रहते, दानादि पुण्य-कर्म करते हुए, कर्मानुसार (परलोक) गए।

बुद्ध ने, 'गृहपति! यह आश्चर्य (की बात) नहीं कि तू दृष्टि (=विचार) सम्पन्न होकर, उस देवी (के उपदेश) से चञ्चल (=कम्पित) नहीं हुआ, पूर्व पण्डितों का कृत्य ही आश्चर्य-कारक है' (कह), इस धर्मदेशना को ला मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय के प्रत्येक-बुद्ध तो वहीं परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। मार को पराजित कर, पद्म-कली में खड़े हो प्रत्येक बुद्ध को भिक्षा देने वाला वाराणसी सेठ तो मैं ही था।

पहला परिच्छेद

५. अत्थकाम वर्ग

४१. लोसक जातक

क. वर्तमान कथा

जो उसकी माँ ने बड़ी कठिनाई से दिन काटते हुए गर्भ के परिपक्व होने पर, एक स्थान पर प्रसव किया। अन्तिम शरीर-धारी (व्यक्ति) को नष्ट नहीं किया जा सकता। उसके हृदय में अर्हत्व का उपनिश्रय (=कारण) वैसे ही प्रकाशित रहता है, जैसे घड़े में दीपक। वह उस बालक को पाल, उसके भाग दौड़ कर चल सकने के समय, उसके हाथ में एक खोपड़ी दे 'पुत्र[1] एक घर में प्रवेश कर' (कह) उसके एक घर में प्रवेश करने पर अपने भाग गई। वह उस दिन से, वहाँ अकेला ही भीख माँग, एक स्थान में पड़ा रहता था। न नहाता, न शरीर साफ करता, धूलि-पिशाच की तरह बड़ी कठिनाई से जीवन बिताता। इसी प्रकार, क्रम से सात वर्ष का होकर वह एक गृह-द्वार पर उक्खलि-धोवन फेंकने के स्थान पर पड़े हुए चावल के दानों को, कौए की तरह एक एक चुग कर खाता था।

श्रावस्ती में भिक्षा-चार करते समय धर्मसेनापति (=सारिपुत्र) ने, उसे देख 'इस प्राणी की दशा अत्यन्त करुणाजनक है, यह किस गाँव का रहने वाला है?' सोच, उसके प्रति मैत्री-भाव की वृद्धि कर, उसे बुलाया—"अरे! आ।" वह आकर, स्थविर को प्रणाम कर, खड़ा हो गया। स्थविर ने उसे पूछा—"तू किस गाँव का रहने वाला है? तेरे माता-पिता कहाँ हैं?"

"भन्ते! मैं प्रत्यय (=आवश्यक वस्तु)-रहित हूँ। मेरे माता-पिता 'हम इसके कारण कष्ट पाते हैं' (सोच), मुझे छोड़ भाग गये।"

"तू प्रव्रजित होगा?"

"भन्ते! मैं तो प्रव्रजित हो जाऊँ, लेकिन मुझ दरिद्र (=कृपण) को कौन प्रव्रजित करेगा?"

"मैं प्रव्रजित करूँगा।"

"अच्छा! तो प्रव्रजित कर लें।"

स्थविर ने उसे खाद्य-भोज्य दे, विहार ले जा, अपने ही हाथ से नहला, प्रव्रजित कर, वर्ष सम्पूर्ण होने पर[1] उपसम्पन्न किया। वृद्ध होने पर, वह लोसकतिस्स स्थविर कहलाया—अपुण्यवान् तथा अल्पलाभी हुआ। असाधारण-दान में भी उसे पेट भर खाने को न मिला; उतना ही मिला, जितना जीवित

---

[1] बीस वर्ष से कम आयु रहने पर कोई उपसम्पन्न नहीं हो सकता।

भोजन करो' कह, पात्र को (अपने ही हाथ में) लिए खड़े रहे। लोसक स्थविर के गौरव से, शर्म के मारे नहीं खाते थे। स्थविर ने कहा—'आयुष्मान् तिस्स! आओ, मैं इस पात्र को लेकर खड़ा रहूँगा। तुम बैठ कर भोजन करो। यदि मैंने इस पात्र को हाथ से छोड़ दिया, तो (कदाचित्) इसमें कुछ न रहे।" तो आयुष्मान् लोसकतिस्स स्थविर ने, अग्रेश्वर धर्मसेनापति के हाथ में पात्र लिए खड़े रहते, चारों प्रकार के मधुर का भोजन किया। स्थविर के ऋद्धि-बल के कारण, वह भोजन समाप्त नहीं हुआ। उस समय लोसकतिस्स स्थविर ने, जितना चाहिए था, उतना पेट भर भोजन किया। और उसी दिन वह उपाधि-रहित निर्वाण-धातु को प्राप्त हुए। सम्यक् सम्बुद्ध ने पास खड़े होकर शरीर की दाह-क्रिया करवाई। (शरीर-)धातु लेकर चैत्य बनाया गया।

उस समय धर्म-सभा में एकत्रित हुए भिक्षु, (आसन में) बैठे बैठे कहने लगे—'आयुष्मानो! लोसकतिस्स स्थविर अपुण्यवान् (थे), अल्प-लाभी, (थे) इस प्रकार अपुण्यवान्, अल्पलाभी ने किस प्रकार आर्य-धर्म (=अर्हत्व) प्राप्त कर लिया?" बुद्ध ने धर्म-सभा में आकर पूछा—"भिक्षुओ! बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो?" उन्होंने कहा 'भन्ते! यह बात-चीत।" बुद्ध ने, 'भिक्षुओ! इस भिक्षु ने अपने आपको स्वयं ही अल्प-लाभी बनाया, और स्वयं ही अर्हत्। पूर्व-जन्म में औरों की प्राप्ति में बाधक होने के कारण, यह अल्प-लाभी हुआ, और अनित्य, दुःख, अनात्म—की विदर्शना युक्त भावना (=योगाभ्यास) के फल स्वरूप आर्यधर्म-लाभी (=अर्हत्) हुआ' कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व-काल में काश्यप सम्यक् सम्बुद्ध के समय में, एक भिक्षु एक गृहस्थ पर विशेष रूप से निर्भर हो, एक गाँव के निवासस्थान में रहता था। वह स्वभाव से ही सदाचारी (=शीलवान्) था, और योगाभ्यास (=विदर्शना) में लगा रहता था। (उसी समय) एक क्षीणाश्रव स्थविर, अपने कर्तव्यों की अवहेलना न कर, एक एक स्थान में ठहरते हुए, क्रम से, उस भिक्षु के उपस्थायक गृहस्थ के ही गाँव में पहुँचे। गृहस्थ ने स्थविर के उठने बैठने (=ईर्यापथ) पर ही प्रसन्न हो (उनका) पात्र ले (उन्हें) घर में प्रवेश करा, अच्छी प्रकार

भोजन किया, बुद्ध धर्म-कथा सुन, स्थविर को प्रणाम कर कहा—"भन्ते! हमारे समीप के विहार को जायें, हम शाम को आपके दर्शनार्थ आयेंगे।" स्थविर विहार में जा, उसमें रहने वाले स्थविर को प्रणाम कर और (उनसे कुशल क्षेम) पूछ कर एक ओर बैठे। उस (स्थविर) ने भी उनसे कुशलक्षेम सम्बन्धी बात-चीत कर, पूछा—"आयुष्मान्! आज आपको भोजन मिला?" "हाँ मिला।" "कहाँ मिला?" "आपके ग्राम के गृहस्थी के घर में।" यह कह कर, अपना शयनासन पूछ, (उसे) झाड़ सँवार कर, पात्र चीवर को ठीक से रख कर, ध्यान-सुख तथा फल-सुख से (समय) बिताते हुए बैठे।

उस गृहस्थ ने शाम को गन्ध-माला, (तथा) तेल प्रदीप लिवा कर, विहार जाकर, निवासिक स्थविर को प्रणाम कर, पूछा—"भन्ते! यहाँ एक आगन्तुक स्थविर आया है?"

"हाँ! आया है।"

"इस समय कहाँ है?"

"अमुक शयनासन पर।"

वह उनके पास जाकर, प्रणाम कर, एक ओर बैठ, धर्म-कथा सुन, (समय) हो जाने पर, गन्ध और माला(-पूजा) की पूजा कर, दिये जला कर, दोनों स्थविरों को (भोजन के लिए) निमन्त्रित कर, लौट आया। स्थानीय स्थविर ने सोचा—"यह गृहस्थ बदल रहा है। यदि यह भिक्षु इस विहार में रहेगा, तो यह (गृहस्थ) मेरी कुछ गिनती न करेगा।" (उसने) स्थविर के प्रति मन में असन्तोष उत्पन्न कर, "मुझे ऐसा करना चाहिए [illegible] जिससे यह इस विहार में न बस सके"—इस विहार में उपस्थान-वेला ([illegible] के [illegible]) के समय, उनके [illegible], उनसे कुछ बात-चीत न की। क्षीणास्रव स्थविर ने उसके मन का विचार जान कर 'यह स्थविर नहीं जानता कि मेरी न तो (किसी) कुल में [illegible] है, न [illegible] [illegible], अपने स्थान पर जा कर, ध्यान-सुख और फल-सुख से समय बिताया।

दूसरे दिन स्थानीय भिक्षु [illegible] (पहले से) [illegible] [illegible] (उपस्थान) [illegible] [illegible] [illegible] (उस) गृहस्थ के घर गए। उसने [illegible] [illegible] [illegible] पूछा—"भन्ते! आगन्तुक स्थविर कहाँ है?"

वहाँ से भाग कर, वह जहाँ तहाँ घूमता हुआ गम्भीर नामक एक बन्दरगाह में नौकाके छूटने के दिन ही पहुँचा, (और) नौकर बन कर नौका पर चढ़ गया। नाव सात दिन समुद्र में जाकर, सातवें दिन, बीचों में नाव की जैसी–की तरह रुक गई। उन्होंने मनहूस (आदमी चुनने की) तीली (=शलाका) बाँटी। यह सात बार मित्रविन्दक के ही हाथ निकली। मनुष्यों ने उसे एक बाँसों का गट्ठा दे, हाथ से पकड़ समुद्र में फेंक दिया। उसके फेंकते ही नाव चल पड़ी। मित्रविन्दक ने काश्यप सम्यक्सम्बुद्ध के समय में सदाचारमय जीवन व्यतीत किया था। उसके फलस्वरूप, उसे (अब) बाँसों के गट्ठे पर, समुद्र में लेटे (=तैरते) जाते हुए, एक स्फटिक-विमान में चार देव-कन्यायें मिलीं। एक सप्ताह तक, वह, उनके पास सुख भोगता हुआ रहा। वह विमान-प्रेतनियाँ, एक सप्ताह तक सुख भोगती थीं, एक सप्ताह तक दुःख। दुःख भोगने के लिए जाने के समय, 'जब तक हम लौट कर आवें, तब तक यहीं रहो' कह, वह चली गईं। उनके जाने के बाद, बाँसों के गट्ठे पर लेटे जाते हुए मित्रविन्दक को, आगे जाने पर रजत-विमान में आठ देव-कन्यायें मिलीं, उससे भी आगे जाने पर, मणि-विमान में सोलह, स्वर्ण-विमान में बत्तीस देव-कन्यायें मिलीं। उनकी भी बात न मान, आगे जाने पर उसने (एक) द्वीप के अन्दर एक यक्ष-नगर देखा। वहाँ एक यक्षिणी (एक) बकरी की शकल में घूमती थी। मित्रविन्दक ने यह न जान कि वह यक्षिणी है, बकरी का मांस खाने के ख्याल से, उसे पैर से पकड़ा। उसने (अपने) यक्ष बल से, उसे उछाल कर फेंका। उसका फेंका हुआ, वह समुद्र तल को लाँघ, बाराणसी की चारदीवारी पर, एक काँटों के झाड़ पर गिर, वहाँ से लुढ़कता लुढ़कता जमीन पर आया।

उस समय उस चारदीवारी पर चरती हुई, राजा की बकरियों को चोर उड़ा ले जाते थे। बकरियों के रखवाले चोरों को पकड़ने के ख्याल से, एक ओर छिपे रहते थे। मित्रविन्दक ने उलट कर, जमीन पर खड़े होने पर, उन बकरियों को देख सोचा : "मैंने समुद्र के एक द्वीप में एक बकरी के पैर पकड़े, उसका फेंका हुआ, यहाँ आकर गिरा। यदि अब मैं यहाँ एक बकरी के पैर पकड़ूँगा, तो वह मुझे उस पार समुद्र में विमान-देवताओं के पास फेंक देगी।" (सो) ऐसी उल्टी-बात मन में कर, उसने बकरी के पाँव पकड़े। बकरी ने पैर पकड़ते ही 'मे मे' किया। बकरियों के रखवालों ने इधर उधर से आ,

'यह इतने दिनों तक राजकीय बकरियाँ खाने वाला चोर है' (सोच) उसे पकड़, ठोक-पीट, बाँध कर राजा के पास ले गये।

उस समय बोधिसत्व ने पाँच सौ शिष्यों सहित नगर से निकल, नहाने के लिए जाते समय, मित्रविन्दक को देख, पहचान, उन मनुष्यों से पूछा—"तात! यह हमारा शिष्य है, इसे किस लिए पकड़ा है?" "आर्य! यह बकरी चोर है। इसने एक बकरी पैर से पकड़ी थी, इसीलिए इसे पकड़ा है।"

"तो इसे हमारा 'दास' बना कर, हमें दे दो, हमारे पास जीयेगा।" वे "आर्य! अच्छा!" कह, उसे छोड़ कर चले गये। तब बोधिसत्व ने मित्रविन्दक से पूछा—"तू इतने समय तक कहाँ रहा?" उसने अपनी सब आपबीती सुनाई। "हितैषियों की बात न मानने वाले इसी प्रकार दुःख पाते हैं" कह, बोधिसत्व ने यह गाथा कही—

> यो अत्थकामस्स हितानुकम्पिनो
> ओवज्जमानो न करोति सासनं,
> अजिया पादमोलुब्भ
> मित्तको विय सोचति ॥

[जो (आदमी) भला चाहने वाले, हितैषी, के उपदेश देने पर, उस उपदेश के अनुसार आचरण नहीं करता, वह बकरी के पैर पकड़ने वाले मित्र(-विन्दक) की तरह शोक को प्राप्त होता है।]

अत्थकामस्स — उन्नति की इच्छा करने वाले का। हितानुकम्पिनो — हित अनुकम्पा (= दया) करने वाले का। ओवज्जमानो, मृदु, हितैषी मित्र के उपदेश दिए जाने पर। न करोति सासनं, अनुसार आचरण नहीं करता, [illegible] उपदेश के [illegible] रहता है। मित्तको विय सोचति, जिस प्रकार यह [illegible] बकरी के पैर पकड़ कर [illegible] है, कष्ट पाता है, इसी प्रकार शोक [illegible] है। इस [illegible] धर्मोपदेश किया।

इस प्रकार इस [illegible]

बोधिसत्व कबूतर की योनि में पैदा हुए। उस समय वाराणसी निवासी पुण्येच्छा से, जगह जगह पर पक्षियों के सुख-पूर्वक वास करने के लिए छींके लटकाते थे। वाराणसी के सेठ के रसोइये ने भी अपने रसोई-घर में एक छींका लटका रखा था। बोधिसत्व वहीं रहता था। वह प्रातःकाल ही निकल, चुगने की जगहों पर घुम, शाम को वहाँ आकर, रहते हुए समय बिताता था। एक दिन एक कौवे ने बड़े जोर से (उड़ते) जाते हुए, खट्टे-मीठे मत्स्य-मांस के छौंक की गन्ध सूँघ कर, उसमें लोभ उत्पन्न कर, सोचा "मुझे यह मत्स्य-मांस कैसे मिलेगा ?" कुछ दूर पर बैठ कर विचारते हुए, उसने शाम को बोधिसत्व को आकर रसोई में प्रवेश करते देख, सोचा—'इस कबूतर के जरिये (मुझे) मत्स्य-मांस मिलेगा।' अगले दिन प्रातःकाल ही बोधिसत्व के निकल कर चुगने के लिए जाने के समय (उसके) पीछे पीछे हो लिया।

तब बोधिसत्व ने उससे पूछा—"सौम्य ! तू किस लिए हमारे साथ साथ फिरता है ?"

"स्वामी ! मुझे आपकी (जीवन-)चर्या अच्छी लगती है। अब से मैं आपकी सेवा में रहूँगा।"

"सौम्य ! तुम्हारा चुगना दूसरा होता है, हमारा दूसरा, तुम्हारा हमारी सेवा में रहना कठिन है।"

"स्वामी ! तुम्हारे चोगा लेने के समय, मैं भी चोगा लेकर, तुम्हारे साथ ही (वापिस) लौटूँगा।"

"अच्छा ! तुझे केवल प्रमाद-रहित रहना चाहिए"—बोधिसत्व ने कौवे को उपदेश दिया।

उसे उपदेश दे बोधिसत्व चुगने के समय चुगने जाते, तृण-बीज खाते, और कौवा उसी समय में जा, गोबर का पिंड ले, उसमें से कीड़े खा, पेट भर, बोधिसत्व के पास आकर कहता—"स्वामी ! तुम देर तक चुगते हो। अधिक खाना उचित नहीं।' वह, बोधिसत्व के चोगा ले, शाम को वापिस लौटने पर, उसके साथ ही रसोई में प्रवेश करता। रसोइये ने यह देख कि हमारा कबूतर (एक) दूसरे साथी को भी लाता है, उस कौवे के लिए भी छींका टाँग दिया। उस समय से दोनों जने (वहीं) रहने लगे।

एक दिन सेठ के लिए बहुत सा मत्स्य-मांस लाया गया। रसोइये ने उसे

लेकर, रसोई-घर में कहीं नहीं लटका दिया। कौवा उसे देख, (मन में) लोभ पैदा कर, और यह 'अब चुगने न जाकर, मुझे यह (मत्स्य-मांस) ही खाना चाहिए' सोच, रात को छटपटाता हुआ लेटा रहा। अगले दिन बोधिसत्व ने चुगने के लिए जाते समय कहा—'सौम्य! काक! आ।'

"स्वामी! आप जावें। मुझे पेट में दर्द है।"

"सौम्य! कौवों को, पहले कभी पेट-दर्द नहीं हुआ है। ये (भूख के मारे) रात्रि के तीन पहरों में से एक एक पहर में मूर्च्छित होते हैं। केवल दीपक की बत्ती निगलने पर, उन्हें मुहूर्त भर के लिए तृप्ति होती है। तू इस मत्स्य-मांस को खाना चाहता होगा। आ, जो मनुष्य के खाने की चीज है, उसका खाना तेरे लिए अनुचित है। ऐसा मत कर, मेरे साथ चुगने के ही लिए चल।"

"स्वामी! (चल) नहीं सकता।"

"अच्छा! तो तू अपने कर्म को प्रकट करेगा। लोभ के वशीभूत मत हो, प्रमाद-रहित रह।" उसे उपदेश दे, बोधिसत्व चुगने के लिए गया। रसोइया नाना प्रकार की मत्स्य-मांस की चीजें बना, भाप निकलने के लिए बरतनों को थोड़ा खोल, कड़छी को बरतनों पर रख, (अपने) पसीना पोंछता हुआ, बाहर जाकर खड़ा हो गया।

उसी समय कौवे ने, ढीके में से सिर निकाल, रसोई-घर को देखते हुए, रसोइए को बाहर निकला जान, सोचा—'अब, यह मेरे लिए मन भर कर मांस खाने का समय है। मैं बड़ा बड़ा मांस खाऊँ, या मांस का चूरा? मांस का चूरा खाने से पेट जल्दी नहीं भरा जा सकता। (इसलिए) एक बड़े (से) मांस के टुकड़े को, ढीके पर ले जाकर, वहीं रख, पड़ा पड़ा खाऊँगा।' (यह सोच) ढीके में से उड़, उस कड़छी पर जा लगा। कड़छी ने 'किली किली' शब्द किया। रसोइये ने उस शब्द को सुन, 'यह क्या है?' (करके) प्रविष्ट हो, उस कौवे को देख, 'यह दुष्ट-कौवा मेरा सेठ के लिए बनाया मांस खाना चाहता है। मैं सेट्ठी की नौकरी करके, जीता हूँ; इस मूर्ख की नहीं। मुझे इससे क्या?" (वह) दरवाजा बन्द कर, कौवे को पकड़, (उसके) सारे शरीर से पर नोच, कच्चे अदरक, निमक तथा जीरे को कूट, (उसे) खट्टे मट्ठे में मिला, (उसने) उसके सारे बदन को चोपड़, उस ढीके में फेंक दिया। वह अत्यन्त पीड़ा अनुभव करता हुआ, छटपटाता पड़ा रहा। बोधिसत्व ने

हो जाता है, वैसे ही, महाविनाश को प्राप्त हो, नष्ट हो जाता है। यही अर्थ है। इस प्रकार बोधिसत्त्व, महाजन-समूह को उपदेश दे, चारों ब्रह्मविहारों की भावना कर, आयु का अन्त होने पर, ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुआ।

बुद्ध ने भी, 'भिक्षु! तू केवल अब ही बात न मानने वाला नहीं है, पूर्व-जन्म में भी तू बात न मानने वाला ही था। और बात न मानने के स्वभाव के ही कारण, तू विषैले-सर्प के मुँह में पड़, विनाश-नाश को प्राप्त हुआ'—यह धर्म-देशना ला, मेल मिला कर, जातक का सारांश निकाला। उस समय का वेलुक-पिता (अब का) बात न मानने वाला भिक्षु था। शेष परिषद् (अब की) बुद्ध परिषद् थी। गण का शास्ता तो मैं ही था।

४४. मकस जातक

"सेय्यो अमित्तो . . ." यह गाथा, शास्ता ने मगध (देश) में विचरते समय, एक ग्राम के मूर्ख, गँवार मनुष्यों के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

एक समय, तथागत श्रावस्ती से मगध राष्ट्र जा कर, वहाँ विचरते हुए, एक ग्राम में पहुँचे। यह गाँव अधिकतर अन्धे मूर्ख मनुष्यों से ही भरा पड़ा था। सो एक दिन उन अन्धे मूर्ख मनुष्यों ने इकट्ठे हो कर (आपस में) सलाह की—'भो! जंगल में जाकर काम करते समय, हमें मच्छर काटते हैं। उनसे हमारे काम में विघ्न पड़ता है। हम सब, धनुष और आयुध लेकर चलें। चलकर मच्छरों से युद्ध कर, सब मच्छरों को बेध कर, छेद कर मार डालें।' यह सलाह कर, जंगल में जा 'मच्छरों को बेधते हैं' [illegible]

दूसरे को बेध कर, प्रहार कर, दुखी हो, आकर, गाँव के अन्दर, मध्य में, तथा बाहर—सभी जगह—पड़ रहे।

भिक्षुसंघ सहित शास्ता ने उस गाँव में भिक्षा के लिए प्रवेश किया। अवशिष्ट पण्डित (=बुद्धिमान्) मनुष्य भगवान् को देख, ग्राम-द्वार पर मण्डप बना, बुद्ध-सहित भिक्षुसंघ को महादान दे, शास्ता को प्रणाम कर, बैठे। शास्ता ने जहाँ तहाँ पड़े हुए मनुष्यों को देख कर, उन उपासकों से पूछा—"यह बहुत से मनुष्य रोगी (जख्मी) हैं। इन्होंने क्या किया है?"

"भन्ते! यह मनुष्य "मच्छरों से युद्ध करेंगे" (विचार) जाकर, एक दूसरे को आहत कर अपने ही जख्मी हो गये।" शास्ता ने, 'न केवल अभी इन मूर्ख मनुष्यों ने मच्छरों को मारने के लिए जाकर अपने को घायल किया है, पूर्व समय में भी 'मच्छर को मारेंगे' सोच, यह एक दूसरे को मार देने वाले मनुष्य थे' कह, उन मनुष्यों के याचना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्व व्यापार करके (अपनी) रोजी चलाते थे। उस समय काशी देश के एक सीमान्त के ग्राम में बहुत से बढ़ई रहते थे। वहाँ एक बूढ़ा बढ़ई वृक्ष छीलता था। उसकी तांबे की थाली के तल सदृश खोपड़ी पर, एक मच्छर ने बैठ कर, उसके सिर को अपने डंक से ऐसे बींधा, जैसे कोई शक्ति(=आयुध) से चोट करता हो। उसने अपने पास बैठे हुए पुत्र को कहा—"तात! मेरे सिर को एक मच्छर, शक्ति से चोट करने की तरह काट रहा है, उसे हटा।"

"तात! सबर कर। एक (ही) प्रहार से उसे मारूँगा।" उस समय बोधिसत्व भी अपने लिए सौदा ढूँढते हुए, उस गाँव में पहुँच, उस बढ़ई-शाला में बैठे थे। सो उस बढ़ई ने पुत्र को कहा—"तात! इस मच्छर को हटा।" उसने 'तात! हटाता हूँ' कह, तेज कुल्हाड़े को उठा, पिता की पीठ की ओर खड़े हो, "मच्छर को मारूँगा" (सोच) पिता के सिर के दो टुकड़े कर दिये। बढ़ई वहीं मर गया। बोधिसत्व ने उसके उस कर्म को देख कर सोचा—"बुद्धिमान् शत्रु भी अच्छा है। वह दण्ड से भयभीत होकर भी मनुष्यों को नहीं मारेगा।" यह सोच यह गाथा कही—

सेय्यो अमित्तो मतिया उपेतो,
न त्वेव मित्तो मतिविप्पहीनो,
मकसं वधिस्सन्ति हि एळमूगो
पुत्तो पितु अब्भिदा उत्तमङ्गं ॥

[बुद्धिमान् शत्रु (=अमित्र) भी अच्छा है। मूर्ख मित्र अच्छा नहीं। जड़-मति पुत्र ने "मच्छर को मारूँगा" सोच पिता के सिर को फाड़ दिया।]

सेय्यो=प्रवर=उत्तम। मतिया उपेतो=प्रज्ञा से युक्त। एळमूगो=लार-मुख=मूर्ख। पुत्तो पितु अब्भिदा उत्तमङ्गं अपनी मूर्खता के कारण पुत्र हो कर भी, "मच्छर को मारूँगा" (करके) पिता के सिर के दो टुकड़े कर दिये। इसलिए मूर्ख-मित्र की अपेक्षा बुद्धमान् शत्रु भी अच्छा है।

यह गाथा कह, बोधिसत्व, उठ कर, यथा-कर्म गये। बढ़ई के रिश्तेदारों ने उसका शरीर-कृत्य किया।

शास्ता ने, 'उपासको! पूर्व समय में भी मच्छर को मारेंगे' (करके) एक दूसरे को मार डालने वाले मनुष्य थे—यह धर्म-देशना ला कर, मेल मिला कर, जातक का सारांश निकाला। उस समय गाथा कह कर चले जाने वाला व्यापारी तो मैं ही था।

४५. रोहिणी जातक

"सेय्यो अमित्तो ..." यह गाथा शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, अनाथपिण्डिक सेठ की [illegible] के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

अनाथपिण्डिक [illegible] द्वारा

माता, उस (दासी) के धान कूटने के स्थान पर आकर लेट गई। मक्खियाँ, उसे घेर कर, सूई के बींधने की तरह काटने लगीं। उसने लड़की (=दासी) को कहा—"अम्म ! मुझे मक्खियाँ काटती हैं। इन्हें हटा।" उसने "अम्म! हटाती हूँ" कह, 'मूसल उठा कर माता के शरीर पर (बैठी) मक्खियों को मार कर नष्ट करूँगी' (सोच) माता को मूसल का प्रहार दे, (उसे) मार डाला। उसे (मरा) देख, 'माता मर गई' (सोच) रोना आरम्भ किया। वह बात सेठ को कही गई। सेठ ने उसका शरीर-कृत्य करवा, विहार जा कर, वह सब बात शास्ता को कही। शास्ता ने, गृहपति ! न केवल अभी इसने, 'माता के शरीर की मक्खियों को मारूँगी' (सोच) उसे, मूसल से मार डाला है, पूर्व (-जन्म) में भी मार डाला है यह, सेठ के याचना करने पर, पूर्वजन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्व (एक) सेठ के कुल में उत्पन्न हुए थे। पिता की मृत्यु पर वह श्रेष्ठी के पद पर आरूढ़ हुए। उनकी भी रोहिणी नाम की दासी थी। उसने भी अपने धान कूटने के स्थान पर, आकर लेटी माता के, 'अम्म ! मेरी मक्खियाँ हटा' कहने पर, इसी प्रकार मूसल का प्रहार दे, माता के जीवन का नाश कर, रोना शुरू किया। बोधिसत्व ने इस वृत्तान्त को सुन, 'बुद्धिमान शत्रु भी अच्छा है' सोच, यह गाथा कही—

> सेय्यो अमित्तो मेधावी यञ्चे बालानुकम्पको,
> पस्स रोहिणिकं जम्मिं मातरं हन्त्वान सोचति ॥

[मूर्ख [illegible] 'मन, [illegible] अमित्र [illegible] अच्छा है। मूर्ख [illegible] है]

मधुरा [illegible] पञ्च कथावत्थुहाली—[illegible] [illegible] पूर्व [illegible]

हजार गुना अच्छा है। अथवा 'व', प्रतिषेधार्थ निपात है; तो इसका अर्थ हुआ कि मूर्ख मित्र नहीं। जम्मि=जड़-बुद्धि। मारये हन्त्वान सोचति, 'मक्खियों को मारूँगी' करके माता को मार, अब यह मूर्खा, अपने आप ही रोती है, पीटती है। इस कारण से, 'इस लोक में बुद्धिमान् शत्रु भी अच्छा है' कह, बोधिसत्व ने बुद्धिमान की प्रशंसा करते हुए, इस गाथा से धर्मोपदेश किया।

शास्ता ने, 'गृहपति ! न केवल अभी इसने 'मक्खियों को मारूँगी' (सोच), माता को मार डाला है, पहले भी मारा था'—यह धर्म-देशना लाकर, मेल मिला कर, जातक का सारांश निकाला। उस समय, माता ही माता थी, लड़की ही लड़की, और महाश्रेष्ठी तो मैं ही था।

४६. आरामदूसक जातक

"न वे अनत्थकुसलेन...." यह गाथा शास्ता ने कोसल (देश) के एक गाँव के बाग-बिगाड़ने वाले के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

शास्ता कोसल में विचरते हुए एक गाँव में पहुँचे। वहाँ एक गृहस्थ ने भगवान् को निमन्त्रित कर अपने उद्यान में बिठा बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को (भोजन [illegible] उद्यान में यथारुचि विहार करें। [illegible]

[illegible]

"भन्ते ! इस बाग के लगाने के समय, एक गँवार लड़का पानी सींचते हुए, इस जगह के पौदों को उखाड़ उखाड़ कर उनकी जड़ों की गहराई के अनुसार पानी सींचता था। सो वह पौदे कुम्हला कर मर गये। इसी कारण से यह स्थान आँगन (सा) हो गया।"

भिक्षुओं ने शास्ता से जाकर, यह बात कही। शास्ता ने, "भिक्षुओ ! न केवल अभी वह गँवार लड़का बाग-बिगाड़ने वाला है, पहले भी वह बाग-बिगाड़ने वाला था" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बाराणसी में उत्सव (=नक्षत्र) की घोषणा की गई। उत्सव-भेरी के शब्द सुनने के बाद से, सभी नगर निवासी उत्सव की मस्ती में घूमने लगे। उस समय राजा के उद्यान में बहुत से बन्दर रहते थे। माली ने सोचा—"नगर में उत्सव की घोषणा हुई है। इन बानरों को 'पानी सींचो' कह कर, मैं उत्सव में खेलने जाऊँगा।" उसने ज्येष्ठ बानरों के सर्दार के पास जाकर पूछा—"सौम्य बानर-राज ! इस उद्यान से तुम्हें भी बहुत फायदा है। तुम इसके फल-फूल-पत्ते खाते हो। नगर में उत्सव उद्घोषित हुआ है। मैं उत्सव में खेलने जाना चाहता हूँ। जब तक मैं लौट कर आऊँ, क्या तुम तब तक इस उद्यान के पौदों में पानी सींच सकते हो ?"

"अच्छा ! सींचेंगे।"

"तो आलस्य-रहित रहना," (कह) वह (उन्हें) पानी सींचने के लिए चरसा और लकड़ी के बरतन देकर चला गया। चरसा और लकड़ी के बरतन लेकर, बानर पौदों में पानी सींचने लगे। तब उन्हें बानरों के सर्दार ने कहा—"बानरो ! जल रक्षणीय है। तुम पौदों में पानी सींचते समय (उन्हें) उखाड़ उखाड़ कर, (उनकी) जड़ें देख कर, गहरी जड़ वाले पौदों में बहुत पानी सींचो, जिनकी जड़ें गहरी नहीं हैं, उनमें थोड़ा। पीछे हमें पानी मिलना दुर्लभ हो जायगा।"

उन्होंने 'अच्छा' कह स्वीकार कर, वैसा ही किया। उस समय एक बुद्धिमान आदमी ने उन बानरों को राजोद्यान में वैसा करते देख, पूछा—"बानरो !

तुम किस लिए पौदों को उखाड़ उखाड़, उनकी जड़ (की गहराई) के अनुसार पानी सींच रहे हो ?"

उन्होंने जवाब दिया—"हमारे सर्दार ने हमें, ऐसा ही करने को कहा है।" उसने उन (वानरों) की बात सुन, 'अहो ! मूर्ख (लोग) उपकार करने का मन करके, अपकार ही करते हैं' (सोच) यह गाथा कही—

न वे अनत्थकुसलेन अत्थचरिया सुखावहा,
हापेति अत्थं दुम्मेधो कपि आरामिको यथा ॥

[उपकार(=अनर्थ)=करने में अचतुर आदमी का उपकार(=अर्थ) करना भी सुखदायक नहीं होता। माली-बन्दर की तरह, मूर्ख आदमी, काम की हानि ही करता है।]

वे, निपात मात्र है। अनत्थकुसलेन, अनर्थ=अनायतन में दक्ष, अथवा आयतन=कारण (=मतलब की बात) में अदक्ष। अत्थचरिया (=उन्नति) वृद्धि-क्रिया। सुखावहा, इस प्रकार के अनर्थ करने में दक्ष (आदमी) से शारीरिक-मानसिक सुख नामक अर्थ की चरिया सुख-कारक नहीं होती, मतलब है कि प्राप्त नहीं की जा सकती। किस वजह से ? सर्व प्रकार से ही हापेति अत्थं दुम्मेधो, मूर्ख आदमी, उपकार करूँगा (करके) उपकार का नाश कर, अपकार ही करता है। कपि आरामिको यथा, आराम (=बाग) में नियुक्त, बाग का रक्षक बन्दर, उपकार करूँगा (करके) अपकार ही करता है। इस प्रकार जो अर्थ-कुशल नहीं है, वह भलाई का काम(=अत्थचरिया) नहीं कर सकता; वह निश्चय से अपकार ही करता है।

इस प्रकार, उस बुद्धिमान् आदमी ने, इस गाथा से, उस वानरों के सर्दार की निन्दा की (और) अपनी परिषद् को लेकर उद्यान से निकल आया। शास्ता ने, 'भिक्षुओ ! न केवल अभी यह [illegible] बाग-बिगाड़ने वाला हुआ है; पहले भी बाग-बिगाड़ने वाला ही हुआ है' (कह) इस धर्म-देशना को [illegible]। उस समय का [illegible] और बुद्धिमान् [illegible]

४७. वारुणी जातक

"न वे अनत्यकुसलेन . . ." यह गाथा शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, एक शराब बिगाड़ देने वाले के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक शराब का व्यापारी अनाथपिण्डिक का मित्र तेज शराब बनाकर, हिरण्य, सोना आदि लेकर बेचता था। (एक दिन) वह बेचते बेचते, बहुत ग्राहकों के इकट्ठे हुए रहने के समय, अपने शिष्य को, "तात ! तू (इनसे) मूल्य ले ले कर शराब दे" कह, (अपने) नहाने चला गया। शागिर्द ने लोगों को शराब देते हुए देखा कि (लोग) बीच बीच में नमक की डली मँगवा कर, खाते हैं। यह देख, उसने 'शराब अलूनी होगी' (सोच) 'इसमें निमक डालूँगा' (करके) शराब की चाटी में नालिका[1] भर कर निमक डाल, लोगों को शराब दी। उन्होंने मुँह भर कर थूक, (कर) पूछा—"यह तूने क्या किया ?"

"तुम्हें शराब पीते पीते निमक मँगवाते देखकर, (इसमें) निमक मिला दिया।"

"ऐसी अच्छी शराब को खराब कर दिया। मूर्ख कहीं का" कह, उसकी निन्दा करते, उठ कर चले गये।

शराब के व्यापारी ने आकर, एक को भी न देख, पूछा—"शराब के पीने वाले कहाँ चले गये ?"

शागिर्द ने सब हाल कहा। उसके मालिक ने, "मूर्ख ! तूने इतनी अच्छी शराब बिगाड़ दी" कह उसकी निन्दा कर, यह वृत्तान्त अनाथपिण्डिक से कहा।

---

[1] [illegible]

चोरो ने उन चोरो को छोड़ कर ब्राह्मण को पकड़ा, और कहा—"हमें भी धन दो।" ब्राह्मण ने कहा—"मैं तुम्हें धन दूँ, लेकिन धन बरसाने का नक्षत्रयोग (अब) एक वर्ष बाद होगा। यदि धन से मतलब है, तो सबर करो, मैं तब धन की वर्षा बरसाऊँगा।" चोरों ने क्रुद्ध होकर, 'अरे। दुष्ट ब्राह्मण! औरों के लिए अभी धन वर्षा कर, हमें अगले वर्ष तक प्रतीक्षा कराता है' कह, (वही) तेज तलवार से ब्राह्मण के दो टुकड़े कर, (उसे) रास्ते पर डाल दिया। (फिर) जल्दी से उन चोरो का पीछा कर, उनके साथ युद्ध किया; और उन सब को मार कर, धन ले फिर (आपस में) दो हिस्से हो, एक दूसरे से युद्ध किया; और ढाई सौ जनो को मारा। इस प्रकार जब तक (केवल) दो जने बाकी रह गये, तब तक एक दूसरे को मारते रहे।

इस प्रकार उन (एक) सहस्र आदमियो के विनष्ट होने पर, उन दोनों जनो ने उपाय से धन को लाकर, एक ग्राम के समीप, जंगल में छिपाया। (उन दोनों में से) एक खड्ग लेकर धन की हिफाजत करने लगा। दूसरा, चावल लेकर, भात पकवाने के लिए गाँव में गया। लोभ विनाश का मूल ही है। धन के पास बैठे हुए ने सोचा—"उसके आने पर धन के दो हिस्से करने होगे। क्यो न मैं, उसे आते ही खड्ग के प्रहार से मार दूँ।" सो वह खड्ग को तैयार कर, बैठा, और उसके आने की प्रतीक्षा करने लगा। दूसरे ने भी सोचा—"उस धन के दो हिस्से (करने) होगे। सो, मैं, भात में विष मिला कर, उस आदमी को खिलाऊँ, इस प्रकार उसका प्राण नाश कर, सारे धन को अकेला ही ले लूँ।" उसने भात के तैयार हो जाने पर, अपने खा, शेष भात में विष मिला, (उसे) लेकर वहाँ गया। उसके भात उतार कर रखते ही, दूसरे ने खड्ग से दो टुकड़े करके, उसे छिपी जगह में छोड़, अपने भी उस भात को खा, वहीं प्राण गँवाये।

इस प्रकार, उस धन के कारण सभी विनाश को प्राप्त हुए। बोधिसत्त्व भी एक दो दिन में धन लेकर आ गये। (उन्होंने) वहाँ आचार्य्य को न पा, और बिखरे धन को देख (सोचा)—'आचार्य्य ने मेरी बात न मान धन बरसाया होगा। और सब विनाश को प्राप्त हुए होगे।' (यह सोच) महा-मार्ग से चले। चलते चलते आचार्य्य को, सड़क पर दो टुकड़े हुए पड़ा देख, 'मेरा कहना न मान कर मरा' (सोच) लकड़ियाँ चुन, चिता बना आचार्य्य का दाह-कर्म

किया और उसे धन-चोरों से पूछा। आगे जाकर, दोनों को मरे हुए, उनसे आगे बढ़े तो, इसी प्रकार वन में आगे भी दो जनों को मरा देख कर, सोचा—“यह दो कम एक हजार (जने) विनाश को प्राप्त हुए। दूसरे दो जने (भी) चोर होंगे, और वे भी संभल न सके होंगे। वे कहाँ गये?” सोचते हुए उनके धन लेकर जंगल में घुसने के मार्ग को देख, जाकर, गठरी बँधी धन की राशि को देखा। वहाँ एक को भात की थाली को परोस कर, मरा पाया। तब इन्होंने 'यह यह किया होगा'—यह सब जान, 'वह (दूसरा) आदमी कहाँ है?' सोचते हुए उसे भी जंगल में फेंका पड़ा देख, सोचा—हमारे आचार्य ने मेरी बात न मान, अपने बात न मानने के स्वभाव के कारण, अपने भी प्राण गँवाये, और दूसरे हजार जनों का भी नाश किया। अनुचित मार्ग से अपनी उन्नति चाहने वाला, हमारे आचार्य की तरह महाविनाश को ही प्राप्त होता है। यह सोच, यह गाथा कही—

अनुपायेन यो अत्थं इच्छति सो विहञ्ञति,
चेता हनिंसु वेदब्भं सब्बे ते ब्यसनमज्झगू॥

[जो अनुचित मार्ग से अर्थ (=धन) चाहता है, वह विनाश को प्राप्त होता है। चेतिय-देश के चोरों ने वैदर्भ ब्राह्मण को मार डाला। (और) वे सब भी मरण को प्राप्त हुए।]

सो विहञ्ञति, अनुचित रीति से, अपना अर्थ, वृद्धि, सुख चाहता हुआ (करके) अनुचित समय पर प्रयत्न करने वाला आदमी मरता है, दुःख पाता है, महाविनाश को प्राप्त होता है। चेता, चेतिय-राष्ट्र वासी चोर। हनिंसु वेदब्भं, वैदर्भ मन्त्र वाला होने के कारण, वैदर्भ नाम पड़ जाने वाले ब्राह्मण को मार दिया। सब्बे तेब्यसनमज्झगू वे भी सारे के सारे, एक दूसरे को मार कर दुःख (=व्यसन) को प्राप्त हुए।

इस प्रकार बोधिसत्व ने जैसे हमारे आचार्य अनुचित स्थान में प्रयत्न करके धन पा कर अपने प्राण नाश को प्राप्त हुए और दूसरों के भी विनाश के कारण हुए, इसी प्रकार और भी जो कोई अनुचित रीति से अपनी उन्नति

की इच्छा करके, प्रयत्न करेंगे, वे सब के सब अपने विनाश को प्राप्त होंगे, तथा औरों के विनाश के कारण बनेंगे' (वह) वन को उत्पादित कर देवताओं के "साधु-साधु" कहते समय, इस गाथा से धर्मोपदेश कर, उस धन को उपाय से अपने घर मँगवा लिया। (फिर) वे दानादि पुण्य करते हुए, जितनी आयु थी, उतने समय तक जीवित रह कर, जीवन के अन्त में, स्वर्ग मार्ग को पूरे करते (परलोक) गये।

शास्ता ने भी, 'भिक्षु ! न केवल अभी तू बात न मानने वाला है, पहले भी तू बात न मानने वाला ही रहा है, और (अपने) बात न मानने के स्वभाव के कारण महाविनाश को प्राप्त हुआ है' (कह) यह धर्म-देशना ला, जातक का सारांश निकाला। "उस समय का वेदब्भ ब्राह्मण (अब का) बात न मानने वाला भिक्षु था। शिष्य तो मैं ही था।"

४९. नक्खत्त जातक

"नक्खत्तं पतिमानेन्तं [illegible]" यह गाथा शास्ता ने [illegible] में विहार करते समय, एक आजीवक' के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

[illegible]

[illegible]

उसने 'यह मुझे बिना पूछे, पहले दिन निश्चय करके, अब मुझे पूछता है' (सोच) क्रुद्ध हो, 'अच्छा, इसे सबक सिखाऊँगा' (करके) कहा—"आज नक्षत्र अच्छा नहीं । आज मङ्गल-कर्म मत करना । यदि आज मङ्गल-कर्म करोगे, तो महाविनाश होगा ।"

उस कुल के आदमी, उस (आजीवक) की बात पर विश्वास कर, उस दिन न गये । नगर-वासियों ने सब मङ्गल-क्रिया (समाप्त) कर, उनको न आते देख, 'उन्होंने आज का दिन निश्चय किया, और वे नहीं आये । हमारा बहुत खर्चा हुआ । हमें उनसे क्या ? हम अपनी लड़की (किसी) दूसरे को दे देंगे' (सोच) उस किए कराये मङ्गल-कर्म से लड़की दूसरे को दे दी ।

जब पहले के लोगों ने अगले दिन आकर कहा—हमें लड़की दें । उन श्रावस्ती-वासियों ने, 'तुम श्रीहीन गृहस्थी पापी-मनुष्य हो । दिन का निश्चय कर (हमारा) अनादर कर नहीं आये । जिस रास्ते से आये हो, उसी रास्ते से चले जाओ । हमने, लड़की, दूसरे को दे दी है' (कह) उनका मज़ाक उड़ाया । वे, उनके साथ झगड़ा करके, जिस रास्ते आये थे, उसी रास्ते लौट गये ।

उस आजीवक द्वारा, उन मनुष्यों के मङ्गल-कर्म में बाधा डाल दी जाने की बात भिक्षुओं को मालूम हुई । वे भिक्षु धर्म-सभा में बैठे बात-चीत कर रहे थे—"आवुसो ! (उस) आजीवक ने (अमुक) कुल के मङ्गल-कर्म में बाधा डाल दी ।" शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ ! बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो ?"

उन्होंने कहा—"यह (बातचीत) ।"

(शास्ता ने) 'भिक्षुओ ! न केवल अभी यह आजीवक उस कुल के मङ्गल-कर्म में विघ्न डालने वाला है, पूर्व समय में भी इसने उन पर क्रुद्ध होकर, उनके मङ्गल-कर्म में बाधा डाली थी' —कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

५०. दुम्मेध जातक

रुचि अनुसार दिन निश्चित करके, अब मुझे पूछते हैं' (सोच) क्रुद्ध हो 'आज इनके मङ्गल-कर्म में बाधा डालूंगा' (निश्चय कर) कहा—"आज नक्षत्र अच्छा नहीं। यदि (मङ्गल-कर्म) करोगे, तो महाविनाश को प्राप्त होगे।"

वे उसकी बात पर विश्वास कर, न गये। जनपदवासियों ने उनको न आता देख, 'वे आज दिन निश्चित करके नहीं आये। हमें उनसे क्या?' (सोच) औरों को लड़की दे दी। नगरवासियों ने अगले दिन आकर लड़की माँगी। जनपदवासियों ने (उत्तर दिया)—"तुम नगरनिवासी निर्लज्ज गृहस्थ हो। दिन निश्चित करके (भी) लड़की को नहीं लेते। तुम्हें न आता देख, हमने (लड़की) दूसरों को दे दी।"

"हम आजीवक को पूछ कर, उसके नक्षत्र अच्छा नहीं है, कहने के कारण नहीं आये। (अब) हमें लड़की दो।"

"हमने तुम्हारे न आने के कारण, लड़की दूसरों को दे दी। हम दी हुई लड़की को वापिस कैसे लें।" इस प्रकार उनके आपस में एक दूसरे के साथ कलह करते समय, एक नगरनिवासी बुद्धिमान् आदमी किसी काम से देहात (=जनपद) में आया। उन नगरनिवासियों को 'हम आजीवक को पूछ कर, (उसके) 'नक्षत्र अच्छा नहीं है' कहने के कारण, नहीं आये' कहते सुन 'नक्षत्र से क्या प्रयोजन? क्या लड़की का मिलना ही नक्षत्र नहीं है?' कह, यह गाथा कही—

नक्खत्तं पतिमानेन्तं अत्थो बालं उपच्चगा,
अत्थो अत्थस्स नक्खत्तं किं करिस्सन्ति तारका ॥

["नक्षत्र देखते रहने वाले मूर्ख आदमी का काम नष्ट हो जाता है (=अर्थ जाता रहता है)। मतलब की सिद्धि (=अर्थ) ही मतलब का नक्षत्र है। तारे क्या करेंगे?"]

पतिमानेन्तं, देखते हुए के, अब नक्षत्र होगा, अब नक्षत्र होगा, इस प्रकार प्रतीक्षा करते हुए के। अत्थो बालं उपच्चगा, इस नगरनिवासी मूर्ख ने लड़की की प्राप्ति रूपक मतलब की बात (=अर्थ) गँवा दी। अत्थो अत्थस्स नक्खत्तं, जिस मतलब की भावना है उसकी प्राप्ति ही उस मतलब का नक्षत्र है। किं करिस्सन्ति तारका—दूसरे तारका के मारे क्या करेंगे? मतलब,

किस अर्थ को साधेंगे ? नगरवासी झगड़ा करके लड़की को बिना पाये ही चले गये।

शास्ता ने भी, भिक्षुओ ! न केवल अभी, यह आजीवक इस कुल के मङ्गल-कार्य्य में बाधा डालता है, (इसने) पहले भी बाधा की थी—यह धर्म-देशना लाकर मेल मिला जातक का सारांश निकाला। उस समय का आजीवक अब का आजीवक ही था। उस समय के कुल भी, यह अब के कुल ही थे। उस समय गाथा कह कर खड़े होने वाला बुद्धिमान् आदमी तो मैं ही था।

५०. दुम्मेध जातक

"दुम्मेधानं. . . ." यह गाथा, बुद्ध ने जेतवन में विहार करते समय, लोकोपकार के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

यह (कथा) बारहवें परिच्छेद की महाकण्ह जातक[1] में आयेगी।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोधिसत्व ने उस राजा की पटरानी की कोख में जन्म ग्रहण किया। माता की कोख से निकलने पर, नाम ग्रहण के दिन (उसका) नाम ब्रह्मदत्त कुमार रक्खा गया। जब वह (कुमार) सोलह वर्ष का हो गया; तो तक्षशिला जा विद्या

---

[1] जातक (४६९)

गिन कर, एक हज़ार। यञ्ञो मे उपयाचितो, मैंने देवता के पास जाकर मिन्नत मानी कि इस प्रकार यज्ञ करूँगा। इदानि खो हं यजिस्सामि, सो मैं मिन्नत (के प्रताप) से राज्य प्राप्त कर लेने के कारण अब यज्ञ करूँगा। क्यों? क्योंकि अभी बहुत अधार्मिक जन हैं। इसलिए अभी उनका बलि-कर्म करूँगा।"

अमात्यों ने बोधिसत्त्व का वचन सुन, 'देव! अच्छा' कह, बारह योजन के बाराणसी नगर में मुनादी फिरवा दी। मुनादी की आज्ञा सुनकर, एक भी दुश्शील-कर्म (=कुकर्म) करने वाला आदमी न रहा। सो जब तक बोधिसत्त्व राज्य करते रहे, तब तक एक आदमी भी पाँच या दस प्रकार के कुकर्मों में से किसी एक कर्म को भी करता न दिखाई दिया। इस प्रकार बोधिसत्त्व किसी एक भी आदमी को कष्ट न दे, सकल राष्ट्रवासियों से सदाचार की रक्षा करवाते हुए, अपने आप भी दान आदि पुण्य करते हुए, जीवन के अन्त में अपनी परिषद् को ले देव-नगर की पूर्ति करते हुए (परलोक को) गये।

शास्ता ने भी, 'भिक्षुओ! न केवल अभी तथागत लोक का उपकार करते हैं, पहले भी किया ही है' (कह) इस धर्म-देशना को ला, मेल मिला जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय की परिषद् (अब की) बुद्ध-परिषद् थी। बाराणसी-राजा तो मैं ही था।

तरह सभी प्राणियों को सन्तुष्ट करता हुआ, धर्म-पूर्वक राज्य करता। उसके एक अमात्य ने अन्तःपुर में दूषित कर्म किया। आगे चलकर, उसका पता लग गया। अमात्यों ने राजा से कहा। राजा ने ध्यान रखते हुए, अपने आप प्रत्यक्ष रूप से मालूम करके, उस अमात्य को बुलाकर कहा—"हे अन्धमूर्ख! तूने अनुचित किया है। अब तू मेरे राज्य में रहने के योग्य नहीं है। अपने धन और स्त्री-पुत्र को लेकर दूसरी जगह चला जा।" यह कह, उसे देश से निकाल दिया।

वह काशी राज्य (=राष्ट्र) को पार कर, कोशल नरेश की सेवा में रहता हुआ, क्रम से राजा का आन्तरिक विश्वासपात्र हो गया। उसने एक दिन कोशल-नरेश को कहा—"देव! वाराणसी का राज्य मक्खी-रहित शहद के छत्ते जैसा है। राजा, अत्यन्त कोमल स्वभाव हैं। थोड़ी सी ही सेना से वाराणसी राज्य जीता जा सकता है।"

राजा ने उसकी बात सुन सोचा—"वाराणसी राज्य महान् है। यह कहता है कि थोड़ी ही सेना से जीता जा सकता है। कहीं यह चर-पुरुष तो नहीं?" यह सोच कर उसे कहा—"मालूम होता है, तू चर-पुरुष है?"

"देव! मैं चर-पुरुष नहीं हूँ। यदि मेरा विश्वास न हो, तो मनुष्यों को भेज कर (काशी-नरेश के) प्रत्यन्त-ग्रामों को नाश करवाओ। (गाँव वालों) के उन आदमियों को पकड़ कर, अपने पास लाने पर, (वह राजा) उन आदमियों को धन देकर छोड़ देगा।"

राजा ने, "यह बड़ी निर्भीकता के साथ बोल रहा है, अच्छा, परीक्षा करूँगा" सोच, अपने आदमियों को भेज कर प्रत्यन्त के ग्रामों को नाश करवाया। लोगों ने चोरों को पकड़ कर वाराणसी-नरेश को दिखाया। राजा ने उन्हें देख पूछा— "तात! किस लिए गाँव का नाश करते हो?"

"देव! जीविका का कोई उपाय न होने से।"

"तो तुम मेरे पास क्यों नहीं आए? अब आगे से ऐसा मत करना" कह, उन्हें धन देकर विदा किया [illegible] को यह समाचार

[illegible]

चढ़ कर बैठे निरपराध सीलव महाराजा को उसके महल मन्त्रियों सहित पकड़वा कर (अपने आदमियों को) कहा—"जाओ, अमात्यों सहित इस राजा को, (इनके) हाथ पीछे कस करके बाँध कर, कच्चे श्मशान में ले जाओ। (वहाँ ले जा कर) गले तक गहरे गड्ढे खोद कर, जिसमें एक भी हाथ न हिलाया जा सके, वैसे रेत भर कर गाड़ो। रात को शृगाल आकर, जो इनके साथ करना योग्य है, सो करेंगे।"

मनुष्य चोर-राजा की आज्ञा सुन, अमात्यों सहित राजा को, पीछे बाहें कड़ी करके बाँध कैद कर ले गये। उस समय भी सीलव महाराज ने चोर-राजा के प्रति द्वेष-भाव तक नहीं किया। उन बाँध कर लिए जाते अमात्यों में से, राजा की बात के विरुद्ध जाने वाला, एक भी (अमात्य) न था। इतनी सुविनीत थी वह राजा की परिषद। सो वह राजपुरुष अमात्यों सहित सीलव राजा को कच्चे श्मशान में ले गये। (वहाँ) ले जा, गले तक गड्ढे खोद, सीलव महाराज को बीच में (और उसके) दोनों ओर शेष अमात्यों को; इस प्रकार सब को गढ़ों में उतार, रेत से भर, ऊपर से घन से कूट कर चले गये। सीलव महाराज ने अमात्यों को सम्बोधित करके उपदेश दिया—"तात! चोर-राजा के प्रति क्रोध न कर मैत्री-भावना ही करो।"

सो आधी रात के समय, मनुष्य मांस खाने के लिए शृगाल आ गये। उन्हें देख, राजा और अमात्यों ने, सब ने एक साथ ही शोर मचाया। शृगाल डर के मारे भाग गये। (लेकिन) ठहर कर, उन्होंने पीछे किसी को न आते देखा। सो वह फिर लौट आये। इन्होंने भी वैसे ही शोर मचाया। इस प्रकार तीन बार भाग कर, फिर देखते हुए, उनमें से किसी एक को भी पीछे न आते देख, 'यह दण्डित होंगे' (सोच), धीर बन कर लौटे। फिर उनके शोर मचाते रहने पर भी नहीं भागे।' स्यारों का सर्दार (=ज्येष्ठ शृगाल) राजा के पास पहुँचा; और बाकी दूसरों के पास। होशियार राजा ने उसे अपने समीप आने दिया, और (गीदड़ को) काटने का मौका देते हुए की तरह, गरदन को उठाया। जब स्यार गरदन काटने आया, तो उसको ठोडी की हड्डी में खींच कर यन्त्र में फँसाने की तरह, ज़ोर से पकड़ लिया। हाथी के बल समान बलवाली राजा की ठोडी की हड्डी द्वारा खींच कर गरदन से पकड़े जाने पर, स्यार (जब) अपने को छुड़ा न सका, तो वह मरने से भयभीत होकर, ज़ोर से चिल्ला

उठा। बाकी स्यार उसकी उस चिल्लाहट को सुन कर 'इसे किसी आदमी ने पकड़ लिया होगा' समझ अमात्यों के पास न फटक सकने के कारण भय के मारे भाग गये। राजा की ठोडी से अच्छी तरह करके पकड़े स्यार के इधर उधर झटके मारने से, रेत ढीली हो गई। उस शृगाल ने भी मरने से भयभीत हो, चारों पाँव से राजा के ऊपर रेत उछाली। राजा ने रेत ढीला हुआ जान, शृगाल को छोड़ दिया। (फिर वह) हाथी के समान शक्तिशाली (राजा) के इधर उधर हिलते डोलते, दोनों हाथों को निकाल, गड्ढे के मुँह की मुंडेर पर टिका, वायु से छिन्न हुए बादल की तरह (बाहर) निकल आया। निकल कर, (उसने) अमात्यों को आश्वासन दे रेत हटा, सब को निकाला। (अब) अमात्यों सहित वह, कच्चे श्मशान में खड़ा हुआ।

उस समय मनुष्य एक मृत-मनुष्य को कच्चे श्मशान में छोड़ने आकर, ऐसे दो यक्षों की सीमा के बीच में छोड़ गए। उन यक्षों ने उस मृत-मनुष्य को (आपस में) बाँट न सकने पर सोचा—'इसे हम नहीं बाँट सकते। यह शीलवान राजा धार्मिक है। यह इसे हमें बाँट कर देगा। इसके पास चलें।' (सो उन्होंने) उस मृत-मनुष्य को पाँव से पकड़ घसीटते घसीटते राजा के पास ले जा कर कहा—'देव! इसे हमें बाँट कर दें।'

'यक्षो! मैं इसे तुम्हें बाँट कर तो दे दूँ, लेकिन मैं अपवित्र हूँ। नहाऊँगा।'

यक्षों ने अपने बल से चोर-अमात्य के लिए रखा हुआ, सुगन्धित [illegible] लाकर राजा को नहाने के लिए दिया। नहा कर खड़े हुए को चोर-अमात्य के [illegible] रखे हुए चोर-अमात्य के वस्त्र लाकर दिये। उन वस्त्रों को पहने खड़े हुए को चार प्रकार की सुगन्धि की डिबिया लाकर दी। सुगन्धि का लेप करके खड़े हुए को, सोने की डिबिया में मणि-निर्मित पेटी में रखे हुए नाना प्रकार के फूल लाकर दिये। फूलों को पहन कर खड़े होने पर पूछा—'[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] जाकर चोर-अमात्य [illegible] [illegible] [illegible] लाकर दिये। [illegible]
[illegible]

धोने पर, उन्होंने चोर-राजा के लिए तैयार किया, पाँच प्रकार की सुगन्धियों से सुगन्धित पान लाकर दिया। उसको खा चुकने पर पूछा—"अब क्या करें?" "जाकर चोर-राजा के सिरहाने रक्खी माङ्गलिक-खड्ग लाओ।" वह भी जाकर ले आये। राजा ने तलवार ले, उस मृत-मनुष्य को सीधा खड़ा रखवा, माथे के बीच में तलवार से प्रहार कर, दो टुकड़े कर, दोनों यक्षों को बराबर बराबर बाँट दिया। (उन्हें) दे, तलवार धो, तैयार हो खड़ा हुआ। उन यक्षों ने मनुष्य-मास खा कर, प्रसन्न हो, सन्तुष्ट-चित्त हो, राजा से पूछा—"महाराज! तेरे लिए और क्या करें?"

"तुम अपने प्रताप से मुझे तो चोर-राजा के शयनागार में उतार दो, और इन अमात्यों को इनके अपने अपने घर पहुँचा दो।" उन्होंने 'देव! अच्छा' (कह) स्वीकार कर, वैसा ही किया।

उस समय चोर-राजा (अपने) शयनागार में शय्या पर पड़ा सो रहा था। राजा ने उस सोते हुए प्रमादी के पेट में तलवार की नोक चुभोई। उसने डर के मारे उठ, दीपक के प्रकाश में शीलव महाराज को पहचान, शय्या से उठ, होश सँभाल, खड़े हो राजा से पूछा—महाराज! इस प्रकार की रात्रि में, पहरे से युक्त, बन्द दरवाजों वाले भवन में, पहरेदारों की आज्ञा के बिना, तुम इस प्रकार तलवार बाँध, अलङ्कृत-सज कर, इस शयनागार में कैसे आये? राजा ने, जैसे आया था, सब विस्तार से कहा। चोर-राजा ने पुलकित-चित हो, "महाराज! मैं मनुष्य हो कर भी आपके गुणों को नहीं जानता, और यह दूसरों का रक्त-मांस खाने वाले, अति कठोर यक्ष आपके गुण जानते हैं। हे नरेन्द्र! मैं अब से आप ऐसे शीलवान् (=सदाचारी) के प्रति द्वेष न रक्खूँगा" (कह) तलवार ले कर शपथ ली। (फिर) राजा से क्षमा माँग, उसे महाशय्या पर सुलाया। अपने आप छोटी चारपाई पर लेटा। उसने सुबह होने पर, सूर्य के उदय होने के वक्त, मुनादी फिरवाई और सब सैनिकों तथा अमात्य-ब्राह्मण-गृहपतियों को एकत्रित करवा, उनके सम्मुख, आकाश में पूर्ण चन्द्र को उठा कर (दिखाने की) तरह शीलव राजा के गुणों को कहा। (फिर) सभा के बीच में राजा से क्षमा माँग [illegible] राज्य लौटा [illegible] (राज्य) में चोरों की गड़बड़ी [illegible] रहा। मैं पहरेदारी

करूँगा। आप राज्य करें' (कह) चुगल-खोर को दण्ड दे कर, अपनी सेना-सवारी से, अपने ही देश को चला गया।

सीलव महाराजा ने भी, अलंकृत-सजे हुए (हो), श्वेतछत्र के नीचे, सरभ मृग के पैरों सदृश पैरों वाले सोने के सिंहासन पर बैठ, अपनी सम्पत्ति को देखते हुए सोचा—"यह इस प्रकार की सम्पत्ति, हजार अमात्यों का जीवन प्रतिलाभ; यदि मैं प्रयत्न (वीर्य्य) न करता, तो यह कुछ भी न होता। प्रयत्न के बल से, मैंने इस नष्ट हुए यश को प्राप्त किया, सहस्र अमात्यों को जीवन-दान दिया। (इसलिए) बिना निराश हुए प्रयत्न ही करना चाहिए। किया गया प्रयत्न इसी प्रकार फलदायक होता है।" यह सोच उदान (=हर्ष वाक्य) स्वरूप नीचे की गाथा कही—

> आसिसेथेव पुरिसो न निब्बिन्देय्य पण्डितो,
> पस्सामि वोहं अत्तानं यथा इच्छिं तथा अहू ॥

[पुरुष आशा लगाये रखे। बुद्धिमान् आदमी निराश न हो। मैं अपने को ही देखता हूँ। जैसी इच्छा की थी, वैसा ही हुआ।]

आसिसेथेव, मैं इस प्रकार प्रयत्न करके इस दुःख से मुक्त हो जाऊँगा, अपने प्रयत्न से ऐसी आशा लगाये ही रखे। न निब्बिन्देय्य पण्डितो, बुद्धिमान् = उपाय करने में दक्ष (आदमी) उचित स्थान पर प्रयत्न करता हुआ, "मैं इस प्रयत्न का फल नहीं पाऊँगा" इस प्रकार की उत्कण्ठा न करे, आशा-छेद-कर्म न करे, यही अर्थ है। पस्सामि वोहं अत्तानं, इसमें 'वो' निपात मात्र है; मैं आज अपने को देखता हूँ। यथा इच्छिं तथा अहू, मैंने गड्ढे में गड़े हुए इच्छा की कि मैं उस दुःख से मुक्त होकर फिर राज्य लाभ करूँ। सो मैंने यह सम्पत्ति प्राप्त कर ली। जैसी मैंने इच्छा की थी वैसा [illegible] गया। इस प्रकार बोधिसत्व [illegible] है। [illegible]

[illegible]

सा। शास्ता ने मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय का
ट ग्रमात्य (पद का) देवदत्त था। सहस्र ग्रमात्य (प्रव का) बुद्ध परिषद्
। सीलव महाराज तो मैं ही था।

५२. चूल जनक जातक

"वायमेथेव पुरिसो..." यह गाथा (भी) शास्ता ने जेतवन में विहार
ते समय, हिम्मत-हार भिक्षु के ही बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

सो, उसके विषय में जो कथनीय है, वह सब महाजनक जातक[1] में आयेगा।

ख. अतीत कथा

जनक राजा ने श्वेत-छत्र के नीचे बैठे यह गाथा कही—

वायमेथेव पुरिसो न निब्बिन्देय्य पण्डितो,
पस्सामि वोहं ग्रत्तानं उदका थलमुब्भतं॥

[पुरुष प्रयत्न करे। बुद्धिमान् आदमी निराश न हो। मैं अपने को ही
ता हूँ कि मैं जल से स्थल पर आ गया।]

वायमेथेव, प्रयत्न करे ही। उदका थलमुब्भतं, जल से स्थल पर उत्तीर्ण
ना), अपने को स्थल पर प्रतिष्ठित देखता हूँ।

---

[1] जातक (५३६)

मिला कर, आने वालों को पिला कर, बेहोश करके उन्हें लूटने के विचार से दूकान सजा कर बैठे हो। खाली इस शराब की प्रशंसा भर करते हो। किसी एक को भी, उठा कर पीने की हिम्मत नहीं होती। यदि यह बिना-मिलाई (शराब) होती, तो (पहले) तुम ही पीते।" धूर्तों को भगा, अपने घर जा, 'धूर्तों की करनी तथागत से कहूँगा' (सोच), जेतवन जाकर, (तथागत से) निवेदन की। बुद्ध ने 'हे गृहपति! अब तो यह धूर्त तुझे ठगना चाहते थे, पूर्व समय में पण्डितों को भी ठगना चाहते थे' कह, उसके याचना करने पर, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोधिसत्व बाराणसी के श्रेष्ठी हुए। उस समय भी इन धूर्तों ने, इसी प्रकार सलाह कर, शराब में मिलावट मिला, बाराणसी श्रेष्ठी के आने के समय, रास्ते पर जाकर, इसी प्रकार कहा। एक ने आवश्यकता न रहने पर भी, उनकी परीक्षा करने की इच्छा से, जाकर उनकी करनी देख, 'यह ऐसा करना चाहते हैं' जान 'यहाँ से इन्हें भगाऊँगा' सोच, कहा—"धूर्तो! शराब पीकर राज-कुल जाना अनुचित है। राजा को देख कर, लौटते समय (शराब को) जानूँगा। तुम यहीं बैठे रहना।" राजा की सेवा में जाकर लौट आया। धूर्तों ने कहा—"स्वामी! इधर आयें।" उसने वहाँ जाकर, दवाई मिलाई हुई (शराब की) बोतलों को देख, कहा—"अरे! धूर्तो! तुम्हारी करनी मुझे अच्छी नहीं लगती। तुम्हारी शराब की बोतलें जैसी की तैसी भरी ही रखी हैं। तुम केवल शराब की प्रशंसा भर करते हो, लेकिन पीते नहीं। यदि यह अच्छी (शराब) होती, तो तुम भी पीते। लेकिन इसमें विष मिला होगा" इस प्रकार उनके मनोरथ को छिन्न-भिन्न करते हुए यह गाथा कही—

> तथेव पुण्णा पातियो अञ्ञायं वत्तते कथा,
> आकारकेन जानामि न चायं भद्दिका सुरा ॥

[शराब की [illegible] जैसी की तैसी भरी रखी थीं)। जो यह

शराब की प्रशंसा (=कथा) दूसरे ही मतलब से है। मैं रंग ढंग से जानता हूँ कि यह शराब अच्छी नहीं है।]

तथैव, मैंने इन्हें जैसा जाते समय देखा, यह शराब की चाटियाँ, अब भी वैसी ही भरी हैं। अञ्ञायं वदते कथा, यह जो तुम्हारी शराब की प्रशंसा की बात है, वह अन्य है=असत्य है=झूठ है। यदि यह शराब अच्छी होती, तो तुम भी पीते, (केवल) आधी चाटियें बाकी बचती। लेकिन तुम में से किसी एक ने भी शराब नहीं पी। आकारकेन जानामि, सो मैं इस बात से जनता हूँ। न चायंभद्दिका सुरा, यह शराब अच्छी नहीं, इसमें विष मिला हुआ होगा।

इस प्रकार धूर्तों को ले, जिसमें यह फिर वैसा न करें, उनको लताड़, छोड़ दिया। वह जीवन रहते, दानादि पुण्य करके यथा-कर्म (परलोक) गया।

बुद्ध ने यह धर्म-देशना कह, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय के धूर्त (अब के) धूर्त थे। लेकिन उस समय वाराणसी का सेठ मैं ही था।

५४. फल जातक

"नायं रुक्खो दुरारुहो. . . ." यह गाथा, बुद्ध ने जेतवन में विहार करते समय, एक फल (पहचानने में) हुशियार उपासक के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक श्रावस्ती-वासी गृहस्थ ने, बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को निमन्त्रित कर, अपने आराम में बिठा यवागु-खाद्य दे (अपने) माली को आज्ञा दी, कि भन्ते भिक्षुओं के साथ बाग में घूम इन आमों का दान आदि नाना प्रकार के फल

दे। वह 'अच्छा' (कह) स्वीकार कर, भिक्षु-संघ को साथ ले, उद्यान में फिरते हुए, वृक्ष को देख कर ही जान लेता कि यह कच्चा फल है, यह अच्छी तरह पका नहीं, यह अच्छी तरह पका है। जिसे वह जैसा कहता, वह वैसा ही निकलता। भिक्षुओं ने जाकर तथागत से निवेदन किया—"भन्ते! यह माली फल (पहचानने में) दक्ष है। पृथ्वी पर खड़े ही खड़े वृक्ष को देख कर ही, जान लेता है, 'यह फल कच्चा है, यह अच्छी तरह नहीं पका, यह अच्छी तरह पका है' जिसे, वह जैसा कहता है, वह वैसा ही निकलता है।" बुद्ध ने, 'हे भिक्षुओ! केवल यह माली ही फल (पहचानने में) दक्ष नहीं, पूर्व समय में पण्डित (जन) भी फल (पहचानने में) दक्ष थे' कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्व (एक) श्रेष्ठी-कुल में उत्पन्न हुए। उन्होंने आयु-प्राप्त होने पर, पाँच सौ गाड़ियों से, वाणिज्य करते हुए, एक समय जंगल में से गुजरने वाले महामार्ग से, जंगल के मुख-द्वार पर खड़े हो, सभी मनुष्यों को एकत्रित कर कहा—"इस जंगल में विष-वृक्ष होते हैं, विष-पत्र, विष-पुष्प, विष-फल, तथा विष-मधु होते हैं। यदि कोई ऐसा पत्र, पुष्प या फल हो, जिसे तुमने पहले न खाया हो, उसे बिना मुझ से पूछे मत खाना।" वह 'अच्छा' (कह) स्वीकार कर जंगल में प्रविष्ट हुए। जंगल में प्रविष्ट होते ही, एक ग्राम-द्वार पर एक किम्पक्क नामक वृक्ष था। उस (वृक्ष) के तने, शाखा, पत्ते, फूल, फल, सब आम की तरह के थे। न केवल रंग और आकार में, किन्तु गन्ध और रस में भी। (इस वृक्ष के) कच्चे पक्के फल आम के फल के सदृश ही थे। लेकिन खाने पर हलाहल विष की तरह, उसी समय प्राणों का नाश कर देते थे। आगे आगे जाते हुए कुछ लोभी आदमियों ने 'यह आम के वृक्ष हैं' समझ, फल खाये। कुछ ने 'सार्थवाह के सरदार को पूछ कर खायेंगे' हाथ में लिये खड़े रहे। उन्होंने सार्थवाह (सार्थवाह के सरदार) के पास पहुँच पूछा—"आर्य! इन आम के फलों को खायें?" बोधिसत्व ने यह जान कि यह आम का वृक्ष नहीं है, 'यह आम-वृक्ष नहीं, यह किम्पक्क वृक्ष है, मत खाओ' (कह) मना किया। जिन्होंने खाये थे, उन्हीं को उसी क्षण उन्हें वमन-करा पिला अच्छा किया। (उनमें)

पहले, मनुष्य उस वृक्ष के नीचे निवास कर, 'यह आम्रफल है' (करके) उन विष-फलों को खा, (अपने) प्राण गँवाते । अगले दिन ग्रामवासी निकल, मृत-मनुष्यों को देख, उन्हें पाँव से पकड़, छिपे हुए स्थान पर फेंक, गाड़ियों सहित, जो कुछ उनके पास होता, सब ले जाते ।

उस दिन भी उन्होंने अरुणोदय के समय ही निकल 'बैल मेरे होंगे, गाड़ी मेरी होगी, सामान मेरा होगा' (करके) जल्दी से उस वृक्ष के नीचे पहुँच, मनुष्यों को निरोगी देख पूछा—'तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि यह वृक्ष आम्र-वृक्ष नहीं है ?' उन्होंने कहा—'हम नहीं जानते । हमारा ज्येष्ठ सार्थवाह जानता है ।' मनुष्यों ने बोधिसत्व से पूछा—'हे पण्डित ! तूने कैसे जाना कि यह वृक्ष आम का वृक्ष नहीं है ?" उसने दो बातों से जाना कह, यह गाथा कही—

नायं रुक्खो दुरारुहो न पि गामतो आरका,
आकारकेन जानामि नायं सादुफलो दुमो ॥

[न तो यह वृक्ष चढ़ने में दुष्कर है, न ही गाँव से दूर है । इन दो बातों से मैं जानता हूँ कि यह स्वादु फलों का वृक्ष नहीं ।]

नायं रुक्खो दुरारुहो, यह विष-वृक्ष चढ़ने में दुष्कर नहीं है, उद्यम कर, जैसे सीढ़ी रखी हो, वैसे चढ़ा जा सकता है । न पि गामतो आरका, ग्राम से दूर भी नहीं है, अर्थात् ग्राम के समीप ही है । आकारकेन जानामि, इन दो प्रकार की बात से मैं इस वृक्ष को पहचानता हूँ कि नायं सादुफलो दुमो, यदि यह मधुरफल आम्र-वृक्ष हो, तो इस प्रकार आसानी से चढ़ सकने योग्य (तथा) ग्राम के पास हो, तो इस (वृक्ष) पर एक भी फल न रहे । फल खाने वाले मनुष्य, इसे नित्य ही घेरे रहें । इस प्रकार मैंने अपने ज्ञान से परीक्षा करके जाना कि यह विष-वृक्ष है । इस प्रकार उस (समूह) को धर्मोपदेश कर, उसने सकुशल मार्ग ग्रहण किया ।

बुद्ध ने भी, 'हे भिक्षुओ ! इस प्रकार पहले भी पण्डित (-जन) फल (पह-चानने में) दक्ष हुए हैं' (कह) इस धर्म-देशना को कह, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया । उस समय की परिषद् (अब की) बुद्ध परिषद् ही थी । लेकिन सार्थवाह मैं ही था ।

५५. पंचावुध जातक

"यो अलीनेन चित्तेन...." यह (गाथा) बुद्ध ने जेतवन में विहार करते समय (एक) हिम्मत-हार भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस भिक्षु को बुद्ध ने बुलाकर, पूछा—'हे भिक्षु ! क्या तू सचमुच हिम्मत-हार बैठा ?' उसके 'भगवान् ! सचमुच' कहने पर, 'हे भिक्षु ! पूर्व समय में बुद्धिमान् लोग हिम्मत करने की जगह हिम्मत करके राज-सम्पत्ति के स्वामी हुए।' यह (शास्ता ने) पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्व, उसकी पटरानी की कोख से उत्पन्न हुए। उसके नामकरण के दिन, एक सौ आठ ब्राह्मणों की सब कामनायें पूरी कर, उनसे उसके लक्षण (=चिन्ह) पूछे गये। चिह्न (देखने में) दक्ष ब्राह्मणों ने, उसकी चिह्न-सम्पत्ति को देख कहा—"महाराज ! कुमार पुण्यवान् है। तुम्हारे बाद राज्य प्राप्त करेगा। पाँच शस्त्रों के चलाने में प्रसिद्ध हो, जम्बूद्वीप में अग्र-पुरुष होगा।" ब्राह्मणों की बात सुन, कुमार का नाम रखने वालों ने, उसका नाम पञ्चावुधकुमार रक्खा। सो उसके होश सँभालने पर, सोलह वर्ष का होने पर, राजा ने बुलाकर, कहा—तात ! शिल्प सीख।

"देव ! किस के पास सीखूँ ?"

"तात ! जा, गन्धार देश के तक्षशिला नगर में लोक-प्रसिद्ध आचार्य के पास जा कर सीख। यह उस आचार्य का भाग (=फीस) देना" (कह) हजार (मुद्रा) देकर भेजा।

उसने वहाँ आकर शिल्प सीख, आचार्य के दिये हुए पाँच शस्त्र ले, आचार्य को प्रणाम कर, तक्षशिला[1] नगर से निकल, पंच हथियार बंद (हो) वाराणसी का रास्ता लिया। मार्ग में वह, श्लेषलोम यक्ष से अधिकृत एक जङ्गल (के द्वार) पर पहुँचा। तो उसे जङ्गल के द्वार पर देख, मनुष्यों ने रोका—"भो ! माणवक ! इस जङ्गल में मत प्रविष्ट हो। इस जङ्गल में श्लेषलोम (नामक) यक्ष है। वह जिस किसी मनुष्य को देखता है, उसे मार डालता है।"

बोधिसत्व अपने को जाँचते हुए, निर्भीक केसरसिंह की तरह, जङ्गल में घुस ही गया। उसके जङ्गल में प्रवेश करने पर, उस यक्ष ने (अपने) ताड़ जितना (ऊँचा) हो, घर जितना (बड़ा) सिर, कटोरो जितनी (बड़ी बड़ी) आँखें, और मकुल की कली जितने बड़े दाँत बना, श्वेतमुख, चितकबरे पेट और नीले हाथ पाँव वाला हो, अपने आपको बोधिसत्व को दिखाकर कहा—"कहाँ जाता है ? ठहर, तू मेरा आहार है।" बोधिसत्व ने, "यक्ष ! मैंने (अपने सामर्थ्य का) अन्दाजा लगा कर यहाँ प्रवेश किया है। तू सँभल कर मेरे नजदीक आना, मैं तुझे विष में बुझे हुए तीर से बींध कर यहीं गिरा दूँगा" (कह) धमका, हलाहल विष से बुझा हुआ तीर चला कर छोड़ा। वह (उसके) यक्ष के रोमों में ही चिपक गया। उसके बाद दूसरा... इस प्रकार पचास तीर छोड़े। सब उसके रोमों में ही चिपक रहे। यक्ष उन सभी तीरों को हिला- डुला, अपने पैरों के नीचे गिरा, बोधिसत्व के समीप आया।

बोधिसत्व ने फिर भी [illegible] कर खड्ग निकाल कर प्रहार किया। तैंतीस अंगुल लम्बी खड्ग रोमों में ही चिपक गई। तब उस पर भाले से प्रहार किया। वह भी रोमों में ही चिपक गया। उसके भी चिपक जाने पर मुद्गर से प्रहार किया। वह भी रोमों में ही चिपक गया। उसके भी चिपक जाने पर कहा, "हे यक्ष ! क्या तूने मुझ पंचायुध-कुमार का नाम नहीं सुना ? मैं तेरे अधिकृत जङ्गल में प्रवेश करते समय धनुष आदि का भरोसा कर प्रवेश नहीं किया है, मैंने अपने ही भरोसे पर प्रवेश किया है, सो आज मैं

---

[1] रावलपिण्डी [illegible] ।

तुझे मार कर चूर्ण-विचूर्ण करूँगा।" यह निश्चय प्रगट कर, ऊँचा शब्द करते हुए, दाहिने हाथ से यक्ष पर प्रहार किया। हाथ (भी) रोमो में चिपक गया। बायें हाथ से प्रहार किया। वह भी चिपक गया। दायें पैर से प्रहार किया। वह भी चिपक गया। बायें पैर से प्रहार किया, यह भी चिपक गया। 'सिर से टक्कर मार कर, उसे चूर्ण-विचूर्ण करूँगा' (सोच) सिर से प्रहार किया। वह सिर भी रोमो में चिपक गया।

वह पाँच जगह चिपका हुआ, पाँच जगह बँधा हुआ, लटकता हुआ भी, निर्भय ही रहा। यक्ष ने सोचा—"यह एक पुरुष-सिंह है, पुरुष-आजानीय है, साधारण आदमी नहीं। मेरे सदृश नाम वाले यक्ष के पकड़ने पर भी डरता तक नहीं। मैंने इस मार्ग पर हत्या करते हुए, इससे पहले, एक भी ऐसा आदमी नहीं देखा। यह क्यो नहीं डरता?" सो उसने, उसे खाने की रुचि न होने के कारण, उससे पूछा—"माणवक! तू मरने से किस लिए नहीं डरता?" "यक्ष! मैं क्यो डरूँगा? एक जन्म में एक बार मरना तो निश्चित ही है। और मेरी कोख में (एक) वज्र-आयुध है। यदि मुझे खायेगा, तो तू उस आयुध को न पचा सकेगा। वह आयुध, तेरी आँतों के टुकड़े टुकड़े कर, तुझे मार डालेगा। इस प्रकार (यदि मरेंगे) तो दोनो मरेंगे। इस कारण से (भी) मैं नहीं डरता हूँ।" यह बोधिसत्त्व ने अपने अन्तर के ज्ञान-आयुध के बारे में कहा।

यह सुन यक्ष ने सोचा—"यह माणवक सत्य कहता है। मेरी कुक्षि इसके शरीर का मूँगे के बीज जितना मास का टुकड़ा भी हजम न कर सकेगी। मैं इसे छोड़ दूँ।" (यह सोच) मरने के भय से भयभीत उसने बोधिसत्त्व को छोड़ते हुए कहा—"माणवक! तू पुरुष-सिंह है। मैं तेरा मास नहीं खाऊँगा। आज तू राहु-मुख से मुक्त चन्द्रमा की तरह मेरे हाथ से छूट कर, जाति-सुहृद-मण्डल को प्रसन्न करता हुआ जा।"

बोधिसत्त्व ने कहा—यक्ष! मैं तो जाऊँगा ही, लेकिन तू पूर्व जन्म में भी कुकर्म करके, क्रूर, रक्त-पाणी, दूसरो का रक्त-मास खाने वाला होकर उत्पन्न हुआ, यदि इस जन्म में भी कुकर्म ही करेगा, तो अन्धकार से अन्धकार में जायेगा। अब मुझसे भेंट होने के बाद से तू कुकर्म नहीं कर सकता। प्राण-घात-कर्म नरक में पशुयोनि में प्रेत योनि में असुर योनि में उत्पत्ति का कारण

होता है। मनुष्य योनि में उत्पन्न होने पर आयु क्षय करने वाला होता है। इस प्रकार पाँचों प्रकार के कुकर्मों के दुष्परिणाम और पाँचों प्रकार के सुकर्मों के शुभ-परिणाम कह, बहुत सी बातों से यक्ष को डरा, धर्मोपदेश कर, दमन कर, विषयों से पृथक् कर, पाँचों शीलों में प्रतिष्ठित कर, उसीको उस जंगल का बलि-प्रतिग्राहक देवता बना, प्रमाद रहित रहने का उपदेश कर, जंगल से निकलते हुए, जंगल के द्वार पर रहने वाले मनुष्यों को यह (वृत्तान्त) कह, पाँचों हथियार बाँध वाराणसी गया। वहाँ माता पिता को देख, आगे चल कर राज्य पर प्रतिष्ठित हो, धर्मानुसार राज्य करते हुए, दानादि पुण्य करते हुए, यथाकर्म (परलोक) गया।

शास्ता ने भी इस धर्म-देशना को ला अभिसम्बुद्ध होने की अवस्था में यह गाथा कही—

> यो अलीनेन चित्तेन अलीनमनसो नरो,
> भावेति कुसलं धम्मं योगक्खेमस्स पत्तिया;
> पापुणे अनुपुब्बेन सब्बसंयोजनक्खयं॥

[जो कोई उत्साही पुरुष योगक्षेम (=अर्हत्व; निर्वाण) की प्राप्ति के लिए उत्साह-युक्त चित्त से, शुभ धर्म करता है; वह क्रमानुसार सर्व संयोजनों के क्षय को प्राप्त होता है।]

सो इसका संक्षेपार्थ यह है जो कोई आदमी अलीनेन, उत्साह-युक्त चित्तेन स्वभाव से ही उत्साही होकर (और भी) उत्साही हो, दोष-रहित होने से कुशल (=शुभ)—सैंतिस बोधिपाक्षिक[1]—धर्मों की भावना करता है,

---

[1] चार स्मृति-उपस्थान (१कायानुपश्यना २वेदनानुपश्यना ३चित्तानुपश्यना ४धर्मानुपश्यना) ; चार सम्यक् प्रधान (१संवरप्रधान २प्रहाणप्रधान ३भावनाप्रधान ४अनुरक्षणाप्रधान) ; चार ऋद्धिपाद (१छन्द २वीर्य [illegible] [illegible]

चारो योगों से क्षेमकर निर्वाण की प्राप्ति के लिए, विशाल चित्त से विदर्शना में अनुयुक्त होता है, वह इस प्रकार सब संस्कारों में अनित्यता, अनात्मता, तथा दुखपन को मान, नई विदर्शना से आरम्भ करके, उत्पन्न बोधिपाक्षिक धर्मों की भावना (=अभ्यास) करते हुए, क्रमानुसार एक भी संयोजन बाकी न छोड़, सब संयोजनों* का क्षय करने वाले, चतुर्थ मार्ग के अन्त में उत्पन्न होने के कारण, 'सब संयोजनों के क्षय' कहे जाने वाले, अर्हत्व को प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार बुद्ध ने अर्हत्व को धर्म-देशना में प्रधान स्थान दे, चारों आर्य-सत्यों को प्रकाशित किया। सत्यों (के प्रकाशन) के अन्त में, वह भिक्षु अर्हत्व को प्राप्त हुआ। शास्ता ने भी मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय का यक्ष (अब का) अङ्गुलिमाल था। पञ्चावुधकुमार नाम वाला (तो) मैं ही था।

५६. कंचनक्खन्ध जातक

"यो पहट्ठेन चित्तेन .." यह गाथा, शास्ता ने श्रावस्ती में विहरते हुए, एक भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक श्रावस्तीवासी कुल-पुत्र शास्ता की धर्म-देशना सुन (त्रि-)रत्न शासन में अत्यन्त श्रद्धा से प्रव्रजित हुआ। उसके आचार्य्य उपाध्यायों ने

(१सम्यक् दृष्टि, २सम्यक् सङ्कल्प, ३सम्यक् वाचा, ४सम्यक् कर्मान्त, ५सम्यक् व्यायाम, ६सम्यक् आजीविका, ७सम्यक् स्मृति, ८सम्यक् समाधि)

* संयोजन दस हैं

कहा—"हे आयुष्मान् ! शील (=सदाचार) एक प्रकार का होता है, दो प्रकार का, तीन प्रकार का, चार प्रकार का, पाँच प्रकार का, छः प्रकार का, सात प्रकार का, आठ प्रकार का, नौ प्रकार का, दस प्रकार का, इस तरह कई प्रकार का होता है। यह चूल-शील है, यह मध्यम-शील है, यह महा-शील है, यह प्रातिमोक्ष-संवर-शील है, यह इन्द्रिय-संवर-शील है, यह आजीविका-परिशुद्ध-शील है, यह प्रत्यय-प्रतिसेवन-शील है, इसे शील कहते हैं।" उसने सोचा—'यह बहुत से शील हैं। मैं इतने शीलों को अपने ऊपर ले, उनके अनुसार आचरण न कर सकूँगा। यदि शीलों के अनुसार आचरण न करूँ, तो प्रव्रजित होने का ही क्या फल? मैं गृहस्थ होकर दानादि पुण्य कर्म करूँगा, स्त्री-बच्चों का पालन करूँगा।' यह सोच उसने कहा—"भन्ते ! मैं शील न रख सकूँगा। शील न रख सकने वाले के लिए प्रव्रज्या का क्या अर्थ? मैं गृहस्थ होऊँगा। अपना पात्र चीवर ले लें।"

उन्होंने कहा—"आयुष्मान् ! यदि ऐसा है, तो बुद्ध को प्रणाम करके जाओ।" (यह कह) वे, उसे धर्म-सभा में बुद्ध के पास ले गये। बुद्ध ने देखते ही पूछा—"भिक्षुओ ! क्यों इस अनिच्छुक भिक्षु को लेकर आये हो?"

"भन्ते ! यह भिक्षु 'मैं शील नहीं रख सकूँगा' (कह) पात्र-चीवर लौटाता है। सो हम इसे लेकर आये हैं।"

"भिक्षुओ ! तुम किस लिए इस भिक्षु को बहुत से शील कहते हो? यह जितना रख सकेगा उतना रखेगा। अब से तुम इसको कुछ न कहो। इसके जो करना उचित है [illegible]" (यह कह) "हे भिक्षु ! आ, तुझे बहुत [illegible] "भन्ते ! रख सकूँगा।"
[illegible]

[illegible]

होने के कारण मुझे समझा न सके। सम्यक्-सम्बुद्ध ने अपने सुबुद्ध होने के कारण, धर्म-राजा होने के कारण, उतना ही शील, तीन ही हारों में बाँट कर, मुझे स्वीकार करा दिया। शास्ता ने मेरी बाँह पकड़ ली। (इस प्रकार) विदर्शना (भावना) की वृद्धि कर, कुछ ही दिनों में अर्हत्व को प्राप्त हुआ।

उस समाचार को सुन धर्म-सभा में बैठे भिक्षु (आपस में) बातचीत करने लगे—"आयुष्मानो! 'शील न रख सकूँगा' करके गृहस्थ होने के लिए तैयार भिक्षु को; शास्ता ने सब शीलों को तीन ही हिस्सों में बाँट, वे शील उससे स्वीकार करा, उसे अर्हत्व-पद लाभ करा दिया।" (यह कह) 'अहो! बुद्ध आश्चर्य-कारक-मनुष्य होते हैं' कहते हुए बुद्ध-गुणों की प्रशंसा करने लगे। शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ! यहाँ बैठे क्या बात-चीत कर रहे थे?" "यह बात-चीत" कहने पर, "भिक्षुओ! बहुत भारी वजन भी हिस्से करके देने पर, हलका प्रतीत होता है, पूर्व समय में भी बुद्धिमान् बड़ा सा सोने का ढेर पाकर, उठाने में असमर्थ हो, बाँट कर उठा कर ले गये" कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्व एक गाँव में कृषक हुए। वह एक दिन एक ऐसे खेत में, जहाँ पहले ग्राम बसा हुआ था, खेती करते थे। पूर्व समय में, उस गाँव में एक धनी श्रेष्ठी, जाँघ जितने मोटे, चार हाथ चौड़े (गड़े) में सोने का ढेर गाड़ कर मर गया था। उससे बोधिसत्व का हल टकरा कर रुक गया। उसने 'जड़ होगी' समझ, रेत को हटा कर उसे देखा। उसे फिर भी रेत से ढक, दिन भर हल चलाता रहा। सूर्यास्त होने पर, हल, जोत आदि को एक ओर रख, 'सोने के ढेर को ले जाऊँगा' सोच, उसे उठा कर न ले जा सका। तब, उसने उस ओर बैठ 'इतना पेट भरने के लिए होगा, इतना गाड़ कर रखूँगा, इतना व्यापार (?) में लगाऊँगा। इतना दान-पुण्य करने के [illegible] —इस प्रकार चार हिस्से किये। [illegible] हो गए। वह [illegible]

कर्म करके यथाकर्म (परलोक) गया। भगवान् ने इस धर्म-देशना को कह, अभिसम्बुद्ध हुए रहने के समय, यह गाथा कही—

यो पहट्ठेन चित्तेन पहट्ठमनसो नरो
भावेति कुसलं धम्मं योगक्खेमस्स पत्तिया,
पापुणे अनुपुब्बेन सब्ब संयोजनक्खयं॥

[जो प्रसन्न-चित्त नर, सन्तुष्ट चित्त से योग-क्षेम (=निर्वाण) की प्राप्ति के लिए पुन-धर्म की भावना करता है, वह क्रम से सब संयोजनों के क्षय को प्राप्त होता है।]

पहट्ठेन, नीवरण (=चित्तमैल) रहित होने से, पहट्ठमनसो, उसी नीवरण-रहित होने से, प्रसन्न-चित्त=सोने की तरह से चमक कर समुज्ज्वलित=प्रभा-युक्त चित्त होकर—यही अर्थ है।

इस प्रकार बुद्ध ने महंत्व को सिरे पर रख, देशना को समाप्त कर, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय सोने का ढेर प्राप्त करने वाला मनुष्य मैं ही था।

५७. वानरिन्द जातक

"यस्सेते चतुरो धम्मा. . . ." यह गाथा, बुद्ध ने वेणुवन में विहार करते समय, देवदत्त द्वारा किये गये वध करने के प्रयत्न के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उसी समय बुद्ध ने देवदत्त वध करने का प्रयत्न करता है' सुन है भिक्षुओ!

न केवल अभी देवदत्त मेरे वध करने का प्रयत्न करता है, (उसने) पहले भी किया था, लेकिन त्रास मात्र भी उत्पन्न नहीं कर सका' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व वानर योनि में उत्पन्न हो, बड़ा हो, घोड़े के बच्चे जितना (बड़ा) हुआ। वह शक्ति-सम्पन्न हो, अकेला घूमता हुआ, नदी के किनारे रहने लगा। उस नदी के बीच में एक द्वीप था, जिसमें आम, पनस आदि नाना प्रकार के फलों के वृक्ष लगे हुए थे। बोधिसत्व हाथी की तरह शक्तिशाली होने से, नदी के इस किनारे से उछल कर, द्वीप के इस ओर नदी के बीच में पड़े एक पत्थर पर जाकर, गिरता, वहाँ से उछल कर, उस द्वीप में जाकर गिरता। वहाँ, नाना प्रकार के फल खा कर, शाम को उसी ढंग से वापिस लौट कर, अपने निवास-स्थान पर रह कर, अगले दिन फिर वैसा ही करता। इसी प्रकार वहाँ रहता था।

उस समय स्त्री सहित एक मगरमच्छ, उसी नदी में रहता था। उसकी स्त्री ने, बोधिसत्व को आरपार जाते देख, बोधिसत्व के हृदय-मांस में दोहद उत्पन्न कर, मगरमच्छ से कहा—"आर्य ! इस वानरेन्द्र के हृदय-मांस में दोहद (=खाने की बलवती इच्छा) उत्पन्न हुआ है।"

मगरमच्छ 'भरी ! अच्छा, मिलेगा' कह 'आज शाम को उसे द्वीप से लौटते ही पकड़ूँगा' (सोच) पाषाण के ऊपर जाकर पड रहा।

बोधिसत्व ने दिन भर चर कर शाम को द्वीप में खड़े ही खड़े, पत्थर को देख सोचा—"क्या कारण है ? आज पत्थर कुछ ऊँचा दिखाई दे रहा है ?" उसने पहले ही पानी और पत्थर का अन्दाज अच्छी तरह लगा लिया था। सो उसके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ—"आज इस नदी का पानी न घट रहा है, न बढ़ रहा है, लेकिन यह पत्थर बड़ा हुआ दिखाई दे रहा है। कहीं (आज) यहाँ मेरे पकड़ने के लिए मगरमच्छ तो नहीं पड़ा है ?" 'अच्छा ! उसकी परीक्षा करूँगा' सोच, उस ने, वहीं खड़े ही खड़े, पत्थर के साथ बात-चीत करने की भाँति, 'अरे ! पाषाण !' पुकार कर, उत्तर न मिलने पर तीन बार 'अरे!

पाषाण!' पुकारा। पाषाण क्या उत्तर देता? लेकिन फिर भी उस वानर ने पूछा—"अरे! पाषाण! क्या आज मुझे उत्तर न देगा?"

मगरमच्छ ने सोचा—'और दिनों यह पत्थर निश्चय से इस वानरेन्द्र को प्रत्युत्तर देता रहा है। आज मैं इसे उत्तर दूँगा" सोच, पूछा "अरे वानर! क्या है?"

"तू कौन है?"

"मैं मगरमच्छ हूँ।"

"यहाँ तू किस लिए बैठा है?"

"तेरे हृदय-मांस की इच्छा से।"

बोधिसत्व ने, 'और मेरे लिए जाने का रास्ता नहीं है, आज मुझे इस मगरमच्छ को धोखा देना चाहिए' सोच उसे कहा—'सौम्य! मगरमच्छ! मैं अपने को तुझे समर्पित करूँगा। तू मुँह खोल कर, अपने समीप आने के समय मुझे ग्रहण करना।" मगरमच्छ के मुँह खोलने के समय, उसकी आँखें बन्द हो जाती हैं। उसने उस बात का ख्याल न कर, मुँह खोला। उसकी आँखें मुँद गईं। वह मुँह खोल कर, आँखें मीच कर पड़ रहा। बोधिसत्व ऐसा जान, द्वीप से उछल, जाकर मगरमच्छ के मस्तक पर गिर, वहाँ से उछल, बिजली की तरह चमकता हुआ दूसरे किनारे जा खड़ा हुआ। मगरमच्छ ने यह आश्चर्य देख, 'इस वानरेन्द्र ने अति आश्चर्य किया' सोच कहा—'अरे! वानरेन्द्र! इस लोक में जिन आदमियों में चार बातें होती हैं वह अपने शत्रु को जीत लेता है, वह चारों बातें तेरे अन्दर हैं।' यह कह गाथा कही—

> यस्सेते चतुरो धम्मा वानरिन्द! यथा तव,
> सच्चं धम्मो धिति चागो दिट्ठं सो अतिवत्तति॥

[वानरेन्द्र! जैसे यह तुझ में हैं वैसे जिस आदमी में यह चार बातें होती हैं—सत्य, धर्म, धृति और त्याग—वह शत्रु को जीत लेता है।]

[illegible]

धम्मो, विचार-बुद्धि, ऐसा करने पर, ऐसा होगा, यह तेरी विचार-बुद्धि। धृति, कहते हैं अखण्ड प्रयत्न को, सो यह भी तुझ में है। चागो, आत्म-परित्याग, तू तो अपना आत्मसमर्पण कर, मेरे पास आया; यदि मैं तुझे ग्रहण न कर सका, तो उसमें मेरा ही दोष है दिट्ठं, शत्रु। सो अतिवत्तति, जिस आदमी में, जैसे यह तुझ में हैं, उसी प्रकार चारों धर्म (=गुण) विद्यमान होते हैं, वह आदमी जैसे तू आज मुझे लाँघ कर चला गया, उसी प्रकार, अपने शत्रु को लाँघ जाता है, जीत लेता है।

इस प्रकार मगरमच्छ बोधिसत्व की प्रशंसा कर, अपने निवास-स्थान को गया। शास्ता ने, 'हे भिक्षुओ ! न केवल अभी देवदत्त मेरे वध के लिए प्रयत्नशील हुआ, पहले भी हुआ, कह, यह धर्म-देशना ला, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया।' उस समय का मगरमच्छ (अब का) देवदत्त था। उसकी भार्य्या (अब की) चिञ्चा माणविका; और वानरेन्द्र तो मैं ही था।

५८. तयोधम्म जातक

"यस्सेते . . " यह गाथा भी, बुद्ध ने वेळुवन में विहार करते समय, वध करने का प्रयत्न करने वाले के ही बारे में कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, देवदत्त वानर योनि में उत्पन्न होकर, हिमवन्त प्रदेश में वानरों के समूह का नायक होने की अवस्था में, अपने (वीर्य्य) से उत्पन्न वानर-पोतकों को, दाँत से काट कर खस्सी कर डालता, ताकि कहीं वह समूह का नायकत्व न करें। उस समय

बोधिसत्व ने, उसी (के वीर्य) से एक बन्दरी की कोख में गर्भ धारण किया। वह बन्दरी 'गर्भ हुआ' जान, गर्भ की रक्षा के लिए एक दूसरे पर्वत पर चली गई। गर्भ परिपक्व होने पर, उसने बोधिसत्व को जन्म दिया। वह बड़ा होने पर, होश आने पर शक्तिधारी हुआ।

उसने एक दिन माँ से पूछा—"माँ! मेरा पिता कहाँ है?"

"तात! अमुक पर्वत पर बानरों के समूह का नेतृत्व करता हुआ रहता है।"

"माँ! मुझे उसके पास ले चल।"

"तात! तू पिता के पास नहीं जा सकता; क्योंकि तेरा पिता इस डर से कि कहीं वह समूह का नेतृत्व न करें, अपने (वीर्य) से उत्पन्न हुए बानर-पोतकों को, दाँत से काट कर, खस्सी कर डालता है।"

"माँ! मुझे, उसके पास ले चल, मैं देखूँगा।"

वह पुत्र को लेकर, उसके पास गई। उस बानर ने अपने पुत्र को देख, सोचा—बड़ा होकर यह मुझे नेतृत्व न करने देगा, अभी इसे नष्ट करना योग्य है। जो गले मिलने के बहाने से, इसे जोर से भींच कर मार डालूँगा। यह सोच 'तात! आ, इतने समय तक कहाँ रहा?' कह, बोधिसत्व को गले लगाते हुए की तरह दबाया। बोधिसत्व, हाथी के सदृश बलवाला था। उसने भी उसे दबाया। तो उसकी हड्डियाँ टूटने वाली सी हो गईं। तब उसने सोचा—यह बड़ा हो, मुझे मार डालेगा, किस उपाय से इसे, उससे पहले ही मार डालूँ? तब उसे ख्याल आया—'यह पास ही राक्षस-गृहीत तालाब है। वहाँ इसे राक्षस को खिलवा दूँ।' तो उसने उसे कहा—'तात! मैं बूढ़ा हो गया। यह बानर-समूह तुझे सौंपूँगा। आज ही तुझे राजा बनाऊँगा। अमुक स्थान पर एक तालाब है। उसमें दो कुमुदिनियाँ हैं, तीन उत्पल हैं, पाँच पद्म हैं। जा, वहाँ से फूल ले आ।' उसने 'तात! अच्छा, लाऊँगा' कह, जाकर, सहसा (तालाब में) उतरे बिना चारों ओर पैरों के चिन्हों को देखते हुए, केवल उतरने के पैरों के चिन्हों को देखा, चढ़ने के पैरों के चिन्हों को नहीं।

'यह तालाब राक्षस-गृहीत तालाब होगा। मेरा पिता अपने असमर्थ होने के कारण, राक्षस से मुझे मरवा देना चाहता होगा। मैं इस तालाब में बिना उतरे ही फूल ले जाऊँगा।' वह सूखी जगह पर जा, वहाँ से दौड़ कर छलाँग मार कर दूसरे तीर जाते हुए, पानी के ऊपर से ही ऊपर से दो फूलों को तोड़ कर ले

दूसरी ओर आ गिरा। दूसरी ओर से इस ओर आते हुए, उसी उपाय से दो (और) फूल ले लिये। इस प्रकार दोनों ओर ढेर लगाते हुए, फूल ले लिये, लेकिन (वह) राक्षस की सीमा के भीतर नहीं उतरा। 'अब इससे अधिक न उठा सकूँगा' सोच, उसने उन फूलों को लेकर एक स्थान पर एकत्रित करना आरम्भ किया। उसे देख, उस राक्षस ने सोचा 'मैंने इतने समय तक इससे पूर्व ऐसा बुद्धिमान्, आश्चर्यंकर मनुष्य नहीं देखा। (इसे) जितनी आवश्यकता थी, उतने फूल भी ले लिये, और मेरी सीमा के भीतर भी नहीं आया।' उसने पानी को दो भाग फाड़ कर, पानी में से ऊपर निकल, बोधिसत्त्व के पास आ, 'हे वानरेन्द्र! इस लोक में जिस आदमी में यह तीन गुण होते हैं, वह अपने शत्रु को जीत लेता है, वह तीनों गुण तुझ में हैं' (कह) बोधिसत्त्व की प्रशंसा करते हुए यह गाथा कही—

> यस्स एते तयो धम्मा वानरिन्द! यथा तव,
> दक्खियं सूरियं पञ्ञा दिट्ठं सो अतिवत्तति॥

[वानरेन्द्र! जैसे यह तुझ में हैं, वैसे जिस आदमी में यह तीन बातें हैं—दक्षता, शौर्य, और प्रज्ञा—वह शत्रु को जीत लेता है।]

दक्खियं दक्षता—अर्थ यानि पर उसके नाश करने के उपाय के ज्ञान से युक्त पराक्रम। सूरियं, शौर्य निर्भयता का पर्यायवाची। प्रज्ञा, प्रज्ञापन—उपाय—प्रज्ञा का पर्यायवाची।

इस प्रकार उस उदक राक्षस ने इस गाथा से बोधिसत्त्व की स्तुति कर (उसे) पूछा—'यह फूल किस लिये ले जा रहा है?'

"मेरे पिता मुझे राजा बनाना चाहते हैं, सो उसके लिये ले जा रहा हूँ।" "तेरे जैसे उत्तम आदमी को (स्वयं ये) फूल उठा कर ले जाना [illegible] देना। मैं ले चलूँगा कह, उठाकर (वह) उसके पीछे पीछे हो लिया।

उसके [illegible] ने दूर से ही उसे देख सोचा—'मैंने इसे राक्षस [illegible] [illegible] भोजन बनेगा [illegible] यह [illegible] के फूल उठवा कर ला रहा है। [illegible] मुझे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] किया।

भेरी बजा। वह पिता के मना करने पर भी, 'भेरी शब्द से ही चोरों को भगाऊँगा' (कह) निरन्तर ही बजाता रहा। चोरों ने पहले तो भेरी का शब्द सुन ऐश्वर्य्य-शालियों की भेरी होगी' समझ, भाग गये। लेकिन लगातार भेरी का शब्द सुन 'यह ऐश्वर्य्य-शालियों की भेरी नहीं हो सकती' (सोच) आकर, उन दो ही जनों को देख लूट लिया। बोधिसत्त्व ने 'कठिनाई से मिला हुआ धन, लगातार (भेरी) बजाने वाले ने नष्ट कर दिया' कह, यह गाथा कही—

> धमे धमे नातिधमे अति धन्तं हि पापकं,
> धन्तेन सतं लद्धं अतिधन्तेन नासितं ॥

[(भेरी) बजाये, लेकिन बहुत न बजाये। लगातार (भेरी) बजाना बुरा है। (भेरी) बजाने से सौ (मुद्रायें) मिलीं, बहुत बजाने से वह नष्ट हो गईं।]

धमे धमे, ध्वनि करे, न ध्वनि न करे, भेरी बजाये, न बजाना न करे। नाति धमे, सीमा का उल्लंघन कर, निरन्तर ही न बजाये, किस लिए ? अति धन्तं हि पापकं निरन्तर भेरी बजाना अब हमारे लिए बुरा सिद्ध हुआ। धन्तेन सतं लद्धं, नगर में भेरी बजाने से सौ कार्षापण मिला। अतिधन्तेन नासितं, लेकिन अब मेरे पुत्र ने मेरी बात न मान, जो जंगल में लगातार बजाया, उससे सब नष्ट हो गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना कह, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय का पुत्र (अब का) बात न मानने वाला भिक्षु था, लेकिन पिता मैं ही था।

पहला परिच्छेद

७. इत्थि वर्ग

६१. असातमन्त जातक

"असा लोकित्थियो नाम.. " यह गाथा शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय (एक) आसक्त चित्त भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस (भिक्षु) की कथा उम्मदन्ति जातक[1] में आयेगी। बुद्ध ने उस भिक्षु को "हे भिक्षु! स्त्रियाँ, असाध्वी, असती, पापी, निकृष्ट होती हैं, तू इस प्रकार की पापी स्त्री(-जाति) के प्रति क्यों आसक्त हुआ है?" कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व गान्धार देश (=राष्ट्र) में, तक्षशिला में ब्राह्मणकुल में जन्म ग्रहण कर, बालिग होने पर तीनों वेदों तथा सब शिल्पों में सम्पूर्णता प्राप्त कर, लोक-प्रसिद्ध आचार्य हुआ। उस समय बाराणसी में एक ब्राह्मण कुल में, पुत्र की उत्पत्ति के दिन, निरन्तर प्रज्वलित आग रक्खी गई। जब वह ब्राह्मण-कुमार १६ वर्ष का हुआ, तब उसके माता-पिता ने कहा—"पुत्र! हमने तेरी उत्पत्ति के दिन, आग जलाकर रख दी थी। यदि ब्रह्म-लोक जाने की इच्छा है, तो उस आग को लेकर, जंगल में जा, अग्नि-देवता को नमस्कार करना हुआ

---

[1] उम्मदन्ति जातक (५२७)

ब्रह्म-लोक-परायण हो। यदि गृहस्थ होना चाहता है, तो तक्षशिला जाकर वहाँ लोक-प्रसिद्ध आचार्य से शिल्प सीख (घर आ) कुटुम्ब का पालन-पोषण कर।" माणवक (=ब्रह्मचारी) ने 'मैं जंगल में प्रविष्ट हो, अग्नि की परिचर्या न कर सकूँगा, मैं कुटुम्ब ही पालूँगा' विचारा। माता-पिता को नमस्कार कर, आचार्य की एक हजार की फीस[1] के साथ वह तक्षशिला, गया, और शिल्प सीख कर वापिस लौट आया। उसके माता-पिता को उसके गृहस्थ होने की इच्छा नहीं थी। वह चाहते थे कि वह वन में (जाकर) अग्नि(-देवता) की परिचर्या करे। सो, उसकी माता ने उसे स्त्रियों के दोष दिखा कर, जंगल को भेजने की इच्छा से सोचा—'यह आचार्य पण्डित है, व्यक्त है। वह मेरे पुत्र को स्त्रियों के दोष बता सकेगा।" (यह सोच) पूछा—'तात ! तू ने शिल्प सीखा ?

"अम्मा ! हाँ।"

"असात-मन्त्र भी तूने सीखे ?"

"अम्मा ! नहीं सीखे।"

'तात ! यदि तूने 'असात-मन्त्र' नहीं सीखे, तो तूने क्या सीखा ? जा, सीख कर आ।"

वह 'अच्छा' कह, फिर तक्षशिला की ओर चल दिया।

उस आचार्य की भी, एक सौ बीस वर्ष की बूढ़ी माता थी। वह, उसे अपने हाथ से नहला, खिला, पिला, उसकी सेवा करता था। अन्य मनुष्य उसे वैसा करते देख, घृणा करते। उसने सोचा—'मैं जंगल में प्रवेश कर, वहाँ माता की सेवा करता रहूँ।" सो, उसने, एक एकान्त जंगल में, पानी मिलने की जगह पर, पर्णशाला बनवाई। वहाँ घी चावल आदि मँगवा कर अपनी माता को ले आया, और उसकी सेवा करता हुआ रहने लगा।

वह माणवक भी तक्षशिला में पहुँच, वहाँ आचार्य को न देख 'आचार्य ! कहाँ है ?' पूछा। उस समाचार को सुन कर वहाँ गया, और (आचार्य)को प्रणाम कर खड़ा हुआ। उस आचार्य ने (पूछा)—'तात ! किस लिए

---

[1] फीस (आचार्य-भाग)।

बहुत जल्दी (लौट) आया ?"

"आपने मुझे 'मसान-मन्त्र' नहीं सिखाया न ?"

"तुझे किस ने कहा कि 'मसान-मन्त्र' सीखना चाहिए ?"

"आचार्य्य ! मेरी माता ने ।"

बोधिसत्व ने सोचा—"मसान-मन्त्र तो कोई मन्त्र नहीं है। इसकी माता, इसे स्त्रियों के दोषों को विदित करा देना चाहती होगी।"

"तो, अच्छा तात ! तुझे मसान-मन्त्र दूँगा" (वह) उसने कहा—"आज से आरम्भ करके, तू मेरे स्थान पर, मेरी माता को नहलाने, खिलाने, पिलाने, उसकी सेवा करना। हाथ, पैर, सिर और पीठ दबाने (=मलने) हुए, 'आर्ये ! बूढ़ी होने पर भी तेरा शरीर ऐसा है, तो जवानी में (यह शरीर) कैसा रहा होगा ?' (वह) शरीर दबाने के समय, हाथ पैर आदि के वर्ण की प्रशंसा करना। और, जो कुछ तुझे मेरी माता कहे, वह बिना लज्जा के, बिना छिपाये, मुझे कहना। ऐसा करने से मसान-मन्त्रों की प्राप्ति होगी, न करने से नहीं होगी।" उसने 'आचार्य्य ! अच्छा' कह, उसकी बात मान, उस समय से आरम्भ करके, जैसा जैसा कहा था, वैसा वैसा किया।

उस माणवक के बार बार प्रशंसा करने पर, उस अन्धी, जराजीर्ण के मन में काम उत्पन्न हो गया—"यह माणवक मेरे साथ रमण करना चाहता होगा।" उसने एक दिन अपने शरीर-वर्ण की प्रशंसा करने वाले माणवक से पूछा—"मेरे साथ रमण करना चाहता है ?"

"आर्ये ! मैं रमण करने की इच्छा तो करूँ, लेकिन आचार्य्य का भय है।"

"यदि, मुझे चाहता है, तो मेरे पुत्र को मार डाल।"

"मैंने आचार्य्य के पास इतना शिल्प सीखा, कैसे, मैं केवल कामासक्ति के कारण उनको मारूँगा ?"

"अच्छा, तो यदि तू मेरा परित्याग न करे, तो मैं ही उसे मार दूँगी।"

सो स्त्रियाँ, ऐसी असाध्वी, पापी, निकृष्ट होती हैं। वैसी उमर में भी चित्त में रागोत्पत्ति के कारण, काम का अनुकरण करती हुई, ऐसे उपकारी पुत्र को मारने को तैयार हो गई। माणवक ने बोधिसत्त्व को वह सब बात कह दी। 'माणवक ! तू ने अच्छा किया, जो मुझे बता दिया' (कह) माता का आयु-संस्कार देख, वह 'आज ही मर जायगी' जान, (माणव को) कहा—"माण-

दव ! आ, उसकी परीक्षा करें।" (यह कह) उसने एक गूलर का वृक्ष छील कर, अपने जितना (बड़ा) काठ का पुतला बनाया। उसे सिर सहित ढक कर, अपने सोने की जगह पर लम्बा लिटा दिया, और रस्सी बाँध कर, अपने शिष्य को कहा—'तात ! कुल्हाड़ा ले जा कर, मेरी माता को इशारा कर।'

माणवक ने जाकर कहा—"आर्ये ! आचार्य, पर्णशाला में अपनी शय्या पर सोते हैं, मैंने रस्सी की निशानी बाँध दी है। यदि सामर्थ्य हो, तो इस कुल्हाड़े को ले जाकर मार।"

'तू मुझे छोड़ेगा नहीं न ?"

"किस लिए छोड़ूँगा ?"

उसने कुल्हाड़े को ले, काँपती हुई उठ कर, रस्सी के साथ साथ जा, हाथ से छू कर, 'यह मेरा पुत्र है' करके, काठ के पुतले के मुँह पर से कपड़े हटा, कुल्हाड़े को ले, 'एक ही प्रहार से मारूँगी' सोच, गरदन पर ही मारा। 'ठन' करके शब्द हुआ। उसे पता लग गया कि लकड़ी है।

बोधिसत्व के, 'माँ ! क्या करती है ?' पूछने पर, 'मैं ठगी गई' कह वह वहीं गिर कर मर गई। अपनी पर्णशाला में पड़ी रहने पर भी, उस क्षण, उसको मरना ही था। बोधिसत्व ने उसका मृत होना जान, शरीर-कृत्य कर, आदाहन (=आग) बुझा, वन-पुष्पों से पूजा कर, माणवक सहित पर्णशाला के द्वार पर बैठ, (माणवक) को कहा—'तात ! असात-मन्त्र कोई पृथक मन्त्र नहीं है। स्त्रियाँ असात्वी (=असाता) होती हैं। तेरी माता ने तुझे असात-मन्त्र सीख कर आ, (करके) जो मेरे पास भेजा है, वह स्त्रियों के दोष जानने के ही लिए भेजा है। सो तूने अब प्रत्यक्ष ही, मेरी माता के दोष देख लिए हैं। इसलिए तू जान ले कि स्त्रियाँ असाध्वी, पापिनी होती हैं।" इस प्रकार उपदेश कर, उसे विदा किया। वह माणवक भी आचार्य को प्रणाम कर, माता-पिता के पास गया। उसकी माता ने पूछा—'असात-मन्त्र सीखे ?"

'अम्म ' हाँ।

"तो अब क्या करेगा ? प्रव्रजित हो अग्नि-परिचर्या करेगा, या गृहस्थ हो रहेगा"

[illegible]

से काम नहीं, मैं प्रव्रजित होऊँगा" (वह) माणवक ने अपने अभिप्राय को प्रकाशित करते हुए, यह गाथा कही—

> असा लोकित्थियो नाम वेला तासं न विज्जति,
> सारत्ता च पगब्भा च सिखी सब्बघसो यथा,
> ता हित्वा पब्बजिस्सामि विवेकमनुब्रूहयं ॥

[लोक में स्त्रियाँ असाध्वी होती हैं। उनका कोई समय नहीं होता। जैसे दीपक की शिखा सब को जला देने (=खा लेने) वाली होती है; वैसी ही वह रागानुरक्त तथा प्रगल्भ होती हैं। मैं उन्हें छोड़, अपनी शान्ति (=विवेक) की वृद्धि करता हुआ प्रव्रजित होऊँगा।]

असा, असतियाँ=पापिनियाँ, अथवा 'सात' कहते हैं सुख को, सो वह उनमें नहीं। जो उनमें अनुरक्त हो, उसे वह सुख नहीं देती, इसलिए भी असाता, दुःखदायिनी, यह अर्थ है। इस अर्थ की प्रामाणिकता के लिए यह सूक्त उद्धृत करना चाहिए—

> "माया चेसा मरीची च सोको रोगो चुपद्दवो,
> खरा च बन्धना चेसा मच्चुपासो गुहासयो
> तासु यो विस्ससे पोसो सो नरेसु नराधमो ॥

[वे माया हैं, मरीचि हैं, शोक हैं, रोग हैं, उपद्रव हैं, कठोर हैं, बन्धन हैं, मृत्यु-पाश हैं, गुह्य-आशय हैं। जो मनुष्य उनका विश्वास करे, वह नरों में अधम नर है।]

लोकित्थियो, लोक (=संसार) में स्त्रियाँ। वेला तासं न विज्जति, अम्मा! उन स्त्रियों को कामासक्ति होने पर, वेला (=समय), संवर (=संयम), मर्यादा, सन्तुष्टि नहीं। सारत्ता च पगब्भा च, पञ्चकामों में अनुरक्त होने पर, एक तो इनकी कोई वेला नहीं होती, वैसे ही काय-प्रगल्भता, वाक्-प्रगल्भता, और मन की प्रगल्भता—इन तीन से युक्त होने के कारण प्रगल्भ। इनमें काय-संयम, वाक्-संयम अथवा मन का संयम नहीं। लोभी, (तो यह) कौओं के समान होती हैं। सिखी सब्बघसो यथा, अम्म! जैसे ज्वाला-शिखा वा 'शिखी' कहलाने वाली अग्नि, गूँह (गूथ) आदि गन्दगी भी, घी, मक्खन,

६२. अंडभूत जातक

'यं ब्राह्मणोति. . ' यह गाथा (भी) जेतवन में विहार करते समय (एक) आसक्त चित्त भिक्षु के ही बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उसे 'भिक्षु ! क्या तू सचमुच आसक्त है' पूछा। 'सचमुच' कहने पर 'भिक्षु ! स्त्रियाँ (सँभाल कर) रक्खी नहीं जा सकती। पूर्व समय में पण्डित लोग (=बुद्धिमान्) स्त्रियों को (उनके) गर्भ से ही सँभाल कर रखने की कोशिश करते हुए भी, न रख सके' कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्व, उसकी अग्र पटरानी की कोख से जन्म ग्रहण कर, वयस्क होने पर, सभी शिल्पों में सम्पूर्णता प्राप्त कर, पिता के मरने पर, राज्य पर प्रतिष्ठित हो, धर्म पूर्वक राज्य करने लगा। वह पुरोहित के साथ जूआ खेला करता था, और खेलते समय इस द्यूत-गीत (जुये के गीत) को कह कर चाँदी के तख्ते पर सोने के पासे फेंकता था—

सब्बा नदी वङ्कगता, सब्बे कट्ठमया वना,
सब्बित्थियो करे पापं, लभमाना निवातके ॥

[सभी नदियाँ टेढ़ी हैं, सभी वनों में लकड़ी है। मौका मिलने पर सभी स्त्रियाँ पाप-कर्म करती हैं।]

इस प्रकार खेलते हुए राजा सदैव जीतता, पुरोहित की हार होती। क्रम से घर की सम्पत्ति नाश होती देख, पुरोहित सोचने लगा—इस प्रकार तो इस

घर का सब धन नष्ट हो जायगा, मैं एक ऐसी स्त्री को ढूँढ कर घर में रक्खूँ, जो दूसरे पुरुष के पास न जावे।" फिर उसे यह ख्याल आया—"मैं किसी ऐसी स्त्री को, जिसने पहले किसी दूसरे पुरुष को देखा हो, (सँभाल कर) न रख सकूँगा। इस लिए मैं एक स्त्री को उसके गर्भ से आरम्भ करके, रख कर, उसकी आयु होने पर, उसे अपने वश में कर, (और) उसे एक ही पुरुष वाली रख, उसके गिर्द कड़ा पहरा लगा, राजा के कुल से धन ले आऊँगा।" वह अङ्ग-विद्या में हुशियार था। सो, उसने एक दरिद्र गर्भिणी स्त्री को देख, 'लड़की उत्पन्न करेगी' जान, उसे बुला, खर्चा दे, घर में रक्खा। फिर उसके प्रसूत होने पर, उसे धन दे, प्रेरित कर, वह लड़की किन्हीं दूसरे आदमियों को न देखने देकर, स्त्रियों के ही हाथ में दे, उसका पालन-पोषण करा, बड़ी होने पर, उसे अपने वश में कर लिया। जब तक वह (लड़की) बढ़ती रही, तब तक वह राजा के साथ जूआ नहीं खेला, लेकिन लड़की को अपने वश में कर लेने पर, पुरोहित ने राजा से कहा—महाराज! जूआ खेलें। राजा ने 'अच्छा' कह, पूर्व प्रकार से ही खेला। पुरोहित ने राजा के गा कर पासा फेंकने के समय कहा—'मेरी माणविका के अतिरिक्त।" उस समय से पुरोहित जीतता, राजा की हार होती।

बोधिसत्व ने सोचा 'इसके घर में एक पुरुष-वाली एक स्त्री होनी चाहिए।' पता लगाने पर 'ऐसी स्त्री है' जान, इसके सदाचार को तुड़वाऊँगा, (सोच) एक धूर्त को बुलाकर पूछा—'पुरोहित की स्त्री का शील तोड़ सकता है?"।

"देव! तोड़ सकता हूँ।" सो राजा ने उसे धन दे 'जल्दी कर' कह, भेजा।

उसने राजा से धन ले, गन्ध, धूप, चूर्ण, कपूर आदि ख़रीद, उस (पुरोहित) के घर के समीप सब सुगन्धियों की दूकान लगाई। पुरोहित का घर सात तलों का तथा सात ड्योढ़ियों वाला था। सभी ड्योढ़ियों पर स्त्रियों का ही पहरा था। ब्राह्मण को छोड़ कर और कोई आदमी घर में नहीं घुस सकता था। कूड़ा फेंकने की टोकरी भी, देख कर ही अन्दर आने जाने दी जाती। उस माणविका को, केवल वह पुरोहित ही देख सकता था। (हाँ), उसकी एक स्त्री परिचारिका थी। वह परिचारिका गन्ध पुष्प, खरीद कर ले जाती हुई उस धूर्त की दुकान के समीप से [illegible] उस धूर्त ने यह उसकी परिचा-रिका है [illegible]

उसके पैरों में गिर, दोनो हाथों से पैरो को ज़ोर से पकड़, 'माँ ! इतने समय तक तू कहाँ रही' कह, रोना (आरम्भ) किया।

दोष लगे हुए धूर्तों ने भी एक ओर खड़े हो कहा—"हाय, पैर, मुँह की बनावट और रंग-ढंग (=आकल्प) से माता-पुत्र एक ही जैसे हैं।" उनको कहते सुन, उस स्त्री ने अपने में अविश्वास कर, 'यह मेरा पुत्र (ही) होगा' (सोच) स्वयं भी रोना शुरू कर दिया। वे दोनों कांद कर, रो कर एक दूसरे को गले लगा कर खड़े हुए। तब उस धूर्त ने पूछा—"माँ! तू कहाँ रहती है?"

"तात ! मैं किन्नर-लीला से रहने वाली, श्रेष्ठ-सुन्दरी, पुरोहित की तरुण-स्त्री की सेवा-सुश्रूषा करती हुई रहती हूँ।"

"माँ ! अब कहाँ जा रही है ?"

"उसके लिए फूल-माला आदि लेने।"

"माँ, तुझे और जगह जाने की क्या ज़रूरत है ? अब से तू मेरे ही पास से ले जाया कर" (कह) बिना मूल्य लिये ही, बहुत से पान-पत्र आदि तथा नाना प्रकार के फूल दिये।

माणविका ने उसे बहुत से गन्ध-पुष्प आदि लाते देख, पूछा—"अम्म ! क्या आज हमारा ब्राह्मण प्रसन्न है ?"

"ऐसा क्यों कहती है ?"

"इनकी अधिकता देख कर।"

"ब्राह्मण ने अधिक मूल्य नहीं दिया, मैं इन्हें अपने पुत्र के पास से लाई हूँ।"

उस समय से, ब्राह्मण का दिया हुआ मूल्य अपने पास रख कर, उसी (पुत्र) के पास से गन्ध फूल आदि ले जाती थी। कुछ दिन व्यतीत होने पर, धूर्त बीमारी का बहाना बना पड़ रहा। उसने उसकी दूकान के दरवाज़े पर जा, उसे न देख, पूछा—"मेरा पुत्र कहाँ है ?"

"तेरे पुत्र को बीमारी हो गई है।"

उसने, जहाँ वह लेटा हुआ था, वहाँ जाकर, उसकी पीठ मलते हुए पूछा—"तात ! तुझे क्या बीमारी है ?" वह चुप रहा। "बेटा ! कहता क्यों नहीं ?"

"माँ ! प्राण निकलने को आयें, तो भी तुझे नहीं कह सकता।"

"तात ! यदि मुझसे नहीं कहेगा, तो किसे कहेगा ?"

"माँ ! मुझे और कोई रोग नहीं है। तुमसे उस माणविका (के सौन्दर्य)

के बीच में खड़े होकर कहा—"ब्राह्मण ! मैं तुझे छोड़ किसी अन्य पुरुष के हस्त-स्पर्श को नहीं जानती हूँ । मेरे इस सत्य (के बल) से, यह अग्नि मुझे न जलाये ।" यह कह, वह आग में घुसने को तैयार हुई ।

उसी क्षण उस धूर्त ने, "देखो ! इस पुरोहित-ब्राह्मण के काम को; इस प्रकार की माणविका को आग में जलाना (=प्रवेश कराना) चाहता है" कहते हुए, उस माणविका को हाथ से पकड़ लिया । उसने हाथ छुड़ा पुरोहित से कहा—"आर्य ! मेरी सत्य-क्रिया टूट गई । अब मैं आग में प्रवेश नहीं कर सकती । कैसे ? आज मैंने यह सत्य-क्रिया की कि अपने स्वामी को छोड़ कर, मैं किसी के हस्त-स्पर्श को नहीं जानती । और, अब मुझे इस आदमी ने हाथ से पकड़ लिया ।"

ब्राह्मण जान गया कि इसने मुझे धोखा दिया है । सो, उसने उसे पीट कर, निकलवा दिया ।

यह स्त्रियाँ ऐसी असद्धर्मिणी होती हैं । कितना बड़ा भी पाप-कर्म हो, उसे करके, अपने स्वामी को ठगने के लिए, 'नहीं, मैं ऐसा नहीं करती हूँ' करके प्रति दिन शपथ खाती हैं । (इस प्रकार) यह अनेक चित्तों वाली होती हैं । इसी-लिए कहा गया है—

> चोरीनं बहुबुद्धीनं यासु सच्चं सुदुल्लभं,
> थीनं भावो दुराजानो मच्छस्सेवोदके गतं ॥
> मुसा तासं यथा सच्चं सच्चं तासं यथा मुसा,
> गावो बहूतिणस्सेव ओमसन्ति वरं वरं ॥
> चोरियो कठिना हेता वाळा चपलसक्खरा,
> न ता किञ्चि न जानन्ति यं मनुस्सेसु वञ्चनं ॥

[ऐसी स्त्रियाँ—जो चोर हैं, अति-बुद्धि हैं, जिनमें सत्य का मिलना दुर्लभ है,—उनका भाव, जल में गई मछली (के पद-चिन्ह) की तरह दुर्ज्ञेय है । उनको झूठ वैसा ही है, जैसा सत्य (और) उनको सत्य वैसा ही है, जैसा झूठ । यह बहुत तृण के होने पर, गौओं के अच्छा ही अच्छा (खाने की तरह), नये नये (आदमी) के साथ रमती हैं । यह चोर, कठोर, हिंस्र-प्राणी सदृश, चपलता में कङ्कड़ सदृश (स्त्रियाँ) मनुष्यों के ठगने (की सब विधियों) को जानती हैं ।]

लिए गये। उनके खेलते ही खेलते सूर्यास्त का समय हो गया। बादल घिर गये। आदमी, बादलों को देखकर, इधर उधर भाग गये। श्रेष्ठी की लड़की के दासों, नौकरों ने सोचा—"आज हमें इससे छुट्टी पानी चाहिए (=इसकी पीठ देखनी चाहिए)।" (यह सोच) वह, उसे जल के भीतर ही छोड़, स्वयं घर चले आये। वर्षा (=देव) बरसी। सूर्य भी अस्त हो गया। अँधेरा छा गया। उन्होंने उस (लड़की) के बिना ही घर लौट कर, "वह कहाँ है?" पूछने पर कहा—"गङ्गा से तो पार हो गई थी, फिर हम नहीं जानते कि कहाँ चली गई।" रिश्तेदारों को ढूंढ़ने पर भी पता नहीं लगा।

वह चीख़ती-चिल्लाती, पानी में बहती बोधिसत्त्व की पर्ण-शाला के समीप पहुँची। उसने उसका शब्द सुन सोचा—'यह स्त्री का शब्द है, मैं इसे बचाऊँगा।" (और) उसने तिनकों की मशाल ले, नदी के किनारे जा, उसे देख, 'डर मत, डर मत' (कहा)। तब आश्वासन दे, (अपने) हाथी सदृश बल से, नदी को तैरते हुए, जाकर, उसे उठा लाया; और आग बना कर दी। शीत दूर हो जाने पर मधुर फल-मूल लाकर दिये। उनके खा चुकने पर पूछा—"कहाँ की रहने वाली है? कैसे गङ्गा में गिर पड़ी?" उसने वह हाल कह दिया। उसे 'तू यहीं रह' (कह) दो तीन दिन पर्णशाला में रखा; और स्वयं खुले में रहे। दो तीन दिन के बाद कहा—"अब जा।" यह 'इस तपस्वी का ब्रह्मचर्य्य तोड़, इसे साथ लेकर जाऊँगी' (सोच) न गई। समय बीतते बीतते स्त्री-माया और स्त्री-लीला दिखा, उसने, उस तपस्वी का ब्रह्मचर्य्य नष्ट कर, उसके 'ध्यान' का लोप कर दिया। वह उसे लेकर जंगल में ही रहने लगा। तब उसने उसे कहा—"आर्य! हमें जंगल में रहने से क्या (लाभ)? आबादी की जगह पर चलें।" वह उसे लेकर एक सीमान्त के ग्राम में गया। और वहाँ मट्ठा बेच कर जीविका कमा, उसे पालने लगा। तक्र बेच कर जीविका करने से, उसका नाम तक्र-पण्डित पड़ गया। ग्राम-वासियों ने उसे खर्चा दे, 'हमें उचित अनुचित बताते हुए यहाँ रह' (कह) ग्राम-द्वार पर एक कुटिया बनवा, उसमें बसाया।

उस समय चोर पर्वत से उतर कर आस पास लूट-मार किया करते थे। एक दिन उन्होंने उस गाँव को लूटा और ग्राम वासियों से ही उनका सामान उठवा कर, जाते समय उस श्रेष्ठी की लड़की को भी अपने निवास-स्थान को

ले गये ।' (यहाँ जा) बाकी सब जनों को तो छोड़ दिया; लेकिन चोरों के सरदार ने उसके रूप पर मुग्ध हो, उसे अपनी भार्य्या बना लिया। बोधिसत्व ने पूछा—"अमुक नामक कहाँ रही ?"

"चोरों के सरदार ने पकड़ कर, अपनी भार्य्या बना ली ।" यह सुन कर भी बोधिसत्व 'वह मेरे बिना वहाँ नहीं रहेगी, भाग कर आ जायगी' (सोच) उसकी प्रतीक्षा करता रहा । श्रेष्ठी की लड़की ने भी सोचा—'मैं यहाँ सुख से रह रही हूँ । कहीं वह तक्क-पण्डित किसी काम से यहाँ आकर, मुझे यहाँ से ले न जाये, और मैं इस सुख से वञ्चित हो जाऊँ। सो मैं उसे चाहती हूँ (करके) उसे बुलवा कर, मरवा दूँ ।" (यह सोच) उसने एक आदमी को बुला कर संदेशा भेजा—"मैं यहाँ दुखी हूँ । तक्क-पण्डित आकर मुझे ले जाये ।"

उसने उस संदेश को सुन, उस पर विश्वास कर लिया, और जाकर ग्राम के द्वार पर पहुँच खबर भेजी । उसने बाहर आ, उसे देख, कहा—"आर्य्य ! यदि हम इस समय भागेंगे, तो चोरों का सरदार हमारा पीछा कर, हम दोनों को मार देगा । इस लिए रात को भागेंगे ।" (यह कह) उसे लिया, खिला कर कमरे में बिठाया । शाम को चोरों के सरदार के आकर, शराब पी कर, मस्त होने पर पूछा—"स्वामी ! यदि इस समय अपने प्रतिद्वन्द्वी को देख पाओ, तो क्या करो ?"

"यह करूँगा—यह करूँगा" ।

"तो क्या वह दूर है ? क्या वह कमरे में नहीं बैठा है ?" चोरों के सरदार ने मशाल ले, वहाँ जा कर, उसे देख, पकड़, घर के बीच में गिरा कर, कुहनी आदि से यथेच्छ पीटा । वह पिटते समय, और कुछ न कह कर, केवल इतना ही कहता—'कोधना, अकतञ्ञू च पिसुणा मित्तदूभिका (=क्रोधी, अकृतज्ञ, चुगलखोर, मित्रों में फूट डालने वाली) । चोर ने उसे पीटा, बाँध कर डाल दिया और अपने खा कर सो रहा । उठने पर शराब का नशा उतरने पर फिर उसे पीटना शुरू कर दिया ।

वह भी केवल वह चार शब्द ही कहता रहा । चोर ने सोचा— यह इस प्रकार [illegible] यह चार शब्द ही कहता है । मैं इस से [illegible] —

"भो ! तू इस प्रकार पीटे जाने पर भी किस लिए केवल यह चार शब्द ही कहता है ?"

तक्क-पण्डित ने 'तो सुन' (कह) वह सब बात शुरू से कही। "मैं पहले वन में रहने वाला एक ध्यानी, तपस्वी था। सो मैंने इसे गङ्गा में बही आती हुई को निकाल कर, पाला। इसने मुझे प्रलोभन दे, ध्यान से च्युत किया। मैं जंगल छोड़, इसका पालन-पोषण करता हुआ सीमान्त के ग्राम में रहने लगा। सो इसने चोरों द्वारा यहाँ लाने पर 'मैं दुख से रह रही हूँ, मुझे आकर ले जाओ' मेरे पास सदेश भेज, (मुझे यहाँ बुला) अब तुम्हारे हाथ में फँसा दिया। इस वजह (=कारण) से, मैं ऐसा कहता हूँ।"

चोर सोचने लगा—"जिसने इस प्रकार के गुणवान्, उपकारी (आदमी) के साथ इस प्रकार का बर्ताव किया, वह मेरे साथ क्या उपद्रव न करेगी ? इसे हटाना चाहिए।" उसने तक्क-पण्डित को आश्वासन दे, उसे जगा, तलवार ले 'चल, इस पुरुष को ग्राम-द्वार पर मारूँगा' कह, उसके साथ ग्राम से बाहर जा, 'इसे हाथ से पकड़' (कह) उस (पुरुष) को, उसके हाथ में पकड़ाते हुए, तलवार लेकर तक्क-पण्डित को मारते हुए की तरह, उसी के दो टुकड़े कर दिये। (फिर) सिर से नहा कर, कुछ दिन तक तक्क-पण्डित को प्रणीत भोजन से सन्तर्पित कर पूछा—"अब कहाँ जायेगा ?"

तक्क-पण्डित ने कहा—"मुझे गृहस्थ से मतलब नहीं। ऋषि-प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो, उसी जंगल में रहूँगा।"

"तो मैं भी प्रव्रजित होऊँगा।" दोनों जने प्रव्रजित हो, उस अरण्य में जा कर, पाँच अभिज्ञा और आठ समापत्तियाँ प्राप्त कर, जीवन के अन्त में ब्रह्म-लोकगामी हुए। शास्ता ने यह दो कथायें कह, मेल मिला, अभिसम्बुद्ध होने की अवस्था में यह गाथा कही—

> कोधना अकतञ्ञू च पिसुणा च विभेदिका,
> ब्रह्मचरियं चर भिक्खु ! सो सुखं न विहाहिसि

[भिक्षु ! (जिस पर तू आसक्त है) वह क्रोधी है, अकृतज्ञ है, चुगलखोर है, (मित्रों में) फूट डालनेवाली है। भिक्षु ! तू ब्रह्मचर्य्य पालन कर। इससे तेरे (ध्यान-)सुख का नाश न होगा।']

भिक्षु ! यह स्त्रियाँ क्रोधना, आई क्रोध को रोक नहीं सकतीं। अकतञ्ञू च, बड़े से बड़े उपकार को भी भूल जाती हैं (=नहीं जानतीं)। पिसुणा च, प्रेम को शून्य करने वाली ही बात-चीत करती हैं। मित्तदुब्भि, मित्रों में फूट डालती हैं, भेद उत्पन्न करने वाली बात-चीत ही करना इनका स्वभाव है। यह ऐसे दुर्गुणों (=पापकर्मों) से युक्त हैं। तुझे इनसे क्या? ब्रह्मचरियं चर भिक्खु ! यह जो मैथुन-रहित परिशुद्ध ब्रह्मचर्य है, उसे चर (=पालन कर)। सो सुखं न विहाहिसि, सो तू इस ब्रह्मचर्य वास करते हुए, अपने ध्यान-सुख, मार्ग-सुख, फल-सुख से च्युत न होगा। इन सुख को नहीं छोड़ेगा। इस सुख से हीन न होगा (=परिहायिस्सति) न परिहाहिसि, यह भी पाठ है, अर्थ यही है।

शास्ता ने इस धर्मदेशना को ला, (आर्य-)सत्यों का प्रकाशन किया। सत्यों के (प्रकाशन के) अन्त में आसक्त (=उत्कण्ठित) भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ। शास्ता ने जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय का चोरों का सरदार (अब का) आनन्द (स्थविर) था। तक्क-पण्डित तो मैं ही था।

६४. दुराजान जातक

"मासु नन्दि इच्छति मं. . . ." यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, एक उपासक के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

एक श्रावस्ती-वासी उपासक त्रिशरण तथा पाँच-शील में प्रतिष्ठित था। उसकी बुद्ध में धर्म में तथा संघ में श्रद्धा थी। लेकिन उसकी भार्या दुस्शीला

पापिन थी। जिस दिन मिथ्या-चार (=पर पुरुष का सेवन) करती, उस दिन सौ (मुद्रा) से खरीदी हुई दासी की तरह रहती, जिस दिन मिथ्याचार न करती, उस दिन स्वामिनी की तरह चण्ड, कठोर (स्वभाव की) होती। वह (पुरुष) उसका कारण न समझ सकता था। उससे अप्रसन्न तंग आकर, वह (कभी कभी) बुद्ध की सेवा में न आता। सो एक दिन, वह गन्धपुष्प आदि ले, आकर, वन्दना करके बैठा। शास्ता ने पूछा—"उपासक! तू सात आठ दिन से बुद्ध की सेवा में क्यों नहीं आता?"

"भन्ते! मेरी घर वाली एक दिन सौ (मुद्रा) से खरीदी दासी की तरह रहती है, एक दिन स्वामिनी की तरह चण्ड, कठोर (स्वभाव वाली)। मैं उसके मन की बात (=भाव) नहीं जान सकता। सो मैं उससे तंग आ कर बुद्ध की सेवा में नहीं आता।"

उसकी बात सुन, शास्ता ने "उपासक! स्त्रियों के मन की बात दुर्ज्ञेय होती है। पूर्व-जन्म में भी पण्डितों ने तुझे यह बात कही है, लेकिन वह जन्मान्तर की बात होने से, तू उसे नहीं जान सकता" (कह) उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व लोक-प्रसिद्ध आचार्य्य होकर पाँच सौ ब्रह्मचारियों (=माणवकों) को विद्या पढ़ाते थे। सो एक दूर देश का ब्राह्मण तरुण उसके पास विद्या सीखने के लिए आया। वह एक स्त्री पर आसक्त हो, उसे भार्य्या बना, वहीं वाराणसी में रहते समय ही, दो तीन दिन आचार्य्य की सेवा में नहीं गया। उसकी वह भार्य्या दुःशीला पापिन थी। मिथ्याचार करने के दिन दासी की तरह रहती और न करने के दिन स्वामिनी की तरह चण्ड, कठोर (स्वभाव) की। वह उसके मन की बात न जानने के कारण, उससे परेशान हो, व्याकुल-चित्त हो आचार्य्य की सेवा में न गया। सात आठ दिन के बाद उसके आने पर आचार्य्य ने पूछा—'माणवक! क्यों, दिखाई नहीं देते?" उसने उत्तर दिया—"आचार्य्य! मेरी भार्य्या एक दिन (तो मुझे) चाहती है, दासी की तरह नम्र होती है, लेकिन दूसरे दिन स्वामिनी की तरह चण्ड कठोर (स्वभाव की)

होती है। मैं उनके मन की बात नहीं जान सकता। उससे तंग परेशान हो, व्याकुल-चित्त (हो) मैं आपकी सेवा में नहीं आया।

आचार्य ने—"माणवक ! यह ऐसा ही है। स्त्रियाँ अनाचार करने के दिन तो स्वामी का अनुकरण करती हैं, दासी की तरह नम्र होती हैं; न करने के दिन अभिमान के मारे, स्वामी की कद्र (=गिनती) नहीं करती। इस प्रकार, यह स्त्रियाँ अनाचारिणी, दुःशीला होती हैं। उनके मन की बात जाननी दुष्कर है। उनके चाहने वाली होने पर भी, और न चाहने वाली होने पर भी, आदमी को उनके साथ उपेक्षा का ही व्यवहार करना चाहिए' (कह) उसे उपदेश स्वरूप यह गाथा कही—

> मा सु नन्दि इच्छति मं मा सु सोचि न इच्छति,
> थीनं भावो दुराजानो मच्छस्सेवोदके गतं ॥

['मुझे चाहती है' (सोच) प्रसन्न न हो, 'मुझे नहीं चाहती है' (सोच) शोक न करे। पानी में मछलियों की चाल की भाँति, स्त्रियों के मन की बात जाननी दुष्कर है।]

"मासु नन्दि इच्छति मं 'सु' निपात-मात्र है। 'यह स्त्री मुझे चाहती है, मेरी कामना करती है, मुझसे स्नेह करती है' सोच सन्तुष्ट न हो। मा सु सोचि न इच्छति, 'यह मेरी चाह नहीं करती' सोच कर, शोक न करे, उसके इच्छा करने पर प्रसन्नता, न इच्छा करने पर शोक—दोनों में न पड़ कर, बीच का ही बर्ताव रक्खे। यही स्पष्ट किया गया है। थीनं भावो दुराजानो, स्त्रियों का भाव (=मन की बात) स्त्री-माया से छिपा रहने के कारण दुर्ज्ञेय होता है। जैसे क्या ? मच्छस्सेवोदके गतं, जिस प्रकार पानी से ढँका रहने के कारण मछली का गमन दुर्ज्ञेय होता है, जिससे वह मछुओं के आने पर, पानी से अपने गमन को छिपा कर भाग जाती है, अपने को पकड़ने नहीं देती; इसी प्रकार स्त्रियाँ बड़े बड़े दुःशील-कर्म करके भी 'हम ऐसा नहीं करतीं' (कह) अपने किये कर्मों को स्त्री-माया से ढँक स्वामियों को ठगती हैं। इस प्रकार यह स्त्रियाँ पापिन, दुराचारिणी होती हैं। उनके प्रति बीच का भाव (=मध्यस्थ भाव) रखने वाला ही सुखी रहता है।

इस प्रकार बोधिसत्व ने शिष्य को उपदेश दिया। उस समय से वह उसके प्रति मध्यस्थ-भाव रखने लगा। उसकी भार्य्या भी, यह जान कि आचार्य्य ने मेरे दुःशील भाव को जान लिया, उस समय से अनाचार-विरत हो गई। उस उपासक की उस स्त्री ने भी यह समझ, कि सम्यक् सम्बुद्ध ने मेरा दुराचार-भाव जान लिया, उस समय से पाप-कर्म नहीं किया।

शास्ता ने भी इस धर्म-देशना को ला (आर्य-)सत्यों को प्रकाशित किया। सत्यों (के प्रकाशन) के अन्त में, (वह) उपासक स्रोतापत्ति-फल में प्रतिष्ठित हुआ। शास्ता ने मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय के स्त्री-पुरुष (=पत्नी-पति) ही अब के स्त्री-पुरुष हुए। आचार्य्य तो, मैं ही था।

६५. अनभिरत जातक

"यथा नदी च पन्थो च   " यह गाथा, शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, उसी तरह के उपासक के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

वह खोज करके, उसकी दुःशीलता की बात मालूम कर, झगड़ कर, चित्त-व्याकुलता के कारण सात आठ दिन तक सेवा में नहीं गया। एक दिन विहार जाकर तथागत को प्रणाम कर बैठने (तथागत के) "किस लिए सात-आठ दिन तक नहीं आया" पूछने पर, उसने कहा— 'भन्ते ! मेरी भार्य्या दुःशीला है। उससे व्याकुल-चित्त होने के कारण नहीं आया।

शास्ता ने 'उपासक ! यह स्त्रियाँ अनाचारिणी हैं' (कहके) उन पर क्रोध न कर उनके प्रति मध्यस्थ भाव से रहना चाहिए यह बात पूर्व [illegible]

भी पण्डितों ने कही। लेकिन तू जन्मान्तर से छिपे रहने के कारण उस बात को नहीं देखता (कह) उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्व पूर्व प्रकार से ही, लोक-प्रसिद्ध आचार्य हुए। जो उनके शिष्य ने भार्या का दोष देख, व्याकुल चित्त रहने के कारण, कई दिन न आ कर, एक दिन आचार्य के पूछने पर, यह बात निवेदन की। आचार्य ने, "तात! स्त्रियाँ सब के लिए हैं। 'यह दुःशीला है' (करके) पण्डित लोग उनपर क्रोध नहीं करते" कह, उपदेश-स्वरूप यह गाथा कही—

यथा नदी च पन्थो च पानागारं सभा पपा,
एवं लोकित्थियो नाम नासं कुज्झन्ति पण्डिता॥

[जैसे नदी, महापथ, शराबखाने, धर्मशालायें तथा प्याऊ, सब के लिए समान होते हैं, वैसे ही लोक में स्त्रियाँ सब के लिए साधारण होती हैं। पण्डित (=बुद्धिमान्) लोग, उनके विषय में क्रोध नहीं करते।]

यथा नदी—जैसे अनेक तीर्थों वाली नदी, नहाने के लिए आने वाले चाण्डाल आदि तथा क्षत्रिय आदि—सभी के लिए समान होती है, उसपर सभी को नहाना मिलता है। पन्थो, आदि में भी, जैसे महापथ सब के लिए समान है। उसपर सभी चल सकते हैं। पानागार=शराब खाना भी सबके लिए समान होता है, जो जो पीना चाहते हैं, वह सब उसमें प्रवेश कर सकते हैं। पुण्येच्छुओं द्वारा जहाँ तहाँ बनाई गई धर्मशालायें (=सभा) भी सबके लिए समान होती हैं, उसमें सभी प्रवेश कर सकते हैं। महापथ पर पानी की चाटियाँ रख कर बनाये प्याऊ भी सबके लिए समान होते हैं, वहाँ सभी पानी पी सकते हैं। एवं लोकित्थियो नाम, इसी प्रकार हे तात! लोक में स्त्रियाँ भी सब के लिए समान हैं। इसी प्रकार समान (=सार्वजनिक) होने से वह नदी, महापथ, पानागार (=शराबघर) सभा (=धर्मशाला) (तथा) प्याऊ के सदृश हैं। इसलिए नासं कुज्झन्ति पण्डिता, जो इन स्त्रियों

के प्रति, यह पापिन है, अनाचारिणी हैं, दुश्शीलिनी हैं, सबके लिए समान हैं, सोचकर, पण्डित लोग, दक्ष लोग, बुद्धिमान् लोग क्रोध नहीं करते।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने (अपने) शिष्य को उपदेश दिया। वह उस उपदेश को सुन मध्यस्थ (-भाव का) हो गया। उस की भार्य्या ने भी यह जान कि आचार्य्य ने मुझे जान लिया, उस समय से फिर पापकर्म नहीं किया। उस उपासक की भार्य्या ने भी, 'शास्ता ने मुझे जान लिया' सोच उस समय से फिर पाप-कर्म नहीं किया।

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला (आर्य-) सत्यों को प्रकाशित किया। सत्यों (के प्रकाशन) के अन्त में (वह) उपासक स्रोतापत्ति-फल में प्रतिष्ठित हुआ। शास्ता ने भी मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय के स्त्री-पुरुष ही अब के स्त्री-पुरुष (=पति-पत्नी) हैं, लेकिन आचार्य-ब्राह्मण तो मैं ही था।

६६. मुदुलक्खण जातक

"एका इच्छा पुरे आसि...." यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय चित्त के विकार के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती निवासी एक कुल-पुत्र शास्ता की धर्म-देशना सुन, (त्रि) रत्न शासन में श्रद्धापूर्वक प्रव्रजित हुआ। वह शिक्षाओं को पालन में रत, योगाभ्यास करता, कर्मस्थानों में मगन रहता था। एक दिन श्रावस्ती में भिक्षा के लिए घूमते हुए एक अलंकृत-अंगी स्त्री को देख, (उसे) 'सुन्दर'

दुःख के भागी होंगे। क्या सुमेरुपर्वत को उखाड़ सकने वाली हवा, हाथी जितने छोटे-पर्वत को; महाजम्बू वृक्ष को उखाड़ देने वाली हवा, टूटे तट के किनारे उगी झाड़ी को, महासमुद्र को सुखा देने वाली हवा, छोटे से तालाब को कुछ समझती है? इसी प्रकार उत्तम बुद्धि विशुद्ध चित्त बोधिसत्त्वों को भी पागल बना देने वाले चित्त के विकार क्या तुमसे लज्जा करेंगे? विशुद्ध-सत्त्व भी विकृत हो जाते हैं। उत्तम यशस्वी लोग भी अयश को प्राप्त होते हैं' (यह) पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने समय, बोधिसत्व, काशी राष्ट्र के एक महाधनी ब्राह्मण के कुल में उत्पन्न हुए थे। विद्या प्राप्त कर सब शिल्प में पारङ्गत हो, काम-सुख को छोड़, ऋषि प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो, योगाभ्यास करने लगा। अभिज्ञा तथा समापत्तियाँ उत्पन्न कर ध्यान-सुख से सुखी (हो) हिमवन्त प्रदेश में रहने लगा। वह एक समय निमक-खटाई खाने के लिए, हिमवन्त से उतर वाराणसी में पहुँच, राज-उद्यान में ठहरा। अगले दिन शारीरिक कृत्य समाप्त कर, लालरंग के वल्कल के वस्त्र पहन, एक कन्धे पर अजिन-चर्म रख, जटा-मण्डल बाँध, भोली-बँहगी ले, वाराणसी में भिक्षा माँगते हुए राजा के गृह-द्वार पर पहुँचा। राजा ने उस की चर्या-विहरण से ही प्रसन्न हो, उसे बुलवा महामूल्यवान् आसन पर बिठा, प्रणीत खाद्य-भोज्य से सन्तुष्ट किया; उसके अनुमोदन[1] कर चुकने पर, उस से उद्यान में ही रहने की प्रार्थना की।

उसने स्वीकार कर, राजा के घर से भोजन खा, राज-कुल को उपदेश देते हुए, उस उद्यान में सोलह वर्ष बिताये। एक दिन राजा, उपद्रवी सीमान्त देश को शान्त करने के लिए जाते समय, (अपनी) मुदुलक्खणा नामक अग्र-महिषी को 'आर्य्य की सेवा प्रमाद-रहित होकर करना' कह, चला गया। राजा के जाने के बाद से, बोधिसत्व अपनी मरजी के समय, घर जाते। सो एक दिन

[1] पुण्यानुमोदन।

"आर्य ! 'अच्छा, मैं आपको मृदुलक्षणा देता हूँ' कह, तपस्वी को ले जा, घर में प्रवेश कर, देवी को सब अलंकारों से अलंकृत कर तपस्वी को दिया। (लेकिन) देते हुए मृदुलक्षणा को इशारा किया, कि तुझे अपने बल से आर्य (के सदाचार) की रक्षा करनी चाहिए। 'अच्छा ! देव ! रक्षा करूँगी।' देवी को लेकर तपस्वी राज-भवन से उतरा।

उसने महाद्वार से निकलने के समय (ही) कहा—'आर्य ! हमें एक घर लेना चाहिए। जायें राजा से घर माँग लें।' तपस्वी ने जाकर (एक) घर माँगा। राजा ने एक ऐसा खाली पड़ा घर—जिसमें लोग मल-मूत्र पाखाना कर जाते थे—दिलवाया। वह देवी को ले कर, वहाँ चला गया। देवी ने उसमें प्रविष्ट होने की अनिच्छा प्रगट की।

'क्यों नहीं प्रवेश करती ?'

'(स्थान) गन्दा होने से',

'अब क्या करूँ ?'

'इसे साफ कर' (कह) राजा के पास 'जा कुदाली ला, टोकरी ला' (कह) भेजा। अशुचि और कूड़ा फेंकवा, फिर गोबर मँगवा कर लिपवाया। तदनन्तर 'जा चारपाई ला, दीपक ला, बिछौना ला, चाटी ला, घड़ा ला'—इस प्रकार एक एक मँगवा कर, फिर पानी आदि लाने के लिए कहा। उसने घड़ा ले, पानी ला, चाटी को भर, स्नान करने के लिए पानी रख, बिछौना बिछाया।

बिछौना पर इकट्ठे बैठते समय उसने, उसे दाढ़ी से पकड़, घसीट, नीचा दिखा, अपने सामने किया—"तुझे अपने श्रमण होने का, ब्राह्मण होने का ख्याल नहीं ?" तब उसे अक्ल आई। इतनी देर तक वह अज्ञानी ही रहा। चित्त के विकार ऐसा अज्ञान फैलाने वाले हैं। "भिक्षुओ ! कामच्छन्द नीवरण अन्धा बना देनेवाला है, अज्ञानी बना देनेवाला है।" आदि (सूक्त पाठ) यहाँ कहना चाहिए। उसने अक्ल (=स्मृति) आने पर सोचा—"यह तृष्णा अधिक होने पर, मुझे चारो नरकों में से सिर न उठाने देगी। आज ही इसे राजा को सौंपकर मुझे हिमवन्त में प्रवेश करना चाहिए।" (यह सोच) उसने, उसे ले, राजा के पास जा, "महाराज ! मुझे तेरी देवी से मत-लब नहीं। केवल इसी के कारण मेरी तृष्णा बढ़ी" (कह) यह गाथा कही—

एका इच्छा पुरे आसि अलद्धा मुदुलक्खणं,
यतो लद्धा अळारक्खी इच्छा इच्छं विजायथ ॥

[मृदुलक्षणा मिलने से पहले, केवल एक ही इच्छा थी; लेकिन जबसे यह विशालाक्षी मिली है, तब से (एक) इच्छा से (दूसरी) इच्छा पैदा हो रही है।]

महाराज! इस तेरी मृदुलक्षणा देवी के मिलने से पुरे (=पहले) 'अहो! मुझे यह मिल जाये'—ऐसी एक ही इच्छा थी, एक ही तृष्णा उत्पन्न हुई। यतो, लेकिन जब से मुझे यह अळारक्खी=विशालनेत्रा=शोभन-लोचना लद्धा (=मिली); तब से उस मेरी एक इच्छा ने घर की तृष्णा, सामान की तृष्णा, उपभोग-सामग्री की तृष्णा (करके) और और नाना प्रकार की इच्छायें पैदा कर दी, उत्पन्न कर दीं। इस प्रकार मेरी यह बढ़ती हुई इच्छा, मुझे अपाय (=नरक) से सिर उठाने न देगी। यह मुझे बस है, तुम ही अपनी देवी को ग्रहण करो, मैं तो हिमवन्त को जाऊँगा।

उसी समय उसका खोया ध्यान उत्पन्न हो गया, और वह आकाश में बैठकर, राजा को उपदेश दे, आकाश मार्ग से ही हिमवन्त को चला गया। फिर आबादी की ओर नहीं आया। (वहाँ) ब्रह्म-विहारों की भावना कर, ध्यान प्राप्त (हो) ब्रह्म-लोक में उत्पन्न हुआ।

शास्ता ने इस धर्म देशना को ला, (आर्य) सत्यों को प्रकाशित किया। सत्यों (के प्रकाशन) के अन्त में, वह भिक्षु अर्हत्व में प्रतिष्ठित हुआ। शास्ता ने भी मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय का राजा (अब का) आनन्द, मृदुलक्षणा (अब की) उत्पलवर्णा और ऋषी तो मैं ही था।

६७. उच्छंग जातक

"उच्छङ्गे देव ! मे पुत्तो . . ." यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक दीहाती (=जानपदिक) स्त्री के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

एक समय, कौसल देश (=राष्ट्र) में तीन जने एक जगल के पास, खेती करते थे। उस समय जगल के अन्दर (कुछ) चोर, लोगो को लूट कर भाग गये। (चोर पकड़ने वालो ने) चोरो को ढूँढ़ते हुए उन्हें न पाया। वहाँ आकर, 'तुम जगल में डाका डालकर, अब यहाँ किसान बने हो' (कह) 'यह चोर हैं' (समझ), उन्हें बाँध कर, कोसल-नरेश को दे दिया। उस समय एक स्त्री, 'मुझे वस्त्र (=आच्छादन) दो, मुझे वस्त्र दो' कहती आकर, रोती, पीटती बार बार राज-भवन के पास से गुजरती। राजा ने उसका शब्द सुनकर कहा—दो, इसे कपड़ा। (लोग) वस्त्र लेकर गये। वह उसे देख बोली—'मुझे यह चादर (=वस्त्र) नहीं चाहिए। मुझे स्वामी रूपी चादर चाहिए।' लोगो ने जाकर राजा से निवेदन किया—"यह ऐसी चादर नहीं चाहती, यह स्वामी रूपी चादर चाहती है।" राजा ने उसे बुलवा कर पूछा—"तू स्वामी रूपी चादर माँगती है?"

"देव ! स्त्री की चादर (उसका) स्वामी ही है। बिना स्वामी के, (हजार मुद्रा) के मूल्य की चादर पहनने पर भी स्त्री नंगी ही है।" इस अर्थ के समर्थन के लिए यह, सूक्त कहना चाहिए—

> नग्गा नदी अनोदिका नग्गं रट्ठं अराजिकं,
> इत्थीपि विधवा नग्गा यस्सापि दस भातरो ॥

[बिना पानी के नदी नग्न होती है, बिना राजा के राष्ट्र नग्न होता

है। विधवा स्त्री नग्न होती है, चाहे उसके दस भाई क्यों न हों।]

राजा ने उसपर प्रसन्न हो पूछा—"यह तीनों जने तेरे क्या लगते हैं ?"

"देव ! एक मेरा स्वामी है, एक भाई है, एक पुत्र है।"

राजा ने पूछा—"मैं तुझ पर सन्तुष्ट हूँ। इन तीनों में से एक को देता हूँ, किसे चाहती है ?" वह बोली—"देव ! मैं जीती रही, तो मुझे एक स्वामी भी मिल सकेगा, पुत्र भी मिल सकेगा; लेकिन माता-पिता के मर गये होने से भाई का मिलना दुर्लभ है। मुझे भाई (ही) दें।" राजा ने सन्तुष्ट हो, तीनों को छोड़ दिया। 'उस एक के कारण, तीनों जने दुःख से मुक्त हो गये'—यह बात भिक्षु-संघ में प्रगट हो गई। सो एक दिन धर्म-सभा में एकत्रित हुए भिक्षु, उसकी प्रशंसा कर रहे थे—"आवुसो ! इस एक स्त्री के कारण तीन जने दुःख से मुक्त हो गये।" शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ ! इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे थे ?" (भिक्षुओं के) 'यह बात' कहने पर, शास्ता ने 'भिक्षुओ ! न केवल अभी इस स्त्री ने उन तीन जनों को दुःख से छुड़ाया पहले भी छुड़ाया था' कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय तीन जने जंगल के किनारे पर खेती करते थे......पूर्वोक्त प्रकार ही। तब राजा के यह पूछने पर कि तीनों जनों में से किसे (छुड़ाना) चाहती है, वह बोली, "देव ! क्या तीनों को नहीं (दे) सकते हैं ?"

"हाँ ! नहीं (दे) सकता।"

"यदि तीनों को नहीं दे सकते, तो मुझे (मेरे) भाई को दें।"

"पुत्र या स्वामी को ले, तुझे भाई से क्या ?" कहने पर "देव ! यह (दोनों) सुलभ हैं; लेकिन भाई दुर्लभ है" कह, यह गाथा कही—

> उच्छङ्गे देव ! मे पुत्तो पथे धावन्तिया पति,
> तञ्च देसं न पस्सामि यतो सोदरियमानये ॥

[देव ! पुत्र तो गोद में है और रास्ते चलते स्वामी भी मिल सकता है;

लेकिन वह देश नहीं दिखाई देता, जहाँ से भाई (=सहोदर) लाया जा सके।]

उच्छङ्गे देव ! मे पुत्तो, देव ! मेरा पुत्र तो मेरे पल्ले में है, जैसे जंगल में जाकर, पल्ला करके, साग चुन चुन कर, उसमें डालने से पल्ले में साग सुलभ होता है; इसी प्रकार स्त्री के लिए पुत्र भी, पल्ले में साग की तरह सुलभ ही होता है। इसी से कहा, उच्छङ्गे देव ! मे पुत्तो, पथे धावन्तिया पति, रास्ता पकड़ कर, अकेली जाती हुई स्त्री को भी पति सुलभ है, जो जो देखता है, वही बन जाता है। इसी लिए कहा है, पथे धावन्तिया पति। **तञ्च देसं न पस्सामि यतो सोदरियमानये**—क्योंकि (अब) मेरे माता पिता नहीं हैं, इसलिए मैं माता की कोख नामक वह दूसरा देश नहीं देखती, जहाँ से समान-उदर में पैदा होने के कारण, सहोदर कहलाने वाला भाई ले आऊँ। इसलिए मुझे भाई ही दो।

राजा ने 'यह सत्य कहती है' सन्तुष्ट चित्त हो, तीनों जनों को बंधनागार से मँगवाकर, दे दिया। वह तीनों जनों को ले कर चली गई।

शास्ता ने भी 'भिक्षुओ ! न केवल अभी, पूर्व जन्म में भी इसने इन तीनों जनों को दुख से मुक्त किया था।' (वह) यह धर्म-देशना ला, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया। पूर्व-जन्म में चारों जने, अबके चारों जने ही (थे)' लेकिन राजा, उस समय मैं था।

६८. साकेत जातक

'**यस्मि मनो निविसति** ...' यह गाथा शास्ता ने **साकेत** के समीप अंजन वन में विहार करते समय एक ब्राह्मण के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

भिक्षुसंघ सहित भगवान् साकेत (समीपवर्ती अञ्जन वन) में प्रवेश करते थे। उस समय, एक साकेत नगरवासी वृद्ध ब्राह्मण ने नगर से बाहर जाते समय, (नगर-) द्वार के बाहर बुद्ध को देखा, और (उनके) पाँव में गिर, पैरों को जोर से पकड़ कर बोला—'तात! क्या माता-पिता के बूढ़े होने पर, पुत्र को उनकी सेवा नहीं करनी चाहिए? तो फिर किस लिए इतनी देर तक तूने अपने को हम से छिपाये रक्खा? खैर, मैंने तो देख लिया, आ अब अपनी) माता को देखने के लिए चल।" यह कह, वह शास्ता को अपने घर ले गया। भिक्षुसंघ सहित शास्ता वहाँ जाकर बिछे आसन पर बैठे। ब्राह्मणी भी आकर शास्ता के पैरों मे गिर कर रोने लगी—"तात! इतने समय तक कहाँ रहे? क्या माता-पिता के वृद्ध होने पर, उनकी सेवा नही करनी चाहिए?"(यह कहकर) उसने (अपने) लड़के लड़कियों से भी 'आओ! भाई को प्रणाम करो' (कहके) प्रणाम करवाया। दोनों ने सन्तुष्ट चित्त हो बड़ा दान दिया। शास्ता ने भोजन के बाद, उन दोनों जनों को जरा-सुत्त[1] का उपदेश दिया। सूत्र (के उपदेश) के अन्त में, दोनों जने अनागामि-फल में प्रतिष्ठित हुए। शास्ता, आसन से उठ अञ्जन वन को ही लौट गये। धर्म-सभा में बैठे हुए भिक्षुओं ने बात चलाई—'आयुसो! तथागत के पिता शुद्धोदन (हैं), माता महामाया (हैं) यह जानकर भी, ब्राह्मण और ब्राह्मणी ने 'तथागत हमारे पुत्र हैं' कहा। शास्ता ने भी इसे सहन कर लिया; क्या कारण है?" शास्ता ने उनकी बात सुन, 'भिक्षुओ! ये दोनों जने अपने पुत्र को ही पुत्र कहते थे' (कह) पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

"भिक्षुओ! पूर्व समय में, यह ब्राह्मण लगातार पाँच सौ जन्मों तक मेरा पिता हुआ, पाँच सौ जन्मों तक चाचा (-पुत्र पिता)। पाँच सौ जन्मों

---

[1] जरासुत्त (सुत्त निपात ४६)।

तक ताया (=महापिता), यह ब्राह्मणी भी लगातार पाँच सौ जन्मों तक माता, पाँच सौ जन्मों तक चाची (=चुल्ल माता), पाँच सौ जन्मों तक ताई (=महामाता) हुई। इस प्रकार मैं डेढ़ हजार जन्म तो ब्राह्मण के हाथ में पला, और डेढ़ हजार जन्म ब्राह्मणी के हाथ में। इस प्रकार तीन हजार जन्मों को कह, बुद्ध होने की अवस्था में, यह गाथा कही—

> यस्मिं मनो निविसति चित्तं चापि पसीदति,
> अदिट्ठपुब्बके पोसे कामं तस्मिम्पि विस्ससे॥

[जिस (आदमी) पर मन ठहर जाता है, अथवा चित्त प्रसन्न होता है, पहले न देखा रहने पर भी, उसमें विश्वास कर लिया जाता है।"]

यस्मिं मनो निवसति, जिस आदमी को देखते ही, उसपर मन ठहर जाता है, चित्तं चापि पसीदति, जिसको देखते ही चित्त प्रसन्न हो जाता है, मृदु हो जाता है। अदिट्ठपुब्बके पोसे, साधारणतः जिसे इस जन्म में नहीं देखा है, ऐसे आदमी में कामं तस्मिम्पि विस्ससे, अनुभूत-पूर्व स्नेह के कारण, वैसे आदमी में भी सम्पूर्ण विश्वास हो जाता है।

इस प्रकार शास्ता ने इस धर्मदेशना को ला, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय ब्राह्मण और ब्राह्मणी, यह दोनों ही थे, और पुत्र भी मैं ही था।

६६. विसवन्त जातक

"धिरत्थु तं विस वन्तं . . ."यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, धर्मसेनापति सारिपुत्र के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

स्थविर के खाजा खाने के दिनों में, मनुष्य, संघ के लिए बहुत सा खाजा लेकर, विहार आये। भिक्षु-संघ के ले लेने पर, बहुत सा (खाजा) बाकी बच गया। लोग कहने लगे, "भन्ते! जो (भिक्षु) गाँव में गये हुए हैं, उनका (हिस्सा) भी ले लें।" उस समय स्थविर का (एक) बालक-शिष्य गाँव में गया था? (लोगों ने) उसका हिस्सा ले, उसके न आने पर, बहुत देर होती है (सोच) वह हिस्सा स्थविर को दे दिया। स्थविर ने जब उसे खा लिया, तो वह तरुण आया। तो स्थविर ने उससे कहा—"आयुष्मान्! मैंने तेरे लिए रक्खा हुआ खाद्य खा लिया।"

वह बोला—"भन्ते! मधुर (चीज) किसे अप्रिय लगती है?"

महास्थविर को खेद हुआ। उन्होंने निश्चय किया कि "अब इस के बाद (कभी) खाजा न खायेंगे।" उसके बाद से सारिपुत्र स्थविर ने कभी खाजा नहीं खाया। उनके खाजा न खाने की बात भिक्षु-संघ में प्रकट हो गई। धर्म-सभा में बैठे भिक्षु उसकी चर्चा कर रहे थे। शास्ता ने पूछा—"भिक्षुओ! इस समय बैठे क्या बात कर रहे हो?"

"यह (कथा)" कहने पर, (शास्ता ने) "भिक्षुओ! एक बार छोड़ी हुई चीज को सारिपुत्र, प्राण छोड़ने पर भी (फिर) ग्रहण नहीं करता" (कह) पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्व एक विष-वैद्य के कुल में उत्पन्न हो, वैद्यक से जीविका चलाते थे। (एक बार) एक देहाती को साँप ने डँस लिया। उसके रिश्तेदार देर न कर, जल्दी से वैद्य को बुला लाये। वैद्य ने पूछा—क्या मैं औषध से विष को दूर करूँ? अथवा जिस साँप ने डँसा है, उसे बुलवाकर, उसी से डँसे हुए स्थान से विष निकलवाऊँ?

(लोगों ने कहा)—"सर्प को बुलवाकर, विष निकलवायें।"

उसने सर्प को बुलवाकर पूछा—"इसे तू ने डँसा है?"

"हाँ ! मैंने।"

"अपने डँसे हुए स्थान से तू ही विष को निकाल।"

"मैंने एक बार छोड़े हुए विष को फिर कभी ग्रहण नहीं किया, सो मैं अपने छोड़े विष को नहीं निकालूँगा।"

उसने लकड़ियाँ मँगवा कर, आग बनाकर कहा—"यदि ! अपने विष को नहीं निकालता, तो इस आग में प्रवेश कर।"

सर्प बोला—"आग में प्रविष्ट हो जाऊँगा, लेकिन एक बार छोड़े अपने विष को फिर नहीं खाऊँगा।" यह कह, उसने यह गाथा कही—

> धिरत्थु तं विसं वन्तं यमहं जीवितकारणा,
> वन्तं पच्चावमिस्सामि मतम्मे जीविता वरं ॥

[धिक्कार है, उस विष को, जिसे जीवन की रक्षा के लिए, एक बार उगल कर मैं फिर निगलूँ। ऐसे जीवन से मरना अच्छा है।]

धिरत्थु, निन्दार्थक निपात है। तं विसं, उस विष को। यमहं जीवित कारणा (=जिसे मैं (अपने) जीवन की रक्षा के लिए) वन्तं विसं (=उगले हुए विष को) पच्चावमिस्सामि (=निगलूँगा), उस उगले हुए विष को धिक्कार है। मतम्मे जीविता वरं, उस विष को फिर न निगलने के कारण, जो आग में प्रविष्ट होकर मरना है, वह मेरे जीवित रहने की अपेक्षा अच्छा है।

यह कह, वह अग्नि में प्रविष्ट होने के लिए तैयार हुआ। वैद्य ने उसे रोक, रोगी को औषध तथा दवाई से निरोग कर दिया। फिर सर्प को सदाचारी बना, 'अब से किसी को दुःख न देना' (कह) छोड़ दिया।

शास्ता ने भी "भिक्षुओ ! एक बार छोड़ी हुई (चीज) को सारिपुत्र, प्राण छोड़ने पर भी फिर ग्रहण नहीं करता"—यह धर्मदेशना ला, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय का सर्प (अब का) सारिपुत्र था, वैद्य तो मैं ही था।

आकर 'भिक्षुओ ! इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे थे' पूछ 'यह बातचीत' कहने पर, कहा—भिक्षुओ ! पृथक्जन का चित्त हलका (=लघुक) होता है, उसका निग्रह करना दुष्कर होता है, किसी आलम्बन (=विषय) में जाकर आसक्त हो जाता है, एक बार आसक्त होने पर, (उसे) छुड़ाया नहीं जा सकता। इस प्रकार के चित्त का संयम (=दमन करके) रखना अच्छा है; संयत रहने पर ही यह सुख का कारण होता है।

> दुन्निग्गहस्स लहुनो यत्थकामनिपातिनो,
> चित्तस्स दमथो साधु चित्तं दन्तं सुखावहं ॥[1]

[निग्रह करने में दुष्कर, लघुक, जहाँ चाहे वहीं गिर पड़ने वाले चित्त को संयम में रखना अच्छा है। चित्त का संयम सुख का कारण होता है।]

उसका निग्रह दुष्कर होने के कारण ही, पूर्व समय में एक पण्डित, एक कुदाली के लोभ के मारे उसे न छोड़ सकने के कारण छः बार गृहस्थ हुए और सातवीं बार प्रव्रजित हो, ध्यान उत्पन्न कर, उस लोभ का निग्रह कर सके। यह कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व (एक) कुंजड़े (तरकारी बेचने वाले) के कुल में उत्पन्न हो, बालिग हुए। उनका नाम हुआ कुदाल-पण्डित। वह कुदाल से ज़मीन खोद कर, उसमें साग, लौकी, कद्दू (तथा अन्य) सब्ज़ी-तरकारी बोकर, और उन्हें बेच कर भी, दरिद्र जीवन व्यतीत करता था। उसके पास एक कुदाली को छोड़ कर, धन नाम की, और कोई चीज़ नहीं थी। उसने एक दिन सोचा—"मुझे गृहस्थ में रहने से क्या लाभ ? (घर से) निकल कर प्रव्रजित हो जाना चाहिए।" तब एक दिन उस कुदाली को एक जगह छिपा कर, वह ऋषि प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हुआ (पीछे) उस कुदाल की याद

---

[1] धम्मपद, (चित्तवग्ग)।

आने पर, लोभ को शान्त न कर सकने के कारण, उस कुण्ठी कुदाली के लिए (वह फिर) गृहस्थ बन गया। इसी प्रकार दूसरी, तीसरी (बार करके) छः बार उस कुदाली को छिपा, निकल कर प्रव्रजित हो फिर गृहस्थ हुआ। लेकिन सातवीं बार उसने सोचा—"मैं इस कुण्ठी कुदाली के लिए बार बार गृहस्थ बना, अब इस बार इसे महानदी में फेंक कर प्रव्रजित होऊँगा।" तब उसने नदी के किनारे जा 'यदि इस के गिरने की जगह देखूँगा, तो शायद फिर आकर निकालने का मन हो' (सोच) कुदाल को बेंट से पकड़, हाथी समान बल से, सिर के ऊपर तीन बार घुमा, आँखें मींच, नदी के बीच में फेंक दिया; और तीन बार सिंह नाद किया—"मैं ने जीत लिया। मैं ने जीत लिया।"

उस समय वाराणसी नरेश सीमान्त देश (के उपद्रव) को शान्त कर, लौट रहे थे। उन्होंने नदी पर सिर से नहा, सब अलङ्कारों से अलंकृत हो, हाथी के कन्धे पर बैठ कर जाते समय, बोधिसत्त्व के उस शब्द को सुनकर (सोचा)—"यह पुरुष कहता है, 'मैं ने जीत लिया;' इसने किसे जीत लिया?" 'इसे बुलाओ' (कह) बुलवा कर पूछा—"भो! पुरुष! मैं तो संग्रामविजेता हूँ। अभी विजय करके आ रहा हूँ। तू ने किसे जीता है?"

बोधिसत्त्व ने, "महाराज! तुम्हारा हजार-संग्राम, सारा-संग्राम जीतना भी वास्तविक जीतना नहीं; क्योंकि तुमने चित्त के विकारों को नहीं जीता। मैं ने अपने अन्दर के लोभ का दमन करते हुए चित्त-विकारों को जीता है" कहते हुए महानदी की ओर देखा। उसी समय जल (-कसिण) के ध्यान से उत्पन्न होनेवाला ध्यान उत्पन्न हो गया। योगबल सम्पन्न हो, उन्होंने आकाश में बैठ, राजा को धर्मोपदेश देते हुए यह गाथा कही—

न तं जितं साधु जितं यं जितं अवजीयति,
तं खो जितं साधु जितं यं जितं नावजीयति॥

[यह जीत अच्छी जीत नहीं, जिस जीत की फिर हार हो। वही जीत अच्छी जीत है, जिस जीत की फिर हार न हो।]

न तं जितं साधुजितं यं जितं अवजीयति, शत्रुओं से जिस देश को जीत लिया हो, यदि शत्रु फिर उस देश को जीत ले, तो वह जीत अच्छी जीत नहीं।

क्योंकि उसे फिर (दूसरा) जीत ले जा सकता है। दूसरा अर्थ 'जितं' कहते हैं 'जय' को। शत्रुओं के साथ युद्ध करके जो जय प्राप्त की गई है, यदि वह फिर उनके जीतने से पराजय हो जाय, वह (जय) अच्छी नहीं; शोभा का कारण नहीं। किस लिए ? क्योंकि (वह) फिर पराजय (के रूप में बदली जा सकती) है। तं खो जितं साधु जितं यं जितं नावजीयति, लेकिन जो शत्रुओं को जीत कर, उनसे फिर नहीं हारता है, अथवा एक बार प्राप्त की गई जो जय फिर पराजय (के रूप में बदल) नहीं सकती वही जय अच्छी जय है, शोभा का कारण है। क्योंकि (वह) फिर हार में नहीं बदली जा सकती। इसलिए महाराज! हजार बार भी, लाख बार भी संग्राम में विजयी होने पर, तुम संग्राम-योद्धा नहीं हो। क्योंकि तुमने अपने चित्त के विकारों को नहीं जीत पाया। जो एक बार भी अपने अन्दर के चित्त-विकारों को जीत लेता है, वही उत्तम संग्राम-विजयी है। (इस प्रकार) आकाश में बैठे ही बैठे, इस बुद्ध-लीला से राजा को धर्मोपदेश दिया। श्रेष्ठ संग्राम-विजेता का भाव यहाँ दिखाया गया है—

> यो सहस्सं सहस्सेन सङ्गामे मानुसे जिने,
> एकं च जेय्यमत्तानं स वे सङ्गामजुत्तमो[1]॥

[जो एक (आदमी) सहस्र जनों को लेकर, संग्राम में सहस्र जनों को जीत लेता है, और एक सिर्फ अपने को जीतता है। तो अपने आप को जीतने वाला ही, उत्तम संग्राम-विजेता है।]

यह सूत्र (उक्त विचार का) समर्थक है। यह धर्म सुनते ही, राजा के चित्त का क्रियात्मक विकार नष्ट हो गया, और उसका चित्त प्रव्रज्या की ओर मुड़ा। राजा की सेना के चित्त का विकार भी, उसी तरह नष्ट हो गया।

राजा ने बोधिसत्व से पूछा—'अब आप कहाँ जायेंगे ?'

"महाराज! हिमवन्त में जा, ऋषि प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित होऊँगा।"

'तो मैं भी प्रव्रजित होऊँगा' (कह) वह बोधिसत्व के साथ ही निकल पड़ा।

---

[1] धम्मपद (सहस्स वग्ग ८.३)

ध्यान के साधन) बतलाये। सभी (लोग) समापत्ति (समाधि) प्राप्त कर, ब्रह्मविहारों की भावना करते, ब्रह्मलोक परायण हुए। लेकिन जिन्होंने उनकी सेवा सुश्रूषा की थी, वे देवलोकगामी हुए।

शास्ता ने, 'भिक्षुओ! इस प्रकार इस चित्त के विरक्त हो जाने पर—विकार में आसक्त हो जाने पर, उसका मुक्त करना आसान नहीं होता। लोभ का त्याग दुष्कर होता है, इस प्रकार के पण्डितों को भी (लोभ) अज्ञानी बना देता है' (कह) यह धर्मदेशना ला, (आर्य-) सत्यों को प्रकाशित किया। सत्यों (के प्रकाशन) के अन्त में, कोई स्रोतापन्न हुए, कोई सकृदागामी हुए, कोई अनागामी हुए, किन्हीं ने अर्हत् पद को प्राप्त किया।

शास्ता ने भी मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय *का राजा (अब का) आनन्द था।* परिषद् *(अब की)* बुद्ध परिषद्। कुद्दाल पण्डित तो मैं ही था।

पहला परिच्छेद

८. वरण वर्ग

७१. वरण जातक

"यो पुब्बे करणीयानि..." यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, कुटुम्बियपुत्र तिस्स स्थविर के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन परस्पर मित्र तीस कुलपुत्र गन्ध-पुष्प-वस्त्र आदि से, 'शास्ता की धर्मदेशना सुनेंगे' (करके) बहुत से लोगों सहित, जेतवन में गये। (वहाँ) नागमालक तथा शालमालक आदि (शालाओं) में कुछ देर बैठे। जब शाम के समय शास्ता सुरभि-गन्ध से सुवासित-गन्धकुटी से निकल कर, धर्म-सभा में जा, अलंकृत बुद्धासन पर बैठे, तब अनुयायियों सहित धर्म-सभा में जा शास्ता की सुगन्धित पुष्पों से पूजा की, तथा चक्र से अंकित तले और पुष्पित पद्म से सुशोभित तलवाले चरणों में प्रणाम कर, एक ओर बैठ, धर्मोपदेश सुना। उनको ऐसा विचार हुआ—'जैसे जैसे हम भगवान् द्वारा उपदिष्ट धर्म को जानते हैं, उससे तो हमें प्रव्रजित होना चाहिए।' फिर उन्होंने तथागत के धर्म-सभा से निकलने के समय, पास जाकर, प्रणाम कर प्रव्रज्या की याचना की। शास्ता ने उनको प्रव्रज्या दी।

उन्होंने आचार्य्य उपाध्यायों को सन्तुष्ट कर, (उनसे) उपसम्पदा प्राप्त की, और पाँच वर्ष तक (उनके) पास रह, दोनों मातृका[1] (=मातृका)

---

[1] भिक्षु-प्रातिमोक्ष तथा भिक्षुणी-प्रातिमोक्ष।

कण्ठस्थ की, हलाल-हराम (कप्पिय-अकप्पिय) को जाना, तीनों प्रकार की अनुमोदनाओं[1] को सीखा। फिर चीवरों को भी, रंग कर, योगाभ्यास (=श्रमणधर्म) करने की इच्छा से आचार्य्य उपाध्यायो से आज्ञा ले, शास्ता के पास जा, प्रणाम कर, एक ओर बैठ यह याचना की—"भन्ते। हम संसार (=भव) के प्रति विरक्त हैं, जाति-जरा-व्याधि तथा मरण से भयभीत हैं, हमें संसार से मुक्त होने के लिए कर्मस्थान (=योग के साधन) का उपदेश करें।" शास्ता ने उन्हें अड़तीस कर्मस्थानों[2] में से, उनके अनुकूल कर्मस्थान चुन कर बतला दिये।

उन्होंने शास्ता के पास से कर्मस्थान ले, उनकी वन्दना तथा प्रदक्षिणा कर, परिवेण में जा, आचार्य्य उपाध्याय से भेंट की; फिर पात्र चीवर ले, योगाभ्यास करने निकल पड़े।

उनके बीच में कुटुम्बियपुत्त तिस्स स्थविर नाम का एक भिक्षु आलसी, निरुद्योगी तथा जिह्वालोलुप था। वह सोचने लगा—"न तो मैं जंगल में रह सकता हूँ, न मैं योगाभ्यास कर सकता हूँ, न भिक्षा माँग कर निर्वाह कर सकता हूँ, सो मैं जाकर क्या करूँगा ? मैं यहीं रुक जाऊँ।" तब वह भिक्षु हिम्मत-हार, (कुछ दूर तक) अन्य भिक्षुओं के साथ जाकर, रुक रहा। अन्य भिक्षु, कोसल जनपद में विचरते हुए, एक सीमान्त ग्राम में पहुँचे; और उसके समीप के एक जंगल में वर्षा-वास करने लगे। तीन महीने के भीतर प्रयत्न करके उन्होंने विदर्शना ज्ञान तथा पृथ्वी को उन्नादित करते हुए अर्हत् पद को प्राप्त किया। वर्षावास के बाद, पवारणा कर, (अपने) प्राप्त गुण को शास्ता से कहने की इच्छा से वह वहाँ से निकल, क्रमशः जेतवन पहुँचे, और पात्र-चीवर रख, आचार्य्य उपाध्यायो से भेंट की; फिर तथागत के दर्शन के लिए, शास्ता के पास जा, प्रणाम कर एक ओर बैठे। शास्ता ने उनके साथ मधुर बातचीत की। बातचीत के अनन्तर, उन्होंने अपने प्राप्त-गुण को तथागत से निवेदन किया। शास्ता ने उन भिक्षुओं की प्रशंसा की।

---

[1] माङ्गलिक, अमाङ्गलिक तथा भिक्षा ग्रहण करने के अनन्तर उपदेश।

[2] सब कर्मस्थान चालीस हैं। अंतिम दो छोटे होने से गिनती नहीं की।

शास्ता को उन भिक्षुओं की प्रशंसा करते देख, कुटुम्बियपुत्त तिस्स स्थविर की भी योगाभ्यास करने की इच्छा हुई। उन भिक्षुओं ने शास्ता से आज्ञा माँगी—"भन्ते! हम उसी जंगल में जाकर रहेंगे।" शास्ता ने 'अच्छा' कह, आज्ञा दी। वे प्रणाम करके परिवेण को चले गये। उस कुटुम्बियपुत्त तिस्स स्थविर ने, रात होने पर, अत्यन्त उत्साहित हो, बड़ी तेजी से योगाभ्यास करना शुरू किया। आधी रात बीतने पर, तख्ते के सहारे खड़े ही खड़े, ऊँघते उलट कर, गिर पड़ा; और उसने (अपने) जाँघ की हड्डी तुड़ा ली। बड़ी पीडा होने लगी। उसकी सेवा-सुश्रूषा में लग जाने से उन भिक्षुओं का जाना न हो सका।

उनके सेवा में आने के समय शास्ता ने पूछा—"भिक्षुओ! क्या तुमने कल जाने की आज्ञा नहीं ली थी?"

"भन्ते! हाँ! लेकिन हमारे साथी कुटुम्बियपुत्त तिस्स स्थविर ने, असमय पर, बड़ी तेजी के साथ योगाभ्यास करना शुरु किया, और ऊँघते हुए उलट कर गिर पड़ा, जिससे उसने जाँघ की हड्डी तुड़ा ली, उसके कारण हमारा जाना न हो सका।"

शास्ता ने 'भिक्षुओ! न केवल अभी इसने अपनी उत्साह-हीनता के कारण, असमय पर बड़ी तेजी के साथ योगाभ्यास (=वीर्य्य) करते हुए, तुम्हारे जाने में बाधा डाली है; पहले भी इसने तुम्हारे जाने में बाधा डाली थी' कह, उनके प्रार्थना करने पर पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में गान्धार देशस्थ तक्षशिला में, बोधिसत्त्व लोकप्रसिद्ध आचार्य हो कर, पाँच सौ माणवकों (=शिष्यों) को विद्या (=शिल्प) सिखाते थे। एक दिन वे माणवक लकड़ी लाने के लिए जंगल में जाकर, लकड़ियाँ चुनने लगे। उनके बीच में एक आलसी माणवक था। उसने एक बड़े भारी वरण-वृक्ष को देख, सोचा—'यह सूखा वृक्ष है, अभी थोड़ा सोकर, पीछे वृक्ष पर चढ़, लकड़ियाँ तोड़कर चलूँगा।' वह अपनी चादर बिछा, लेटकर गाढ़ी निद्रा में सो गया। बाकी माणवक लकड़ियों का बोझा बाँध, लेकर जाते समय, उसकी पीठ में पैर से ठोकर लगा, उसे जगा कर चले गये।

आलसी माणवक आँखें मलते मलते उठा; और बिना नींद उतरे ही, वृक्ष पर चढ़, शाखा को अपनी ओर खींच कर तोड़ने लगा। उस समय टूटी शाखा के झटके से नोक उछल कर उसकी आँख में लगी। उसने एक हाथ से आँख को दबाया; और दूसरे हाथ से गीली लकड़ियाँ तोड़ीं। वृक्ष से उतर, लकड़ियों की गाँठ बाँध, जल्दी से जाकर (उसने उन्हें) औरों की गिराई लकड़ियों के ऊपर डाल दिया। उस दिन दीहात के एक ग्राम के किसी कुल से आचार्य्य को अगले दिन पाठ (=ब्राह्मण वाचनक) करने का निमन्त्रण आया था। आचार्य्य ने विद्यार्थियों को कहा—'तात ! कल एक गाँव में जाना है। तुम खाली पेट न जा सकोगे। (इस लिए) प्रातःकाल ही यवागु पकवा कर वहाँ जाना, तथा अपना और हमारा हिस्सा, सब लेकर चले आना।

उन्होंने प्रातःकाल ही यवागु पकाने के लिए, दासी को उठा कर कहा—'हमारे लिए जल्दी से यवागु बना।' उसने लकड़ी लेते समय, ऊपर रखी हुई वरुण की गीली लकड़ी ले ली। बार बार फूँक मार कर भी आग न जला सकी। जिस के कारण, दिन चढ़ आया। विद्यार्थी, 'बहुत दिन चढ़ आया, अब जाना नहीं हो सकेगा' (सोच) आचार्य्य के पास गये। आचार्य्य ने पूछा—"तात ! क्या नहीं गये ?"

"हाँ आचार्य्य। नहीं गये।"

"क्या कारण ?"

"अमुक नाम का आलसी विद्यार्थी हमारे साथ लकड़ी लेने के लिए जंगल गया था। वह वरुण-वृक्ष के नीचे सो गया। पीछे जल्दी से वृक्ष पर चढ़, आँख फुड़वा ली, और वरुण की गीली लकड़ियाँ लाकर, हमारी लाई हुई लकड़ियों के ऊपर डाल दीं। यवागु पकाने वाली, उन्हें सूखी लकड़ियाँ समझ, (जलाने लगी, किन्तु) सूर्य्योदय तक आग न जला सकी। इस कारण से हमारे गमन में बाधा हुई।"

आचार्य्य ने, माणवक की करतूत सुन, 'अन्धे-मूर्खों के काम से इसी प्रकार हानि होती है' (कह) यह गाथा कही—

> यो पुब्बे करणीयानि पच्छा सो कातुमिच्छति,
> वरुणकट्ठभञ्जोव स पच्छा मनुतप्पति ॥

[जो पहले करने योग्य है, उसे जो पीछे करना चाहता है; वह वरुण की लकड़ी तोड़ने वाले की तरह, पीछे पश्चात्ताप को प्राप्त होता है।]

स पच्छा मनुतप्पति, जो कोई आदमी 'यह पहले करना चाहिए, यह पीछे,' इसका बिना विचार किये पुब्बे करणीयानि, पहले करने योग्य कार्यों को पच्छा (=पीछे) करता है, वह वरुणकट्ठभञ्जो, हमारे माणवक की तरह, मूर्ख आदमी, पीछे पश्चात्ताप करता है, शोक करता है, रोता है।

इस प्रकार बोधिसत्त्व अपने शिष्य को यह बात कह, दान आदि पुण्य-कर्म कर, जीवन की समाप्ति पर, (अपने) कर्मानुसार परलोक गया।

शास्ता ने 'भिक्षुओ! न केवल अभी यह तुम्हारा बाधक हुआ है, पहले भी हुआ था' (कह) यह धर्मदेशना ला, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया। (उस समय का) आँख फुड़वा लेने वाला विद्यार्थी, (अब का) जाँघ तोड़ लेने वाला भिक्षु था, शेष माणवक (अब की) बुद्ध परिषद्, और आचार्य ब्राह्मण तो मैं ही था।

७२. सीलवनागराज जातक

"अकतञ्ञुस्स पोसस्स..." यह (गाथा) शास्ता ने वेणुवन में विहार करते समय देवदत्त के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

धर्म सभा में बैठे भिक्षु बात कर रहे थे—'आयुष्मानो! देवदत्त अकृतज्ञ है, तथागत के गुणों को नहीं जानता।' शास्ता ने आकर, 'भिक्षुओ! अब

घ(?)जाना पड़ता होगा।" (यह सोच) वह हिम्मत करके, खड़ा हो गया। बोधिसत्व ने उसके पास आकर पूछा—"भो! पुरुष! तू किस लिए रोता फिर रहा है?"

"स्वामी! दिशा-भ्रम हो जाने से, मार्ग भूल, मरने के भय से।"

बोधिसत्व उसे अपने निवास-स्थान पर ले जा, कुछ दिन तक फल-मूल से सेवा कर 'भो पुरुष! डर मत। मैं तुझे बस्ती (=मनुष्य-पथ) में ले जाऊंगा' (कह) उसे अपनी पीठ पर बिठा, बस्ती की ओर ले चला। वह मित्र-द्रोही आदमी 'यदि कोई पूछने वाला होगा तो बताना होगा' (सोच) बोधिसत्व की पीठ पर बैठा ही बैठा, वृक्षों की, पर्वतों की निशानी करता जाता था। बोधिसत्व ने उसे जंगल से निकाल, बाराणसी को जाने वाले महामार्ग पर छोड़ कर कहा "भो! पुरुष इस रास्ते से चला जा। लेकिन मेरा निवास-स्थान, चाहे कोई पूछे, चाहे न पूछे, किसी को न कहना"। (यह कह) उसे विदा कर, वह अपने निवासस्थान पर चला आया।

वह आदमी बाराणसी पहुँचा। घूमते हुए, हाथी-दाँत-बाजार में शिल्पियों को हाथी-दाँत की चीजें बनाते देख कर उसने पूछा—"भो! यदि जीवित हाथी का दाँत मिले, तो क्या उसे भी खरीदोगे?"

"भो! क्या कहते हो? जीवित हाथी का दाँत, मृत हाथी के दाँत से अधिक मूल्यवान् होता है।"

'तो मैं जीवित हाथी का दाँत लाऊंगा' (कह) रास्ते के लिए आवश्यक (खाने का) सामान तथा तेज आरी लेकर, बोधिसत्व के निवास स्थान को गया। बोधिसत्व ने उसे देखकर पूछा—"किस लिए आया है?"

"स्वामी! मैं निर्धन हूँ, दरिद्र हूँ। जीने का उपाय नहीं। आप के पास इसलिए आया हूँ, कि यदि आप दें, तो आप से दन्त-खण्ड माँग कर ले जाऊँ, और उन्हें बेचकर, उस धन से निर्वाह करूँ।"

"अच्छा! भो! मैं तुझे दन्त-खण्ड दूंगा, यदि (तेरे पास) दाँत काटने के लिए आरी हो।"

"स्वामी! मैं आरी लेकर आया हूँ"

"तो दाँतों को आरी से काट कर ले जा।" बोधिसत्व पाँव को सुकेड़ कर, गौ की तरह बैठ गये। उसने, उस के दोनों अगले दाँत काट लिए। बोधिसत्व ने उन दाँतों को सोन्ड में ले, 'भो! पुरुष! मैं यह दाँत इसलिए नहीं

[अकृतज्ञ, सदा दोष ढूंढ़ने वाले आदमी को सारी पृथ्वी देकर भी सन्तुष्ट नहीं किया जा सकता।]

अकतञ्ञुस्स, जो अपने पर किये उपकार को न जाने; पोसस्स, मनुष्य को; निच्चं विवरदस्सिनो, जो छिद्र—खाली जगह ही देखता रहे; छिद्रान्वेषी को। सब्बं चे पठविं दज्जा, वैसे आदमी को यदि सारा चक्रवर्ती राज्य अथवा महापृथ्वी को पलट कर, इस पृथ्वी का सार भी दे दिया जावे; नेव नं अभिराधये, ऐसा करने पर भी, इस प्रकार के अकृतज्ञ मनुष्य को कोई सन्तुष्ट या प्रसन्न नहीं कर सकता।

इस प्रकार उस देवता ने उस वन को उत्साहित करते हुए धर्मोपदेश दिया। बोधिसत्व, जितनी आयु थी, उतने काल तक जीवित रह कर, कर्मानुसार परलोक गया।

शास्ता ने 'भिक्षुओ ! न केवल अभी देवदत्त अकृतज्ञ है, पहले भी अकृतज्ञ रहा है' कह, इस धर्मदेशना को ला, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय का मित्रद्रोही आदमी (अब का) देवदत्त हुआ। वृक्ष देवता (अब के) सारिपुत्र। सीलवनागराजा तो मैं ही था।

७३. सच्चंकिर जातक

"सच्चं किरेवमाहंसु..." यह (गाथा) शास्ता ने वेणुवन में विहार करते समय, वध करने के प्रयत्न के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

धर्मसभा में बैठे भिक्षु (कह रहे थे) 'आयुष्मानो !' देवदत्त, शास्ता के गुणों को नहीं जानता (और उनके) वध करने का ही प्रयत्न करता है। (यह) देवदत्त

के अवगुण कह रहे थे। शास्ता ने आकर, 'भिक्षुओ! इस समय बैठे क्या बात-चीत कर रहे थे' पूछ, 'यह बातचीत' कहने पर, 'भिक्षुओ! न केवल अभी देवदत्त, मेरे वध का प्रयत्न करता है, (उसने) पहले भी किया था' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में, (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, उसका दुष्टकुमार नाम का (एक) पुत्र था—दारुण, कठोर, तथा ताड़ि-[illegible] सर्प सदृश। वह बिना गाली दिये, बिना मारे किसी से बात ही न करता था। वह इसका कारण था और अन्दर बाहर के आदमियों को वैसे ही अच्छा न लगता था, जैसे आँख में पड़ा हुआ रज-कण, अथवा खाने के लिए आया पिशाच। एक दिन जल-क्रीड़ा करने की इच्छा से, वह अपने अनु-यायियों के साथ नदी के तट पर गया। उस समय चारों ओर के बादल आये। चारों ओर अन्धकार छा गया। उसने नौकरों-चाकरों को कहा—'अरे! आओ। मुझे नदी के बीच में ले जाकर नहला लाओ।' वे उसे वहाँ ले जाकर, 'राजा हमारा क्या कर लेगा? हम इसे यहीं मार डालें' सलाह कर, 'चल रे अभागे कहीं के' (कह) उसे पानी में डुबो (अपने) ऊपर किनारे पर आ खड़े हुए। '(राज-) कुमार कहाँ है?' पूछने पर, उत्तर दिया—"हम कुमार को नहीं देखते, बादल आया देख, पानी में डुबकी लगा (निकल कर) आगे चला गया होगा।'

अमात्य-गण राजा के पास गये। राजा ने पूछा—"मेरा पुत्र कहाँ है?'

[illegible]

[illegible]

उत्पन्न हुआ था। एक और (सेठ) उसी प्रदेश में तीस करोड़ धन गाड़ कर, धन-तृष्णा के कारण, चूहा होकर उत्पन्न हुआ था। उनके निवास-स्थान में भी पानी भर गया था; और वे, जिस रास्ते से पानी आता था, उसी रास्ते से निकल, (पानी की) धार को काट कर जिस लक्कड़ पर वह राज-कुमार बैठा था, उसी लक्कड़ पर पहुँच गये, और उस लक्कड़ के एक सिरे पर एक, दूसरे सिरे पर दूसरा बैठ रहा। उसी नदी के किनारे एक सेमल वृक्ष था, जिस पर एक तोते का बच्चा रहता था। वह वृक्ष भी, पानी द्वारा जड़ उखड़ जाने से उसी नदी में गिर पड़ा। पानी के बरसते रहने के कारण, वह तोते का बच्चा भी न उड़ सकने से, उस लक्कड़ के ही एक ओर जाकर लग रहा। इस प्रकार, वह चारों जने इकट्ठे बहते जा रहे थे।

बोधिसत्व भी उस समय काशी राष्ट्र के (एक), उदीच्य[1] ब्राह्मण-कुल में पैदा हो, बड़े होने पर ऋषि प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हुए थे, और नदी के मोड़ पर पर्णशाला बनाकर रहते थे। उन्होंने आधी रात को टहलते समय, उस राजकुमार का जोर का रोने का शब्द सुना और सोचा—मेरे जैसे मैत्री और दया से युक्त तपस्वी के देखते देखते इस पुरुष का मरना उचित नहीं। मैं पानी में कूद कर, इसे जीवन-दान दूँगा।' उन्होंने 'डर मत। डर मत।' का आश्वासन दिया, और पानी के स्रोत को काटते हुए जा कर, उस लक्कड़ को एक सिरे से पकड़, खींचते हुए, हाथी सदृश बल से, एक ही झटके में किनारे पर पहुँचा दिया। फिर कुमार को उठाकर, किनारे पर बिठाया। पीछे साँपादि को भी देख, उठाकर आश्रम में ले जा, उनके लिए आग जला दी। उसने 'यह अपेक्षाकृत दुर्बल हैं' (करके) पहले उनके शरीर को सुखा, पीछे राजकुमार के शरीर को सुखा, उसे भी आरोग्य प्रदान किया। (फिर) आहार देते समय भी, पहले साँप आदि को ही देकर, पीछे उसके लिए फल-मूल लाकर दिये।

'यह कुछ तपस्वी, मेरे राजकुमार होने का ख्याल न कर, इन पशुओं का सम्मान करता है' (सोच) राजकुमार, बोधिसत्व का बैरी बन गया। उसके

---

[1] उदीच्य = उत्तर के

उस समय, वह मित्र-द्रोही राजा, अलंकृत हाथी के कन्धे पर बैठ, अनेक अनुयायियों के साथ नगर की सैर कर रहा था। उसने दूर से ही बोधिसत्व को आते देख, 'यह कूट (=बनावटी) तपस्वी, मेरे पास, (कृपा से) खाते हुए, रहने के लिए आ रहा है। इससे पहले कि यह परिषद् में, मुझ पर किये अपने उपकार को प्रगट करे, मुझे इसका सिर कटवा देना चाहिए' (सोच) अपने आदमियों की ओर देखा। "देव! क्या करें?"

वह बोला—"मालूम होता है, यह कूट तपस्वी मुझ से कुछ माँगने के लिए आ रहा है। इस कूट तपस्वी को मेरे सामने मत आने दो, और पकड़ कर, पीछे से बाँहें बाँध कर, चौरस्ते चौरस्ते पर प्रहार देते हुए, नगर से निकालो; तथा मारने के स्थान पर ले जा, इसका सिर काट, शरीर को शूल पर चढ़ा दो।" उन्होंने 'अच्छा' कह स्वीकार किया, और जाकर, निरपराध महात्मा को बाँध, चौरस्ते चौरस्ते पर मारते हुए, वध-स्थान की ओर ले जाना शुरू किया। बोधिसत्व, जब जब मार पड़ती 'माँ, बाप' कुछ न चिल्ला कर, निर्विकार रह यह गाथा कहते—

सच्चं किरेवमाहंसु नरा एकच्चिया इध,
कट्ठं निप्लावितं सेय्यो नत्वेवेकच्चियो नरो॥

[कुछ (बुद्धिमान्) आदमियों ने सत्य ही कहा कि किन्हीं किन्हीं आदमियों को पानी से निकालने की अपेक्षा, लकड़ी का निकालना अच्छा है।]

सच्चं किरेवमाहंसु, यथार्थ ही ऐसा कहते हैं। नरा एकच्चिया इध, कुछ बुद्धिमान् आदमी। कट्ठं निप्लावितं सेय्यो, नदी में बहती जाती सूखी लकड़ी, उभारनी=निकाल कर स्थल पर ला रखनी, श्रेय है, सुन्दर तर है; ऐसे कहने वाले यह आदमी सत्य ही कहते हैं। किस कारण से? वह यवागु भात आदि पकाने के लिए, शीत से पीड़ित आदमियों के तापने के लिए तथा औरों की भी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होती है।

नत्वेव एकच्चियो नरो, लेकिन किसी किसी मित्र-द्रोही, अकृतज्ञ, पापी आदमी को बाढ़ में बहे जाते हुए हाथ से पकड़ कर उभारना अच्छा नहीं; जैसे मैंने इस पापी आदमी को उभार कर अपने ऊपर यह दुःख ले लिया।

इस प्रकार जब जब मार पड़ती तब तब यह गाथा कहता।

यह सुन उनमें जो पण्डित आदमी थे, उन्होंने पूछा—"भो! प्रव्रजित! क्या तूने हमारे राजा का कोई उपकार किया है?"

बोधिसत्व ने वह हाल सुना कर कहा—'सो! इसे बाढ़ से निकाल कर, मैंने स्वयं ही अपने लिए दुःख लिया। मैंने पुराने बुद्धिमान् आचार्यों के कथनानुसार आचरण नहीं किया' याद कर यह (गाथा) कहता हूँ। उसे सुन क्षत्रिय ब्राह्मण आदि नगर निवासियों ने सोचा—"यह मित्र द्रोही राजा, इस प्रकार के गुणवान्, अपने को प्राणदान देने वाले व्यक्ति का, उपकार मात्र भी नहीं जानता, इसके कारण हमारी क्या उन्नति होगी?' (यह सोच) 'इसे पकड़ो' कह, क्रोध में चारों ओर से उठ खड़े हुए और उन्होंने तीर, भाले, पत्थर, मुद्गर आदि के प्रहार से, हाथी के कन्धे पर बैठे उसे, मार पकड़, पैरों से घसीट, खाई के ऊपर डाल दिया। (फिर) बोधिसत्व का अभिषेक कर, उसे राजा बना दिया।

उसने धर्मानुसार राज्य करते हुए, फिर एक दिन सर्प आदि की परीक्षा करने के विचार से, बहुत से अनुयायियों के साथ, सर्प के निवास स्थान पर जा कर आवाज़ दी—"दीर्घ!" सर्प ने आकर, प्रणाम कर कहा—"स्वामी यह तुम्हारा धन है, लो।" राजा ने चालीस करोड़ (का) सोना अमात्यों को सौंप कर, चूहे के पास जा 'उन्दुर!' कह आवाज़ दी। उसने भी आकर, प्रणाम कर, तीस करोड़ धन लाकर दिया। राजा ने वह भी अमात्यों को सौंप, तोते के निवास स्थान पर जा, 'सुआ' कह आवाज़ दी। उसने भी आकर, चरणों में प्रणाम कर पूछा—"स्वामी! क्या शाली मँगवाऊँ?" राजा 'शाली की आवश्यकता होने पर, मँगवाना, आओ चलें' कह, सत्तर करोड़ (के) माल के साथ, उन तीनों जनों को लिया कर, नगर में पहुँचा; और श्रेष्ठ प्रासाद के महातल पर चढ़, धन को सुरक्षित रखवा, सर्प के रहने के लिए एक सोने की नाली, चूहे के लिए स्फटिक की गुफा और तोते के लिए सोने का पिंजरा बनवाया। वह सर्प और तोते के भोजन के लिए प्रतिदिन, सोने की थाली में, मीठे लावे, और चूहे के लिए सुगन्धित धान के तण्डुल दिलवाता, तथा दान आदि पुण्य करता था। इस प्रकार वह चारों जने, जन्म भर, मिल जुलकर प्रसन्नता पूर्वक रहे। आयु के अन्त में यथा कर्म (परलोक) गये।

शास्ता ने 'भिक्षुओ! न केवल अभी देवदत्त मेरे वध करने के लिए प्रयत्न करता है, (उसने) पहले भी किया है' कह, यह धर्मदेशना ला, मेल मिला, जातक का सारांश निकाला। उस समय का दुष्ट राजा (अब का) देवदत्त था। सर्प (अब का) सारिपुत्र था। चूहा (अब का) मौद्गल्यायन था। तोता (अब का) आनन्द था। राज्य-प्राप्त धर्म-राजा तो मैं ही था।

७४. रुक्खधम्म जातक

"साधु सम्बहुला ञाती..." शास्ता जेतवन में विहार करते थे; उस समय ञाति वालों (शाक्य और कोलियों) का पानी के लिए झगड़ा हो गया। तथागत् उनका महाविनाश सम्भव जान, आकाश-मार्ग से आकर, रोहिणी नदी के ऊपर पालथी मार कर बैठे और (शरीर से) नीली रश्मियाँ फैलाते ञाति वालों को चकित कर, आकाश से उतर आये। फिर नदी के किनारे बैठ कर उन्होंने उस झगड़े के बारे में उपदेश कहा। यह, यहाँ पर संक्षेप है, विस्तार कुणाल जातक[1] में आयेगा।

क. वर्तमान कथा

उस समय शास्ता ने (उनसे) ञातियों को सम्बोधित कर, 'महाराजाओ! तुम परस्पर नातेदार हो। नातेदारों को आपस में मिल कर, प्रेम-पूर्वक रहना चाहिए। ञातियों के परस्पर एकमत रहने से, शत्रुओं को मौका नहीं मिलता। मनुष्यों की बात रहने दो, अचेतन वृक्षों को भी परस्पर एकमत से रहने की ज़रूरत है। पूर्व समय में हिमालय प्रदेश में तूफान ने महा-

---

[1] जातक ५३६

(=आँधी) ने आक्रमण किया। लेकिन उस शालवन के वृक्ष-गाछ-गुल्म लता आदि के एक दूसरे से सम्बद्ध रहने के कारण, वह एक वृक्ष को भी न गिरा सका और, ऊपर ही ऊपर चला गया। लेकिन उसने मैदान में खड़े (एक) शाखा-टहनी आदि से युक्त महा-वृक्ष को, दूसरे वृक्षों से असम्बद्ध होने के कारण, समूल उखाड़ कर जमीन पर गिरा दिया। इस वजह से तुम्हें भी मिल जुल कर, प्रसन्नता पूर्वक रहना चाहिए' कह, उनके याचना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, पहले का कुबेर-राजा मर गया। शक्र (=इन्द्र) ने दूसरा कुबेर स्थापित कर दिया। इस (पहले के) कुबेर के स्थानापन्न होने पर, पीछे के कुबेर ने सब वृक्ष-गाछ-गुल्म लता आदि को सन्देश भेजा कि वह जहाँ जहाँ अच्छा लगे, वहाँ वहाँ अपना अपना निवासस्थान ग्रहण कर लें।

उस समय बोधिसत्व, हिमवन्त प्रदेश के एक शालवन में वृक्ष-देवता होकर, उत्पन्न हुए थे। उन्होंने अपने ज्ञातियों को कहा—"तुम विमान (=वास-स्थान) ग्रहण करते हुए, मैदान में (अकेले) खड़े वृक्षों पर, विमान न ग्रहण करो। इस शालवन में, जहाँ मैं विमान ग्रहण करूँ, उसके इर्द-गिर्द ही (वृक्ष) विमान ग्रहण करो।" सो, बोधिसत्व की बात मानने वाले पण्डित (=बुद्धिमान्) देवताओं ने, बोधिसत्व के विमान को घेर कर ही, विमान ग्रहण किए। लेकिन मूर्खों ने सोचा—"हमें जंगल में विमान ग्रहण करने से क्या लाभ? हम ग्रामवासी में, ग्राम निगम-राजधानियों के द्वारों पर विमानों को ग्रहण करेंगे। ग्राम आदि के पास रहने वाले देवताओं को लाभ तथा यश की प्राप्ति होती है।" (यह सोच) उन्होंने ग्रामवासी में खुले स्थानों में उगे महावृक्षों पर विमान ग्रहण किए।

एक दिन बड़ा भीषण आँधी-पानी आया। हवा के बड़ी तेज होने से, जमी हुई जड़ उखड़े, अनेक के पुराने वृक्ष भी टहनी टूट, तनुक गिर पड़े। लेकिन, एक दूसरे के आश्रित खड़े शालवन का इधर उधर से प्रहार देकर भी (वायु) एक भी वृक्ष न गिरा सका। विमान विनष्ट हुए उन देवताओं ने, बच्चों-

रहित हो, बच्चों को हाथ में ले, हिमवन्त जा कर, शालवन के देवताओं को अपना हाल कहा। उन्होंने उनका आना, बोधिसत्व से कहा। बोधिसत्व ने 'पण्डितों की बात न मान, अविश्वस्त स्थान पर जाने वालों का यही हाल होता है' कह, धर्मोपदेश करते हुए, यह गाथा कही—

> साधु सम्बहुला ञाती अपि रुक्खा अरञ्ञजा,
> वातो वहति एकट्ठं ब्रहन्तम्पि वनप्पतिं ॥

[ज्ञातियों का सम्मिलित रहना श्रेयस्कर है, अरण्य में उत्पन्न होने वाले वृक्षों तक का भी। क्योंकि महा-वृक्ष तक को अकेले खड़े होने पर, हवा उड़ा ले जाती है।]

सम्बहुला ञाती, चार से ऊपर . . . एक लाख तक भी ञाती (=नातेदार) सम्बहुला ही (कहलाते हैं)। इस प्रकार सम्बहुला का अर्थ है, एक दूसरे के आश्रित बने हुए ज्ञातिगण। साधु=शोभायमान=प्रशंसित; मतलब, दूसरों से अनिन्दित। अपि रुक्खा अरञ्ञजा, मनुष्यों की बात रहे, जंगल में उत्पन्न हुए वृक्ष भी, एक दूसरे के आश्रय से ही अच्छी तरह खड़े रहते हैं। वृक्षों के लिए भी विश्वस्तता आवश्यक है। वातो वहति एकट्ठं, पूर्वी आदि हवा चलने पर, मैदान में स्थित एकट्ठं, (=अकेले खड़े) ब्रहन्तम्पि वनप्पतिं, शाखा-टहनी से युक्त महावृक्ष को भी, उड़ा ले जाती है; उखाड़ कर गिरा देती है।

बोधिसत्व यह बात कह, आयु क्षय होने पर, कर्मानुसार, परलोक गये।

शास्ता ने भी, 'महाराजाओ! इस प्रकार ज्ञातियों को मिलकर ही रहना चाहिए। सो. आप, मेल से, प्रसन्नचित्त, सुखी हो रहें।'—यह धर्म-देशना ला, जातक का सारांश निकाल दिया।

उस समय के देवता (अब की) बुद्ध परिषद् हुई। लेकिन पण्डित-देवता मैं ही था।

७५. मच्छ जातक

"अभित्थनय पज्जुन्न..." यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, अपनी बरसाई हुई वर्षा के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक समय कोसल देश में वर्षा न बरसी। खेतियाँ कुम्हला गईं। जहाँ तहाँ स्थित तालाब, पुष्करिणियाँ सूख गईं। जेतवन के फाटक (द्वार-कोठे) के पास की जेतवन पुष्करिणी का पानी भी छीज गया। कौए चील आदि (पक्षी) गहरे कीचड़ में जाकर पड़े हुए मछली, कछुओं को तीर की नोक जैसी अपनी तीखी चोंच से मार मार कर, ले जाकर, छटपटाते हुए खाने लगे। मछली कछुओं के उस दुःख को देख, महाकरुणा से बुद्ध का हृदय द्रवीभूत हो गया, और वह सोचने लगे—"आज मुझे वर्षा बरसानी चाहिए।" (यह सोच) रात्रि के प्रभात होने पर, उन्होंने शारीरिक कृत्य समाप्त किया। भिक्षा-चार के समय का ख्याल कर, महान् भिक्षु-संघ को साथ ले, बुद्ध-लीला से उन्होंने श्रावस्ती में भिक्षाटनार्थ प्रवेश किया। भिक्षाटन कर भोजन से निवृत्त हो लौट, श्रावस्ती से विहार को जाते हुए जेतवन-पुष्करिणी की सीढ़ी पर खड़े हो कर आयुष्मान् आनन्द स्थविर को आमन्त्रित किया—"आनन्द! नहाने का वस्त्र ला। जेतवन पुष्करिणी में नहाऊँगा।"

"भन्ते! क्या जेतवन-पुष्करिणी में पानी खतम नहीं हो गया? क्या केवल कीचड़ बाकी नहीं रह गया?"

"आनन्द! बुद्ध-बल महान् बल है। जा, तू नहाने का वस्त्र ले आ।"

स्थविर ने (वस्त्र) लाकर दिया। शास्ता (वस्त्र के) एक सिरे को (कमर पर), एक दूसरे सिरे को कन्धे पर रख जेतवन-पुष्करिणी में नहाने की इच्छा से सीढ़ी पर खड़े हुए

ने) गन्धकुटी से निकल, धर्म सभा में आकर पूछा—"भिक्षुओ! इस समय, बैठे क्या बातचीत कर रहे थे?"

"यह कथा," कहने पर (शास्ता ने) "भिक्षुओ! न केवल अभी तथागत ने जन-(समूह) को दुख पाते देख वर्षा बरसाई। पहले पशु योनि में उत्पन्न हो, मत्स्य-राजा रहने के समय भी वर्षा बरसाई थी" कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में इसी कोसल देश में, इसी श्रावस्ती में, इसी जेतवन पुष्करिणी की जगह, घनी लताओं से घिरी हुई एक कन्दरा थी। उस समय बोधिसत्व *मछली की योनि में उत्पन्न हो, मछली गण से घिरे हुए वहीं रहते थे।* जैसे अब, इसी प्रकार उस समय भी, देश में वर्षा नहीं हुई। मनुष्यों के खेत कुम्हला गये। वापी आदि में पानी सूख गया। मछली-कछुवे गाढ़े कीचड़ में घुस गये। इस कन्दरा की मछलियाँ भी, गहरे कीचड़ में घुस जहाँ तहाँ छिप गईं। कौवे आदि, चोंच से उन्हें मार मार कर, ले जा कर खाने लगे।

बोधिसत्व ने जाति-संघ (=भाई बिरादर) का दुख देख, सोचा—"मुझे छोड़, और कोई इन्हें दुख से मुक्त नहीं कर सकता। सो, मैं सत्य-किरिया[1] कर, देव (=वर्षा) को बरसा, प्राणियों को मृत्यु-दुख से मुक्त करूँगा।" (यह सोच) काले काले कीचड़ को बीच में से फाड़, (बाहर) निकल, (उस) सुरमे के रंग के महामत्स्य ने स्वच्छ रक्तवर्ण मणि जैसी आँखों को खोल, आकाश की ओर देख, पर्जन्य देवपुत्र देवेन्द्र को आवाज दी, "भो। पर्जन्य! मैं (अपने) भाई-बिरादरों के कारण दुखी हूँ। तू मेरे (सदृश) सदाचारी के दुख पाते हुए भी, किस लिए वर्षा नहीं बरसाता है। मैं ने आपस में एक दूसरे को खानेवाली योनि में उत्पन्न होकर भी, चावल भर माँस तक नहीं खाया, और भी मैं ने किसी प्राणी की हिंसा नहीं की। (मेरे इस) सत्य (-बल) से, वर्षा बरसा कर, मेरे भाई-बिरादरी को दुख से मुक्त कर"

---

[1] अपने सचाई की शपथ खाकर किसी की हितकामना करना।

कह, (अपने) सेवक को आज्ञा देने की तरह आज्ञा देते हुए पर्जन्य देवपुत्र को सम्बोधित कर यह गाथा कही—

> अभित्थनय पज्जुन्न ! निधिं काकानं नासय,
> काकं सोकाय रन्धेहि मञ्च सोका पमोचय ॥

[पर्जन्य ! गर्ज; कौओं की निधि का नाश कर; कौओं को शोक में लपेट और मुझे शोक से मुक्त कर।]

अभित्थनय पज्जुन्न, 'पज्जुन्न' कहते हैं मेघ को। मेघ होने से, बरसने वाले बादलों के देवता को इस नाम से सम्बोधित किया गया है। यहाँ इसका अभिप्राय है। बिना गरजे, बिना बिजली चमकाये, केवल बरसने से 'देव' नाम शोभा नहीं देता; इस लिए तू गरजते हुए, बिजली चमकाते हुए बरस। **निधिं काकानं नासय,** कौए, कीचड़ में पड़ी हुई मछलियों को मार मार से जाकर खाते हैं, इस लिए कीचड़ में पड़ी मछलियों को उन (कौओं) की निधि (=खजाना) कहा गया है। उन कौओं की निधि को वर्षा बरसा कर, पानी से ढक कर, नाश कर। **काकं सोकाय रन्धेहि,** काक-समूह, इस कन्दरा के पानी से भर जाने पर, मछलियों के न मिलने से शोक को प्राप्त होगा। सो, तू इस कन्दरा को पानी से भर कर, काक-गण को शोक में लपेट, शोक-प्राप्त कर। अर्थात् जैसे (वे) भीतर जला देने वाले शोक को प्राप्त हों, वैसा कर। **मञ्च सोका पमोचय,** यहाँ 'च' जोड़ने के लिए है, सो मुझे और मेरे जाति-बिरादरी को इस मृत्यु-भय से मुक्त कर। इस प्रकार बोधिसत्व ने (अपने) सेवक को आज्ञा देने की भाँति, पर्जन्य को कह, सारे कोसल देश में भारी वर्षा बरसवा, उन(-समूह) को मृत्यु-भय से मुक्त किया, और आयु (=जीवन) की समाप्ति पर यथा-कर्म (परलोक को) गये।

शास्ता ने 'भिक्षुओ ! [illegible] वर्षा बरसाई है, पूर्व [illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]

७६. असंकिय जातक

असंकियोम्हि गामम्हि" यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, एक श्रावस्ती वासी उपासक के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह (उपासक) स्रोतापन्न, आर्यश्रावक था। (एक बार) बैल गाड़ियों के बजारों (शकट-सार्थवाह) के साथ वह यात्रा कर रहा था। उस समय, जंगल में बैलों को खोल, तम्बू लगाने पर, वह, कारवाँ से कुछ दूर, एक वृक्ष के नीचे टहलने लगा। अपना मौक़ा देख, पाँच सौ चोरों ने पड़ाव को लूटने की इच्छा से, धनुष, मुद्गर आदि (शस्त्र) हाथ में ले, उस स्थान को घेर लिया। उपासक भी टहल रहा था। चोरों ने उसे देख, सोचा—"यह, अवश्य पड़ाव का पहरेदार होगा। इस के सोने पर लूटेंगे।" (यह सोच) वह लूटने का मौक़ा न पाते हुए जहाँ तहाँ खड़े रहे। वह उपासक, प्रथम याम (=पहर) में, मध्यम याम में, तथा आख़िरी याम में भी टहलता ही रहा। प्रात: हो जाने से, चोर मौक़ा न पा, हाथ में के पत्थर, मुद्गर आदि को छोड़ भाग गये। उपासक ने अपना काम समाप्त कर, फिर श्रावस्ती लौटकर, शास्ता को प्रणाम कर पूछा—"भन्ते! क्या अपनी रक्षा करने वाले दूसरों के (भी) रक्षक होते हैं?"

"उपासक! हाँ! अपनी रक्षा करने वाला, दूसरों की रक्षा करता है, दूसरों की रक्षा करने वाला, अपनी रक्षा करता है।'

उसने कहा—"भन्ते! आप का कथन ठीक है। मैं ने एक काफ़िले के साथ रास्ता चलते, वृक्ष के नीचे टहलते हुए अपनी रक्षा करने के विचार से सारे कारवाँ की रक्षा की।

शास्ता ने, "उपासक! पूर्व समय में भी, अपनी रक्षा करते हुए पण्डितों ने, दूसरों की रक्षा की है" कह, उसके प्रार्थना करने पर, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्व ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुए। जवान होने पर, काम-भोग (के जीवन) में दोष देख ऋषि-प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो वह हिमालय चले गये। वहाँ से खट्टा-नमकीन सेवन करने के लिए बस्ती में आये, और बस्ती में विचरते, एक कारवाँ के साथ साथ मार्ग चलने लगे। कारवाँ के, एक जंगल में पड़ाव डालने पर, वह, कारवाँ के समीप, एक वृक्ष के नीचे ध्यान-सुख से समय बिताते हुए टहलने लगे। तो शाम का भोजन खा चुकने के समय, पाँच सौ चोरों ने उस कारवाँ को लूटने की इच्छा से आकर घेर लिया। उस तपस्वी को टहलते देख कर, उन्होंने सोचा—"यदि यह हमें देख लेगा, तो कारवाँ को कह देगा। सो इसके सोने के समय लूटेंगे।" (यह सोच) वह वहीं खड़े रहे। तपस्वी सारी रात टहलता ही रहा। चोर मौका न मिलने पर, हाथ में के मुद्गर, पाषाण आदि को छोड़, चले गये; और जाते जाते कह गये—"भो! कारवाँ वालो! यदि आज यह वृक्ष के नीचे टहलने वाला तपस्वी न रहता, तो (तुम) सब लूट लिये जाते। कल, तपस्वी का महान् सत्कार करना।" उन्होंने रात के बाद प्रभात होने पर, चोरों के छोड़े हुए मुद्गर, पाषाण आदि देख, भयभीत हो, बोधिसत्व के पास जा, प्रणाम कर, पूछा—"भन्ते! आपने चोरों को देखा?"

"हाँ! आयुष्मानो! देखा।"

"भन्ते! इतने चोरों को देख कर, भय या डर नहीं लगा?"

बोधिसत्व ने कहा—"आयुष्मानो! धनी (आदमी) को चोरों से भय होता है। मैं निर्धन हूँ। सो, मैं किस लिए डरूँगा? मुझे, गाँव में रहते हुए, या जंगल में रहते हुए न कोई भय है, न डर है।" यह कह, उन्हें धर्मोपदेश करते हुए, यह गाथा कही—

७७. महासुपिन जातक

"लाबूनि सीदन्ति..." यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, सोलह महास्वप्नों के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन कोसल महाराजा ने सोते समय, (रात्रि के) आखिरी पहर में सोलह महास्वप्न देखे, जिनसे भयभीत, चकित, हो जागकर, 'इन स्वप्नों को देखने के कारण मुझे क्या (भुगतना) होगा?' (सोच), मृत्यु-भय से डर कर शय्या पर बैठे ही बैठे (रात्रि) बिताई। रात्रि का प्रभात होने पर, ब्राह्मण पुरोहितों ने उन के पास आकर पूछा—"महाराज! सुख से तो सोये?"

"आचार्यों! मुझे सुख कहाँ! आज प्रातःकाल, मैं ने सोलह महास्वप्न देखे। उनके देखने के समय से, मैं भयभीत हूँ। आचार्यों! (कुछ) कहो।" उनके '(स्वप्नों को) सुनकर, बतलायेंगे' कहने पर, राजा ने उन देखे स्वप्नों को कह, पूछा—इन स्वप्नों को देखने के कारण मुझे क्या (भुगतना) होगा?'

ब्राह्मणों ने हाथ मले।

"आप किसलिए हाथ मल रहे हैं?"

"महाराज! स्वप्न अच्छे नहीं।"

"तो इनका क्या फल होगा?"

"राज्य को खतरा, जीवन का खतरा तथा भोग-सम्पत्ति का खतरा—इन तीन खतरों में से कोई एक होगा।"

"यह स्वप्न सत्राण (=सप्रतिकार) है, अथवा निस्त्राण?"

"यद्यपि अपनी कठोरता के कारण यह (स्वप्न) निस्त्राण है, तो भी हम

इनका उपाय करेंगे, यदि हम इनका कुछ उपाय न कर सकें, तो हमारी विद्या किस काम आयेगी ?"

"इनका उपाय कैसे करोगे ?"

"महाराज ! चारों (चीजों) से यज्ञ करेंगे।"

राजा बोला—"अच्छा ! तो आचार्यों, मेरा जीवन तुम्हारे हाथ में है, शीघ्र ही मुझे निरुपद्रव (=स्वस्थ) करो।"

'बहुत धन मिलेगा, बहुत खाद्य-भोज्य ले जायेंगे' सोच प्रसन्न चित्त हो ब्राह्मण, 'महाराज ! चिन्ता न करें' कह, राजा को आश्वासन दे, राज-भवन से निकले। उन्होंने नगर के बाहर यज्ञ-कुण्ड बनवा, बहुत से पशुओं को यज्ञ-यूप से बँधवाया; (तथा) पक्षी-गणों को मँगवा, 'यह चाहिए, यह चाहिए, करके बार बार, आवा जाही करने लगे। मल्लिका देवी ने उस बात को जान, राजा के पास जाकर पूछा—"महाराज ! ब्राह्मण किस लिए आवा जाही कर रहे हैं ?"

"तू (अपने) सुख से है। हमारे कान के पास विषैला सर्प घूम रहा है, सो भी नहीं जानती।"

"महाराज ! यह क्या ?"

"मैंने ऐसा दुस्स्वप्न देखा है, ब्राह्मणों का कहना है कि तीन खतरों में से एक खतरा दिखाई देता है, सो 'उसे रोकने के लिए यज्ञ करेंगे' (करके) वह बारबार आवा जाही कर रहे हैं।"

"महाराज ! क्या आपने देवताओं सहित सारे लोक में अग्र-ब्राह्मण से स्वप्न का प्रतिकार पूछा ?"

"भद्रे ! देवताओं सहित सारे लोक में यह अग्र-ब्राह्मण कौन है ?"

"देवता सहित सारे लोक में, पुरुषोत्तम, सर्वज्ञ, विशुद्ध, क्लेश (=(=विकार)-रहित महा-ब्राह्मण को तुम नहीं जानते ? महाराज ! जाओ, वह भगवान् स्वप्नों के भेद को जानते हैं, उन्हें पूछो।"

"देवी ! अच्छा" कह, राजा, विहार जा, शास्ता को प्रणाम करके बैठा।

शास्ता ने मधुरवाणी से पूछा—"क्यों महाराज ! आज कैसे सवेरे ही आये ?"

"भन्ते! मैंने आज ही तड़के ही, सोलह महास्वप्न देखकर, भयभीत हो ब्राह्मणों से पूछा।" "महाराज! स्वप्न, क्रूर (=कठोर) हैं, इनके प्रतिकार के लिए, चारों (चीज़ों) से यज्ञ करेंगे (करके) वह यज्ञ की तैयारी कर रहे हैं, बहुत से प्राणी मरने के भय से भयभीत हैं। आप देवताओं सहित सारे लोक में सर्वश्रेष्ठ पुरुष हैं। अतीत-अनागत-वर्तमान, कोई ऐसी बात नहीं है, जो आपके ज्ञान से अगोचर हो। भगवान्! मुझे इन स्वप्नों का फल कहें।"

"महाराज! ऐसा ही है, मुझे छोड़, देवताओं सहित सारे लोक में कोई भी, इन स्वप्नों का भेद या फल नहीं जान सकता। मैं तुझे बताऊँगा, लेकिन, (पहले) तू जैसे देखा है, वैसा ही, उन स्वप्नों को बयान कर।" "भन्ते! अच्छा" कह, राजा ने जैसे जैसे देखा था, वैसे ही कहते हुए, इस प्रकार कहा—

उसभा रुक्खा गाविये गवा च
अस्सो कंसो सिगाली च कुम्भो
पोक्खरणी च अपाकचन्दनं
लाबूनि सीदन्ति सिला प्लवन्ति
मण्डूकियो कण्हसप्पे गिलन्ति;
काकं सुवण्णा परिवारयन्ति
तसावका एळकानं भया हि॥

[साँड़, वृक्ष, गौवें, बैल, घोड़ा, काँसा, स्यारी, घड़ा, पुष्करिणी, अपक्व चन्दन, तुम्बे डूबते हैं, शिलायें तैरती हैं, मेंढकियाँ काले साँपों को निगलती हैं, राजहंस कौओं के पीछे चलते हैं, भेड़िए बकरियों से डरते हैं।]

"कैसे? भन्ते। एक स्वप्न तो ऐसे देखा—सुरमे जैसे काले चार साँड़ (=लड़ने की इच्छा से चारों दिशाओं से राजाङ्गन में आये। बैलों की लड़ाई देखने की इच्छा से, जन-समूह) के एकत्रित होने पर, लड़ने का ढंग दिखा, नादकर, गर्जना कर, बिना लड़े ही वह वापिस लौट गये। यह स्वप्न देखा। इसका क्या फल है?"

"महाराज! इस स्वप्न का फल न तेरे समय में होगा, न मेरे समय में, किन्तु भविष्य में अधार्मिक, कंजूस राजाओं तथा अधार्मिक मनुष्यों के समय में

(होगा)। लोक के बदलने पर, धर्म के घटने पर, अधर्म के बढ़ने पर, लोक की अवनति होने के समय, अच्छी तरह वर्षा नहीं बरसेगी, बादल फट जायेंगे, खेत कुम्हला जायेंगे, अकाल पड़ेगा। बादल, जैसे बरसने वाले हों, वैसे चारों दिशाओं से उठेंगे। स्त्रियाँ धूप में फैलाये हुए धान्य आदि भीगने के डर से अन्दर ले जाने लगेंगी। आदमी टोकरी-कुदाली हाथ में लेकर मेड़ बाँधने के लिए निकलेंगे। (फिर वह बादल) बरसने का ढंग दिखा गरज कर, बिजली चमका कर, उन बैलों की तरह बिना लड़े (अर्थात्) बिना बरसे ही भाग जायेंगे। यह इसका फल होगा। लेकिन इसके कारण, तुझे किसी प्रकार का भय नहीं है। यह जो स्वप्न देखा है, सो यह भविष्य-सम्बन्धी है। ब्राह्मणों ने जो कहा है, सो अपनी जीविका-वृत्ति के लिए कहा है।"

इस प्रकार शास्ता ने स्वप्न का फल बतला कर कहा—"महाराज! दूसरा स्वप्न कहें।"

"भन्ते! दूसरा (स्वप्न) इस प्रकार देखा—'पृथ्वी से निकलते ही छोटे वृक्ष, एक या दो बालिश्त के होने से भी पहले ही फलने फूलने लगे।' यह दूसरा स्वप्न देखा, इसका क्या फल है?"

"महाराज! इसका भी फल, लोक की अवनति होने तथा मनुष्यों की आयु कम (=परिमित) होने पर होगा। भविष्य के प्राणी बड़े रागी होंगे। कुमारियाँ आयु-प्राप्त होने से पहले ही, आदमियों से संसर्ग कर, ऋतुमती तथा गर्भिणी हो, बेटा-बेटी की वृद्धि करेंगी। क्षुद्र वृक्षों के पुष्पित होने की तरह ही, उनका ऋतुमती होना है, और फलित होने की तरह बेटा-बेटी वाली होना है। इसके कारण भी, महाराज! तुझे भय नहीं। तीसरा स्वप्न कहें।"

"भन्ते! उसी दिन उत्पन्न (जन्मी) बछड़ियों का दूध गौवें पी रही थीं। यह मेरा तीसरा स्वप्न है। इसका क्या फल है?"

इसका भी फल भविष्य में जब मनुष्य बड़ों का आदर-सत्कार करना छोड़ देंगे, तभी होगा। भविष्य में लोग माता-पिता तथा सास ससुर के प्रति निरादर हो, स्वयं धन ही कुटुम्ब का पालन करेंगे। बड़े बूढ़ों को खाना कपड़ा देने की इच्छा रहेगी तब, न देने की इच्छा रहती नहीं तब। वृद्ध जन अनाथ हो, पराधीन हो, बच्चों को सन्तुष्ट करके जीवित रह सकेंगे, वैसे उसी

दिन उत्पन्न हुई बछड़ियों का दूध पीती गौवें। इसके कारण भी, तुम्हें खतरा-नहीं है. चौथा (स्वप्न) कहें।"

'भन्ते ! उठाने ढोने की सामर्थ्य रखने वाले, महाबैलों को धुर-परम्परा में न जोत कर, तरुण बछड़ों के धुरे में जोते जाते देखा; वे धुर को न खींच सकने के कारण छोड़ कर खड़े हो गये, गाड़ियाँ न चलीं। यह मैंने चौथा स्वप्न देखा। इसका क्या अर्थ है ?"

'इसका भी फल, भविष्य में अधार्मिक राजाओं के ही समय में होगा। भविष्य में, अधार्मिक कृपण राजा, पंडितों को, परम्परागत दक्षों को, कार्य सम्पादन करने की सामर्थ्य रखने वालों को, महाबुद्धिमानों को यश न देंगे और धर्मसभा तथा न्यायालयों में भी पंडित, व्यवहार कुशल, वृद्ध अमात्य को नहीं रखेंगे. किन्तु इनके विरुद्ध तरुण तरुणों को यश देंगे, और वैसों को ही न्यायालयों में रखेंगे। वे राज कार्य तथा योग्य अयोग्य के न जानने के कारण, न तो उस यश को रख सकेंगे, न ही राज-कार्य का बेड़ा पार लगा सकेंगे। न कर सकने पर वह कार्य (-धुर) को छोड़ देंगे। वृद्ध-पंडित अमात्य यश के न मिलने पर, कार्य सम्पादन कर सकने की सामर्थ्य रखने पर भी, सोचेंगे— 'हमें इससे क्या ? हम बाहर के हो गये, अन्दर वाले तरुण लड़के जानें।" (यह सोच) वह, जो जो काम पड़ेंगे, उन्हें नहीं करेंगे। इस प्रकार सर्वत्र उन राजाओं की हानि ही होगी। सो यह धुरि खींचने में असमर्थ बछड़ों को धुरे में जोतने, और धुरा खींचने में समर्थ महाबैलों को धुर परम्परा से न जोतने के जैसा होगा। इसके कारण भी, तुम्हें कोई खतरा नहीं। पाँचवाँ (स्वप्न) कहें।"

"भन्ते ! एक दोनों ओर मुँह वाले घोड़े को देखा। उसे दोनों ओर से चारा दिया जाता था, और वह दोनों मुखों से खाता था। यह मेरा पाँचवाँ स्वप्न है। इसका क्या फल है ?"

'इसका भी फल, भविष्य में अधार्मिक राजाओं के ही समय में होगा। भविष्य में अधार्मिक मूर्ख राजा, अधार्मिक लोभी मनुष्यों को न्यायाधीश बनायेंगे। वे मूर्ख पाप-पुण्य का भेद न कर, सभा में बैठ न्याय करते हुए, दोनों प्रत्यर्थियों से रिश्वत लेकर खायेंगे, जैसे कि वह घोड़ा था दोनों मुँह से चारा खाता। इससे भी, तुम्हें खतरा नहीं है, छठा (स्वप्न) कहें।"

से तथा चारों अनुदिशाओं से, घड़ों में जल ला ला कर, उस भरे हुए, घड़े को ही भरते थे। लबालब भरा पानी, किनारों पर से होकर गिरता जाता था, लेकिन फिर भी बार बार उसीमें पानी डाल रहे थे। खाली घड़ों की ओर, कोई देखता तक न था। यह मेरा आठवाँ स्वप्न है। इसका क्या फल होगा?"

"इसका फल भी, भविष्य में ही होगा। भविष्य में लोक की अवनति होगी। राष्ट्र सार-रहित हो जायेगा। राजा, दुर्गत, कृपण हो जायेंगे। जो ऐश्वर्य शाली होगा, उसके खजाने में केवल एक लाख कार्षापण रहेंगे। इस प्रकार दुर्गति को प्राप्त हो, वह, सब जनपद-वासियों से अपना ही काम करवायेंगे। पीड़ित मनुष्य अपने काम-काज छोड़ कर राजाओं के ही लिए पूर्व-अन्न, अपर-अन्न (आषाढ़ी—श्रावणी) बोते, रखी करते, काटते, दलाई करते, दुयाते, ऊख की खेती करते, यन्त्र बनाते, यन्त्र चलाते, गुड़ आदि पकाते पुष्पोद्यान तथा फलोद्यान लगाते, वहाँ वहाँ उत्पन्न पूर्व-अन्न आदि को लाकर, राजा के कोठों को ही भरेंगे। अपने घरों के खाली कोठों की ओर देखेंगे तक नहीं। यह ऐसा ही होगा, जैसे खाली घड़ों की ओर न देख कर, भरे घड़ों को ही भरना। इस कारण से भी, तुझे खतरा नहीं। नवाँ (स्वप्न) कह।"

"भन्ते! पाँचों पद्मों से आच्छन्न, गम्भीर सब ओर तीर्थ (पत्तन) वाली, एक पुष्करिणी देखी। चारों ओर से द्विपद-चतुष्पद उतर कर, उसमें पानी पीते थे। उसके बीच में गहराई में (तो) पानी गदला था, (लेकिन) किनारे पर, द्विपद-चतुष्पदों के आने-जाने की जगह मैंने उसे शुद्ध, स्वच्छ तथा साफ ही देखा। यह मेरा नौवाँ स्वप्न है। इसका क्या फल है?"

"इसका भी फल, भविष्य में ही होगा। भविष्य में राजा अधार्मिक होंगे। पक्षपात पूर्वक राज्य करेंगे। धर्मानुकूल न्याय न करेंगे। रिश्वत लेने वाले होंगे। (उन्हें) धन का लोभ (होगा)। प्रजा (=राष्ट्र वासियों) के प्रति, उनकी क्षान्ति, मैत्री, करुणा, कुछ न होगी। निर्दयी तथा कठोर होंगे; ऊख के यन्त्र में ऊख की गाँठ को पेलने की तरह, मनुष्यों को पेल पेल कर, नाना प्रकार के टैक्स (=बलि) लगा कर, धन ग्रहण करेंगे। मनुष्य टैक्सों से पीड़ित हो कर, कुछ भी दे सकने में असमर्थ होने पर, ग्राम निगम आदियों को छोड़, सीमान्त (=देश) में जाकर रहने लगेंगे। मध्यम-देश (युक्त प्रान्त बिहार) सूना हो जायगा, प्रत्यन्त घना-बसा; जैसे पुष्करिणी के बीच में पानी

का ही गौरव होगा। राजा के सामने, श्रमात्यों के सामने तथा न्यायालय में, न्याय करने में समर्थ, धनी शिक्षा सदृश कुलपुत्रों का कथन प्रमाण न माना जायेगा। उनके कुछ कहने पर 'यह क्या बोलते हैं' करके, दूसरे लोग मज़ाक ही उड़ायेंगे। भिक्षुओं के सम्मेलन में भी उक्त स्थानों पर, सदाचारी भिक्षुओं का सम्मान न होगा और उनका कथन भी प्रमाण न माना जायेगा। सो, यह शिलाओं के तैरने सदृश होगा। उसमें भी, तुझे खतरा नहीं। चौदहवाँ (स्वप्न) कह।"

"भन्ते ! छोटे मधुक पुष्प जितनी बड़ी मेंडकियों को तेजी से बड़े बड़े काले साँपों का पीछा कर, उन्हें कँवल की नाल की भाँति तोड़ तोड़ कर, उनका मांस निगलते देखा। इसका क्या फल है ?"

"इसका फल भी, लोक की अवनति होने जाने के समय, भविष्य में ही होगा। उस समय लोग तीव्र-रागी हो, विकारों का अनुकरण कर, अपनी तरुण तरुण भार्य्याओं के वशीभूत होकर रहेंगे। घर के नौकर-चाकर, गौ-भैंस, तथा हिरण्य-सोना आदि सब उन्हीं के अधीन रहेगा। "अमुक हिरण्य-सोना अथवा मोती आदि कहाँ हैं ?" पूछने पर "कहीं भी हों। तुम्हें इससे क्या मतलब ? मेरे घर में क्या है, और क्या नहीं है, यह तुम जानना चाहते हो ?" कह, नाना प्रकार से गाली दे, मुख रूपी शक्ती (=आयुध) चुभा चुभा कर, (उन्हें) नौकर-चाकरों की तरह अपने वश में कर, अपना ऐश्वर्य चलायेंगी। सो यह मधुक पुष्प जितनी बड़ी मेंडक की बच्चियों का, जहरीले, काले सर्पों को निगलने जैसा होगा। इससे भी तुझे खतरा नहीं। पन्द्रहवाँ (स्वप्न) कह।"

"भन्ते ! दस असद्धर्मों (=अवगुणों) से युक्त ग्रामचारी कौए को, कञ्चन-वर्ण होने से 'सुवर्ण' कहलाने वाले, सुवर्ण राज-हंसों से घिरा देखा। इसका क्या फल है ?"

"इसका भी फल, भविष्य में दुर्बल राजाओं के समय में होगा। भविष्य में राजा लोग हस्ती शिल्प आदि में अकुशल (तथा) युद्ध में अविशारद होंगे। वे अपने राज्य पर आपत्ति आने की आशंका से, (अपने) समान जातिक कुलपुत्रों को ऐश्वर्य न देकर, अपने चरणों में रहने वाले नाई, दरजी आदि को देंगे। जाति गोत्र सम्पन्न कुल-पुत्र, राज-कुल में प्रतिष्ठा न पाकर, जीविका चलाने में

असमर्थ हो, ऐश्वर्य शाली (किन्तु) जाति-हीन हीन, अकुलीनों की सेवा में रहेंगे। सो यह, सुवर्ण-राजहंसों के, कौवों के अनुयायी बनने के सदृश होगा। इस कारण से भी, तुझे खतरा नहीं है। सोलहवें (स्वप्न) को कह।"

"भन्ते! पहले (तो) शेर बकरियों को खाते थे, लेकिन मैंने बकरियों को शेर का पीछा कर, उन्हें मुरमुरे (करके) खाते देखा। और अन्य भेड़िये बकरियों को दूर से देख कर, त्रसित तथा भयभीत हो, बकरियों के भय से भागकर, गहन जंगलों में घुस कर छिप रहे। ('हि' यहाँ निपात मात्र है)। सो मैंने ऐसा देखा इसका क्या फल है?"

"इसका फल भी, भविष्य में अधार्मिक राजाओं के ही समय में होगा। उस समय अकुलीन (मनुष्य) राज्य के स्वामी तथा ऐश्वर्य-शाली होंगे और कुलीन (मनुष्य) अप्रसिद्ध तथा दरिद्र होंगे। वे राज-स्वामी (लोग) राजाओं को अपना विश्वासी बना, न्यायालय आदि स्थानों में शक्ति-शाली हो, 'कुलीनों के परम्परागत खेत वस्तु आदि हमारी सम्पत्ति है' ऐसा अभियोग लगाकर, उन (कुलीनों) के 'यह तुम्हारे नहीं, हमारे हैं' करके, न्यायालयों में आकर विवाद करने पर, (उन्हें) बेंतों से पिटवा, गरदन से पकड़ कर, धक्के दिलवा कर, "तुम अपनी हैसियत नहीं जानते? हमारे साथ विवाद करते हो? अभी, राजा से कह कर, हाथ पैर कटवा देंगे" कह, डरायेंगे। यह, उनसे डर कर, अपनी चीजों को 'लो, यह तुम्हारी ही हैं' करके (उन्हें) सौंप, अपने अपने घर पर डर के मारे पड़ रहेंगे। पापी भिक्षु भी शीलवान् भिक्षुओं को जैसा चाहेंगे, वैसा तंग करेंगे। वे सदाचारी भिक्षु, कोई आश्रय न मिलने से, जंगल में जाकर घनी जगहों पर छिप रहेंगे। इस प्रकार हीन-जाति के (लोगों) का पीड़ित, (ऊँची) जाति-वाले कुलपुत्रों को और पापी भिक्षुओं का सदाचारी भिक्षुओं को भगा देना, बकरियों के शेर भगा देने के समान होगा। इस कारण से भी तुझे खतरा नहीं है। यह स्वप्न भी, तूने भविष्य के ही सम्बन्ध में देखा है। हाँ, ब्राह्मणों ने जो कहा, सो तेरे प्रति स्नेह से, धर्मानुकूल नहीं कहा। उन्होंने 'बहुत धन मिलेगा' सोच, लौकिक वस्तुओं पर नजर रख, जीविका के ही ख्याल से कहा।"

इस प्रकार बुद्ध ने सोलह महास्वप्नों का फल कह कर 'महाराज! न केवल तूने ही, अभी इन स्वप्नों को देखा है। पुराने राजाओं ने भी देखा है

(उस समय भी) ब्राह्मणों ने, इन स्वप्नों को इसी प्रकार लेकर यज्ञ के सिर मढ़ दिया था। तब पण्डितों की सलाह के अनुसार, बोधिसत्व से आकर पूछा। पुराने (राजाओं) ने भी (उनको) यह स्वप्न कहते समय, इसी प्रकार कहा'—यह कह, उनके याचना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोधिसत्व उदीच्य ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ। उमर होने पर, वह ऋषि प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो गया; अभिज्ञा तथा समापत्तियों को प्राप्त कर, हिमवन्त प्रदेश में ध्यान-क्रीडा में रत रह कर विचरता था। उस समय बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त ने इसी प्रकार इन स्वप्नों को देख, ब्राह्मणों को पूछा। ब्राह्मणों ने भी इसी प्रकार यज्ञ करना आरम्भ किया। उनमें जो पुरोहित था, उसके बुद्धिमान् स्पष्ट-वक्ता, माणव-शिष्य ने आचार्य्य से निवेदन किया—"आपने मुझे तीनों वेद सिखाये। उनमें कहीं भी एक (जने) को मार कर, दूसरे को सुखी करने का उल्लेख नहीं है न?"

"तात! इस ढग से हमें बहुत धन मिलेगा। मालूम होता है, तू राजा के धन की रक्षा करना चाहता है।"

"आचार्य्य! तो आप अपना काम करें, मैं आपके पास रह कर क्या करूँगा," कह, माणवक, घूमता घामता राजा के उद्यान में आ पहुँचा।

उसी दिन बोधिसत्व भी उस वृत्तान्त को जान, 'आज मेरे आवादी की ओर जाने से, जन (-समूह) को बन्धन से मुक्ति होगी' (सोच) आकाश से आकर, उद्यान में उतर, मगल-शिलातल पर स्वर्ण-प्रतिमा की भाँति बैठे। माणवक ने बोधिसत्व के पास पहुँच प्रणाम कर, एक ओर बैठ, कुशल-क्षेम पूछा।

बोधिसत्व ने भी, उसके साथ मधुर बात-चीत करके पूछा—"माणवक! यह राजा धर्म से राज्य करता है?"

"भन्ते! राजा तो धार्मिक है, लेकिन ब्राह्मण उसे डुबो रहे हैं। राजा ने सोलह स्वप्न देख, ब्राह्मणों से निवेदन किया। ब्राह्मणों ने 'यज्ञ करेंगे' कह,

यज्ञ करना आरम्भ किया। तो भन्ते! क्या आपका कर्तव्य नहीं कि आप राजा को इन स्वप्नों का फल बताकर जनसमूह को भय से मुक्त करें?"

"माणवक! हम राजा को नहीं जानते, और राजा हमें नहीं जानता। हाँ, यदि वह यहाँ आकर पूछे तो हम उसे कहेंगे।"

माणवक ने 'भन्ते! मैं लाऊँगा आप मेरे आने की प्रतीक्षा करते हुए, थोड़ी देर बैठें' (कह) बोधिसत्त्व को जतला, राजा के पास जाकर कहा—"महाराज एक आकाश-चारी तपस्वी आपके उद्यान में उतरे हैं, और आपको बुलाते हैं कि आपके देखे हुए स्वप्नों का फल बतलायेंगे।"

राजा उसकी बात सुन, उसी समय बहुत से अनुयायियों को साथ ले उद्यान में आया और तपस्वी को प्रणाम कर, एक ओर बैठ पूछा—"भन्ते! क्या आप मेरे देखे स्वप्नों का फल जानते हैं?"

"महाराज हाँ।"

"तो कहें।"

"महाराज! मैं कहूँगा। (पहले) मुझे स्वप्नों को जैसे जैसे देखा है, वैसे सुनायें।"

"भन्ते! अच्छा" कह, राजा ने राजा प्रसेनजित के द्वारा कहे गये स्वप्नों की ही तरह स्वप्न कहे—

उसभा रुक्खा गाविया गवा च
अस्सो कंसो सिगाली च कुम्भो
पोक्खरणी च अपाकचन्दनं।
लाबूनि सीदन्ति सिला प्लवन्ति
मण्डूकियो कण्हसप्पे गिलन्ति
काकं सुपण्णा परिवारयन्ति
तसा वका एळकानं भया हि ॥

[सब पहले कहे ही स्वप्न हैं।]

जैसे भगवान ने इस समय, इन स्वप्नों का फल कहा, वैसे ही उस समय बोधिसत्त्व ने भी इन स्वप्नों का फल कह, अन्त में यह कहा—

विपल्लासो वत्तति न यिधमत्थि (= उलटा वर्तता, यह नहीं है।)

तृष्णा को (अधिक) न सह सकने के कारण, वह घर में घुस कर, चारपाई पर मुँह लपेट कर पड रहा। इतना होने पर भी धन हानि होने के डर से उसने, किसी को कुछ न कहा।

उसकी भार्य्या ने उसके पास जा पीठ मलते हुए पूछा—"स्वामी! क्या रोग है?"

"मुझे, कोई रोग नही।"

"क्या राजा क्रुद्ध हो गया है?"

"राजा, मुझ से क्रुद्ध नहीं हुआ है।"

"तो क्या तेरे बेटी बेटा से अथवा नौकर चाकरों से कुछ अपराध हो गया है?"

"ऐसा भी (कुछ) नही।"

"किसी (चीज) में, तेरी तृष्णा (=इच्छा) है?" ऐसा पूछने पर, धन हानि के भय से निःशब्द हो, पडा रहा। तब उसे भार्य्या ने पूछा—"स्वामी! तेरी तृष्णा किस चीज में है।

उसने शब्दों को निगलते हुए की तरह कहा—"मेरी एक तृष्णा है"

"स्वामी क्या तृष्णा है?"

"पूडे (पूए) खाने की इच्छा है।"

"तो करते क्यों नहीं? क्या तुम दरिद्र हो? अब इतने पूडे पका दूँगी कि सारे सक्खर निगम-वासियों के लिए पर्य्याप्त हों।"

"तुझे उनसे क्या? वह अपने कमा कर खायेंगे।"

"अच्छा तो उतने ही पकाऊँगी, जो एक गली के लोगों के लिए पर्य्याप्त हो।"

"जानता हूँ, कि तू बडी धनवान् है।"

"अच्छा, तो उतने ही पकाऊँगी, जो इस घरवाले सब के लिए पर्य्याप्त हो।"

"जानता हूँ, कि तू बडी उदार है!"

"अच्छा, तो उतने ही पकाऊँगी, जो तेरे स्त्री-बच्चो भर के लिए पर्य्याप्त हों।"

"तुझे, इन से क्या?"

"अच्छा, तो उतने ही बनाऊँगी, जो तेरे लिए और मेरे लिए पर्याप्त हों।"

"तू क्या करेगी?"

"अच्छा, तो उतने ही बनाऊँगी, जो अकेले तेरे लिए पर्याप्त हों।"

"यहाँ पकाने से बहुत लोग आशा लगायेंगे। सो, तू और सब चावलों को छोड़ केवल कनियाँ (=टूटे चावल), चूल्हा, कड़ाही आदि और थोड़ा दूध, घी, मधु तथा गुड़ ले, सात-तल प्रासाद के ऊपर महातल्ले पर चढ़ कर पका। वहाँ मैं अकेला बैठ कर खाऊँगा।"

उसने 'अच्छा' कह, स्वीकार कर, जो लेना था, वह लिवा कर, प्रासाद के ऊपर चढ़, दासियों को हटा सेठ को बुलवाया। पहले (दरवाजे) से लेकर सब दरवाजों को बन्द करते हुए सब द्वारों में ताले-कुन्डे लगा, सातवें तले पर चढ़, वहाँ भी वह दरवाजा बन्द करके बैठा। उसकी भार्या ने भी, चूल्हे में आग जला, उसपर कड़ाही रख, पूड़े पकाने शुरू किये।

बुद्ध ने प्रातःकाल ही महामोग्गल्लान स्थविर को आमन्त्रित किया—"मोग्गल्लान! राजगृह के समीप के सक्खर निगम का मत्सरिय कोसिय नामक यह सेठ 'कड़ाही के पूए खाऊँगा' (करके) औरों के देख लेने के भय से, सात तलों वाले प्रासाद के ऊपर पूए पकवाता है। तू वहाँ जाकर, उस सेठ का दमन कर, उसे निर्विषकर, पति-पत्नी दोनों जनों को पूए और दूध-घी-मधु-गुड़ आदि लिवा कर, अपने बल से, उन्हें जेतवन ले आ। आज मैं पाँच सौ भिक्षुओं सहित विहार में ही रहूँगा, और पूओं का ही भोजन करूँगा।"

स्थविर 'भन्ते! अच्छा' कह, शास्ता का वचन स्वीकार कर, उसी समय ऋद्धिबल से, उस निगम में पहुँच, उस प्रासाद के छज्जे पर, (अपने ठीक) से पहने, चीवर से ढके हुए आकाश में स्थिर होकर, मणि की मूर्ति की भाँति ठहरे।

स्थविर को देख, सेठ का हृदय काँपा। उसने 'मैं ऐसों के ही डर से, इस जगह आया, सो यह आकर खिड़की पर खड़ा हो गया है' (सोच) हाथ में लेने योग्य कुछ न ले सकने पर, आग में डाली लवण की डली की तरह, गुस्से से चिट-चिट करते हुए कहा—"श्रमण! आकाश में खड़े रहने से तुझे क्या मिलेगा? आकाश में जहाँ पैरों का चिन्ह नहीं है, वहाँ पैरों को दिखाते हुए चङ्क्रमण करने से भी कुछ न मिलेगा।" स्थविर उसी जगह इधर-उधर चङ्क्रमण करने लगे।

सेठ ने कहा—"चङ्क्रमण करने पर तो क्या मिलेगा ? आकाश में प
मार कर बैठने पर भी न मिलेगा।" स्थविर पालथी मारकर बैठ गये

तब उसने (कहा)—"बैठने पर तो क्या मिलेगा ? आकर देह
खड़े होने से भी न मिलेगा।" स्थविर (आकर) देहली पर खड़े हो

तब उसने (कहा)—"खड़े होने से तो क्या मिलेगा। धुआं नि
से भी न मिलेगा।"

स्थविर ने धुआं निकाला। सारा प्रासाद एक-धूम्र हो गया। से
आँख में जैसे सूइयां चुभने लगीं, लेकिन घर के जलने के डर से उसने '
पर भी न मिलेगा' न कह, सोचा—'यह श्रमण, अच्छा पीछे पड़ा है, बिना
नहीं जायेगा। सो, इसे एक पूआ दिलवाऊँ।" (यह सोच) उसने भार्या
कहा—"भद्रे ! एक छोटा सा पूआ पका, श्रमण को दे, इसे विदा कर।

उसने कड़ाही में जरा सी पिट्ठी डाली। उसका एक बड़ा सारा, '
हुआ पूआ बन कर, सारी कड़ाही में फैल गया। सेठ ने उसे देख, 'तू ने
पिट्ठी ले ली होगी' (कह) अपने ही कड़छी के कोने पर जरा सी पि
लेकर, डाली। (वह) पूआ पहले पूए से भी बड़ा हो गया। इस प्रकार
जैसे वह पकाता, वैसे वैसे वह पहले से भी बड़ा हो जाता।

उसने दुखी होकर कहा—"भद्रे ! दे इसे एक पूआ।" उसके टो
में से एक पूआ निकालने के समय, सारे पूए एक साथ लग गये। उसने सेठ
कहा—"स्वामी ! सब पूए एक साथ जुड़ गये। उन्हें पृथक् नहीं कर
रही हूँ।" "मैं करूँगा" (करके) वह भी न कर सका, दोनों जने, दोनों
पकड़ कर खींचने पर भी पृथक् न कर सके। इस प्रकार व्यायाम करते
उसके शरीर से पसीना बहने लगा, और उसकी प्यास (=तृष्णा) बुझ ग

तब उसने भार्या को कहा—"भद्रे ! मुझे पूए नहीं चाहिए। इ
टोकरी सहित, इस भिक्षु को दे दो।' वह टोकरी लेकर स्थविर के पास ग
स्थविर ने दोनों को धर्मोपदेश किया, त्रिरत्न के गुण कहे। दिये हु
दान का, दान आदि का फल आकाश में (प्रदर्शित) चन्द्रमा की भाँति दिखा
उसे सुन प्रसन्न-चित्त सेठ ने कहा—"भन्ते ! आकर, इस पलंग पर बै
कर, पूए खाएं।'

स्थविर ने कहा—महा सेठ ! पूए खायेंगे (कहकर) नीचे को [illegible]

सहित सम्यक् सम्बुद्ध विहार में बैठे हैं। यदि तेरी इच्छा हो तो अपनी भार्य्या सहित पूए और दूध आदि को लिवा चल। हम बुद्ध के पास जायेंगे।"

"भन्ते! इस समय शास्ता कहाँ है?"

"सेठ! यहाँ से पन्तालीस योजन की दूरी पर, जेतवन विहार में।"

"भन्ते! बिना, (भोजन के) समय[1] का उल्लंघन किये, हम इतनी दूर कैसे जायेंगे?"

"सेठ! तुम्हारी इच्छा रहने पर, मैं अपने ऋद्धि-बल से ले जाऊँगा। तुम्हारे प्रासाद (=महल) की सीढ़ी का आरम्भ तो (उसके) अपने स्थान पर ही होगा, (लेकिन) अन्त जेतवन द्वार के कोठे पर जा कर होगा। ऊपर के महल से, नीचे के महल पर उतरने भर की देरी में जेतवन ले जाऊँगा।"

उन्होंने 'भन्ते! अच्छा' कह, स्वीकार किया। स्थविर ने अधिष्ठान (=दृढ़ निश्चय) किया—?"सीढ़ी का ऊपर का सिरा, वैसे ही होकर, नीचे का सिरा, जेतवन द्वार के कोठे में जा लगे।" वैसे ही हो गया।

इस प्रकार स्थविर ने सेठ और उसकी भार्य्या को प्रासाद के ऊपर से नीचे उतरने के समय से भी कम समय में जेतवन पहुँचा दिया। उन दोनों ने बुद्ध के पास जा, (भोजन का) समय निवेदन किया। भिक्षु-संघसहित बुद्ध, दान-शाला में प्रविष्ट हो, बिछे श्रेष्ठ बुद्धासन पर बैठे। सेठ ने बुद्ध प्रमुख भिक्षुसंघ को दक्षिणा का जल दिया। भार्य्या ने तथागत के पात्र में पूए रक्खे। बुद्ध ने उतने ही लिये, जितने (अपने लिए) काफी हों। पाँच सौ भिक्षुओं ने भी वैसे ही लिए। सेठ दूध, घृत, मधु तथा शक्कर देता गया।

पाँच सौ भिक्षुओं सहित बुद्ध ने भोजन समाप्त किया। सेठ ने भी भार्य्या सहित, आवश्यकता-भर खाये; लेकिन पूए खतम होते न दिखाई देते थे। सारे विहार के भिक्षुओं तथा भिखमंगों आदि को देने पर भी खतम होते न दिखाई देते थे। (उन्होंने) भगवान् से कहा—"भन्ते! पूए खतम नहीं

---

[1] बौद्ध भिक्षुओं के लिये मध्यान्होत्तर भोजन करना निषिद्ध है।

होते।" "तो, उन्हें जेतवन द्वार के कोठे में फेंक दो।" सो, उन्होंने द्वा
कोठे के समीप एक गड्डे में डाल दिये। आज भी वह स्थान कपल्लपू
पब्भार ही कहलाता है। भार्या सहित महामेट्ठि, भगवान् के पास जा, ए
ओर खड़ा हुआ। भगवान् ने (दान) अनुमोदन[1] किया। अनुमोदन क
समाप्ति पर, दोनों जने श्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हो, बुद्ध को प्रणाम क
द्वार कोट्ठे से सीढ़ी पर चढ़कर, अपने प्रासाद में जा पहुँचे (=प्रतिष्ठि
हुए)।

उस समय से वह अस्सी करोड़ धन, बुद्धशासन के ही लिए खर्च कर
लगा। एक दिन, सम्यक् सम्बुद्ध श्रावस्ती में भिक्षा माँग, जेतव
आ, भिक्षुओं को सुगतोपदेश दे, गन्धकुटी में प्रवेश कर, ध्यानावस्थित रह
शाम को धर्म-सभा में आये। उस समय धर्म-सभा में इकट्ठे बैठे हुए भि
(मोग्गल्लान) स्थविर की प्रशंसा कर रहे थे—"आवुसो! महामोग्गल्लान
स्थविर का प्रताप देखो। वह, मच्छरिय (=कंजूस) सेठ को जरा सी
देर में दमन कर निर्विषकर, पूए लिवा कर, जेतवन ले आया, और बुद्ध के
सम्मुख (उपस्थित) कर, श्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित कर दिया। अहो!
स्थविर महा प्रतापवान् है।" बुद्ध ने आकर पूछा—"भिक्षुओ! इस समय बैठे
क्या बात-चीत कर रहे हो?" "यह (बातचीत)" कहने पर, बुद्ध ने, 'भिक्षुओ!
जिस भिक्षु को किसी कुल का दमन करना हो, वह बिना कुल को पीड़ा दिये
बिना तंग किये, जैसे भ्रमर फूल से रेणु ग्रहण करता है उसी तरह (कुल के)
पास जा, बुद्ध-गुणों का परिचय दे' वह स्थविर की प्रशंसा करते हुए, (यह
गाथा कही)—

> यथापि भमरो पुप्फं वण्णगन्धं अहेठयं,
> पलेति रसमादाय एवं गामे मुनी चरे।[2]

[जिस प्रकार फूल के वर्ण या गन्ध को बिना हानि पहुँचाये भ्रमर रस को
लेकर चल देता है, उसी प्रकार मुनि गाँव में विचरण करे।]

---

[1] भोजनान्तर गृहस्थों को दिया जाने वाला उपदेश।

[2] धम्मपद (पुप्फवग्ग)।

मासक[1] दे, दूकान से शराब की सुराही मँगवाई; फिर नौकर से उठवा, नगर से निकल नदी के किनारे गया और महामार्ग के पास एक गुल्म (=घनी जगह) में घुस, सुराही को रखवाया, फिर 'तू जा' कह कर, नौकर को दूर बिठा, कसोरे भर भर कर, शराब पीनी शुरू की।

दानादि करने के कारण, इसका पिता देव-लोक में शक्र (=इन्द्र) होकर उत्पन्न हुआ था। उसने उस समय ध्यान लगा कर देखा, कि मेरा (चलाया हुआ) दान अभी भी दिया जा रहा है या नहीं? उसका धातू न रहना, पुत्र का कुल-मर्यादा को नष्ट कर, दान-शाला को जला देना, याचको को पीट कर निकाल देना तथा कंजूस बन, 'औरो को देनी पड़ जायगी' के भय से घने स्थान में घुस, अकेले बैठ कर शराब पीना, जान उसने सोचा—मैं जाकर, उसे क्षुब्ध कर, (उसका) दमन कर, (उसे) कर्म-फल-सम्बन्ध का ज्ञान करा, (उसके हाथ से) दान दिलवा, (उसे) देव-लोक में उत्पन्न होने योग्य बनाऊँ। यह सोच, वह, (मनुष्यो की) आबादी में उतर, ठीक इल्लीस सेट्ठी जैसा, लगड़ा-लूला-बेंहगा रूप बना राजगृह नगर में प्रविष्ट हो, राजा के निवासस्थान पर खड़ा हो, अपने आने की सूचना भिजवा, 'प्रवेश करो' कहने पर भीतर गया और राजा को प्रणाम कर, (एक ओर) खड़ा हुआ।

राजा ने पूछा—"सेठ जी! कहो अ-समय पर कैसे आये?"

"देव! मेरे घर में अस्सी करोड धन है, (मैं चाहता हूँ) कि आप उसे मँगवा कर, अपने खज़ाने भर लें।"

"रहने दो सेठ जी हमारे घर में तुम्हारे धन से कहीं अधिक धन है।"

"देव! यदि आप को आवश्यकता नहीं है, तो मैं उसे लेकर यथेच्छ दान देता हूँ?"

"सेठ जी दें।"

"देव! अच्छा" कह राजा को प्रणाम कर, निकल आया और इल्लीस सेट्ठी के घर गया। सब नौकर-चाकर घेर कर खड़े हो गये। कोई एक भी यह न जान सका कि यह इल्लीस नहीं है। उसने घर में प्रवेश कर, देहली के

---

[1] कार्षापण का बीसवाँ हिस्सा।

भीतर खड़े हो, द्वार-पाल को बुलवा आज्ञा दी—"यदि कोई ठीक मेरे जैसी शकल वाला आकर, 'यह मेरा घर है' करके प्रवेश करना चाहे, तो उसकी पीठ पर प्रहार दे, उसे निकाल देना।" यह कह, प्रासाद के ऊपर चढ़, अत्यन्त मूल्यवान् आसन पर बैठ, श्रेष्ठि भार्य्या को बुलवा, मुस्करा कर, कहा—"भद्रे! दान दें।" यह सुन सेठानी, लड़के-लड़कियाँ तथा नौकर चाकर कहने लगे। "इतने समय तक कभी दान देने का विचार तक नहीं आया। आज शराब पीने के कारण मृदु-चित्त हो, दान देने की इच्छा उत्पन्न हो गई होगी।"

सो, सेठानी ने कहा—'स्वामी! यथारुचि दें।" "तो मुनादी करने वाले को बुलवा कर, सारे नगर में मुनादी करवा दो कि जिस को चाँदी, सोना, मणि-मोती की आवश्यकता हो, वह इल्लीस सेठ के घर आवे।" उसने वैसा करवा दिया। लोग झोली, थैली लेकर द्वार पर आ इकट्ठे हुए। शक्र ने सात रत्नों से भरे हुए कमरों को खोल कर कहा—"यह सब तुम्हें देता हूँ। जितनी जितनी ज़रूरत हो, ले जाओ।" लोग धन को निकाल, महातल पर ढेर लगा, लाये हुए बरतनों को भर भर कर ले जाने लगे।

एक जनपदवासी, इल्लीस सेठ के बैल, इल्लीस सेठ के ही रथ में जोतकर, उन्हें सात रत्नों से भर, नगर से निकल, महा-मार्ग पर जाता हुआ, उस सेठ के स्थान से कुछ ही दूर पर रथ को हाँकते हुआ सेठ की प्रशंसा करता जाता था—"स्वामी! इल्लीस सेठ! तेरी सौ वर्ष की आयु हो। तेरे कारण, अब मैं जन्म भर, बिना काम किये भी जी सकता हूँ। तेरा ही रथ, तेरे ही बैल, तेरे ही घर के सात (प्रकार के) रत्न। न मा ने दिये न बाप ने दिये, स्वामी; तेरे ही कारण मिले।" इल्लीस ने यह शब्द सुन, भयभीत हो सोचा—"यह मेरा नाम लेकर, यह यह कहता है, क्या राजा ने मेरा धन लोगों में बाँट दिया है?" (यह सोच) घने-स्थान से निकल, बैलों तथा रथ को पहचान, "अरे! चेटक! यह मेरे ही बैल और मेरा ही रथ" कह, जा कर बैलों की नकेल पकड़ ली। गृहपति रथ से उतर, 'अरे! दुष्ट चेटक! इल्लीस महासेठ सारे नगर को दान देता है, तू क्या लगता(=होता)है'? कह, झपट कर, बिजली गिराते हुए की तरह, कंधे पर प्रहार दे, रथ लेकर चल दिया।

इसने काँपते हुए उठ कर, धूलि (=रेत) को झाड़, तेज़ी से जाकर,

(फिर) रथ को पकड़ा। गृहपति (रथ से) उतर, बालों से पकड़, मुक्का बाँस की चपटी की मार से मार, गले से पकड़, जिधर से आया था, उधर मुँह कर धक्का दे, (अपने) चल दिया।

इतने में उसका शराब का नशा उतर गया।

उसने काँपते काँपते जल्दी से घर जा, धन लेकर जाते हुए मनुष्यों को देख, 'भो! यह क्या? राजा मेरा धन लुटवा रहा है?' वह, जिन जिन को पकड़ना शुरू किया। जिस किसी को पकड़ता, वही उसे पीट कर, पैरों में गिरा देता। वेदना से पीड़ित हो, उसने घर में घुसना चाहा। द्वारपालों ने—'अरे! दुष्ट गृहपति! कहाँ घुसता है?' (वह) बाँस की चपटियों से पीट, गर्दन से पकड़ निकाल दिया।

'अब राजा को छोड़ कर, और मुझे, किसी की शरण नहीं' सोच, उसने राजा के पास जा कर पूछा—'देव! आप मेरा घर लुटवा रहे हैं?"

"सेठ जी! मैं नहीं लुटवा रहा हूँ। क्या तुमने ही अभी आकर नहीं कहा था कि यदि आप नहीं लेते तो मैं अपने धन को दान दूँगा, और नगर में मुनादी करा कर दान दिया?"

"देव! मैं आपके पास नहीं आया। क्या आप मेरे कंजूस होने की बात नहीं जानते? मैं किसी को तिनके के कोने से(एक)तेल की बूँद तक नहीं देता। देव! जो यह दान दे रहा है, उसे बुला कर परीक्षा करें।"

राजा ने शक्र को बुलवा भेजा। न तो राजा को ही, न मन्त्रियों को ही दोनों जनों में कुछ भेद दिखाई दिया। मच्छरिय सेठ ने पूछा—"देव! क्या सेठ है, कि मैं सेठ हूँ?"

"हम नहीं पहचानते, तुझे, कोई पहचानने वाला है?"

"देव! मेरी भार्य्या।"

भार्य्या को बुलाकर पूछा गया कि तेरा स्वामी कौन है?

वह 'यह' कह कर, शक्र के ही पास जा खड़ी हुई। लड़के लड़कियाँ नौकर-चाकरों को बुला कर पूछा गया। सब शक्र के ही पास जा खड़े हुए।

तब सेठ ने सोचा—"मेरे सिर में बालों से छिपी एक फुन्सी है, उसे केवल नाई ही जानता है, सो उसे बुलवाऊँ।" (यह सोच) उसने कहा—"देव!

मुझे नाई पहचानता है, उसे बुलवायें।" उस समय बोधिसत्व (ही) उसके नाई (होकर उत्पन्न हुए) थे। राजा ने उसे बुलवा कर पूछा—"इल्लीस सेठ को पहचानते हो?"

"देव! सिर को देख कर पहचान सकूँगा।"

"अच्छा! तो दोनों के सिर को देख।" शक्र ने उसी क्षण सिर में फुन्सी पैदा कर ली। बोधिसत्व ने दोनों के सिर में फुन्सी देख, "महाराज! दोनों के सिर में फुन्सी है। इस लिए मैं इन दोनों में से किसी को नहीं कह सकता कि यह इल्लीस है" कह, यह गाथा कही—

> उभो खञ्जा उभो कुणी उभो विसमचक्खुला,
>
> उभिन्नं पिलका जाता, नाहं पस्सामि इल्लिसं॥

[दोनों लंगड़े (हैं), दोनों लूले (हैं), दोनों भेंगे (हैं), और दोनों के (सिर में) फुंसियाँ हैं। मैं इल्लीस को नहीं पहचानता (=देखता)।]

उभो, दोनों जने। खञ्जा, लंगड़े (=कुण्ठपाद), कुणी, लूले (=कुण्ठहत्था) विसम चक्खुला, जिनकी आँख की पुतलियाँ विषम हैं। पिलका, दोनों के सिर में एक ही जगह, एक ही जैसी फुन्सियाँ हो गई। नाहं पस्सामि, मैं इनमें यह इल्लीस है (करके) नहीं पहचानता, अर्थात् एक को भी 'इल्लीस' नहीं मानता।

बोधिसत्व की बात सुन, सेठ काँपने लगा, और धन-शोक के कारण, अपने को न सँभाल सकने से वहीं गिर पड़ा। उस समय शक्र, "महाराज! मैं इल्लीस नहीं हूँ, मैं शक्र हूँ" कह, शक्र-लीला से आकाश में जा खड़ा हुआ। इल्लीस का मुँह पोंछ कर, उस पर पानी छिड़का गया। वह उठकर, देवेन्द्र शक्र को प्रणाम कर, खड़ा हुआ। तब शक्र ने कहा—"इल्लीस! यह धन मेरा है, न कि तेरा। मैं तेरा पिता हूँ, तू मेरा पुत्र। मैं ने दानादि पुण्य कर्म करके शक्र की पदवी प्राप्त की. लेकिन तूने मेरे वंश (की मर्यादा) को तोड़, अदान-शीलो हो कंजूस बन दानशाला को जला याचकों को निकाल, (खाली) धन संग्रह किया। उसे न तू आप खाता है न दूसरे। वह ऐसे पड़ा है, जैसे राक्षस के अधिकार में हो। [illegible] मेरी दानशाला

बाँटा कर दान देगा, तो तेरा कुशल है, यदि नहीं देगा, तो तेरे सब धन को अन्तर्धान कर, इस इन्द्र-वज्र से तेरा सिर फोड़, तेरी जान निकाल दूँगा?"

इल्लीस सेठ ने मरने के भय से संत्रसित हो, प्रतिज्ञा की कि अब से दान दूँगा। शक्र उसकी प्रतिज्ञा ग्रहण कर, आकाश में बैठे ही बैठे धर्मोपदेश दे, उसे (पञ्च) शीलों में प्रतिष्ठित कर, अपने स्थान को चला गया। इल्लीस भी दान आदि पुण्य-कर्म कर स्वर्ग-गामी हुआ।

बुद्ध ने 'भिक्षुओ ! न केवल अभी मोग्गल्लान ने मत्सरिय सेठ का दमन किया है, पहले भी इसने इसे दमन किया है' कह, इस धर्मदेशना को ला, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया।

उस समय इल्लीस, मत्सरिय सेठ हुआ। देवेन्द्र शक्र, मोग्गल्लान। राजा, आनन्द। [illegible] नाई मैं ही था।

७९. खरस्सर जातक

"यतो विलुत्ता च हता च गावो..." यह (गाथा) बुद्ध ने जेतवन में विहार करते समय एक अमात्य के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

कोसल-नरेश के एक अमात्य ने राजा को प्रसन्न कर प्रत्यन्त ग्राम[1] की [illegible]

[1] [illegible]

गांव था, गाँव लूट कर चले जाने पर, शाम को मनुष्यों को साथ लिये हुए आया। उसके कुछ ही देर बाद, उसका यह भेद खुल गया। मनुष्यों ने राजा से कहा। राजा ने उसे बुलवा अपराध का निश्चय कर, उसका अच्छी प्रकार निग्रह कर, (उसकी जगह) एक दूसरे ग्राम-भोजक (=मुखिया) को भेज, (अपने) जेतवन जाकर, भगवान् को यह समाचार कहा। भगवान् ने 'महाराज! न केवल अभी यह ऐसा करने वाला है, पहले भी यह ऐसा ही करने वाला रहा है' यह, उसके याचना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, राजा ने एक अमात्य को एक प्रत्यन्त गाँव दिया।.....सब उक्त प्रकार से। उस समय बोधिसत्व, वाणिज्य के लिए घूमते हुए, उस गाँव में ठहरे हुए थे। उन्होंने, शाम के समय, बहुत से लोगों के साथ भेरी बजते बजते, ग्राम-भोजक को आते देख 'यह दुष्ट ग्राम-भोजक चोरों के साथ मिल, गाँव लुटवा कर, चोरों के भाग कर जंगल में घुस जाने पर, अब शान्त-स्वभाव की तरह, भेरी के बाजे के साथ आ रहा है' सोच यह गाथा कही—

> यतो विलुत्ता च हता च गावो
> दड्ढानि गेहानि जनो च नीतो,
> अथागमा पुत्तहताय पुत्तो
> खरस्सरं डिण्डिमं वादयन्तो॥

[जब (चोर) गौवों को लूट तथा गौवों को मार कर, घरों को जलाकर, (और) आदमियों को बाँध कर ले गये, उस समय यह मृतपुत्र का पूत, इस कर्ण कठोर ढोल को बजवाते आता है।]

यतो=जब। विलुत्ता च हता च, लूट कर ले गये तथा मांस खाने के लिए मार डाली। गावो=गौवें। दड्ढानि, आग लगाकर जला दिये। जनो च नीतो, पकड़कर बाँध कर ले गये। पुत्तहताय पुत्तो, अपुत्ती (=मृतपुत्र का पुत्र) अर्थात् निर्लज्ज। जिसको लज्जा-भय नहीं उसकी माता नहीं सो वह उस

(पुत्र) के जीवित रहते भी, अपुत्ती (=मृत-पुत्र) ही समझी जाती है। खरस्सरं, कठोर शब्द। देण्डिमं, ढोल (=पटह भेरि)।

इस प्रकार बोधिसत्व ने इस गाथा से, उसका परिहास किया। शीघ्र ही, उसका भेद खुल गया। राजा ने उसके अपराध के अनुसार उसे दण्ड दिया।

शास्ता ने, 'महाराज! न केवल अभी यह ऐसा करने वाला है, पहले भी यह ऐसा ही करने वाला रहा है' (कह), यह धर्म देशना ला मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया।

उस समय का अमात्य ही, अब का अमात्य है। गाथा से उदाहरण देने वाला पण्डित मनुष्य, तो मैं ही था।

८०. भीमसेन जातक

"यं ते पविकत्थितं पुरे" यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, एक आत्म-प्रशंसक भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक भिक्षु, 'आवुसो! हमारी जाति सदृश जाति, हमारे गोत्र सदृश गोत्र, (कोई) नहीं। हम ऐसे महाक्षत्रिय कुल में पैदा हुए। गोत्र की या कुल-प्रदेश की दृष्टि से हमारे सदृश कोई नहीं। हमारे यहाँ सोने चाँदी का कोई हिसाब (=अन्त) नहीं। हमारे नौकर-चाकर (तक) शाली-मांसोदन खाते हैं, काशी का (बना) वस्त्र पहनते हैं, (और) काशी के चन्दन से विलेपन करते हैं। इस समय प्रव्रजित हो जाने से हम इस प्रकार के रूखे सूखे भोजन खाते हैं, रूखे सूखे चीवर पहनते हैं' कह वृद्ध-मध्यम-

पूछा—"सौम्य ! तेरा क्या नाम है ?"

"मेरा नाम भीमसेन है।"

"तू इस प्रकार के सौन्दर्य से युक्त हो, यह तुच्छ काम करता है?"

"जीविका (का और उपाय) न होने से।"

उसने "सौम्य ! इस काम को मत कर। मेरे समान धनुर्धारी, सारे जम्बूद्वीप में नहीं है, (लेकिन) यदि मैं किसी राजा के पास जाऊँ, तो शायद वह क्रोधित हो जाये कि यह इतने छोटे कद वाला हमारा क्या (काम) कर सकेगा। तू राजा के पास जाकर कह कि मैं धनुर्धारी हूँ। राजा, तुझे खर्चा दे, तेरी बँधी-वृत्ति लगा देगा। जो जो वह तुझे करने को कहेगा मैं उसे करता हुआ, तेरी ओट में रहूँगा। इस प्रकार (हम) दोनों जने सुखी रहेंगे' (यह) पूछा—"मानता है मेरी बात ?" जुलाहे ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया।

उसने उसे वाराणसी ले जा, अपने आप चुल्ल-धनु-उपस्थायक (= सेवक) बन, उसे आगे कर, राज-द्वार पर जा, राजा को कहलवाया। "आजाये" कहने पर, दोनों जने जा, राजा को प्रणाम कर, खड़े हुए। "किस लिए आये ?" पूछने पर, भीमसेन बोला—"मैं धनुष-धारी हूँ। सारे जम्बूद्वीप में, मेरे सदृश धनुष-धारी नहीं।"

"क्या मिलने पर हमारी सेवा में रहोगे ?"

"देव ! अर्ध-मास में हज़ार (मुद्रा) मिलने पर रह सकेंगे।"

"यह पुरुष, तेरा कौन होता है ?"

"देव ! चुल्ल उपट्ठाक (=छोटा सेवक)।"

"अच्छा ! तो सेवा में रहो।"

उस समय से भीमसेन, राजा की सेवा में रहने लगा; जो जो काम पड़ता, उसे बोधिसत्त्व ही करता।

उस समय काशी राष्ट्र के एक जंगल में बहुत से मनुष्यों के आने जाने का मार्ग (एक) व्याघ्र ने छुड़ा दिया था। वह मनुष्यों को पकड़ पकड़ कर खा जाता था। (लोगों ने) यह समाचार राजा को कहा। राजा ने भीमसेन को बुलाकर पूछा—"तात ! उस व्याघ्र को पकड़ सकेगा ?"

"देव ! तो मेरा नाम धनुषधारी ही क्या, यदि मैं उस व्याघ्र न को

राजा ने "जा, लड़" (करके), भीमसेन को भेजा। वह सब शस्त्र बाँध योधा का भेष धारण कर अच्छी प्रकार कसे हुए हाथी की पीठ पर बैठा। बोधिसत्व भी, उसके मरने के भय से, सब शस्त्र बाँध, भीमसेन के पीछे आसन पर बैठा। जन (-समूह) से घिरा हुआ हाथी, नगर-द्वार से निकल संग्राम-भूमि में आया। भीमसेन ने युद्ध-भेरी का शब्द सुनते ही काँपना आरम्भ किया। बोधिसत्व ने 'अब यह हाथी की पीठ से गिर कर मरेगा' सोच, भीमसेन को रस्सी से घेर कर बाँध रक्खा। भीमसेन ने लड़ाई की जगह देख, मरने से भयभीत हो, हाथी की पीठ को मल-मूत्र से खराब कर दिया। बोधिसत्व ने 'भीमसेन! तेरा पहला (आचरण) और वर्तमान (आचरण) मेल नहीं खाता। तू पहले संग्राम-योधा की भाँति था, (लेकिन) अब हाथी की पीठ को खराब करता है' कह, यह गाथा कही—

यं ते पविकत्थितं पुरे
अथ ते पूतिसरा सजन्ति पच्छा,
उभयं न समेति भीमसेन!
युद्धकथा च इदञ्च ते विहञ्ञं॥

[भीमसेन! वह जो तेरी पहली बड़ाई थी, और यह जो अब पीछे मल-मूत्र बहा रहा है, वह युद्धकथा और यह कष्ट पाना, दोनों मेल नहीं खाते।]

यं ते पविकत्थितं पुरे, जो तू ने पहले अभिमान पूर्वक कहा था कि क्या तू ही आदमी है, मैं भी संग्राम-योधा नहीं हूँ, यह तेरा कथन। अथ ते पूतिसरा सजन्ति पच्छा, सो यह गन्दी (=पूति) होने से तथा बहते जाने (=सरति) होने से 'पूति-सरा' कही जाने वाली मल-मूत्र धारायें, बहती हैं, टपकती हैं, चूती हैं। पच्छा, पहले कथन के बाद, अब इस संग्राम-भूमि में। उभयं न समेति भीमसेन! हे भीमसेन! यह दोनों मेल नहीं खाते। कौन? युद्ध कथा च इदंच ते विहञ्ञं वह जो पहले कही थी, सो युद्ध-कथा; और यह जो अब तेरी पीड़ा—कष्ट पाना, हाथी की पीठ खराब करने जैसा विघात।

इस प्रकार बोधिसत्व ने उसकी भर्त्सना कर, 'सौम्य! डर मत। मेरे रहते तुझे डर किस बात का?' कह भीमसेन को हाथी की पीठ से उतार, 'नहाकर, घर जा' कह, भेजा। फिर 'आज मुझे प्रगट होना चाहिए' (सोच) संग्राम में प्रवेश करके, उन्नाद किया, सेना का व्यूह तोड़ कर, शत्रु-राजाओं को जीवित ही पकड़ ले जाकर, वाराणसी-नरेश के पास गया। राजा ने सन्तुष्ट हो, बोधिसत्व को बहुत ऐश्वर्य दिया। उस समय से चुल्लधनुग्गह पण्डित, सारे जम्बुद्वीप में प्रसिद्ध हो गया। वह, भीमसेन को खर्चा दे, उसे (उसके) निवास स्थान पर भेज, दान आदि पुण्य कर्म करके, यथा-कर्म (परलोक) गया।

बुद्ध ने 'भिक्षुओ! न केवल अभी यह भिक्षु अपनी बड़ाई करता है, (इसने) पहले भी की है' कह इस धर्म-देशना को ला, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय का भीमसेन (अब का) गप्पी (=आत्म प्रशंसक) भिक्षु था। लेकिन चुल्लधनुग्गह पण्डित मैं ही था।

पहला परिच्छेद

९. अपायिम्ह वर्ग

८१. सुरापान जातक

"अपायिम्ह चलङ्घिम्ह ..." यह गाथा बुद्ध ने कौशाम्बी के पास घोषिताराम में विहरते समय, सागत स्थविर के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

भगवान् के श्रावस्ती में वर्षावास समाप्त कर, चारिका करते हुए भद्दवती नाम के निगम पर पहुँचने पर, ग्वालों, पशुपालों, कृषकों तथा राहियों ने शास्ता को देख, प्रणाम कर कहा—"भन्ते! भगवान् अम्बतीर्थ को मत जायें। अम्बतीर्थ में, जटिल के आश्रम में अम्बतीर्थक नामक (एक) नाग, विषैला सर्प, घोर विषैला सर्प (है)। वह कहीं भगवान् को कष्ट (न) पहुँचाये।"

भगवान्, जैसे उनकी बात सुनी ही न हो, वैसे, उनके तीन बार मना करने पर भी चले ही गये।

उस समय, भगवान् के भद्दवती से कुछ ही दूर एक वन-खंड में विहार करते समय, उस समय के बुद्ध उपस्थायक सागत नामक स्थविर, जो लौकिक ऋद्धि से युक्त थे, उस आश्रम में जा, उस नाग राज के निवास स्थान पर तिनकों का आसन बिछा पालथी मार कर बैठे। नाग ने ईर्ष्या के मारे धुआँ निकालना आरम्भ किया। स्थविर ने भी धुआँ निकाला। नाग प्रज्वलित हुआ। स्थविर भी प्रज्वलित हुए। नाग के तेज से स्थविर को कष्ट नहीं होता था, लेकिन स्थविर का तेज नाग को कष्ट देता था। इस प्रकार वे (एक) क्षण में ही नाग-राजा का दमन कर, उसे त्रि-शरण तथा पञ्चशील में प्रतिष्ठित कर, शास्ता के पास चले आये।

बुद्ध भी भद्दवतिका में यथा रुचि विहार कर कौशाम्बी चले गये। स्वागत स्थविर द्वारा नाग के दमन किये जाने की बात सारे जनपद में फैल गई। कौशाम्बीवासी (लोग) बुद्ध की अगवानी कर, बुद्ध को प्रणाम कर, स्वागत स्थविर के पास जा, प्रणाम कर, एक ओर खड़े हो कहने लगे—"जो आपको दुर्लभ हो, वह कहें। हम वही तैयार कर देंगे।" स्थविर चुप रहे। किन्तु छ:वर्गीय (भिक्षुओं) ने कहा—"आवुसो! प्रव्रजितों को कबूतरी शराब दुर्लभ होती है, और अच्छी लगती है। यदि तुम स्थविर पर प्रसन्न हो तो कबूतरी शराब तैयार करो।" उन्होंने 'अच्छा' कह स्वीकार कर बुद्ध को अगले दिन के लिए निमन्त्रण दे, नगर में प्रवेश कर 'अपना अपना घर स्थविर को दिखलायेंगे' (सोच) कबूतरी शराब तैयार कर, स्थविर को निमन्त्रित कर, घर में शराब दी। स्थविर पीकर, शराब के नशे में मस्त हो, नगर से निकलते हुए, द्वार के बीच में ही गिर कर, (वहीं) बकवास करते हुए पड़े रहे।

बुद्ध भोजन समाप्त कर, नगर से निकलते समय, स्थविर को उस प्रकार पड़े देख, 'भिक्षुओ! स्वागत को उठा लो', कह, उसे लिवा कर, आराम (=निवास स्थान) पर आये। भिक्षुओं ने स्थविर का सिर तथागत के चरणों में करके, उसे लिटा दिया। वह पलट कर, तथागत की ओर पैर करके, लेट रहा। बुद्ध ने भिक्षुओं से पूछा—"भिक्षुओ! स्वागत का जो पहले मेरे प्रति गौरव था, सो अब है?"

"भन्ते! नहीं।"

"भिक्षुओ! अम्बतित्थ के नाग-राज का किसने दमन किया?"

"भन्ते! स्वागत ने।"

"भिक्षुओ! क्या स्वागत अब पानी के साँप का भी दमन कर सकता है?"

"भन्ते! नहीं।"

"तो क्या भिक्षुओ! ऐसी चीज़ का पीना उचित है, जिसे पीकर बेहोश हो जाय?"

"भन्ते! अनुचित।"

[illegible]

मेरय पान में पाचित्ति (=दोष) है[1]" (करके) शिक्षापद (=नियम) बना, आसन से उठ कर, गन्धकुटी में चले गये। धर्मसभा में एकत्र हुए भिक्षु शराब के दोष कहने लगे—"आवुसो! शराब कितनी खराब है; जिसने प्रज्ञावान् ऋद्धिमान् सागत स्थविर को ऐसा कर दिया कि उसे तथागत के गुण तक की होश न रहे।"

शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ! इस समय बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो?" उनके 'यह बातचीत' कहने पर, (शास्ता ने) 'भिक्षुओ! शराब पीकर न केवल अभी प्रव्रजित बेहोश होते हैं, पहले भी हुए हैं' कह, पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोधिसत्व, काशी राष्ट्र के एक उदीच्य ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हो, बड़े होने पर, ऋषि प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो, अभिज्ञा और समापत्तियों का लाभ कर, ध्यान क्रीड़ा में रत रहते, हिमवन्त में निवास करते थे। उनके साथ पांच सौ शिष्य थे। सो, वर्षा का समय आने पर शिष्यों ने पूछा—आचार्य्य! आबादी में जा कर निमक-खटाई का सेवन करके आवें।

"आवुसो! मैं तो यहीं रहूँगा। तुम जाकर शरीर को सन्तुष्ट करो। वर्षा (ऋतु) के बीतने पर चले आओ।"

वे 'अच्छा' कह, आचार्य को प्रणाम कर वाराणसी जा, (वहाँ) राजा के उद्यान में ठहरे।

अगले दिन, नगर के बाहर ही बाहर भिक्षा मांग, सन्तुष्ट हो, (उससे) अगले दिन नगर में प्रवेश किया। मनुष्यों ने प्रसन्नता-पूर्वक भिक्षा दी। कुछ दिन बीतने पर (लोगों ने) राजा को कहा—"देव! हिमवन्त से पांच सौ ऋषि आकर उद्यान में ठहरे हुए हैं। वे घोर तपस्वी हैं, संयतेंद्रिय हैं, तथा शीलवान् हैं।" राजा उनकी प्रशंसा सुन, उद्यान में गया। उन्हें प्रणाम कर, कुशल क्षेम पूछ वर्षा ऋतु के चारों महीने वहीं रहने का वचन ले, निमन्त्रण

---

[1] प्रायश्चित्त करने योग्य दोष है (भिक्षु प्रातिमोक्ष)।

दिया। उस दिन से वह राज-भवन में भोजन करते (और) उद्यान में रहते थे।

एक दिन नगर में शराब पीने का उत्सव था। 'प्रव्रजितों को शराब दुर्लभ होती है' सोच राजा ने उन्हें अत्युत्तम शराब दिलवाई। तपस्वी शराब पी, उद्यान में जाकर, शराब से बदमस्त हो, कोई कोई उठ कर नाचने लगे, कोई कोई गाने लगे। नाच कर, गाकर, खारी आदि फैला कर सो रहे। शराब के नशे के उतरने पर उठकर अपने उस विकार को देख, 'हम ने प्रव्रजित जीवन के अनुकूल नहीं किया' (सोच) रोने पीटने लगे। फिर 'हमने आचार्य्य-रहित होने के कारण ही, ऐसा पाप किया' (सोच), उसी क्षण उद्यान को छोड़ हिमवन्त को जा, परिष्कारों (=चीवर आदि) को ठीक से कर, आचार्य्य को प्रणाम कर, उनके 'तात! आबादी में बिना भिक्षा के कष्ट के सुख से तो रहे? आपस में मेल से तो रहे' पूछने पर 'आचार्य्य सुख से तो रहे। लेकिन हमने न पीने योग्य चीज पीकर, बेहोश हो स्मृति को न सँभाल सकने के कारण नाचा और गाया।" यह हाल कहते हुए इस गाथा को कहा—

अपायिम्ह अनच्चिम्ह अगायिम्ह रुदिम्ह च,
विसञ्ञकरणिं पीत्वा दिट्ठा ना हुम्ह वानरा॥

[शराब पी, नाचे, गाये और रोये। खुशी इतनी है कि इस बेहोश बना देनेवाली को पीकर हम वानर नहीं बन गये।]

अपायिम्ह, सुरा पी। अनच्चिम्ह, उसे पी, हाथ पैरों को मटका मटका कर नाचे। अगायिम्ह, मुँह को खोल कर लम्बे स्वर से गाया। रुदिम्ह, फिर पश्चात्ताप से, 'हमने ऐसा किया' (सोच) रोये। दिट्ठा ना हुम्ह वानरा, इस प्रकार बेहोश होने पर विसञ्ञकरणिं (=बेहोश करने वाली सुरा) को पीकर, यही अच्छा हुआ कि हम वानर नहीं बन गये।

इस प्रकार उन्होंने अपने दुर्गुण कहे। बोधिसत्व 'आचार्य्य से पृथक् होने पर ऐसा होता ही है' कह, उन तपस्वियों की निन्दा कर 'अब फिर ऐसा न करना' कह, उनको उपदेश दे, ध्यान-युक्त रह, ब्रह्मलोकगामी हुए।

बुद्ध ने इस धर्मदेशना को कह जातक का सारांश निकाल दिया। इसके आगे 'मेल मिलाकर'—यह भी नहीं कहेंगे।

उस समय के ऋषि गण (अब की) बुद्ध-परिषद् थी। गण का गुरु तो मैं ही था।

८२. मित्तविन्द जातक

"अतिक्कम्म रमणकं..." यह (गाथा) बुद्ध ने जेतवन में विहार करते समय एक बात न मानने वाले भिक्षु के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

इस जातक की काश्यप सम्यक् सम्बुद्धकालीन कथा दसवें निपात (=परिच्छेद) में महामित्तविन्दक जातक[1] में आयेगी।

ख. अतीत कथा

उस समय बोधिसत्व ने यह गाथा कही—

> अतिक्कम्म रमणकं सदामत्तं च दूभकं,
> स्वासि पासाणमासीनो यस्मा जीवं न मोक्खसि॥

["रमणक", "सदामत्त" और "दूभक"—इन तीनो प्रासादों को छोड़ कर, तू एक ऐसे पत्थर से चिपट गया, जिससे अपने को जीते जी न छुड़ा सकेगा।]

रमणकं उस समय स्फटिक को कहते थे, मतलब तू स्फटिक के प्रासाद को छोड़ आया। सदामत्तं, "रजत" का नाम है, मतलब तू रजत के प्रासाद

---

[1] जातक (४३९)

क. वर्तमान कथा

वह अनाथपिण्डिक का लंगोटिया यार था। दोनो ने एक ही आचार्य के पास (इकट्ठे) शिल्प सीखा था। उसका नाम था कालकण्णी (=मनहूस)। समय बीतते बीतते वह दुर्गति को प्राप्त हो, (आसानी से) न जी सकने के कारण सेठ के पास चला आया। सेठ ने उसे आश्वासित कर, खर्चा दे, उसके परिवार का पालन किया। वह सेठ का उपकारी हो, उसके सब काम करने लगा। जब वह सेठ के पास आता, तो उसे कहा जाता—"कालकण्णी! खड़ा हो, कालकण्णी! बैठ, कालकण्णी! खा।" सो एक दिन सेठ के दोस्तों ने सेठ के पास आकर कहा—"सेठ! इसे अपने पास मत रख। 'कालकण्णी! खड़ा हो, कालकण्णी! बैठ; कालकण्णी! खा।' इस शब्द (को सुनने) से यक्ष भी भाग जाये। यह तेरे योग्य नहीं। यह दरिद्र है, कुरूप है—तुम्हें इस से क्या?"

अनाथपिण्डिक (ने उत्तर दिया)—"नाम व्यवहार-मात्र है। पण्डित-जन उसका ख्याल नहीं करते। श्रुत-माङ्गलिक[1] नहीं होना चाहिए। केवल नाम के कारण, मैं अपने लंगोटिया-यार को नहीं छोड़ सकता।"

उनकी बात न मान, एक दिन वह अपने भोग-ग्राम में जाते समय, उसे अपने घर का रखवाला बना कर गया।

"सेठ गाँव गया है। इसका घर लूटें" (सोच) चोरों ने, हाथ में नाना प्रकार के आयुध ले, रात को आकर, घर घेर लिया। वह (=रखवाला) भी, चोरों के आने की आशंका से, जागता बैठा था। उसने, चोरों का आना जान, मनुष्यों को जगा, 'तू शंख बजा' 'तू ढोल (=आलिङ्ग) बजा' कह महासमारोह (=मेला) करवाते हुए की तरह, सारे घर को एक शब्द कर दिया। 'घर आदमियों से भरा है, यह हमारी खबर गलत है। सेठ यहीं है' (सोच) चोर पत्थर, मुद्गर आदि वहां छोड़ भाग गये।

---

[1]माङ्गलिक शब्दों का [illegible] अपने कर्म को श्रुत-माङ्गलिक करना।

साथ रहने से 'सहायक' हो जाता है, महीना आधा महीना (साथ रहने) से, 'आति' (=रिश्तेदार) हो जाता है, और उस से अधिक (साथ) रहने से अपने जैसा (=आत्म-समान) भी हो जाता है। सो मैं अपने आत्म-सुख के लिए, चिर काल तक साथ रहे, इस काककणि (मित्र) को कैसे छोड़ दूं?]

हवे, निपात-मात्र है। मैत्री करने वाला मित्र है—अर्थात् (मित्र) मैत्री करता है, स्नेह करता है। सो यह (मित्र) सत्तपदेन होति, सात कदम इकट्ठे चलने से (भी) होता है, सहायो पन द्वादसकेन होति, सब कृत्यों को इकट्ठा करने से, सभी अवस्थाओं में साथ (=सह) जाने वाला, 'सहायक' सो यह, बारह दिन इकट्ठे रहने से होता है। मासड्ढमासेन च महीना या आधा महीना (साथ रहने) से। आति होति, आति (=रिश्तेदार)—सदृश होता है। तदुत्तरि, उस से अधिक साथ रहने से अत्तसमोपि होति (=अपने जैसा भी होता है)। सोहंव्व, इस प्रकार के मित्र को कैसे छोड़ूं? मित्रता के रस की प्रशंसा करता है।

उसके बाद से फिर कोई भी, उनके बीच में फूट डालने वाला नहीं हुआ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना कह जातक का सारांश निकाल दिया।

उस समय का काककणी, (अब का) आनन्द था। वाराणसी सेट्ठी तो मैं ही था।

८४. अत्थस्सद्वार जातक

[illegible] "यह (गाथा) बुद्ध ने जेतवन में [illegible] [illegible] समय [illegible] कहीं।

[आरोग्यता, जो कि परम लाभ है, (सर्व प्रथम) उसकी इच्छा करे; शील (=सदाचार); ज्ञान-वृद्धों का उपदेश; (बहु) श्रुतता, धर्मानुकूल आचरण, अनासक्ति—यह छः अर्थ (=उन्नति) के प्रमुख द्वार हैं।]

आरोग्यमिच्छे परमं च लाभं, 'च' निपातमात्र है। तात! सर्व प्रथम आरोग्य नामक परम लाभ की इच्छा करे! इस अर्थ को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है—'आरोग्य कहते हैं, शरीर तथा मन दोनों का आरोग्य होना, अनातुरता। शरीर के रोग से पीड़ित होने पर, न तो अप्राप्त लाभ प्राप्त किया जा सकता है, न प्राप्त (भोग) का उपभोग किया जा सकता है। लेकिन अनातुर (=स्वस्थ) होने पर यह दोनों कर सकता है। चित्त के क्लेश (=विकार) से पीड़ित होने पर, न तो अप्राप्त ध्यान आदि लाभ प्राप्त किया जा सकता है, न प्राप्त ध्यान फिर समापत्ति-रूप से भोग किया जा सकता है। इसके अस्वस्थ रहने पर, अप्राप्त लाभ प्राप्त नहीं होता, जो मिला है सो भी निष्प्रयोजन होता है। लेकिन इसके (आतुर) न होने पर, अप्राप्त लाभ होता है, प्राप्त लाभ सार्थक होता है। सो, आरोग्य परम लाभ है, सर्व प्रथम उसकी इच्छा करनी चाहिए। उन्नति का यह एक (मुख्य) द्वार है। सीलं च, आचारशील इससे मतलब है लौकिक बरताव। वुद्धानुवत्तं, गुणवृद्धों की, पण्डितों की मति, मतलब है गुणियों का, गुरुओं का उपदेश। सुतं च, उपयोगी श्रुत, इससे स्पष्ट किया है कि इस लोक में अर्थ-निश्रित (=उपयोगी) बहुस्सुच्चं (=बहुश्रुतता, शेष) है। धम्मानुवत्ती च, त्रिविध, सुचरित धर्म के अनुसार चलना, अलीनता च, चित्त की अलीनता, अलीनता, इससे चित्त का अपनुवित होना, श्रेष्ठ होना, उत्तम होना स्पष्ट किया है। अत्यस्स द्वारा पमुखा छळेते अर्थ=उन्नति, इस 'अर्थ' कहलाने वाली लौकिक, लोकोत्तर उन्नति के यह छः मुख्य द्वार हैं, उपाय हैं, प्रवेश-मार्ग हैं।

इस प्रकार बोधिसत्व ने पुत्र के अर्थ-द्वार प्रश्न का उत्तर दिया। उस समय से वह उन छः धर्मों के अनुसार आचरण करने लगा।

बोधिसत्त्व ने सार्थवाह हो, पाँच सौ गाड़ियों के साथ पूर्व से पश्चिम को जाते हुए, एक जंगल के द्वार पर पहुँच, मनुष्यों को एकत्र कर, उपदेश दिया— "इस जंगल में विष-वृक्ष हैं। मेरे बिना पूछे, कोई किसी ऐसे फल को न खाये, जिसे उसने पहले न खाया हो।"

मनुष्यों ने जंगल को पार कर, उसके द्वार पर फलों से लदा हुआ एक किम्पक्क वृक्ष देखा। उसके टहने, शाखायें, पत्ते तथा फल, आकार, वर्ण, रस और गन्ध की दृष्टि से आम के सदृश ही थे। उनमें से कुछ (आदमियों) ने वर्ण, गन्ध तथा रस की ओर खिंच, उन्हें आम के फल समझ कर खाया। कुछ ने 'सार्थवाह को पूछ कर खायेंगे,' (करके) लिये खड़े रहे। बोधिसत्त्व ने वहाँ पहुँच, जो फल लिये खड़े थे, उन से वह फल फेंकवा, जिन्होंने खा लिये थे, उन्हें वमन करा दवाई दी। उन में से कुछ तो निरोग हो गये, लेकिन जो बहुत पहले खा चुके थे, वे मर गए। बोधिसत्त्व सकुशल इच्छित स्थान पर पहुँच, (वहाँ) मुनाफा कमा, फिर अपने स्थान पर आकर, दान आदि पुण्य करके, कर्मानुसार (परलोक) गया। शास्ता ने यह कथा कह, अभिसम्बुद्ध हो, यह गाथा कही—

आयतिदोसं नाञ्ञाय यो कामे पटिसेवति,
विपाकन्ते हनन्ति नं किम्पक्कमिव भक्खितं॥

[जो (आदमी) काम-भोगों के भविष्य के दुष्परिणाम को बिना जाने फिर काम-भोगों का सेवन करता है, उस आदमी को, उसके काम भोग, फल देने के समय वैसे ही मार डालते हैं, जैसे खाए हुए किम्पक्क-फल ने (मार डाला)।]

आयतिदोसं नाञ्ञाय, [illegible] के दुष्परिणाम को न [illegible] [illegible]

रुचिकर किम्पक्कफल, यदि अविपक्व या दुष्परिणाम न देख कर खा लिया जावे, तो अन्त में मार डालता है, प्राणों का नाश कर देता है; इसी प्रकार परिभोग के समय यद्यपि काम-भोग रुचिकर लगते हैं, तो भी विपाक देने के समय मार डालते हैं।

इस उपदेश को मेल मिलाने तक पहुँचा, (आर्य) सत्यों को प्रकाशित किया। (आर्य-) सत्यों (के प्रकाशन) के अन्त में उत्कण्ठित भिक्षु स्रोतापत्ति फल का लाभी हुआ। शेष परिषद् में से भी कुछ स्रोतापन्न हुए, कुछ सकृदागामी, कुछ अनागामी, कुछ अर्हत् हुए। बुद्ध ने भी यह धर्म-देशना कह, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय की परिषद् (अब की) बुद्ध-परिषद् थी। सार्थवाह (=कारवाँ का सरदार) तो मैं ही था।

८६. सीलवीमंस जातक

"सीलं किरेव कल्याणं..." यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन में विहरते समय, एक शील (=सदाचार) विचारक ब्राह्मण के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

उसकी जीविका कोसल राजा पर निर्भर थी। वह त्रिशरण-गत, अखण्ड पञ्चशीली तथा तीनों वेदों में पारङ्गत था। यह शीलवान् (=सदाचारी) है (करके) राजा उसका विशेष सम्मान करता था। वह सोचने लगा—यह राजा अन्य ब्राह्मणों की अपेक्षा मेरा विशेष सम्मान करता है [illegible]

एक दिन उसने, राजा की सेवा में जा, वापिस घर लौटते समय, एक सराफ (की दुकान) के फट्टे पर से, बिना उसे पूछे, एक कार्षापण उठा लाया। सराफ, ब्राह्मण के प्रति गौरव का भाव होने से, बिना कुछ बोले (चुप) बैठा रहा। अगले दिन, दो कार्षापण उठा लाया। सराफ ने वैसे ही सहन कर लिया। तीसरे दिन कार्षापणों की मुट्ठी उठा ली। 'आज तुझे राजकीय-माल लूटते तीसरा दिन हो गया है' (करके) सराफ ने, 'मैं ने राजकीय-माल लूटने वाला चोर पकड़ा है'—तीन बार शोर मचाया। मनुष्य, इधर उधर से आकर 'बहुत देर से तू सदाचारी बना फिरता था' (करके) दो तीन प्रहार दे, राजा के पास ले गये।

राजा ने अफसोस करते हुए, 'ब्राह्मण ! किस लिए ऐसा पाप-कर्म करता है' कह, आज्ञा दी, 'जाओ ! इसको राज-दण्ड दो।'

ब्राह्मण बोला—"महाराज ! मैं चोर नहीं हूँ।"

"तो फिर किस लिए राजकीय सामान के अधिकारी के फट्टे पर से कार्षापण उठाये ?"

"तुम्हारे, मेरा अत्यन्त सम्मान करने पर, मेरे मन में सन्देह था कि यह जो राजा मेरा सम्मान करता है, वह मेरी जाति आदि के कारण, अथवा शील (=सदाचार) के कारण ? सो, इसकी परीक्षा करने के लिए, मैंने ऐसा किया। अब मुझे सम्पूर्ण विश्वास हो गया, कि तू ने जो मेरा सम्मान किया, वह (मेरे) शील के ही कारण किया, न कि जाति आदि के कारण। सो, इस कारण (=बात) से, मैं इस निश्चय पर पहुँचा कि लोक में शील (=सदाचार) ही उत्तम है, शील ही प्रमुख है। घर में रह कर काम-भोगों का उपभोग करते हुए मैं इस शील के (नियमों के) अनुसार नहीं रह सकता। इस लिए, मैं आज ही जेतवन जा कर बुद्ध के पास प्रव्रजित होऊँगा। देव ! मुझे प्रव्रज्या (की आज्ञा) दें।" यह कह, राजा की स्वीकृति ले, जेतवन की ओर चला गया।

उसके जाति-सुहृद-बन्धुओं ने उसे रोकने का प्रयत्न किया; लेकिन जब वह न रोक सके तो लौट गए।

उसने बुद्ध के पास जा प्रव्रज्या की याचना कर प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा पा, कर्मस्थान (=योगाभ्यास) में लगे रह विदर्शना (=ज्ञान) की वृद्धि से,

अर्हत्व प्राप्त किया। तब बुद्ध के पास जा अज्ञा (=अर्हत्व) का व्याकरण (=प्रकाशन) किया—भन्ते! मेरी प्रव्रज्या का उद्देश पूरा हो गया।

उसका यह 'अर्हत्व-प्रकाशन' भिक्षुसंघ में प्रकट हो गया। सो एक दिन धर्म-सभा में बैठे भिक्षु उसकी प्रशंसा कर रहे थे—'आवुसो! राजा का अमुक उपस्थायक ब्राह्मण, अपने शील का विचार कर, राजा से पूछ, प्रव्रजित हो, अर्हत्व में प्रतिष्ठित हुआ।"

शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ! इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?" "यह (बातचीत)" कहने पर, (शास्ता ने) कहा—"भिक्षुओ! न केवल अभी इस ब्राह्मण ने अपने शील का विचार कर, प्रव्रजित हो, अपनी प्रतिष्ठा (=अर्हत्व लाभ) की; पहले भी पण्डितों ने अपने शील का विचार कर, प्रव्रजित हो, अपनी प्रतिष्ठा की है।" यह कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्व उसके पुरोहित थे। वे दानी थे, सदाचारी थे; तथा अखंड-पञ्च-शीली थे। राजा, अन्य ब्राह्मणों की अपेक्षा, उनका विशेष सम्मान करता था।.....सब पूर्व सदृश ही। लेकिन बोधिसत्व को बाँध कर, राजा के पास ले जाने के समय, रास्ते में सँपेरे साँप का खेल करते हुए, उसे पूँछ से पकड़ते, गरदन पर डालते तथा गले में लपेटते थे। उन्हें देख, बोधिसत्व ने कहा—"तात! इसे पूँछ से मत पकड़ो; इसे गले में गरदन में मत लपेटो। अरे, यह डस कर, प्राणों का नाश कर देगा।" सँपेरे बोले—"ब्राह्मण यह सर्प शीलवान् है; सदाचारी है; तेरे जैसा दुःशील नहीं है। तू अपनी दुःशीलता अनाचार के कारण 'राजकोष माल लूटने वाला चोर' (कहकर), बाँध कर ले जाया जा रहा है।" यह सोचने लगा—"[illegible] छोड़ने पर डस देना [illegible]

[illegible]

"तो इसे राज-दण्ड दो।"

ब्राह्मण बोला—"महाराज! मैं चोर नहीं हूँ।"

"तो फिर किस लिए कार्षापण उठाये?" पूछने पर, उक्त प्रकार से ही सब कहते हुए, कहा: "सो, मैं इस कारण से इस निश्चय पर पहुँचा, कि इस लोक में शील ही उत्तम है, शील ही प्रमुख है। और तो रहने दो, यह विषैला सर्प भी, न डसने पर, न कष्ट देने पर 'शीलवान्' कहलाता है। इस कारण से भी शील ही उत्तम है, शील ही श्रेष्ठ है।" इस प्रकार शील की प्रशंसा करते हुए, यह गाथा कही—

> सीलं किरेव कल्याणं सीलं लोके अनुत्तरं,
> पस्स घोरविसो नागो सीलवाति न हञ्ञति॥

[शील ही कल्याण-कर है; लोक में शील से बढ़कर कुछ नहीं। देखो! यह घोर विषैला सर्प (भी) शीलवान् (है) करके, मारा नहीं जाता।]

"सीलं किरेव ." शरीर-वाणी तथा मन से सदाचार (के नियमों) का उल्लंघन न करना, आचार-शील। किर, परम्परा से कहा जाता है। कल्याणं, सुन्दरतर। अनुत्तरं, ज्येष्ठ, सब गुणों का दाता। पस्स, अपनी देखी बात का सामने करके कहता है। सीलवाति न हञ्ञति, घोर विषैला सर्प भी, केवल न डसने, न कष्ट देने भर से, 'शीलवान्' करके प्रशंसित होता है। न हञ्ञति, मारा नहीं जाता। इस कारण से भी, शील ही उत्तम है।

इस प्रकार बोधिसत्व, इस गाथा से, राजा को धर्मोपदेश कर, काम-भोगों का त्याग, ऋषि प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो, हिमालय में प्रवेश कर, पाँच अभिज्ञा, तथा आठ समापत्तियाँ प्राप्त कर, ब्रह्मलोकगामी हुए।

बुद्ध ने यह धर्म-देशना कह जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय का राजा आनन्द था। बुद्ध परिषद थी। पुरोहित तो मैं ही था।

८७. मंगल जातक

"यस्स मङ्गला समूहता" यह (गाथा) बुद्ध ने वेणुवन में विहार करते समय, एक ऐसे ब्राह्मण के बारे में कही, जो वस्त्र में (चूहे-कुटे) लक्षण देखता था।

क. वर्तमान कथा

राजगृह-वासी एक ब्राह्मण मङ्गलों में विश्वास करता था। वह त्रिरत्न (=बुद्ध-धर्म-संघ) से अप्रसन्न तथा मिथ्या-विचार वाला था; (लेकिन) था धनी, अत्यन्त धनी, बहुत भोग-सम्पत्ति वाला। उसके सन्दूक में रखे हुए वस्त्रों के जोड़े को चूहे काट गये। (जब) नहाकर, 'वस्त्र ले आओ' कहा, तो बताया कि उन्हें चूहे काट गये।

उसने सोचा—'यदि यह चूहों का खाया कपड़ों का जोड़ा, इस घर में रहेगा, तो महाविनाश होगा। यह अमाङ्गलिक है, अपशकुन है; इसे लड़के-लड़कियों, नौकर चाकरों को भी नहीं दिया जा सकता, क्योंकि जो कोई इसे लेगा, उसका सब कुछ विनाश हो जायगा। इसे कच्चे श्मशान में फिकवाऊँगा। लेकिन इसे नौकर चाकरों के हाथ में नहीं दे सकता; कहीं वे लोभ के मारे इसे रख लें और इस प्रकार विनाश को प्राप्त हों। इसे अपने पुत्र के हाथ भेजूँगा।' उसने अपने पुत्र को बुलाकर यह बात समझा कर भेजा—'लेकिन तात [illegible] इसे [illegible] हाथ से [illegible] और कच्चे श्मशान में [illegible] लौट आ।'

[illegible] धर्मपरायण [illegible]

कच्चे श्मशान के द्वार पर जाकर छ: वर्ण की रश्मियों को विसर्जित करते हुए बैठे। माणवक (अपने) पिता की बात मान, उस जोड़े-वस्त्र को, घर में आ घुसे साँप की तरह लकड़ी पर डालकर कच्चे श्मशान के द्वार पर लाया।

बुद्ध ने पूछा—"माणवक! क्या करता है?"

"भो गौतम! यह चूहों का खाया हुआ जोड़ा-वस्त्र (है), (यह) मनहूसीयत है, (यह) हलाहल-विष के समान है। मेरे पिता ने इस डर से कि कहीं दूसरा (कोई) फेंकने जाकर लोभ के मारे ले न ले, मुझे (इसे फेंकने) भेजा है। मैं इसे फेंक कर, सिर से नहाने के लिए आया हूँ।"

"अच्छा! तो फेंक दे।"

माणवक ने फेंक दिया। शास्ता 'अब यह हमारे योग्य है' (कह) उसके सामने ही, उसके 'भो गौतम! यह अमाङ्गलिक है, यह मनहूसीयत है, इसे मत लें, इसे मत लें' मना करते रहने पर भी, उठा कर वेळुवन की ओर चले गये। माणवक ने जल्दी से जाकर पिता को कहा—"तात! मैंने जिस जोड़े-वस्त्र को कच्चे श्मशान में फेंका, उसे मेरे मना करने पर भी श्रमण गौतम 'हमारे योग्य है' (कह) ले वेळुवन चला गया।

ब्राह्मण ने सोचा—"वह जोड़ा वस्त्र अमाङ्गलिक है, मनहूसियत है। उसे पहनने से श्रमण गौतम भी नष्ट होगा, विहार भी नष्ट होगा। उस से हमारी निन्दा होगी। सो मैं श्रमण गौतम को और दूसरे बहुत से वस्त्र दे कर, वह वस्त्र फिकवाऊँ।"

वह बहुत से वस्त्र लिवा, पुत्र सहित वेळुवन जा, शास्ता को देख एक ओर खड़े होकर बोला—"भो गौतम! क्या तू ने सचमुच, कच्चे श्मशान में से जोड़ा-वस्त्र लिया है?"

"हाँ, ब्राह्मण! सचमुच"

"भो गौतम! वह वस्त्र जोड़ा अमाङ्गलिक है। उसे पहनने से तुम नष्ट होगे, सारा विहार नष्ट होगा। यदि ओढ़ना, बिछौना पर्याप्त न हो, तो इन वस्त्रों को लेकर, उसे फेंकवा दो।"

बुद्ध ने 'ब्राह्मण! हम प्रव्रजित हैं। कच्चे श्मशान में, गली में, कूड़े में, नहाने के घाट (=तीर्थ) पर तथा महामार्ग में—ऐसी ही जगहों पर फेंके हुए या गिरे हुए चीथड़े हमारे योग्य हैं। और तू तो, न केवल अभी, किन्तु

यस्स मङ्गला समूहता
उप्पाता सुपिना च लक्खणा च,
स मङ्गलदोसवीतिवत्तो
युगयोगाधिगतो न जातुमेति ॥

[जिस (आदमी) के मंगल (माङ्गलिक, अमाङ्गलिक सम्बन्धी विश्वास), उत्पात (=सूर्य्यग्रहण, चन्द्रग्रहण आदि उत्पात); स्वप्न (शुभ स्वप्न, अशु[भ] स्वप्न आदि), तथा लक्षण (चिन्ह, शुभ-अशुभ)—यह सब समूल नष्ट हो गये हैं, वह, इन मङ्गल-दोषों को लाँघ जाने वाले, इन द्वन्द्व धर्मों को जी[त] लेने वाला=, निश्चय पूर्वक (फिर) इस संसार में जन्म ग्रहण नहीं करता।]

जिस अर्हत्=क्षीणाश्रव के दृष्ट-मङ्गल, श्रुत-मङ्गल, मुत-मङ्गल—यह तीनों प्रकार के मङ्गल समूल उच्छिन्न हो गये हैं। उप्पाता सुपिना च लक्खणा च, 'इस प्रकार का चन्द्रग्रहण होगा, इस प्रकार का सूर्य्य-ग्रहण होगा, इस प्रकार का नक्षत्र-ग्रहण होगा, इस प्रकार का तारा (=उल्का) गिरेगा, तथा इस प्रकार का दिशा-दाह (=दिशा में आग लगना) होगा' यह पाँच महा-उत्पात हैं; नाना प्रकार के स्वप्न; शुभ-लक्षण, अशुभ-लक्षण, स्त्री-लक्षण, पुरुष-लक्षण, दास-लक्षण, दासी-लक्षण, असि-लक्षण, वृषभ-लक्षण, आयुध-लक्षण, वस्त्र-लक्षण, इस प्रकार के लक्षण जिसके यह मिथ्या विश्वास (=दृष्टि-स्थान) समूल नष्ट हो गये हैं, वह (आदमी) इन उत्पात आदि से अपना मङ्गल (=कल्याण) होना या अमङ्गल होना नहीं विश्वास करता। स मङ्गलदोसवीतिवत्तो, वह क्षीणाश्रव, सब मङ्गलों के दोषों का अतिक्रमण कर गया, लाँघ गया। युगयोगाधिगतो न जातुमेति इति, क्रोध तथा उपनाह (=बद्ध-वैर), म्रक्ष[1], पलास[2] आदि करके दो-दो एक साथ आते हुए क्लेश (=चित्त विकार) 'युग' कहलाते हैं। काम-योग, भव-योग, दृष्टि-योग अविद्या-योग, यह चारों, संसार में जोतने वाले (=योजन करने वाले) होने से

---

[1] म्रक्ष—दूसरे के गुणों को नष्ट करना।

[2] पलास—अपनी दूसरे गुणों के साथ तुलना करना।

'योग' कहलाते हैं। ये युग तथा योग, युगयोग, उन्हें अधिगत करने वाला, जीतने वाला, लांघ जाने वाला, सम्यक् अतिक्रान्त कर जाने वाला, क्षीणास्रव भिक्षु, न जातुमेति फिर जन्म-ग्रहण करके, निश्चय से इस लोक में नहीं आता।

इस प्रकार बुद्ध ने इस गाथा से ब्राह्मण को धर्मोपदेश कर फिर, (आर्य) सत्यों को प्रकाशित किया। (आर्य-) सत्यों (के प्रकाशन) के अन्त में, वह सपुत्र ब्राह्मण स्रोतापत्ति-फल में प्रतिष्ठित हुआ।

बुद्ध ने जातक का सारांश निकाला। उस समय (भी) यही (दोनों जने) पिता पुत्र थे। तरुण तो मैं ही था।

८८. सारम्भ जातक

"कल्याणिमेव मुञ्चेय्य..." यह (गाथा) बुद्ध ने श्रावस्ती में विहार करते समय गाली सम्बन्धी शिक्षापद (=नियम) के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

दोनों कथायें, पूर्वोक्त नन्दि विसाल[1] जातक के समान ही हैं। लेकिन इस जातक में बोधिसत्व, गन्धार देश (=राष्ट्र) के तक्षशिला (नगर) में एक ब्राह्मण का सारम्भ नामक बैल हुआ।

ख. अतीत कथा

बुद्ध ने पूर्व-जन्म की यह कथा कह, अभिसम्बुद्ध हुए रहने की अवस्था में

---

[1] नन्दिविसाल जातक (२८)

यह गाथा कही—

> *कल्याणिमेव मुञ्चेय्य नहि मुञ्चेय्य पापिकं,*
> *मोक्खो कल्याणिया साधु मुत्वा तपति पापिकं॥*

[कल्याणकर वाणी को (मुँह से) छोड़े। पापी वाणी को (मुँह से) न छोड़े। कल्याण कर वाणी का छोड़ना श्रेयस्कर (=साधु) है, पापी वाणी को (मुँह से) छोड़ने वाला (पीछे) तपता है।]

कल्याणिमेव मुञ्चेय्य .." असत्य, कठोर, व्यर्थ, चुगली (की बात) —इन चार दोषों से मुक्त, कल्याणकर, सुन्दर, दोष रहित वाणी ही (मुँह से) निकाले, छोड़े, बोले। नहि मुञ्चेय्य पापिकं, पापी, बुरी, दूसरों को अप्रिय, अरुचिकर, (वाणी) न निकाले, न बोले। मोक्खो कल्याणिया साधु, कल्याणकारी वाणी का बोलना ही, इस लोक में अच्छा है, सुन्दर है, भद्र है। मुत्वा तपति पापिकं, पापी, कठोर वाणी को छोड़कर, निकाल कर, कह कर, वह आदमी सताप को प्राप्त होता है, सोचता है, दुःख पाता है।

इस प्रकार बुद्ध ने यह धर्म-देशना ला, जातक का सारांश निकाला। उस समय का ब्राह्मण (अब का) आनन्द था, ब्राह्मणी (अब की) उत्पलवर्णा (भिक्षुणी) थी, (लेकिन) सारम्भ तो मैं ही था।

८६. कुहक जातक

"वाचाव किर ते आसि", यह (गाथा) बुद्ध ने जेतवन में विहरते समय, एक ढोंगी=पाखण्डी के बारे में कही।

सामान दिलवाया। उन्होने प्रत्यन्त देश वापिस लौट, यह हाल अपने सेठ को कहा।

आगे चलकर, अनाथपिण्डिक ने भी, उसी तरह पाँच सौ गाड़ियाँ वहाँ भेजीं। मनुष्य वहाँ जाकर, भेंट दे प्रत्यन्त (-देश) के सेठ से मिले। उसने 'कहाँ से आये?' पूछा।

"श्रावस्ती से, तुम्हारे मित्र अनाथपिण्डिक के पास से"।

होगा किसी आदमी का नाम अनाथपिण्डिक—कह, उनकी हँसी की। फिर भेंट लेकर, 'तुम जाओ' कहा और चलता किया। न निवास-स्थान ही दिया, न खर्चा। उन्होंने अपने आप सामान बेंच उसके बदले में सामान ले, श्रावस्ती आकर, सेठ को सब हाल कह सुनाया।

उस प्रत्यन्त-वासी (सेठ) ने फिर एक बार उसी तरह पाँच सौ गाड़ियाँ श्रावस्ती भेजी। मनुष्यों ने भेंट लेकर बड़े सेठ से भेंट की। उन्हें देख, अनाथपिण्डिक के घर के आदमी 'स्वामी! इनके निवास, भोजन तथा खर्च का हम ख्याल रक्खेंगे' कह, उनकी गाड़ियों को नगर के बाहर, ऐसे वैसे ही स्थान पर खुलवा कर 'तुम यहीं रहो। तुम्हारा यागु-भात और खर्चा यहीं होगा' कह, जाकर नौकर चाकरो को इकट्ठा कर, आधीरात के समय, पाँच सौ की पाँच सौ गाड़ियाँ लुटवा, उनके ओढने बिछावने भी फाड़, बैलों को भगा, गाड़ियो को बिना पहिये की कर, जमीन पर डाल, पहियो तक को लेकर चले गये। प्रत्यन्तवासी, अपने वस्त्रो तक से हाथ धो, डर के मारे जल्दी से भाग कर प्रत्यन्त-देश पहुँचे। सेठ के आदमियो ने, बड़े सेठ को यह हाल कहा। उसने 'यह कहने योग्य बात है' सोच, बुद्ध के पास जाकर, वह सब हाल, आरम्भ से सुनाया।

बुद्ध ने 'हे गृहपति! न केवल अभी वह प्रत्यन्त-वासी ऐसा है, वह पहले भी ऐसा ही था' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी म (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्व वाराणसी म महाविभवशाली सेठ हुआ। एक प्रत्यन्त-वासी सेठ

पहला परिच्छेद

१०. लित्त वर्ग

९१. लित्त जातक

"लित्तं परमेन तेजसा" यह (गाथा) बुद्ध ने जेतवन में विहार करते समय बिना सोचे विचारे उपयोग करने के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय भिक्षुओं को, जो चीवर आदि मिलते थे, वे उन्हें प्रायः बिना सोचे विचारे ही उपयोग में लाते थे। (चीवर आदि) चारों प्रत्ययों[1] को बिना सोचे समझे उपयोग में लाने के कारण, वे निरय (=नरक) तिरश्चीन योनियों से मुक्त न होते थे। बुद्ध ने इस बात को जान, भिक्षुओं को अनेक प्रकार से धर्म-कथा कह, बिना सोचे विचारे (किसी चीज़) के उपयोग में लाने के दुष्परिणाम दिखा कर कहा—"भिक्षुओ! एक भिक्षु के लिए, चारों प्रत्ययों के मिलने पर, उन्हें बिना सोचे समझे उपयोग में लाना अनुचित है। इस लिए अब से, सोच विचार कर, उपयोग में लाया करो।" (यह कह) प्रत्यवेक्षणा (=सोच विचार) की विधि (=क्रम) स्पष्ट करते हुए—

"भिक्षुओ! यहाँ भिक्षु सोच विचार कर चीवर का सेवन (=उपयोग) करता है, शीत के प्रतिघात के लिए ..."[2] को पंक्ति (तंति) करके 'भिक्षुओ! चारों प्रत्ययों का सोच विचार कर सेवन करना उचित है। बिना सोचे

---

[1] चीवर (=वस्त्र,) २ पिण्डपात (भोजन), ३ शयनासन (ओढ़न-बिछावन), ४ गिलान प्रत्यय (=भैषज्य आदि)।

[2] इध भिक्खवे भिक्खु पटिसंखा योनिसो.... (सुद्दक पाठ)।

बिना विचारे उपभोग में लाना हलाहल-विष को उपभोग में लाने के समान है। पूर्व (समय में) प्राणियों ने बिना सोचे विचारे उपभोग (=परिभोग) करने के दुष्परिणाम को न जान कर विष खा लिया, और उस के विपाक (=फल) मिलने के समय, महान् दुःख भोगा" कह, पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्व, एक महान् धनवान् कुल में उत्पन्न होकर, आयु बड़ी होने पर जुआरी हो गये। एक दूसरा कुटिल जुआरी बोधिसत्व के साथ खेलते समय, जब उसकी अपनी जीत होने लगती, तब तो धांधली न करता लेकिन जब हार होती दीखती, तो गोटी को मुँह में डाल कर, गोटी खो गई (कहके) खेल में धांधली मचा चल देता।

बोधिसत्व ने उसका कारण जान 'अच्छा! इसका उपाय करूँगा' सोच, गोटियों ले, उन्हें अपने घर में जाकर हलाहल विष से रंग, बार बार सुखा कर, उन्हें ले, उसके पास जाकर कहा—"सौम्य! आ जुआ खेलें।"

उसने 'सौम्य! अच्छा' कह क्रीड़ा-मण्डल तैयार कर, उसके साथ खेलते हुए, अपनी हार होती देख एक गोटी मुँह में डाल ली। बोधिसत्व ने उसे ऐसा करते देख "निगल, पीछे पता लगेगा कि यह क्या है?" कह, उसे दोष देने के लिए यह गाथा कही—

लित्तं परमेन तेजसा
गिलमक्खं पुरिसो न बुज्झति,
गिल रे! गिल पापधुत्तक!
पच्छा ते कटुकं भविस्सति ॥

[कड़े तेज (विष) से लिपटी हुई गोटी को निगलने वाला, उसे उस समय नहीं जानता। अरे! पापी धूर्त! निगल, निगल! पीछे तू इसका कड़ुवा फल भोगेगा।]

लित्तं, लगी हुई, रंगी हुई। परमेन तेजसा, उत्तम तेज हलाहल विष से। गिलं, निगलते हुए। अक्खं, गोली (=गोटी)। न बुज्झति, नहीं जानता कि

पहला परिच्छेद

१०. लित्त वर्ग

९१. लित्त जातक

"लित्तं परमेन तेजसा" यह (गाथा) बुद्ध ने जेतवन में विहार करते समय बिना सोचे विचारे उपयोग करने के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय भिक्षुओं को, जो चीवर आदि मिलते थे, वे उन्हें प्रायः बिना सोचे विचारे ही उपयोग में लाते थे। (चीवर आदि) चारों प्रत्ययों[1] को बिना सोचे समझे उपयोग में लाने के कारण, वे निरय (=नरक) तिरश्चीन योनियों से मुक्त न होते थे। बुद्ध ने इस बात को जान, भिक्षुओं को अनेक प्रकार से धर्म-कथा कह, बिना सोचे विचारे (किसी चीज) के उपयोग में लाने के दुष्परिणाम दिखा कर कहा—"भिक्षुओ! एक भिक्षु के लिए, चारों प्रत्ययों के मिलने पर, उन्हें बिना सोचे समझे उपयोग में लाना अनुचित है। इस लिए मन से, सोच विचार कर, उपयोग में लाया करो।" (यह कह) प्रत्यवेक्षणा (=सोच विचार) की विधि (=क्रम) स्पष्ट करते हुए—

'भिक्षुओ! यहां भिक्षु सोच विचार कर चीवर का सेवन (=उपयोग) करता है शीत के प्रतिघात के लिए ... '[2] का पाठ (नति) करके भिक्षुओं चारों प्रत्ययों का सोच विचार कर सेवन करना उचित है। बिना सोचे

---

[1] चीवर (=वस्त्र) २ पिण्डपात (भोजन), ३ शयनासन (झोपड़-बिछावन) ४ गिलान प्रत्यय (=पथ्य आदि)।

[2] इध भिक्खवे भिक्खु पटिसंखा योनिसो ... (खुद्दक पाठ)।

यह निगलने से, मेरा क्या करेगी। गिल रे, अरे निगल। गिल, फिर कहता है, ज़ोर डालने के लिए। पच्छा ते कटुकं भविस्सति, तेरे इस गोटी को निगलने के बाद, यह विष तीक्ष्ण होगा।

बोधिसत्त्व के कहते ही कहते, वह विष के ज़ोर से मूर्च्छित हो, आँखें बदल, शरीर को झुका गिर पड़ा।

बोधिसत्त्व *'अब इसे जीवनदान देना चाहिए'* (सोच) दवाई मिलाकर, उल्टी की औषधि दे, वमन करा, घी, गुड़, मधु, शक्कर आदि खिला, अरोगी कर, 'फिर ऐसा न करना'—यह उपदेश दे, दान आदि पुण्य कर्म कर, अपने (कर्मानुसार) परलोक गये।

बुद्ध ने इस धर्म-देशना को ला "भिक्षुओ ! बिना सोचे समझे, (प्रत्ययों का) परिभोग, वैसा ही होता है, जैसे बिना सोचे समझे हलाहल (विष) का परिभोग" कह जातक का सारांश निकाला।

उस समय पण्डित धूर्त मैं ही था। कुटिल धूर्त यहाँ नहीं कहा गया। जैसे यहाँ, वैसे ही हर जगह। जो इस समय (=बुद्ध के समय) नहीं है, वह नहीं कहा गया है।

९२. महासार जातक

"उक्कट्ठे सूरमिच्छन्ति ..." यह (गाथा) बुद्ध ने जेतवन, में विहार करते समय, आयुष्मान् आनन्द के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक समय कोशल-नरेश की स्त्रियाँ ने सोचा— (लोक में) बुद्ध का उत्पन्न होना दुर्लभ है। वैसे ही मनुष्य-जन्म का लाभ दुर्लभ है और फिर सम्पूर्ण-

स्त्रियों का होना और भी दुर्लभ है। हम ऐसा दुर्लभ अवसर पाकर भी, अपनी रुचि के अनुसार न विहार जाने पाती हैं न धर्म सुनने, न पूजा करने और न दान देने। ऐसे रहती हैं, जैसे सन्दूक में बन्द करके रक्खी गई हों। सो, हम राजा को कहकर, एक ऐसे भिक्षु को बुलवाकर जो हमें धर्मोपदेश देने के योग्य हो, उस से धर्म सुनें। उस में जो (ग्रहण) कर सकेंगी, करेंगी, दान आदि पुण्य-कर्म करेंगी। इस प्रकार हमारा यह सुअवसर सफल होगा।"

उन सब ने राजा के पास जा, अपना विचार कहा। राजा ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया।

एक दिन राजा ने उद्यान क्रीड़ा खेलने की इच्छा से माली को बुलाकर कहा—"उद्यान साफ करो।" माली ने उद्यान साफ करते हुए एक वृक्ष के नीचे बुद्ध को बैठे देख, राजा के पास जाकर कहा—"देव! उद्यान साफ है। और एक वृक्ष के नीचे भगवान् बैठे हैं।"

राजा, 'सौम्य! अच्छा, बुद्ध के पास धर्म भी सुनेंगे' (कह) रथ पर चढ़, उद्यान पहुँच बुद्ध के पास गया।

उस समय छत्रपाणि नामक एक अनागामी उपासक बुद्ध के पास बैठा धर्म सुन रहा था। राजा, उसे देख, कुछ देर सशंकित खड़े रह, फिर 'यह बुरा आदमी न होगा, यदि बुरा होता, तो बुद्ध के पास बैठ कर धर्म न सुनता। सो यह अच्छा ही आदमी होगा' सोच, बुद्ध के पास जा, प्रणाम कर, एक ओर बैठ गया। उपासक ने, बुद्ध का अगौरव होने के डर से, राजा के आने पर खड़ा होना, या प्रणाम करना, आदि कुछ नहीं किया। इससे राजा उसके प्रति असन्तुष्ट हुआ।

बुद्ध ने 'राजा असन्तुष्ट हुआ' जान, उपासक की प्रशंसा की—"महाराज! यह उपासक बहुश्रुत है, आगम (=धर्म) का ज्ञाता है, और काम-भोगों से वीतरागी है।"

राजा ने 'यह कोई ऐसा ही नहीं होगा, जिसकी बुद्ध प्रशंसा कर रहे हैं' सोच कर कहा—"उपासक! जिस किसी चीज की जरूरत हो, कहना"। उपासक ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। राजा बुद्ध के पास धर्मोपदेश सुन, बुद्ध की प्रदक्षिणा कर चला गया।

एक दिन [illegible]

कि प्रातःकाल का भोजन करके, छतरी हाथ में लिये वह उपासक, जेतवन जा रहा है। उसने उसे बुलवा कर कहा—"उपासक! तू बहु-श्रुत है। हमारी स्त्रियाँ धर्म सुनना और सीखना चाहती हैं। अच्छा हो, यदि तू उन को धर्म सुनाये।"

"देव! राजा के अन्तःपुर में, गृहस्थों का धर्मोपदेश देना या बाँचना, मुनासिब नहीं; आर्यों (=भिक्षुओं) का ही मुनासिब है।"

राजा ने 'यह सत्य ही कहता है' (सोच), उसे भेज, स्त्रियों को बुलवाकर पूछा—"भद्रे! मैं तुम्हें धर्मोपदेश करने के लिए तथा बाँचने के लिए, बुद्ध के पास जा कर, एक भिक्षु माँगता हूँ। अस्सी महास्थविरों में से किस भिक्षु को माँगूँ?" उन सब ने सलाह करके धर्म भाण्डागारिक आनन्द स्थविर को ही पसन्द किया।

राजा ने बुद्ध के पास जा, प्रणाम कर, एक ओर बैठ कर, कहा—"भन्ते! हमारे घर की स्त्रियाँ आनन्द स्थविर से धर्म सुनना और सीखना चाहती हैं। अच्छा हो, यदि स्थविर हमारे घर में उपदेश दें और बाँचें।"

बुद्ध ने 'अच्छा' कह, स्वीकार कर स्थविर को आज्ञा दी।

उस समय से लेकर राजा की स्त्रियाँ, स्थविर के पास धर्म सुनती और सीखतीं। एक दिन राजा की चूड़ामणि खो गई। राजा ने उसके खोये जाने की बात सुन, अमात्यों को बुला कर आज्ञा दी कि अन्तःपुर के सब आदमियों को पकड़ कर, उनसे चूड़ामणि निकलवाओ। अमात्य स्त्रियों से आरम्भ करके, चूड़ामणि खोजते हुए, उसके न मिलने पर, लोगों को तंग करने लगे। उस दिन आनन्द स्थविर राजभवन में गये। जैसे पहले स्त्रियाँ स्थविर को देखते ही हृष्ट-तुष्ट हो धर्म सुनती और सीखती थीं, उस दिन वैसा न कर वे सब दुःखित-चित्त ही रहीं।

स्थविर के 'आज तुम, ऐसी कैसे हो गई?' पूछने पर, वे बोलीं—"भन्ते! राजा की चूड़ामणि खो गई (जाने) अमात्य स्त्रियों से लेकर राज-भवन के अन्दर के सभी आदमियों को तंग करते हैं। नहीं जानती कि उसका क्या होगा? सो उसी से हम दुःखी हैं।"

स्थविर ने 'चिन्ता न करें' कह, उन्हें आश्वासन दे राजा के पास जा, बिछे आसन पर बैठ कर पूछा—"महाराज! क्या तुम्हारी मणि खो गई?"

क़नात के अन्दर घुस, चाटी में डाल कर निकल आया। सब के (बाहर) निकल आने पर, पानी फेंकने पर, मणि मिल गई।

राजा सन्तुष्ट हुआ कि स्थविर के कारण, बिना लोगों को कष्ट दिये ही मणि मिल गई। (महल) के अन्दर के आदमी भी प्रसन्न हुए कि स्थविर के कारण हम महादुख से मुक्त हो गये। 'स्थविर के प्रताप से राजा की मणि मिल गई' (करके) स्थविर का प्रताप सारे नगर और भिक्षु-संघ में प्रसिद्ध हो गया। धर्म-सभा में बैठे भिक्षु (आनन्द) स्थविर की प्रशंसा करने लगे—"आवुसो! आनन्द स्थविर ने अपने बहु-श्रुतपन से, पाण्डित्य से, उपाय-कुशलता से, बिना लोगों को कष्ट होने दिये, ढग से ही राजा की मणि खोजवा दी।"

बुद्ध ने आकर पूछा—"भिक्षुओ! इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?" "यह बात-चीत" कहने पर, (बुद्ध ने) "भिक्षुओ! न केवल अब आनन्द ही ने दूसरो के हाथ पड़ी हुई चीज, निकलवाई, पूर्व समय में भी पण्डितों ने बिना लोगो को कष्ट दिये, ढग (=उपाय) से ही तिरश्चीनो के हाथ में पड़ी हुई चीज निकलवाई थी" कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्व सब शिल्पों (=शास्त्रो) में सम्पूर्णता प्राप्त कर, उसी (राजा) के अमात्य हुए। एक दिन राजा ने, अनेक अनुयाइयो के साथ, उद्यान में जा (वहां) जगल में घूम, जलक्रीड़ा करने की इच्छा से, मङ्गल-पुष्करिणी में उतर, अन्तःपुर की स्त्रियो को भी पुकारा। स्त्रियाँ, अपने अपने सिर के, तथा गले के गहनो को उतार (अपने अपने) ओढ़नो में डाल, (उन्हें) पेटियों पर रख, दासियो को सौंप, पुष्करिणी में उतरीं।

उस बाग़ में रहने वाली, शाखा पर बैठी हुई एक बन्दरी देवी को, जेवरों को उतार, चादर में डाल पेटी पर रखते देख, उसके मुक्ताहार को पहनने की इच्छा से बैठकर देखने लगी कि दासी कब गहनो की ओर से लापरवाह होती है। उनकी रखवाली करती हुई दासी इधर उधर देखती हुई, बैठी ही बैठी ऊँघने लगी। बन्दरी उसे लापरवाह देख हवा के वेग से उतर, महा

मुक्ताहार को (अपनी) गरदन में डाल, हवा की तेजी से उछल, एक शाखा पर जा, दूसरी बन्दरियों के देख लेने के डर से, उस (हार) को एक वृक्ष की खोल में छिपा, खुशी खुशी बैठ कर, उसकी रखवाली करने लगी।

उस दासी ने भी जाग कर, मुक्ताहार को न देख, काँपते हुए और कोई उपाय न देख जोर से चिल्लाना शुरू किया—"आदमी, देवी का मुक्ताहार ले कर भाग गया।"

पहरेदारों ने जहाँ तहाँ से इकट्ठे हो, उसकी बात सुन, राजा से निवेदन किया। राजा ने कहा—"चोर को पकड़ो।" आदमी बाग से निकल 'चोर को पकड़ो', 'चोर को पकड़ो' करके, इधर उधर देखने लगे।

एक उगाही करने वाले दिहाती आदमी ने, उस शब्द को सुना, तो वह काँपता हुआ भागा। उसे देख, राजकीय आदमियों ने 'यही चोर होगा' सोच, उसका पीछा कर, पकड़, (उसे) पीटा—"अरे! दुष्ट चोर! इस प्रकार का महा-मूल्यवान् गहना (=कण्ठा) लिये जाता है।"

उसने सोचा—"यदि मैंने कहा कि मेरे पास नहीं है, तो आज मेरी जान न बचेगी। (यह लोग) मुझे पीट पीट कर ही मार देंगे। इसे स्वीकार कर लूँ।" उसने कहा—"स्वामी! हाँ, मैंने लिया है।" उसे बाँध कर राजा के पास ले गये। राजा ने भी पूछा—"लिया है तू ने महा-मूल्यवान् कण्ठा?"

"देव! हाँ।"

"अब, वह कहाँ है?"

"देव! मैंने कभी पहले, कोई कीमती चीज (=धनन) भी नहीं देखा। सेठ ने मुझे (कह कर) मुझ से, महामूल्यवान् कण्ठे की चोरी करवाई है। सो, मैंने वह लेकर, उसे दे दिया। (अब) वह जानता है।"

राजा ने सेठ को बुलवा कर पूछा—"तूने इसके हाथ से महामूल्यवान् कण्ठा लिया है?"

"देव! हाँ।"

"वह कहाँ है?"

"मैं ने पुरोहित को दे दिया।"

पुरोहित को भी बुलवा कर, वैसे ही पूछा। उसने भी स्वीकार कर कहा—"मैंने गन्धर्व को दिया।" उसे भी बुलवा कर पूछा—"तू ने पुरोहित के हाथ

से महा-मूल्यवान् कण्ठा लिया?"

"देव! हाँ।"

"वह कहाँ है?"

"मैंने चित्त-विकृति के कारण वर्ण-दासी (=वेश्या) को दे दिया।" उसे भी बुलवा कर पूछा—उसने कहा—"नहीं लिया।" उन पाँच जनों को पूछते ही पूछते सूर्यास्त हो गया।

'अब विकाल हो गया, कल देखेंगे' (सोच) उन पाँचों जनों को अमात्यों को दे, राजा नगर को चला गया। बोधिसत्व ने सोचा—"यह कण्ठा अन्दर के आदमियों में खोया गया है, और यह गृहपति बाहर का आदमी है। द्वार पर कड़ा पहरा है, इस लिए अन्दर का आदमी भी उसे लेकर भाग नहीं सकता। इस लिए न तो बाहर के आदमी ने लिया है, न अन्दर (घर) के। मालूम होता है उद्यान में ही घूमने वाले किसी ने उड़ाया है। इस दरिद्र आदमी ने 'मैंने सेठ को दिया' अपने को बचाने के लिए कह दिया होगा, और सेठ ने भी 'मैंने पुरोहित को दिया,' इकट्ठे होकर मुक्त होंगे सोच, कह दिया होगा, और पुरोहित ने भी 'मैंने गवैय्ये (=गन्धर्व) को दिया' कारागार में गवैय्ये के कारण सुख से रहेंगे, सोच, कह दिया होगा, और गवैय्ये ने भी 'मैंने वेश्या को दिया' (कारागार में) अनुत्कण्ठित रहेंगे, सोच, कह दिया होगा। यह पाँचों के पाँचों चोर नहीं होंगे। उद्यान में बन्दर बहुत हैं। कण्ठा, एक न एक बन्दरी के हाथ लगा होगा।"

उसने राजा के पास जा कर कहा—"महाराज! चोरों को मेरे जिम्मे करें। मैं चोरी का पता लगाऊँगा" राजा ने 'अच्छा! पण्डित! पता लगा' (कह) उसको चोर सौंपे।

बोधिसत्व ने अपने नौकरों (=दासों) को बुलवा कर आज्ञा दी कि उन पाँचों आदमियों को एक जगह रख, उनके चारों ओर पहरा लगा, जो वह एक दूसरे को कहें, (उसे) कान देकर, (सुन) मेरे पास आकर कहें। यह कह बोधिसत्व चले गये। उन आदमियों ने वैसा ही किया।

तब, उन मनुष्यों के इकट्ठे होकर बैठने के समय, सेठ ने उस गृहपति से पूछा—"अरे दुष्ट गृहपति! तू ने मुझे, या मैंने तुझे इस से पहले कहाँ देखा है, तू ने मुझे कण्ठा कब दिया?" "स्वामी! मैं महा-मूल्यवान् वृक्ष के पाँवों से

मिजे (=पलंग) तक को नहीं जानता। भाप के कारण मैं छूट जाऊँगा। (सोच) मैंने ऐसा कहा। स्वामी! क्रोध न करें।" पुरोहित ने भी सेठ से पूछा—सेठ जो तुझे इसने नहीं दिया, वह तूने मुझे कैसे दिया?

"हम दोनों बड़े आदमी हैं; हम दोनों के इकट्ठे होने से काम जल्दी होगा, सोच कहा।" गवैय्ये ने भी पुरोहित से पूछा—ब्राह्मण! तूने मुझे कण्ठा कब दिया?

"मैं, तेरे कारण, रहने की जगह सुख से रहूँगा, सोच, कह दिया।"

वर्ण-दासी (=वेश्या) ने भी गन्धर्व (=गवैय्ये) से पूछा—"अरे! दुष्ट गन्धर्व! मैं कब तेरे पास गई, या कब तू मेरे पास आया? तूने मुझे कण्ठा कब दिया?" "भगिनि! क्रुद्ध क्यों होती है? 'हमारे पाँचों के इकट्ठे रहने से गृहस्थी हो जायगी, अनुत्कण्ठित हो, सुख से रहेंगे' सोच, कह दिया।"

बोधिसत्व ने अपने नियोजित आदमियों से यह बात चीत सुन, वह आदमी चोर नहीं है, यह निश्चय पूर्वक जान 'बन्दरी का लिया हुआ कण्ठा उस से ढंग से गिरवाऊँगा' सोच, लाल रंग की ऊन की बहुत सी कण्ठियाँ बनवा, उद्यान की बन्दरियों को पकड़वा, ये कण्ठियाँ, उनके हाथ, पैर गरदन आदि में पहनवा, उन्हें छोड़ दिया। वह बन्दरी कण्ठे की रखवाली करती हुई, उद्यान में ही बैठी रही।

बोधिसत्व ने आदमियों को आज्ञा दी—"तुम बाग़ में जाकर, सब बन्दरियों की परीक्षा करो। जिस के पास वह कण्ठा देखो, उसे त्रास दिखा कर, उस से वह कण्ठा ले लो।" उन बन्दरियों ने भी, 'हमें कंठियाँ मिलीं' सोच प्रसन्न हो, उद्यान में घूमते घूमते उस बन्दरी के पास जाकर कहा—'देखो! हमारे जेवर।" वह ईर्षा को सहन न कर सकने के कारण 'इस लाल रंग के धागे के जेवरों से क्या?' कह, (अपना) मुक्ताहार पहन कर निकली।

उन आदमियों ने उसे देख, उस से कण्ठा छुड़वा, बोधिसत्व को लाकर दिया। उसने राजा के पास ले जाकर, दिखा कर कहा—'देव! यह है तुम्हारा कण्ठा। वह पाँचों आदमी निर्दोष हैं। इसे, उद्यान की बन्दरी ने लिया था।"

"लेकिन, हे पण्डित! तूने कैसे जाना कि यह बन्दरी के हाथ लग गया, (और फिर) कैसे तू ने लिया?"

उसने सब कह सुनाया।

राजा ने सन्तुष्ट चित्त हो, 'सग्राम-भूमि आदि में शूर वीरों आदि की आवश्यकता पडती है' कहते हुए, बोधिसत्व की प्रशसा स्वरूप यह गाथा कही—

उक्कट्ठे सूरमिच्छन्ति मन्तीसु अकुतूहलं,
पियञ्च अन्नपानम्हि अत्थे जाते च पण्डितं ॥

[सग्राम में शूर (आदमी) मिले, ऐसी इच्छा होती है, सलाह करने में अकुतूहल (=जो बात प्रगट न करे, ऐसा) आदमी मिले, ऐसी इच्छा होती है, खाने पीने की सामग्री रहने पर, प्रिय (=सम्बन्धी) आदमी मिले, ऐसी इच्छा होती है, और कोई समस्या आ पड़ने पर, पण्डित (=बुद्धिमान्) आदमी मिले, ऐसी इच्छा होती है।]

उक्कट्ठे, काम आ पडने पर (=उपकट्ठे) दोनो ओर से कट्ठ होने पर, सग्राम मे, सम्प्रहार होते रहने पर। सूरमिच्छन्ति, माथे पर बिजली गिर पड़ने पर भी न भागने वाले शूर की इच्छा करते हैं, उस समय इस प्रकार के सग्राम योधा की आवश्यकता पडती है। मन्तीसु अकुतूहलं, कर्तव्याकर्तव्य के आ पड़ने पर, मन्त्रियो में जो अकुतूहल=मुंह न खोलने वाला=बात न प्रगट कर देने वाला हो, उसकी इच्छा करते हैं, वैसे की उस समय पर आवश्यकता पड़ती है। पियञ्च अन्नपानम्हि, मधुर खाने पीने की चीज पास होने पर, साथ खाने के लिए प्रिय आदमी की इच्छा करते हैं, वैसे की उस समय आवश्यकता पड़ती है। अत्थे जाते च पण्डितं, गम्भीर अर्थ गम्भीर धर्म (=समस्या) किसी भी बात वा प्रश्न के उत्पन्न होने पर पण्डित, विचक्षण (=बुद्धिमान्) आदमी की इच्छा करते हैं, वैसे समय पर उसी की आवश्यकता पड़ती है।

इस प्रकार राजा, बोधिसत्व की प्रशंसा कर, स्तुति कर, जोर की वर्षा बरसाने वाले बादल की तरह, सात (प्रकार के) रत्नो से पूजा कर, उसके उपदेशानुसार आचरण कर, दान आदि पुण्य कर्म करके, कर्मानुसार (परलोक) गया।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी, में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्व (एक) महाधनवान् सेठ हुए। उनका एक ग्वाला (=गोपालक) धनी खेती के दिनों में गौमों को ले, भरण्य में जा, वहाँ मचान (=गोपल्लिक) बनाकर, गौमों की रखवाली करता हुमा रहने लगा। समय समय पर, वह सेठ के लिए गोरस(=दूध-घी)लाया करता था। उसके मचान से थोड़ी ही दूर पर एक सिंह भाकर रहा करता था। सिंह के त्रास से कुम्हलाने (=डरने) के कारण, गौमों का दूध कम हो गया। उसके एक दिन घी लेकर माने पर, सेठ ने पूछा—"क्यों सौम्य! गोपालक! घी कम (क्यों) है? उसने कारण कहा। "सौम्य! क्या कोई ऐसा है, जिसपर वह सिंह भासक्त हो?"

"स्वामी! हाँ! उसका एक हरिणी (=मृगमाता) के साथ संसर्ग है।"

"क्या उसे पकड़ा जा सकता है?"

"हाँ! स्वामी! (पकड़ा) जा सकता है।" "तो उसे पकड़ कर उसके सिर से पैरों तक के बालों को ज़हर से मास (=रंग) कर, उन्हें सुखा कर, दो तीन दिन गुज़ार कर, उस हरिणी को छोड़ देना। वह (सिंह) स्नेह के मारे उसके शरीर को चाटने से मर जायगा। तब उसका चमड़ा नाखून, दाढ़ें भौर चर्बी, यहाँ लेकर माना।" यह कह, उसे हलाहल विष देकर भेजा। उस ग्वाले ने जाल फेंक कर, ढग से उस हरिणी को पकड़ कर, वैसा ही किया। सिंह, उसे देखते ही मत्यन्त स्नेह से उसके शरीर को चाट कर मर गया। ग्वाला भी चर्म मादि ले कर, बोधिसत्व के पास पहुँचा। बोधिसत्व ने उस वृत्तान्त को जान (कहा) दूसरो से स्नेह नहीं करना चाहिए। इस प्रकार का बलवान् सिंह मृगराज भी विकार-युक्त चित्त से संसर्ग करने के लिए मृगमाता का शरीर चाटते हुए विष चाट कर मर गया। यह कह, उपस्थित परिषद को धर्मोपदेश देते हुए यह गाथा कही—

> न विस्ससे अविस्सत्थे विस्सत्थेपि न विस्ससे,
> विस्सासा भयमन्वेति सीहंव मिगमातुका ॥

[अविश्वास करने योग्य में विश्वास न करे। विश्वास करने योग्य में

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी, में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्व (एक) महाधनवान् सेठ हुए। उनका एक ग्वाला (=गोपालक) धनी खेती के दिनों में गौओं को ले, अरण्य में जा, वहाँ मचान (=गोपल्लिक) बनाकर, गौओं की रखवाली करता हुआ रहने लगा। समय समय पर, वह सेठ के लिए गोरस (=दूध-घी) लाया करता था। उसके मचान से थोड़ी ही दूर पर एक सिंह आकर रहा करता था। सिंह के त्रास से कुम्हलाने (=डरने) के कारण, गौओं का दूध कम हो गया। उसके एक दिन घी लेकर आने पर, सेठ ने पूछा—"क्यों सौम्य! गोपालक! घी कम (क्यों) है? उसने कारण कहा। "सौम्य! क्या कोई ऐसा है, जिसपर वह सिंह आसक्त हो?"

"स्वामी! हाँ! उसका एक हरिणी (=मृगमाता) के साथ संसर्ग है।"

"क्या उसे पकड़ा जा सकता है?"

"हाँ! स्वामी! (पकड़ा) जा सकता है।" "तो उसे पकड़ कर उसके सिर से पैरों तक के बालों को ज़हर से मास (=रंग) कर, उन्हें सुखा कर, दो तीन दिन गुज़ार कर, उस हरिणी को छोड़ देना। वह (सिंह) स्नेह के मारे उसके शरीर को चाटने से मर जायगा। तब उसका चमड़ा नाखून, दाढ़ें और चर्बी, यहाँ लेकर आना।" यह कह, उसे हलाहल विष देकर भेजा। उस ग्वाले ने जाल फेंक कर, ढंग से उस हरिणी को पकड़ कर, वैसा ही किया। सिंह, उसे देखते ही अत्यन्त स्नेह से उसके शरीर को चाट कर मर गया। ग्वाला भी चर्म आदि ले कर, बोधिसत्व के पास पहुँचा। बोधिसत्व ने उस वृत्तान्त को जान (कहा) दूसरों से स्नेह नहीं करना चाहिए। इस प्रकार का बलवान् सिंह मृगराज भी विकार-युक्त चित्त से संसर्ग करने के लिए मृगमाता का शरीर चाटते हुए विष चाट कर मर गया। यह कह, उपस्थित परिषद को धर्मोपदेश देते हुए यह गाथा कही—

> न विस्ससे अविस्सत्थे विस्सत्थेपि न विस्ससे,
> विस्सासा भयमन्वेति सीहंव मिगमातुका॥

[अविश्वास करने योग्य में विश्वास न करे। विश्वास करने योग्य में

[... क]भी विश्वास न करे। विश्वास करने से भय उत्पन्न होता है जैसे मृगमाता [स]े सिंह को हुआ।]

जो पहले मित्र रहा हो लेकिन अब अविश्वसनीय हो उस अविस्सत्थे (=अविश्वसनीय में); और जिस से पहले भी भय नहीं रहा तथा जो अब [भ]ी विश्वसनीय है उसका भी विश्वास न करे। किस कारण से? [व]िस्सासा भयमन्वेति; मित्र तथा अमित्र किसी में भी विश्वास किया जाए, उस से भय ही पैदा होता है। कैसे? सीहंव मिगमातुका जैसे मित्रता के कारण मृग-माता का विश्वास करने से सिंह को भय ही उत्पन्न हुआ; अथवा विश्वास के कारण मृग-माता सिंह के पास गई।

इस प्रकार बोधिसत्व उपस्थित परिषद को धर्मोपदेश दे दानादि पुण्य कर कर्मानुसार परलोक सिधारे।

शास्ता ने यह धर्मदेशना सुना जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय महासेठ मैं ही था।

९४. लोमहंस जातक

सो तत्तो सो सीनो[1] [illegible] ने वैशाली के समीप पाटि-काराम [illegible] सुनक्षत्र के [illegible]

---

[1] [illegible]

क. वर्तमान कथा

एक समय सुनक्षत्र (नामक) भिक्षु शास्ता का उपस्थायक बन पात्र चीवर ले (शास्ता के साथ साथ) घूमता हुआ कोर क्षत्रिय के धर्म को पसन्द कर बुद्ध का पात्र चीवर (उन्हें) सौंप कोर क्षत्रिय के पास रहने लगा। फिर उसके कालकञ्जक असुर-योनि में पैदा होने के समय सुनक्षत्र गृहस्थ होकर वैशाली की तीनों प्राकारों के अन्दर घूमता हुआ शास्ता की यह कह कर निन्दा करता था कि श्रमण गौतम के पास मनुष्योत्तर कोई बात नहीं, विशेष आर्य-ज्ञान नहीं; श्रमण गौतम तर्क सिद्ध धर्मोपदेश करता है, विचार-सिद्ध तथा आत्मानुभव के आधार पर किन्तु जिन दुक्खो के क्षय करने के उद्देश से धर्मोपदेश दिया जाता है, धर्मानुसार चलने वाले को वह उन दुक्खों के एकान्त क्षय के उद्देश्य तक ले जाता है।

आयुष्मान् सारिपुत्र ने भिक्षा के लिए घूमते समय उसे उस प्रकार निन्दा करते हुए सुन भिक्षाटन से लौट कर भगवान् से निवेदन किया। भगवान् ने कहा—"सारिपुत्र! क्रोधी मूर्ख सुनक्षत्र ने क्रोध के मारे ऐसा कहा है। क्रोध के वशीभूत हो कर वह 'धर्मानुसार चलने वाले को दुक्ख क्षय तक ले जाता है' कहते हुए भी वह अनजाने में मेरी प्रशंसा ही करता है। वह मूर्ख मेरे गुणों को नहीं जानता। सारिपुत्र! मुझे छः अभिज्ञा प्राप्त हैं। यह भी मनुष्योत्तर धर्म है—दस बल है। चार वैशारद्य-ज्ञान हैं। चार प्रकार का योनि-परिच्छेदक ज्ञान है। पाँच प्रकार का गति-परिच्छेदक ज्ञान है। यह भी मेरा मनुष्योत्तर धर्म है। इस प्रकार मनुष्योत्तर-धर्मों से युक्त मुझे यदि कोई यू कहे कि श्रमण गौतम मनुष्योत्तर-धर्म प्राप्त नहीं हैं, तो वह यदि उस कथन को न छोड़ दे, उस विचार को न छोड़ दे, उस मत को न छोड़ दे, तो वह ऐसा ही होगा जैसे नरक में उठा लाकर डाल दिया हो। इस प्रकार अपने में विद्यमान मनुष्योत्तर-धर्म की प्रशंसा करते हुए कहा—"सारिपुत्र! सुनक्षत्र कोर क्षत्रिय की दुष्कर क्रिया तथा मिथ्या-तप से प्रसन्न हो उसकी ओर आकृष्ट हुआ है। मिथ्या-तप से प्रसन्न होने वाले को, मिथ्या तप से आकृष्ट होने वाले को भी मेरी ही ओर आकृष्ट होना चाहिए। क्योंकि अब से इकानवे कल्प पहले 'इसमें कुछ सार है या नहीं?" देखने की इच्छा से मैंने बाहरी

तपस्याओं की परीक्षा करते हुए, चारों अङ्गों से युक्त ब्रह्मचर्य-वास किया। उस समय मैं तपस्वियों में परम तपस्वी, रूखा जीवन व्यतीत करने वालों में परम् रूखा जीवन व्यतीत करने वाला, जुगुप्सा करने वालों में परम् घृणावान् तथा एकान्त-वासियों में परम् एकान्त-सेवी था।[1] सारिपुत्र स्थविर के प्रार्थना करने पर बुद्ध ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

'इकानवें कल्प पूर्व बोधिसत्व 'बाहरी तप की परीक्षा करूँगा' सोच आजीविकों की प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित होकर निर्वस्त्र रहा, धूल लपेटे रहा। एकान्त-प्रिय रहा, एकान्त-वासी—आदमियों को देख कर मृग की तरह भाग जाता। महाविकट भोजन खाने वाला हुआ। बछड़े का गोबर आदि खाता। अप्रमाद-युक्त विहार करने के लिए जंगल में, एक भयानक वन-खंड में रहा। वहाँ रहते हुए, हिम गिरने के समय बीच के आठ दिनों में रात को वन-खंड से निकल खुले आकाश के नीचे विचर सूर्य के उदय होने पर वन-खंड में प्रवेश करता था। जिस प्रकार रात को खुले आकाश के नीचे ओस से भीगता था, उसी प्रकार दिन में वन-खंड से पिघल कर गिरती हुई बून्दों से भीगता था। इस प्रकार रात दिन सर्दी का दुःख सहता। लेकिन गर्मी के अन्तिम महीने में दिन में खुले में घूमकर रात को वन-खंड में दाखिल होता। जिस प्रकार दिन में खुले में धूप में जलता, उसी तरह रात को वायु रहित वन-खंड में जलता। शरीर से पसीने की धार बहती। तब यह अश्रुत-पूर्व गाथा सूझी—

सोतत्तो सोसीनो एको भिंसनके वने।
नग्गो न चग्गिमासीनो एसनापसुतो मुनि॥

[वह तपता था। वह अत्यन्त भीगा था। वह भयानक वन में रहता था। वह नग्न रहता था (और) वह आग के पास नहीं बैठता था। इस प्रकार मुनि (सत्य की) खोज में लगा हुआ था]

---

[1] महासिंहनाद सुत्त (मज्झिम निकाय)

सोतत्तो, सूर्य्य ताप से सुतप्त। सोसीनो, ओस के पानी से भीगा, अच्छी प्रकार भीगा हुआ। एको भिंसनके वने, जहाँ प्रवेश करने पर प्रायः लोगों के रोम खड़े हो जाते हैं, इस प्रकार के भयानक वन में अकेला अद्वितीय ही प्रविष्ट हुआ। नग्गो नचग्गिमासीनो, उस प्रकार शीत से पीड़ित होते हुए भी न ओढ़ने बिछाने का वस्त्र लिया और न आग के ही पास बैठा। एसनापसुतो, उस अब्रह्मचर्य्य को भी ब्रह्मचर्य्य मान यही श्रेष्ठ-जीवन है, यही खोज है, यही गवेषणा है, यही ब्रह्मलोक का मार्ग है—इस प्रकार ब्रह्मचर्य्य की खोज में लगा था। मुनि, यह मुनि मौन का प्रयत्न कर रहा है, इस लिए लोगों द्वारा आदृत हुआ।

इस प्रकार चार अंगों से युक्त ब्रह्मचर्य्य का आचरण करके बोधिसत्व मरने के समय नरक का दृश्य दिखाई देने पर 'यह व्रत धारण निरर्थक है' जान उसी क्षण उस व्रत को छोड़ सम्यक् दृष्टि ग्रहण कर देव-लोक में उत्पन्न हुआ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का सारांश निकाल दिया। मैं ही उस समय में वह आजीवक था।

९५. महासुदस्सन जातक

"अनिच्चा वत सङ्खारा ..." यह (गाथा) शास्ता ने परिनिर्वाण शय्या पर लेटे समय आनन्द स्थविर के "भन्ते! भगवान् इस छोटे से नगर में परिनिर्वाण को प्राप्त न हों" इत्यादि वचनों के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

तथागत के जेतवन में विहार करने के समय सारिपुत्र स्थविर कार्तिक मास की पूर्णिमा के दिन नालक ग्राम में उत्पन्न होने के कोठे में ही परिनिर्वाण

को प्राप्त हुए। महामौद्गल्यायन भी कार्तिक महीने में ही कृष्ण पक्ष की अमावस्या को। इस प्रकार दोनों प्रधान शिष्यों के परिनिर्वाण प्राप्त होने पर 'मैं भी कुसीनगर में परिनिर्वाण प्राप्त होऊँगा' (सोच) भगवान् क्रम से चारिका करते हुए वहाँ (कुसीनगर) पहुँच जोड़े साल वृक्षों के बीच उत्तर सिरा की ओर बिछी शय्या पर फिर न उठने का संकल्प करके लेटे।

आयुष्मान आनन्द स्थविर ने कहा—'भन्ते! भगवान् इस क्षुद्र नगर में, इस विषम नगर में, इस जंगली नगर में, इस शाखा नगर में निर्वाण को प्राप्त न होवें। भगवान् दूसरे चम्पा राजगृह[1] आदि बड़े नगरों में से किसी एक नगर में परिनिर्वाण प्राप्त करें।"

भगवान् बोले—"आनन्द! इसे क्षुद्र नगर, जंगली नगर, शाखा नगर मत कहो। मैं पहले सुदर्शन चक्रवर्ती राजा होने के समय इसी नगर में रहा हूँ। उस समय यह बारह योजन की रत्नों से सुरक्षित चार दीवारों से घिरा हुआ महानगर था।" यह कह स्थविर के याचना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कहते हुए महासुदर्शन[2] सूत्र कहा।

ख. अतीत कथा

उस समय महासुदस्सन नाम का राजा सुधर्म प्रासाद से उतर कर नजदीक ही सात रत्नों से युक्त ताड़वन में बिछी योग्य शय्या पर दाहिनी करवट से लेटा था। उसे फिर न उठने के संकल्प से लेटा देख सुभद्रा देवी ने कहा—"देव! यह तेरे चौरासी हजार नगर हैं, जिन में कुसावती राजधानी प्रमुख है। इन को प्रेम करो।" महासुदर्शन ने उत्तर दिया—"देवि! यह मत कहो! मुझे ऐसा उपदेश दो कि इन में प्रेम मत करो, इनकी अपेक्षा मत करो।" देवी ने पूछा "क्यों?" "आज मेरा मृत्यु-दिन है।"

वह देवी रोती हुई, आँखें पोंछती हुई बड़ी कठिनाई से वैसे कह कर

---

[1] चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी, वाराणसी। (महा परि-निर्वाण सुत्त दीर्घनिकाय)।

[2] महासुदस्सन सुत्त। दीघ निकाय १७

रोने पीटने लगी। बाकी चौरासी हजार स्त्रियाँ भी रोने पीटने लगीं। अमात्य आदि में कोई एक भी न सहन कर सका। सभी रोने लगे।

बोधिसत्त्व ने रोका—"भणे! शब्द मत करो।" फिर देवी को सम्बोधन कर कहा—"देवी! तू मत रो। देवी! तू मत पीट। तिल के फल जितना भी संस्कार नित्य नहीं है। सभी संस्कार अनित्य हैं। सभी संस्कार नाश होने वाले हैं।" इस प्रकार देवी को उपदेश देते हुए यह गाथा कही—

अनिच्चा वत सङ्खारा उप्पादवयधम्मिनो,
उप्पज्जित्वा निरुज्झन्ति तेसं वूपसमो सुखो॥

[संस्कार अनित्य हैं। उत्पन्न होना, निरोध होना उनका धर्म है। वे उत्पन्न हो कर निरोध को प्राप्त होते हैं। उनका उपशमन सुख है।]

अनिच्चा वत सङ्खारा, भद्रे! सुभद्रा देवी! जितने भी किन्हीं भी प्रत्ययों से बने हुए स्कन्ध आयतन आदि संस्कार हैं, वे सब अनित्य ही हैं। इन में रूप अनित्य है, (चक्षु-) विज्ञान अनित्य है, चक्षु अनित्य है, सब (धर्म =अस्तित्व) अनित्य हैं। जितने भी सविज्ञाण, अविज्ञाण रत्न हैं, वह सब अनित्य हैं। इस लिए 'सभी संस्कार अनित्य हैं', यही ग्रहण कर। क्यों उप्पाद वय धम्मिनो, सभी उत्पन्न होने वाले हैं, सभी व्यय (खर्च) होने वाले हैं, सभी बनने वाले हैं, सभी बिगड़ने वाले हैं, इस लिए (वे) अनित्य हैं, यही जानना चाहिए। क्योंकि अनित्य है इसलिए 'उप्पज्जित्वा निरुज्झन्ति' उत्पन्न होकर, स्थिति को प्राप्त होकर भी निरोध को प्राप्त होते हैं। यह सभी बनने पर उत्पन्न हुए कहलाते हैं, टूटने पर निरुद्ध हुए कहलाते हैं। उनके उत्पन्न होने पर 'स्थिति' होती है, 'स्थिति' होने पर 'भङ्ग' होता है, जो उत्पन्न न हो उसकी 'स्थिति' नहीं, जिसकी 'स्थिति' है उसका भग न हो ऐसा नहीं। इस प्रकार सभी संस्कार तीन लक्षणों वाले (उत्पत्ति, स्थिति, भङ्ग) होकर निरोध को प्राप्त होते हैं। इसलिए यह सभी अनित्य हैं, क्षणिक हैं, परिवर्तनशील हैं, अध्रुव हैं, भङ्ग होने वाले हैं, अस्थिर हैं, कम्पनशील हैं . कुछ देर के लिए हैं, निस्सार हैं, 'कुछ ही देर के लिए' इस अर्थ में माया के समान हैं, मरीचि के समान हैं, फेन के समान है। भद्रे! सुभद्रा देवी! इनको तू क्यों 'सुख' समझती है। इस

प्रकार भीत कि तेलं मूपतमो सुखो, सब संसार चक्र का उपशमन होने से सब के उपशमन का अर्थ है निर्वाण। यही असल में केवल एक सुख है। और सुख नहीं।

सो महासुदर्शन अमृत-महा-निर्वाण सम्बन्धी उत्कृष्ट देशना कर बाकी जन-समूह को भी 'दान दो सदाचारी बनो, उपोसथ (=व्रत) करो' उपदेश दे देवलोक को गया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का सारांश निकाल दिया।

उस समय की सुभद्रादेवी अब राहुलमाता हुई। प्रधान अमात्य राहुल था। शेष परिषद बुद्ध-परिषद। लेकिन महासुदस्सन मैं ही था।

९६. तेलपत्त जातक

"समतित्तिकं अनवसेसकं . . ." यह (गाथा) शास्ता ने सुम्भ राष्ट्र में सेतक नामक निगम के पास एक वन-खण्ड में विचरते हुए जनपदकल्याणी सूत्र के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस सूत्र में भगवान् ने 'भिक्षुओ! जैसे जनपद-कल्याणि, जनपद-कल्याणि नाम सुनकर जन-समूह इकट्ठा हो। वह जनपदकल्याणि नाचने गाने में बहुत दक्ष हो। 'जनपद कल्याणि नाचती है, जनपदकल्याणि गाती है' सुनकर और भी प्रसन्न होकर जन-समूह उमड़ आये। तब एक पुरुष आए, जो जीना चाहता हो, मरना न चाहता हो, सुख चाहता हो, दुःख न चाहता हो। उस आदमी को ऐसे कहें—हे पुरुष! यह तेल का लबालब भरा हुआ पात्र है। इस जनसमूह और जनपदकल्याणि के बीच से होकर ले चलो। तुम्हारे पीछे पीछे एक आदमी तलवार उठाए चलेगा। जहाँ जरा

सा भी तेल गिरेगा, वहीं तेरा सिर काट डालेंगे।' 'तो भिक्षुओ! क्या समझते हो, वह आदमी उस तेल के पात्र को, लापरवाही से, प्रमाद-पूर्वक ले चलेगा?'

'नहीं भन्ते!'

'भिक्षुओ! यह मैंने अर्थ समझाने के लिए उपमा दी है। भावार्थ यह है। तेल से लबालब भरा हुआ पात्र, भिक्षुओ, कायानुस्मृति का दूसरा नाम है। इस लिए भिक्षुओ! यही सीखना चाहिए कि हमारी कायानुस्मृति की भावना अच्छी प्रकार बढ़ेगी।' इस प्रकार शास्ता ने 'जनपदकल्याणि सुत्त'[*] की उसके शब्दों तथा अर्थों के साथ व्याख्या की।

जनपदकल्याणि का मतलब है जनपद भर में कल्याणि=उत्तम—छः शरीर-दोषों से मुक्त और पाँच उत्तम-बातों से युक्त। वह न अधिक लम्बी, न अधिक छोटी, न अधिक पतली न अधिक मोटी, न अधिक काली, न अत्यधिक सफेद—मानुषी वर्णों से बढ़ कर लेकिन दैवी वर्ण तक नहीं पहुँची हुई। इस लिए छः शरीर दोषों से मुक्त। उत्तम-चमड़ी, उत्तम-मांस, उत्तम नसें, उत्तम हड्डियाँ तथा उत्तम-आयु (तरुण) इन पाँच उत्तम बातों से युक्त होने के कारण पाँच उत्तम बातों से युक्त कही गई। उसे बाहरी चमक की जरूरत न थी। अपने शरीर की चमक से ही बारह हाथ की जगह को प्रकाशित करती थी। वह प्रियंगु-रंग की या सोने के रंग की थी। यह उसकी चमड़ी की उत्तमता रही। उसके हाथ-पैर तथा मुँह लाख से सिंचित की तरह या लाल मूँगे या लाल कम्बल की तरह थे। यह उसके मांस की उत्तमता रही। बीसों नाखूनों तक पहुँची हुई, मांस के साथ जहाँ जहाँ लगी हुई वहाँ वहाँ लाख के रस से भरी हुई सी, जहाँ जहाँ मांस से मुक्त वहाँ वहाँ दूध की धार के समान उसकी नसें थीं। यह उस की नसों की उत्तमता रही। बत्तीस दाँत सिरजी स्वच्छ वज्र पंक्ति की तरह चमकते थे। यह उसकी हड्डियों की उत्तमता रही। बीस वर्ष की होने पर भी सोलह वर्ष की सी ही प्रतीत होती थी। यह उसकी आयु की उत्तमता रही। परमवासगतिनि—परम=उत्तम। पवर=इस। जिसका वास (=उत्तम) इस है सो परमवासगतिनि। सुन्,

---

[*] जनपदकल्याणि सुत्त (संयुत्त निकाय)

गीत में उत्तम ढंग अर्थात् उसका नाच, उसका गाना श्रेष्ठ ही था। अथ पुरिसो आगच्छेय्य—अपनी मरजी से नहीं आए। इस का मतलब है कि जनता के बीच में जनपदकल्याणि के नाचते हुए लोगों के 'साधु, साधु'[1] कह कर चिल्लाने, अंगुलियाँ चटखाने, चोलियाँ उछालने का समाचार सुनकर राजा ने जेलखाने से एक आदमी को मँगवाया। उसकी बेड़ियाँ कटवा, तेल से लबालब भरा पात्र उसके हाथ में दे, एक आदमी को जिसके हाथ में तलवार थी आज्ञा दी 'इसे जहाँ जनपदकल्याणि का नाच हो रहा है वहाँ ले जाओ। यदि ला परवाही के कारण यह एक बूंद तेल भी गिरा दे, तो वहीं इसका सिर काट दो।' वह आदमी तलवार उठाकर उसको धमकाता हुआ वहाँ ले गया। उसने मरने के भय से भयभीत हो जीवित रहने की इच्छा के कारण, असावधानी से उसे भूल, एक बार भी आँख खोल कर जनपदकल्याणि को नहीं देखा। इस प्रकार यह भूतपूर्व कथा है। सूत्र में तो यह संक्षेप में आई है। उपमा खो म्यायं, यहाँ तेलपात्र की कायानुस्मृति से उपमा दी ही गई है। इसमें राजा को धर्म की तरह समझना चाहिए। तलवार की तरह चित्त की कलुषता। तलवार उठाए आदमी की तरह मार। तेल पात्र हाथ में लिए हुए आदमी की तरह कायानुस्मृति की भावना करने वाला विदर्शना-भावना में रत योगाभ्यासी।

सो इस प्रकार यह सूत्र लाकर भगवान् ने कायानुस्मृति, की भावना करने वाले मनुष्य के लिए हाथ में तेलपात्र लिए रहने वाले आदमी की तरह सावधान रह कर कायानुस्मृति, की भावना करने की आवश्यकता बताई। भिक्षुओं ने इस सूत्र और उसके अर्थ को सुनकर यूं कहा—"भन्ते! उस आदमी ने बहुत बड़ी बात की जो बिना उस तरह की जनपदकल्याणि, को देखे तेलपात्र को लेकर चला गया।"

"भिक्षुओ, उस आदमी ने बहुत कठिन काम नहीं किया, यह तो आसान ही था। क्यों? क्योंकि उसे तलवार उठाए एक आदमी धमकाता हुआ ले

---

[1] वाह, वाह या हुर्रा हुर्रा की तरह प्रसन्नता सूचक घोष।

जा रहा था। लेकिन पूर्व समय में पण्डित लोगों ने अप्रमाद से स्मृति को न भूल कर, बनाए हुए दिव्यरूप को भी इन्द्रियों को चंचल करके बिना देखे जाकर राज्य प्राप्त किए। यह कठिन कार्य्य था" कह पूर्व समय की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्त्व उस राजा के सौ पुत्रों में सब से छोटे होकर पैदा हुए। क्रम से बढ़ते बढ़ते बालिग हो गए। उस समय राजा के घर में प्रत्येक-बुद्ध भोजन किया करते थे। बोधिसत्त्व उनकी सेवा में रहते। एक दिन बोधिसत्त्व ने सोचा—"मेरे भाई बहुत हैं। मुझे इस नगर में अपने कुल का राज्य मिलेगा या नहीं?" फिर उसे विचार हुआ कि यह बात प्रत्येक बुद्धों से पूछ कर जानूँगा।

दूसरे दिन प्रत्येक बुद्धों के आने पर उसने धर्म्मकरक[1] ले, पानी छान, पाँव धो, तेल लगा, उनके भोजन कर चुकने पर, प्रणाम कर एक ओर बैठ यह बात पूछी। उन्होंने कहा—"कुमार! तुझे इस नगर में राज्य नहीं मिलेगा। लेकिन यहाँ से एक सौ बीस योजन की दूरी पर गन्धार, राष्ट्र में तक्कसिला (=तक्षशिला) नाम का नगर है। वहाँ जा सकने पर आज से सातवें दिन राज्य प्राप्त करेगा। लेकिन रास्ते में बड़े भारी जंगल में से जाने में खतरा है। उस जंगल को छोड़ कर जाने से सौ योजन चलना होगा, सीधे (जंगल में से) जाने से पचास योजन। वह जंगल अमनुष्य-कान्तार है। उसमें रास्ते में यक्षिणियाँ ग्राम और शालायें बनाकर, ऊपर सुनहरे तारों से सजे हुए मँडुवे, उनके नीचे कीमती पलंग बिछवा, नाना प्रकार की रेशमी कनातें लगवा, अपने आप को दिव्य अलंकारों से सजाकर रहती हैं। जाते हुए आदमी को देखकर वह उसे मधुर वाणी से आमन्त्रित करती हैं "आप थके हुए मालूम देते हैं। यहाँ आकर, थोड़ा विश्राम करके, पानी पीकर जाएँ।" आदमी के आने पर, उसे आसन दे, अपने हास-विलास से मुग्धकर, अपने साथ रमण करने पर

---

[1] पानी छानने का बर्तन।

यहीं उसे खून निचुड़ते हुए खाकर मार डालती है। जिसका रूप के प्रति आकर्षण होता है, उसे रूप के द्वारा ग्रहण करती है। जिसका शब्द के प्रति आकर्षण होता है, उसे मधुर गाने बजाने के शब्द से, जिसका गन्ध के प्रति उसे दिव्य गन्धों से, जिसका रस के प्रति उसे नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजनों द्वारा और जिसका स्पर्श के प्रति आकर्षण होता है उसे दोनों ओर लाल रंग के तकियों वाले दिव्य-शयनासनों से ग्रहण करती है। यदि इन्द्रियों को बिना चंचल किए, उनकी ओर बिना ध्यान दिए, स्मृति को सावधान रख जाएगा, तो सातवें दिन राज्य लाभ करेगा।"

बोधिसत्व ने कहा—"भन्ते ! वे रहें ! अब मैं आपका उपदेश ग्रहण करके क्या उनकी ओर देखूँगा ?" फिर प्रत्येक-बुद्धों से परित्राण-धर्मदेशना[1], कहलवा परित्त की बालू, परित्त का पानी, तथा परित्त-सूत्र लेकर प्रत्येक-बुद्धों, तथा माता पिता को प्रणाम कर घर में आकर अपने आदमियों को कहा—"मैं तक्षशिला में राज्य पाने जा रहा हूँ। तुम यहीं रहो।"

उनमें आदमियों में से पाँच ने कहा—"हम भी जाएँगे।"

"तुम नहीं चल सकोगे। रास्ते में यक्षिणियाँ रूप आदि से आकर्षित होने वाले आदमियों को इस इस प्रकार रूपादि का लोभ दिखा पकड़ लेती हैं। बड़ा खतरा है। मैं तो अपने बल को देख कर जा रहा हूँ।"

"देव ! क्या तुम्हारे साथ जाते हुए हमें जो रूप अच्छे लगेंगे हम उधर देखेंगे। हम भी आप की तरह ही चलेंगे।"

"तो अप्रमादी होकर रहना" कह बोधिसत्व उन पाँच आदमियों को ले रास्ते पर चल पड़े।

यक्षिणियाँ ग्राम आदि बनाकर बैठी थीं। उनमें जो रूप के प्रति आकर्षित होने वाला आदमी था, वह उन यक्षिणियों को देख उनके रूप पर लुब्ध हो पीछे रहा।

बोधिसत्व ने पूछा—"भो ! क्यों ? पीछे रह क्यों रह रहे हो ?"

"देव ! मेरे पाँव दर्द करते हैं। थोड़ी देर मण्डप में बैठ कर आता हूँ।"

---

[1] कुछ विशेष सूत्रों का पाठ जो परित्राण में सहायक होता है।

जा रहा था। लेकिन पूर्व समय में पण्डित लोगों ने अप्रमाद से स्मृति को न भूल कर, बनाए हुए दिव्यरूप को भी इन्द्रियों को चंचल करके बिना देखे आकर राज्य प्राप्त किए। यह कठिन कार्य था" कह पूर्व समय की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व उस राजा के सौ पुत्रों में सब से छोटे होकर पैदा हुए। क्रम से बड़े बड़े बालिग हो गए। उस समय राजा के घर में प्रत्येक-बुद्ध भोजन किया करते थे। बोधिसत्व उनकी सेवा में रहते। एक दिन बोधिसत्व ने सोचा—"मेरे भाई बहुत हैं। मुझे इस नगर में अपने कुल का राज्य मिलेगा या नहीं?" फिर उसे विचार हुआ कि यह बात प्रत्येक बुद्धों से पूछ कर जानूँगा।

दूसरे दिन प्रत्येक बुद्धों के आने पर उसने धर्मकरक[1] से, पानी छान, पाँव धो, तेल लगा, उनके भोजन कर चुकने पर, प्रणाम कर एक ओर बैठ यह बात पूछी। उन्होंने कहा—"कुमार! तुझे इस नगर में राज्य नहीं मिलेगा। लेकिन यहाँ से एक सौ बीस योजन की दूरी पर गन्धार, राष्ट्र में तक्कसिला (—तक्षशिला) नाम का नगर है। वहाँ जा सकने पर आज से सातवें दिन राज्य प्राप्त करेगा। लेकिन रास्ते में एक भारी जंगल में से जाने में खतरा है। उस जंगल को छोड़ कर जाने से सौ योजन चलना होगा, सीधे (जंगल में से) जाने से पचास योजन। यह जंगल अमनुष्य-कान्तार है। उसमें रास्ते में यक्षिणियाँ ग्राम और शालाएं बनाकर, ऊपर सुनहरे तारों से सजे हुए मंडप, उनके नीचे कीमती पलंग बिछा, नाना प्रकार की रंगीन कनात लगा, अपने शरीर को दिव्य अलंकारों से सजाकर रहती हैं। जाते हुए आदमी को देखकर वे उसे मधुर वाणी से सम्बोधित करती हैं—'आप थके हुए मालूम देते हैं। यहाँ आकर, बैठ, विश्राम करके पानी पीकर जायें।' आदमी के आने पर, उसे आसन दे, अपने रूप-विलास से मुग्ध कर, अपने साथ रमण करा कर

[1] पानी छानने का बर्तन।

वहीं उसे खून निचुड़ते हुए खाकर मार डालती है। जिसका रूप के प्रति आकर्षण होता है, उसे रूप के द्वारा ग्रहण करती है। जिसका शब्द के प्रति आकर्षण होता है, उसे मधुर गाने बजाने के शब्द से, जिसका गन्ध के प्रति उसे दिव्य गन्धों से, जिसका रस के प्रति उसे नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजनों द्वारा और जिसका स्पर्श के प्रति आकर्षण होता है उसे दोनों ओर लाल रंग के तकियों वाले दिव्य-शयनासनों से ग्रहण करती है। यदि इन्द्रियों को बिना चंचल किए, उनकी ओर बिना ध्यान दिए, स्मृति को सावधान रख जाएगा, तो सातवें दिन राज्य लाभ करेगा।"

बोधिसत्व ने कहा—‘भन्ते ! वे रहें ! अब मैं आपका उपदेश ग्रहण करके क्या उनकी ओर देखूँगा ?" फिर प्रत्येक-बुद्धों से परित्राण-धर्मदेशना[1], कहलवा परित्त की बालू, परित्त का पानी, तथा परित्त-सूत्र लेकर प्रत्येक-बुद्धों, तथा माता पिता को प्रणाम कर घर में जाकर अपने आदमियों को कहा—‘मैं तक्षशिला में राज्य पाने जा रहा हूँ। तुम यहीं रहो।"

उसके आदमियों में से पाँच ने कहा—‘हम भी जाएँगे।"

‘तुम नहीं चल सकोगे। रास्ते में यक्षिणियाँ रूप आदि से आकर्षित होने वाले आदमियों को इस इस प्रकार रूपादि का लोभ दिखा फँसा लेती है। बड़ा खतरा है। मैं तो अपने बल को देख कर जा रहा हूँ।"

‘देव ! क्या तुम्हारे साथ जाते हुए हमें जो रूप अच्छे लगेंगे हम उधर देखेंगे। हम भी आप की तरह ही चलेंगे।"

‘तो अप्रमादी होकर रहना" यह बोधिसत्व उन पाँच आदमियों को ले रास्ते पर चल पड़े।

यक्षिणियाँ ग्राम आदि बनाकर बैठी थीं। उनमें जो रूप के प्रति आकर्षित होने वाला आदमी था, वह उन यक्षिणियों को देख उनके रूप पर मुग्ध हो थोड़ा रुका।

बोधिसत्व ने पूछा—‘भो ! क्यों ? थोड़ा रुक क्यों गए हो ?"

‘देव ! मेरे पाँव दर्द करते हैं। थोड़ी देर शाला में बैठ कर आता हूँ।"

---

[1] कुछ विशेष सूत्रों का पाठ, जो आपत्ति में रक्षक होता है।

जा रहा था। लेकिन पूर्व समय में पण्डित लोगों ने अप्रमाद से स्मृति को न भूल कर, बनाए हुए दिव्यरूप को भी इन्द्रियों को चचल करके बिना देखे आकर राज्य प्राप्त किए। यह कठिन कार्य्य था" कह पूर्व समय की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्त्व उस राजा के सौ पुत्रों में सब से छोटे होकर पैदा हुए। वह से बढ़ते बढ़ते बालिग हो गए। उस समय राजा के घर में प्रत्येक-बुद्ध भोजन किया करते थे। बोधिसत्त्व उनकी सेवा में रहते। एक दिन बोधिसत्त्व ने सोचा—"मेरे भाई बहुत हैं। मुझे इस नगर में अपने कुल का राज्य मिलेगा या नहीं?" फिर उसे विचार हुआ कि यह बात प्रत्येक बुद्धो से पूछ कर जानूँगा।

दूसरे दिन प्रत्येक बुद्धो के आने पर उसने धर्म्मकरक[1] ले, पानी छान, पाँव धो, तेल लगा, उनके भोजन कर चुकने पर, प्रणाम कर एक ओर बैठ वह बात पूछी। उन्होंने कहा—"कुमार! तुझे इस नगर में राज्य नहीं मिलेगा। लेकिन यहाँ से एक सौ बीस योजन की दूरी पर गन्धार, राष्ट्र में तक्कसिला (=तक्षशिला) नाम का नगर है। वहाँ जा सकने पर आज से सातवें दिन राज्य प्राप्त करेगा। लेकिन रास्ते में बड़े भारी जगल में से जाने में खतरा है। उस जगल को छोड़ कर जाने से सौ योजन चलना होगा, सीधे (जगल में से) जाने से पचास योजन। वह जंगल अमनुष्य-कान्तार है। उसमें रास्ते में यक्षिणियाँ ग्राम और शालायें बनाकर, ऊपर सुनहरे तारो से सजे हुए मँडुवे, उनके नीचे कीमती पलग बिछवा, नाना प्रकार की रेशमी कनातें लगवा, अपने आप को दिव्य अलकारो से सजाकर रहती हैं। जाते हुए आदमी को देखकर वह उसे मधुर वाणी से आमन्त्रित करती हैं "आप थके हुए मालूम देते हैं। यहाँ आकर, थोड़ा विश्राम करके, पानी पीकर जाएँ।" आदमी के आने पर, उसे आसन दे, अपने हास-विलास से मुग्धकर, अपने साथ रमण करने पर

[1] पानी छानने का बर्तन।

वहाँ उसे खून निचुड़ते हुए खाकर मार डालती हैं। जिसका रूप के प्रति आकर्षण होता है, उसे रूप के द्वारा ग्रहण करती हैं। जिसका शब्द के प्रति आकर्षण होता है, उसे मधुर गाने बजाने के शब्द से, जिसका गन्ध के प्रति उसे दिव्य गन्धों से, जिसका रस के प्रति उसे नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजनों द्वारा और जिसका स्पर्श के प्रति आकर्षण होता है उसे दोनों ओर लाल रंग के तकियों वाले दिव्य-शयनासनों से ग्रहण करती हैं। यदि इन्द्रियों को बिना चंचल किए, उनकी ओर बिना ध्यान दिए, स्मृति को सावधान रख जाएगा, तो सातवें दिन राज्य लाभ करेगा।"

बोधिसत्त्व ने कहा—"भन्ते ! वे रहें ! अब मैं आपका उपदेश ग्रहण करके क्या उनकी ओर देखूँगा ?" फिर प्रत्येक-बुद्धों से परित्राण-धर्मदेशना[1], कहलवा परित्त की बालू, परित्त का पानी, तथा परित्त-सूत्र लेकर प्रत्येक-बुद्धों, तथा माता पिता को प्रणाम कर घर में आकर अपने आदमियों को कहा—"मैं तक्षशिला में राज्य पाने जा रहा हूँ। तुम यहीं रहो।"

उसके आदमियों में से पाँच ने कहा—"हम भी जाएँगे।"

"तुम नहीं चल सकोगे। रास्ते में यक्षिणियाँ रूप आदि से आकर्षित होने वाले आदमियों को इस इस प्रकार रूपादि का लोभ दिखा फँसा लेती हैं। बड़ा खतरा है। मैं तो अपने बल को देख कर जा रहा हूँ।"

"देव ! क्या तुम्हारे साथ जाते हुए हम जो रूप अच्छे लगेंगे हम उधर देखेंगे। हम भी आप की तरह ही चलेंगे।"

"तो अप्रमादी होकर रहना" कह बोधिसत्त्व उन पाँच आदमियों को ले रास्ते पर चल पड़े।

यक्षिणियाँ ग्राम आदि बनाकर बैठी थीं। उनमें जो रूप के प्रति आकर्षित होने वाला आदमी था, वह उन यक्षिणियों को देख उनके रूप पर मुग्ध हो थोड़ा रुका।

बोधिसत्त्व ने पूछा—"भो ! क्यों ? थोड़ा रुक क्यों गए हो ?"

"देव ! मेरे पाँव दर्द करते हैं। थोड़ी देर शाला में बैठ कर आता हूँ।"

---

[1] बुद्ध विशेष सूत्रों का पाठ, जो आपत्ति में रक्षक होता है।

वहीं उसे खून निचुड़ते हुए खाकर मार डालती है। जिसका रूप के प्रति आकर्षण होता है, उसे रूप के द्वारा ग्रहण करती हैं। जिसका शब्द के प्रति आकर्षण होता है, उसे मधुर गाने बजाने के शब्द से, जिसका गन्ध के प्रति उसे दिव्य गन्धों से, जिसका रस के प्रति उसे नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजनों द्वारा और जिसका स्पर्श के प्रति आकर्षण होता है उसे दोनों ओर लाल रंग के तकियों वाले दिव्य-शयनासनों से ग्रहण करती है। यदि इन्द्रियों को बिना चंचल किए, उनकी ओर बिना ध्यान दिए, स्मृति को सावधान रख जाएगा, तो सातवें दिन राज्य लाभ करेगा।"

बोधिसत्त्व ने कहा—"भन्ते ! वे रहें ! अब मैं आपका उपदेश ग्रहण करके क्या उनकी ओर देखूंगा ?" फिर प्रत्येक-बुद्धों से परित्राण-धर्मदेशना[1], कहलवा परित्त की बालू, परित्त का पानी, तथा परित्त-सूत्र लेकर प्रत्येक-बुद्धों, तथा माता पिता को प्रणाम कर घर में जाकर अपने आदमियों को कहा—"मैं तक्षशिला में राज्य पाने जा रहा हूँ। तुम यहीं रहो।"

उसके आदमियों में से पांच ने कहा—"हम भी आएंगे।"

"तुम नहीं चल सकोगे। रास्ते में यक्षिणियां रूप आदि से आकर्षित होने वाले आदमियों को इस इस प्रकार रूपादि का लोभ दिखा फँसा लेती है। बड़ा खतरा है। मैं तो अपने बल को देख कर जा रहा हूँ।"

"देव ! क्या तुम्हारे साथ जाते हुए हमें जो रूप अच्छे लगेंगे हम उधर देखेंगे। हम भी आप की तरह ही चलेंगे।"

"तो अप्रमादी होकर रहना" कह बोधिसत्त्व उन पांच आदमियों को ले रास्ते पर चल पड़े।

यक्षिणियां ग्राम आदि बनाकर बैठी थी। उनमें जो रूप के प्रति आकर्षित होने वाला आदमी था, वह उन यक्षिणियों को देख उनके रूप पर मुग्ध हो थोड़ा रुका।

बोधिसत्त्व ने पूछा—"भो ! क्यों ? थोड़ा रुक क्यों गए हो ?"

"देव ! मेरे पांव दरद करते हैं। थोड़ी देर शाला में बैठ कर आता हूँ।"

---

[1]कुछ विशेष सूत्रों का पाठ, जो आपत्ति में रक्षक होता है।

जा रहा था। लेकिन पूर्व समय में पण्डित लोगों ने अप्रमाद से स्मृति को न भूल कर, बनाए हुए दिव्यरूप को भी इन्द्रियों को चचल करके बिना देखे आकर राज्य प्राप्त किए। यह कठिन कार्य था" कह पूर्व समय की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्त्व उस राजा के सौ पुत्रों में सब से छोटे होकर पैदा हुए। क्रम से बढ़ते बढ़ते बालिग हो गए। उस समय राजा के घर में प्रत्येक-बुद्ध भोजन किया करते थे। बोधिसत्त्व उनकी सेवा में रहते। एक दिन बोधिसत्त्व ने सोचा—"मेरे भाई बहुत हैं। मुझे इस नगर में अपने कुल का राज्य मिलेगा वा नहीं?" फिर उसे विचार हुआ कि यह बात प्रत्येक बुद्धों से पूछ कर जानूंगा।

दूसरे दिन प्रत्येक बुद्धों के आने पर उसने धर्मकरक[1] ले, पानी छान, पाँव धो, तेल लगा, उनके भोजन कर चुकने पर, प्रणाम कर एक ओर बैठ वह बात पूछी। उन्होंने कहा—"कुमार! तुझे इस नगर में राज्य नहीं मिलेगा। लेकिन यहाँ से एक सौ बीस योजन की दूरी पर गन्धार, राष्ट्र में तक्षशिला (=तक्षशिला) नाम का नगर है। वहाँ जा सकने पर आज से सातवें दिन राज्य प्राप्त करेगा। लेकिन रास्ते में बड़े भारी जगल में से जाने में खतरा है। उस जगल को छोड़ कर जाने से सौ योजन चलना होगा, सीधे (जगल में से) जाने से पचास योजन। यह जगल अमनुष्य-कान्तार है। उसमें रास्ते में यक्षिणियाँ ग्राम और शालायें बनाकर, ऊपर सुनहरे तारों से सजे हुए मँडुवे, उनके नीचे कीमती पलग बिछवा, नाना प्रकार की रेशमी कनातें लगवा, अपने आप को दिव्य अलकारों से सजाकर रहती हैं। जाते हुए आदमी को देखकर वह उन्हें मधुर वाणी से आमन्त्रित करती हैं "आप थके हुए मालूम देते हैं। यहाँ आकर, थोड़ा विश्राम करके, पानी पीकर जाएँ।" आदमी के आने पर, उसे आसन दे, अपने हाव-विलास से मुग्धकर, अपने साथ रमण करते पर

---

[1] पानी छानने का बर्तन।

यहीं उसे खून निचुड़ते हुए खाकर मार डालती है। जिसका रूप के प्रति आकर्षण होता है, उसे रूप के द्वारा ग्रहण करती है। जिसका शब्द के प्रति आकर्षण होता है, उसे मधुर गाने बजाने के शब्द से, जिसका गन्ध के प्रति उसे दिव्य गन्धों से, जिसका रस के प्रति उसे नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजनों द्वारा और जिसका स्पर्श के प्रति आकर्षण होता है उसे दोनों ओर लाल रंग के तकियों वाले दिव्य-शयनासनों से ग्रहण करती है। यदि इन्द्रियों को बिना चंचल किए, उनकी ओर बिना ध्यान दिए, स्मृति को सावधान रख जाएगा, तो सातवें दिन राज्य लाभ करेगा।"

बोधिसत्व ने कहा—'भन्ते ! दे रहें ! अब मैं आपका उपदेश ग्रहण करके क्या उनकी ओर देखूँगा ?' फिर प्रत्येक-बुद्धों से परित्राण-धर्मदेशना[1], कहलवा परित्त की बालू, परित्त का पानी, तथा परित्त-सूत्र लेकर प्रत्येक-बुद्धों, तथा माता पिता को प्रणाम कर घर में जाकर अपने आदमियों को कहा—'मैं तक्षशिला में राज्य पाने जा रहा हूँ। तुम यहीं रहो।"

उनके आदमियों में से पाँच ने कहा—"हम भी जाएँगे।"

'तुम नहीं चल सकोगे। रास्ते में यक्षिणियाँ रूप आदि से आकर्षित होने वाले आदमियों को इस इस प्रकार रूपादि का लोभ दिखा फँसा लेती है। बड़ा खतरा है। मैं तो अपने बल को देख कर जा रहा हूँ।"

'देव ! क्या तुम्हारे साथ जाते हुए हमें जो रूप अच्छे लगेंगे हम उधर देखेंगे। हम भी आप की तरह ही चलेंगे।"

'तो सावधान होकर रहना" कह बोधिसत्व उन पाँच आदमियों को ले रास्ते पर चल पड़े।

यक्षिणियाँ गाँव आदि बनाकर बैठी थीं। उनमें जो रूप के प्रति आकर्षित होने वाला आदमी था, वह उन यक्षिणियों को देख उनके रूप पर मुग्ध हो थोड़ा रुका।

बोधिसत्व ने पूछा—'भो ! क्यों ? थोड़ा रुक क्यों गए हो ?"

'देव ! मेरे पाँव दरद करते हैं। थोड़ी देर शाला में बैठ कर आता हूँ।"

---

[1] कुछ विशेष सूत्रों का पाठ, जो आपत्ति में रक्षक होता है।

वहीं उसे खून निचुड़ते हुए खाकर मार डालती है। जिसका रूप के प्रति आकर्षण होता है, उसे रूप के द्वारा ग्रहण करती है। जिसका शब्द के प्रति आकर्षण होता है, उसे मधुर गाने बजाने के शब्द से, जिसका गन्ध के प्रति उसे दिव्य गन्धों से, जिसका रस के प्रति उसे नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजनों द्वारा और जिसका स्पर्श के प्रति आकर्षण होता है उसे दोनों ओर लाल रंग के तकियों वाले दिव्य-शयनासनों से ग्रहण करती है। यदि इन्द्रियों को बिना चंचल किए, उनकी ओर बिना ध्यान दिए, स्मृति को सावधान रख जाएगा, तो सातवें दिन राज्य लाभ करेगा।"

बोधिसत्त्व ने कहा—"भन्ते ! वे रहें! अब मैं आपका उपदेश ग्रहण करके क्या उनकी ओर देखूंगा ?" फिर प्रत्येक-बुद्धों से परित्राण-धर्मदेशना[1], पहलवा परित्त की बालू, परित्त का पानी, तथा परित्त-सूत्र लेकर प्रत्येक-बुद्धों, तथा माता पिता को प्रणाम कर घर में आकर अपने आदमियों को कहा—"मैं तक्षशिला मे राज्य पाने जा रहा हूँ। तुम यहीं रहो।"

उसके आदमियों में से पाँच ने कहा—"हम भी जाएंगे।"

"तुम नहीं चल सकोगे। रास्ते में यक्षिणियाँ रूप आदि से आकर्षित होने वाले आदमियों को इन इस प्रकार रूपादि का लोभ दिखा फँसा लेती हैं। बड़ा खतरा है। मैं तो अपने बल को देख कर जा रहा हूँ।"

"देव ! क्या तुम्हारे साथ जाते हुए हमें जो रूप अच्छे लगेंगे हम उधर देखेंगे। हम भी आप की तरह ही चलेंगे।"

"तो अप्रमादी होकर रहना" यह बोधिसत्त्व उन पाँच आदमियों को ले रास्ते पर चल पड़े।

यक्षिणियाँ ग्राम आदि बनाकर बैठी थीं। उनमें जो रूप के प्रति आकर्षित होने वाला आदमी था, वह उन यक्षिणियों को देख उनके रूप पर मुग्ध हो थोड़ा रुका।

बोधिसत्त्व ने पूछा—"भो ! क्यों ? थोड़ा रुक क्यों गए हो ?"

"देव ! मेरे पाँव दरद करते हैं। थोड़ी देर शाला में बैठ कर आता हूँ।"

---

[1] कुछ विशेष सूत्रों का पाठ, जो आपत्ति में रक्षक होता है।

जा रहा था। लेकिन पूर्व समय में पण्डित लोगों ने अप्रमाद से स्मृति को न भूल कर, बनाए हुए दिव्यरूप को भी इन्द्रियों को चंचल करके बिना देखे श्रेष्ठ राज्य प्राप्त किए। यह कठिन कार्य था" कह पूर्व समय की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व उस राजा के सौ पुत्रों में सब से छोटे होकर पैदा हुए। क्रम से बढ़ते बढ़ते बालिग हो गए। उस समय राजा के घर में प्रत्येक-बुद्ध भोजन किया करते थे। बोधिसत्व उनकी सेवा में रहते। एक दिन बोधिसत्व ने सोचा—"मेरे भाई बहुत हैं। मुझे इस नगर में अपने कुल का राज्य मिलेगा या नहीं?" फिर उसे विचार हुआ कि यह बात प्रत्येक बुद्धों से पूछ कर जानूँगा।

दूसरे दिन प्रत्येक बुद्धों के आने पर उनके धर्मकरक[1] ले, पानी छान, पाँव धो, तेल लगा, उनके भोजन कर चुकने पर, प्रणाम कर एक ओर बैठ यह बात पूछी। उन्होंने कहा—"कुमार! तुझे इस नगर में राज्य नहीं मिलेगा। लेकिन यहाँ से एक सौ बीस योजन की दूरी पर गन्धार, राष्ट्र में तक्कसिला (= तक्षशिला) नाम का नगर है। वहाँ जा सकने पर आज से सातवें दिन राज्य प्राप्त करेगा। लेकिन रास्ते में बड़े भारी जंगल में से जाने में खतरा है। उस जंगल को छोड़ कर जाने से सौ योजन चलना होगा, सीधे (जंगल में से) जाने से पचास योजन। वह जंगल अमनुष्य-कान्तार है। उसमें रास्ते में यक्षिणियाँ ग्राम और शालाएँ बनाकर, ऊपर सुनहरे तारों से सजे हुए चंदवे, उसके नीचे बहुमूल्य पलंग बिछा, नाना प्रकार की रंगीन कनातें लगाकर, सारे शरीर को दिव्य अलंकारों से सजाकर रहती हैं। जाते हुए आदमी को देखकर वह उसे मधुर वाणी से आमन्त्रित करती हैं "आप थके हुए मालूम देते हैं। यहाँ आकर, जरा विश्राम करके पानी पीकर जायें।" आदमी के आने पर, उसे आसन दे, अपने रूप-विलास से लुभाकर, अपने वश में करके

---

[1] पानी छानने का बर्तन।

यही उसे खून निचुड़ते हुए खाकर मार डालती है। जिसका रूप के प्रति आकर्षण होता है, उसे रूप के द्वारा ग्रहण करती है। जिसका शब्द के प्रति आकर्षण होता है, उसे मधुर गाने बजाने के शब्द से, जिसका गन्ध के प्रति उसे दिव्य गन्धों से, जिसका रस के प्रति उसे नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजनों द्वारा और जिसका स्पर्श के प्रति आकर्षण होता है उसे दोनों ओर लाल रंग के तकियों वाले दिव्य-शयनासनों से ग्रहण करती है। यदि इन्द्रियों को बिना चंचल किए, उनकी ओर बिना ध्यान दिए, स्मृति को सावधान रख जाएगा, तो सातवें दिन राज्य लाभ करेगा।"

बोधिसत्व ने कहा—'भन्ते ! वे रहें ! अब मैं आपका उपदेश ग्रहण करके क्या उनकी ओर देखूँगा ?' फिर प्रत्येक-बुद्धों से परित्राण-धर्मदेशना[1], कहलवा परित्त की बालू, परित्त का पानी, तथा परित्त-सूत्र लेकर प्रत्येक-बुद्धों, तथा माता पिता को प्रणाम कर घर में जाकर अपने आदमियों को कहा—"मैं तक्षशिला में राज्य पाने जा रहा हूँ। तुम यहीं रहो।"

उनके आदमियों में से पाँच ने कहा—"हम भी जाएँगे।"

"तुम नहीं चल सकोगे। रास्ते में यक्षिणियाँ रूप आदि से आकर्षित होने वाले आदमियों को इस इस प्रकार रूपादि का लोभ दिखा फँसा लेती हैं। बड़ा खतरा है। मैं तो अपने बल को देख कर जा रहा हूँ।"

"देव ! क्या तुम्हारे साथ जाते हुए हमें जो रूप अच्छे लगेंगे हम उधर देखेंगे। हम भी आप की तरह ही चलेंगे।"

"तो अप्रमादी होकर रहना" कह बोधिसत्व उन पाँच आदमियों को ले रास्ते पर चल पड़े।

यक्षिणियाँ गाम आदि बनाकर बैठी थीं। उनमें जो रूप के प्रति आकर्षित होने वाला आदमी था, वह उन यक्षिणियों को देख उनके रूप पर मुग्ध हो थोड़ा रुका।

बोधिसत्व ने पूछा—"भो ! क्यों ? थोड़ा रुक क्यों गए हो ?"

"देव ! मेरे पाँव दर्द करते हैं। थोड़ी देर शाला में बैठ कर आता हूँ।"

---

[1]कुछ विशेष सूत्रों का पाठ, जो आपत्ति में रक्षक होता है।

"भो ! यह यक्षिणियाँ हैं। इनकी इच्छा मत करो।"

"जो होना है सो हो, देव ! मैं तो अब चल नहीं सकता हूँ।"

"अच्छा तो पता लगेगा" कह बोधिसत्व बाकी चारों को लेकर चल दिए।

रूप पर आकर्षित हुआ वह आदमी उनके पास गया। यक्षिणियों ने उसे अपने साथ रमण करने पर उसी तरह मार कर आगे जाकर दूसरी शाला बनाई।

उस शाला में वह नाना प्रकार के बाजों को लेकर गाती हुई बैठीं। वहाँ शब्द के प्रति आकर्षित होने वाला रुका। उसे भी खाकर आगे जाकर नाना प्रकार के सुगन्धि से पूर्ण भाजनों की दूकान लगा कर बैठीं। वहाँ सुगन्धि के प्रति आकर्षित होने वाला रुका। उसे भी खाकर आगे जा नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजनों से बर्तनों को भर भोजन की दूकान लगाकर बैठीं। वहाँ रस के प्रति आकर्षित होने वाला रुका। उसे भी खाकर आगे जा दिव्य पलंग बिछा कर बैठीं। वहाँ स्पर्श के प्रति आकर्षित होने वाला रुका। उसे भी खा गई। बोधिसत्व अकेले रह गये।

तब एक यक्षिणी ने सोचा—'यह बड़ा करारा आदमी है। मैं इसे खाकर ही लौटूँगी।" वह बोधिसत्व के पीछे पीछे चली।

जंगल के अगले हिस्से में, जंगल में काम करने वाले आदमियों ने यक्षिणी को देख कर पूछा "यह तेरे आगे आगे जाने वाला तेरा क्या लगता है?"

"आर्य ! यह मेरे प्रिय हैं।"

लोगों ने बोधिसत्व से कहा—"भो ! यह सुकुमार, फूलों की माला सदृश, सुन्दर बालिका अपने घर को छोड़कर तुम्हारा ही आश्रय देख निकली। इसे बिना थकाये साथ आप लेकर क्यों नहीं जाते ?"

"आर्यो ! यह मेरी भार्या नहीं है। यह यक्षिणी है। यह मेरे पाँच आदमियों को खा गई।"

"आर्यो ! जब पुरुष क्रुद्ध होते हैं, तो अपनी भार्या को यक्षिणी भी बनाते हैं, प्रेतिनी भी बनाते हैं।"

उसने चलते चलते गर्भिणी की शक्ल बना और फिर पुत्र की माँ होने का सा रंग-ढंग कर गोद में पुत्र को लिए लिए बोधिसत्व का अनुगमन किया।

उसका स्वामी नहीं। हाँ, जो राजाज्ञा के विरुद्ध नहीं करना चाहिए ऐसा कोई काम करते हैं, उन्हीं का मैं स्वामी हूँ। इसलिए मैं तुझे सारे राष्ट्र का [illegible] और हुकूमत नहीं दे सकता।"

"अच्छा देव! यदि राष्ट्र या नगर का शासन मुझे नहीं सौंप सकते, तो जो घर के अन्दर के लोग हैं, घर के अन्दर रहने वाले हैं वे लोग मेरी हुकूमत में रहें, ऐसी आज्ञा दें।"

उसके दिव्य स्पर्श-सुख में बँधे हुए राजा की सामर्थ्य नहीं हुई कि अस्वीकार कर सके। उसने कहा—"भद्रे! अच्छा! मैं घर के अन्दर रहने वालों को तेरे अधीन करता हूँ। तू उन पर हुकूमत कर।"

वह "अच्छा" कह राजा के सो जाने पर यक्ष-नगर गई। वहाँ से यक्षों को बुला लाई। अपने राजा को मार कर हड्डी मात्र बाकी छोड़ कर चर्म, चमड़ा, मांस तथा रक्त खा गई। बाकी यक्षों ने प्रधान द्वार के अन्दर जितने भी थे—मुर्ग और कुत्ते तक—सब को मार कर हड्डियाँ ही हड्डियाँ बाकी छोड़ीं।

अगले दिन लोगों ने दरवाजों को बन्द देख कुल्हाड़ियों से दरवाजों को तोड़, अन्दर घुस कर सारे घर को हड्डियों से भरा हुआ पाकर कहा—"वह आदमी ठीक ही कहता था कि यह मेरी भार्या नहीं है। यह यक्षिणी है। राजा ने बिना कुछ जाने ही उसे घर में रख अपनी भार्या बना लिया। वह यक्षों को बुलाकर सबको खाकर चली गई होगी।"

बोधिसत्व ने उस दिन उस शाला में परित्त-बालुका सिर पर रख परित्त सूत्र से [illegible] खड्ग ले खड़े ही खड़े सूर्य उगा दिया।

नागरिकों ने सारे राज-भवन को शुद्ध कर, गोबर से लीप और उसके ऊपर सुगन्धित लेप कर फूल बिखेर, पुष्पमालाएँ टाँग, धूप दे, नई मालाएँ बाँध कहा—"भो! जिस आदमी ने दिव्य रूप धारण करके पीछे-पीछे [illegible] की इन्द्रियों का [illegible] कर देखा तक नहीं, वह बहुत ही [illegible] तथा [illegible] आदमी है। उस तरह के आदमी के राजा [illegible] सुखी [illegible]। [illegible]"

[illegible] अमात्यों तथा नगर निवासियों ने [illegible] बोधिसत्व के [illegible] [illegible] 'देव! [illegible]।' फिर उन्हें नगर में [illegible] [illegible]

चार अगति-गामी कर्मों को छोड़, दस राज-धर्मों के विरुद्ध आचरण न कर धर्मानुसार राज्य करता हुआ दानादि पुण्य-कर्म कर कर्मानुसार परलोक सिधारा।

शास्ता ने यह पूर्व-जन्म की कथा कह बुद्ध होने पर यह गाथा कही—

समतित्तिकं अनवसेसकं
तेलपत्तं यथा परिहरेय्य,
एवं सचित्तमनुरक्खे
पत्थयानो दिसं अगतपुब्बं ॥

[जिस प्रकार किनारे तक लबालब भरे हुए तेल के पात्र को ले चले, उसी प्रकार निर्वाण की इच्छा करने वाले को चाहिए कि अपने चित्त की रक्षा करे।]

समतित्तिकं—किनारे तक भरा हुआ। अनवसेसकं, लबालब भरा हुआ। छानने के लिए बूंद बाकी न रहा। तेलपत्तं—तिल का तेल डाला हुआ पात्र परिहरेय्य, हरण करे, लेकर जाए। एवं सचित्तमनुरक्खे, उस तेल भरे पात्र की तरह अपने चित्त को कायानुस्मृति तथा सम्प्रयुक्तानुस्मृति के बीच में रख मुहूर्त भर के लिए भी बाहर (किसी दूसरे विषय की ओर) न जाने दे। उस तरह योगाभ्यासी पण्डित को चाहिए कि वह (अपने चित्त की) रक्षा करे, सँभाल कर रक्खे। क्यों? इसीलिए कि—

दुन्निग्गहस्स लहुनो यत्थकामनिपातिनो,
चित्तस्स दमथो साधु चित्तं दन्तं सुखावहं ॥

[कठिनाई से निग्रह किये जा सकने वाले, शीघ्रगामी, जहाँ चाहे वहाँ चले जाने वाले चित्त का दमन करना अच्छा है। दमन किया गया चित्त सुख देने वाला होता है।]

इसलिए—

सुदुद्दसं सुनिपुणं यत्थकामनिपातिनं,
चित्तं रक्खेथ मेधावी, चित्तं गुत्तं सुखावहं ॥

[बुद्धिमान् मनुष्य दुष्करता से दिखाई देने वाले, अत्यन्त चालाक, जहाँ

उसने गली में से गुजरते हुए उसे पिटते देख कर पूछा। "इसे क्यों पीट रहे हैं?"

"यह मजदूरी नहीं ला कर दे सक रही है।"

"इसका नाम क्या है?"

"इसका नाम है धनपाली?"

"नाम से धनपाली है, तो भी मजदूरी मात्र भी (कमाकर) नहीं (ला) दे सकती है?"

"धनपाली भी दरिद्र होती हैं अधनपाली भी। नाम बुलाने भर को होता है। मालूम होता है तू मूर्ख है।"

वह नाम के प्रति कुछ और उदासीन हो नगर से निकला। रास्ते में उसने एक आदमी को देखा जो रास्ता भटक गया था। उसने पूछा "तुम क्या करते घूम रहे हो?"

"स्वामी! मैं रास्ता भूल गया हूँ।"

"तुम्हारा नाम क्या है?"

"पन्थक"।

"पन्थक भी रास्ता भूलते हैं?"

"पन्थक भी भूलते हैं, अपन्थक भी भूलते हैं। नाम पुकारने भर के लिए है। मालूम होता है तू मूर्ख है।"

वह नाम के प्रति बिलकुल उदासीन हो बोधिसत्त्व के पास गया। बोधिसत्त्व ने पूछा—"क्यों तात! अपनी रुचि का नाम ढूँढ़ लाये?"

"आचार्य! जीवक भी मरते हैं अजीवक भी। धनपाली भी दरिद्र होती है अधनपाली भी। पन्थक भी रास्ता भूलते हैं, अपन्थक भी। नाम बुलाने भर को होता है। नाम से सिद्धि नहीं है। कर्म से ही सिद्धि होती है, मुझे दूसरे नाम की जरूरत नहीं है। मेरा जो नाम है, वही रहे।"

बोधिसत्त्व ने उसके देखे और किए को मिलाकर यह गाथा कही—

जीवकञ्च मतं दिस्वा धनपालिञ्च दुग्गतं,
पन्थकञ्च वने मूळ्हं पापको पुनरागतो॥

[जीवक को मरा देख, धनपाली को दरिद्र देख, पन्थक को जंगल में भटकता देख, 'पापक' फिर लौट आया।]

"आर्य ! यह पंडित है, मैं 'अतिपंडित' हूँ। हमने साझा व्यापार किया है। सो किसे क्या मिलना चाहिए ?"

"पंडित को एक हिस्सा, अतिपंडित को दो हिस्से।"

बोधिसत्व ने झगड़े का यह फैसला सुन कर, "यहाँ देखना है कि अदेखना, जानना चाहिए" (सोच) पुआल (घास) ला, वृक्ष के खोखले में भर आग लगा दी। अति-पंडित के पिता ने आग लगनी शुरू होने पर अध-जले शरीर से (वृक्ष) के ऊपर चढ़ शाखा पकड़, लटकते हुए, पृथ्वी पर गिर कर यह गाथा कही—

> साधु खो पण्डितो नाम नत्वेव अतिपण्डितो,
> अतिपण्डितेन पुत्तेन मनम्हि उपकूलितो

['पंडित' अच्छा है, 'अति-पंडित' अच्छा नहीं। (इस) 'अति-पंडित' पुत्र ने मुझे, क्षण भर में जला ही दिया था।]

साधु खो पण्डितो नाम, इस लोक में पाण्डित्य से युक्त, कारण अकारण का ज्ञान आदमी अच्छा है, शोभा देता है। अतिपण्डितो, नाम मात्र से अति-पंडित, कुटिल आदमी अच्छा नहीं। मनम्हि उपकूलितो, (मनाक्) थोड़े से और जल गया होता, अधजला ही छुटा हूँ।

उन दोनों ने बीच में से बाँट कर, बराबर बराबर का हिस्सा लिया। (फिर) यथा-कर्म (परलोक) गये।

शास्ता ने 'पहले भी यह कुटिल-व्यापारी ठग था' कह इस धर्मदेशना को ला, जातक का सारांश निकाल दिया।

उस समय का कुटिल-व्यापारी, अबका कुटिल-व्यापारी था। पंडित-व्यापारी तो मैं ही था।

९९. परोसहस्स जातक

"परोसहस्सम्पि समागतानं" यह गाथा शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, एक प्रश्न (पृथग्-जन) द्वारा पूछे गये प्रश्न के उत्तर में कही।

क. वर्तमान कथा

(इसकी) कथा (=वस्तु) सरभङ्ग जातक[1] में आयेगी।

एक बार धर्मसभा में एकत्र बैठे हुए भिक्षु 'आयुष्मानो! बुद्ध के संक्षिप्त उपदेश को धर्म सेनापति सारिपुत्र ने विस्तार से कहा' करके (सारिपुत्र) स्थविर की प्रशंसा कर रहे थे। शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ! इस वक्त बैठे क्या बात कर रहे थे?" उनके "यह (बात)" कहने पर, शास्ता ने, 'भिक्षुओ! न केवल अभी सारिपुत्र, मेरे संक्षिप्त कथन की विस्तार से व्याख्या करता है, उसने पहले भी की थी', कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व (एक) उदीच्य ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुआ था। उसने तक्षशिला में सभी शिल्पों (विद्याओं) को सीखा, फिर विषय-भोगों को छोड़, ऋषि प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो, पाँच अभिज्ञा और आठ समापत्तियों को प्राप्त कर, हिमालय में रहने लगा। पाँच सौ तपस्वी, इसके अनुयायी थे; उसका प्रधान-शिष्य, वर्षाकाल में, आधे (ढाई सौ) ऋषि-गण को लेकर, लोणम्बिल (निमक-खटाई) खाने के लिए बस्ती (मनुष्य पथ) में चला आया।

---

[1] सरभङ्ग जातक (५२२)

लेकिन वैसी पीड़ा होने पर भी 'वह भगवान् सम्यक् सम्बुद्ध हैं, वे इस प्रकार के दुःख के नाशार्थ धर्मोपदेश देते हैं; उन भगवान् का श्रावक संघ सुप्रतिपन्न है, जो इस प्रकार के दुःख के नाश के लिए प्रयत्नशील है, निर्वाण (ही) सुख है जहाँ इस प्रकार का दुःख नहीं है'—इन तीन विचारों पर विचार कर, दुःख को सहती रही। फिर उसने अपने स्वामी को बुला, शास्ता के पास भेजा ताकि वह (शास्ता से) उसका प्रणाम और हाल कहे।

शास्ता ने उसका प्रणाम करना सुनते ही कहा—"कोलिय-कुमारी सुप्पवासा, सुखी हो। (स्वयं) सुखी हो, वह अरोगी पुत्र को जन्म दे।"

भगवान् के (मुँह से) वचन (निकलने) के साथ ही, कोलिय-कुमारी सुप्पवासा सुखी हो गई और उसने स्वस्थ पुत्र को जन्म दिया। उसके स्वामी ने घर जाकर उसे प्रसूता देख, कहा 'भो! आश्चर्य है! अत्यन्त आश्चर्य है। तथागत के प्रताप से अत्यन्त आश्चर्य कर, अद्भुत तथा विचित्र बात हुई।'

सुप्पवासा ने पुत्र को जन्म दे (अपने स्वामी को) फिर शास्ता के पास भेजा ताकि वह बुद्ध-प्रमुख भिक्षुसंघ को एक सप्ताह के दान का निमन्त्रण दे आवे।

उस समय महामौद्गल्यायन के उपस्थायक (=सेवक) ने बुद्ध-प्रमुख संघ को निमन्त्रित किया हुआ था। शास्ता ने सुप्पवासा के लिए दान देने की जगह निकालने को, स्थविर को उस (उपस्थायक) के पास भेज, उसे सूचना दिलवा, सुप्पवासा का दान अपने और संघ के लिए स्वीकार किया। सुप्पवासा ने सातवें दिन सीवली-कुमार पुत्र को सजाकर उससे शास्ता और भिक्षु-संघ को प्रणाम कराया। उसे क्रम से सारिपुत्र स्थविर के पास ले जाने पर सारिपुत्र स्थविर ने उससे कुशल-समाचार पूछा—"क्यों सीवली! अच्छी तरह से तो हो?" उसने 'भन्ते! मुझे सुख कहाँ? मैं सात वर्ष तक लोह-कुम्भि (नरक) में रहा' कह स्थविर के साथ इस प्रकार बातचीत की।

उसकी बातचीत सुन 'मेरा सात दिन का जाया (=पुत्र) धर्मबुद्ध, धर्म-सेनापति के साथ मन्त्रणा (=बातचीत) करता है' सोच (सुप्पवासा) बहुत प्रसन्न हुई। शास्ता ने पूछा—'सुप्पवासे! और भी इस प्रकार के पुत्रों की इच्छा है?

"भन्ते ! यदि इस प्रकार के और सात पुत्र मिलें, तो सातों को चाहूँगी।" शास्ता उदान कह, (दान का) अनुमोदन कर चले गये। सीवली-कुमार सात ही वर्ष की आयु में शासन में अत्यन्त श्रद्धा-पूर्वक प्रव्रजित हुआ, (बीस) वर्ष पूरे होने पर, उपसम्पदा प्राप्तकर, पुण्यवान् (चीवर आदि) पाने वालों में अग्र हुआ और पृथ्वी को उन्नादित कर, अर्हत्त्व प्राप्त कर, पुण्यवानों में प्रथम स्थान प्राप्त किया।

एक दिन धर्म-सभा में बैठे हुए भिक्षुओं ने बातचीत चलाई—"आयुष्मानो ! सीवली स्थविर इस प्रकार के महापुण्यवान् हैं। उनकी इच्छा सम्पूर्ण हुई है। वह अन्तिम देह-धारी हैं ! (लेकिन फिर भी) वह सात वर्ष तक लोह-कुम्भि नरक में रहे, सप्ताह तक गर्भ के विगाड में रहे, जिससे, अहो ! माता-पुत्र ने अत्यन्त दुख पाया। ऐसा उन्होंने क्या (पाप-) कर्म किया था ?"

शास्ता ने वहाँ आकर पूछा—"भिक्षुओ ! इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे थे ?"

"यह (बात)" कहने पर शास्ता ने "भिक्षुओ ! सीवली, का महापुण्यवान् होना सात वर्ष तक लोह-कुम्भि नरक में रहना, सप्ताह भर तक गर्भ का विगाड रहना, यह उसके अपने किये कर्म का ही फल है; और सुप्पवासा का भी सात वर्ष तक गर्भ धारण करने का दुख, तथा सात दिन तक गर्भ के बिगड़े रहने का दुख उसके अपने किये कर्म का ही फल है" कह, उनके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ने उसकी पटरानी की कोख में जन्म ग्रहण किया। बड़े हो तक्षशिला में सब शिल्पों को सीखा और पिता के मरने पर राज्य प्राप्त कर वह धर्मानुकूल राज्य करने लगा। इस समय कोसल नरेश ने बड़ी भारी सेना के साथ आ वाराणसी को जीत राजा को मार डाला और उसकी ही पटरानी को अपनी पटरानी बनाया। वाराणसी नरेश के पुत्र ने पिता के [illegible] वाराणसी,

पहुँच, (उसने) थोड़ी दूर पर बैठ, राजा के पास सन्देश भेजा कि चाहे युद्ध दो अथवा राज्य? उसने प्रत्युत्तर भेजा—युद्ध दूंगा। राजा की माता ने उस खबर को सुन सन्देश भेजा—"युद्ध करने की आवश्यकता नहीं। सब रास्तों को रोक कर, चारों ओर से बाराणसी नगर को घेर लो। उससे लकड़ी, पानी, अनाज (=भात) की कमी होने से मनुष्य तंग आ जायेंगे। (फिर) तू बिना युद्ध के भी नगर को ले सकेगा।"

उसने माता का सन्देश पा, रास्तों को रोक कर, सात दिन तक नगर को घेरे रक्खा। नगर-निवासियों ने रास्ता न पाने पर, सातवें दिन, उस राजा का सिर ले जाकर कुमार को दिया। कुमार ने नगर में प्रवेश कर, राज्य ग्रहण किया। आयु समाप्ति होने पर वह कर्मानुसार (परलोक) सिधारा। उस समय के सात दिन तक (लोगों का) रास्ता बंद कर, नगर को घेर कर बैठने के कर्म-फल स्वरूप, वह इस समय, सात वर्षों तक लोहकुम्भि नरक में रह कर, सात दिन तक गर्भ के किवाड़ में रहा। लेकिन जो पदुमुत्तर (पद्मोत्तर बुद्ध) के समय, महादान देकर मैं (भविष्य) लाभियों में अव्वल नम्बर होऊँ करके, उनके चरणों में प्रार्थना (=बलवती इच्छा) की, और जो, विपस्सी, बुद्ध के समय, नगर निवासियों सहित सहस्र के मूल्य का गुड़-दही दे कर, प्रार्थना की, उसके प्रताप से, वह (वस्तु) लाभियों में प्रधान हुआ। शास्ता ने यह पूर्व-जन्म की कथा ला, बुद्ध हुए रहने पर यह गाथा कही—

असातं सातरूपेन पियरूपेन अप्पियं,
दुक्खं सुखस्स रूपेन पमत्तमतिवत्तति ॥

[असात (=अमधुर) मधुर स्वरूप; अप्रिय प्रिय स्वरूप; दुःख सुख स्व-रूप होकर(, प्रमादी आदमी को जीत लेता है।]

असातं सातरूपेन, अमधुर ही, मधुर से जो कि ढका है। पमत्तमतिवत्तति, अमधुर, अप्रिय, दुःख—इन तीनों को इस मधुर-स्वरूप आदि आकार से, स्मृति की अस्थिरता के कारण, प्रमादी (=आलसी) आदमी को लांघ जाते हैं, जीत लेते हैं, नीचा दिखा देते हैं।